गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-साहित्य

गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-साहित्य

(शोधपूर्ण प्रबन्ध)

लेखक
डॉ० जयभगवान गोयल एम० ए०, पी-एच० डी०
रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
पंजाब यूनिवर्सिटी पोस्ट ग्रेजुएट रीजनल सेण्टर, रोहतक ।

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य संसार
दिल्ली ६ पटना ४

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य संसार
१५४३ नई सड़क, दिल्ली ६

शाखा
[illegible] रोड पटना ४

प्रथम संस्करण १९७०

मूल्य
तीस रुपए (३० ००)

मुद्रक
राष्ट्रभाषा प्रिंटिंग एजेंसी द्वारा
प्रिंटिंग प्रस दिल्ली ६

दो शब्द

बात सन् १९५६ की है, शोध की इच्छा से कुछ विषय लेकर पजाब यूनिवर्सिटी के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० मदान के पास जालधर पहुचा। बाता-बाता मे डा० मदान ने एक सकेत दिया कि पजाब मे गुरमुखी लिपि मे कुछ साहित्य उपलब्ध है, क्या न मैं उस पर अनुसधान करू। उनकी बात से सूत्र पकड कर मैंने उस दिशा मे खोज शुरू की और मेरे हाथ अनेक मूल्यवान ग्रथ लगे। इनमे आकार मे सबसे बडा और काव्यत्व की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट 'गुरु प्रताप सूरज' था जिसमे लगभग ८२००० छद हैं और मैंने इसे ही अपने शोध प्रबन्ध का विषय बनाया। इसी बीच और भी बहुत सी रचनाएँ मुझे मिली और मैंने उनका समुचित अनुशीलन किया। इन चौदह वर्षों की मेरी खोज का ही फल यह पुस्तक है। खोज अभी भी जारी है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जब हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा, तो उस समय तक के सभी इतिहासो मे वह प्रौढ और पूर्ण समझा गया। लेकिन जब अपभ्रश और प्राकृत की रचनाएँ प्रकाश मे आने लगी, तो उसकी अपूर्णता भी प्रकट होने लगी। विशेषरूप से वीरगाथा काल के सम्बन्ध मे उनकी मान्यताए अपूर्ण सिद्ध हुई। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा अन्य विद्वानो ने उस कमी को पूरा करने की चेष्टा की। लेकिन उसमे और अब तक के हिन्दी के अन्य सभी इतिहासो मे अपूर्णता अभी तक भी बनी हुई है और यह अपूर्णता अब 'गुरुमुखी मे उपलब्ध हिन्दी साहित्य' को लेकर है। १६वी शती से १९वी शती तक पजाब-हरियाणा मे ब्रजभाषा के जो सैकडो साहित्यिक ग्रन्थ गुरुमुखी लिपि के माध्यम से लिखे गये उनको इतिहास मे शामिल किए बिना हिन्दी का कोई भी इतिहास कैसे पूर्ण हो सकता है और उनकी उपेक्षा करके जो भी धारणाए प्रवर्तित होगी वे कैसे सही मान्य हो सकती हैं। इस पुस्तक के द्वारा मै यथाशक्ति इसी कमी को पूरा करने की चेष्टा कर रहा हू।

मुझे हर्ष है कि समय समय पर हिन्दी के अनेक बडे-बडे विद्वानो, समीक्षको एव इतिहासकारो से इस सम्बन्ध मे मेरी चर्चा हुई और सभी ने इस साहित्य के महत्त्व को स्वीकार किया। इस साहित्य का महत्त्व इस बात से शायद कुछ आँका जा सके कि इधर पिछले कुछ वर्षों मे इस साहित्य-सामग्री को लेकर कई

शोध प्रबन्ध लिखे जा चुके है और पंजाब, कुरुक्षेत्र, पंजाबी तथा दिल्ली विश्व विद्यालयो से अनेक शोधकर्त्ता इस पर काम कर रहे हैं।

इस बात की बड़ी आवश्यकता थी कि इस साहित्य को हिन्दी में लाया जाए। मैंने यथाशक्ति इस कार्य को करने का प्रयास किया है और अब तक 'सम्प्रिष्न गुरु प्रताप सूरज' 'गुरु शोभा' 'जगनामा गुरु गोविन्दसिंह', 'गुरु विलास' गुरु गोविन्दसिंह का वीरकाव्य' एवं 'वार अमरसिंह' के नाम से कुछ ग्रन्थों का सम्पादन प्रकाशन कर चुका हूं कुछ पर काम कर रहा हूं। इस काम मे सबसे अधिक प्रेरणा प्रोत्साहन तथा सहायता अपने साहित्य-ममज्ञ उपकुलपति महोदय श्री सूरजभान जी से मिली। यह उन्ही की कृपा और आशीर्वाद का फल है कि इनमें से प्रथम तीनों पुस्तकें पंजाब विश्वविद्यालय ने प्रकाशित की। वस्तुत उनकी सत्प्रेरणा और प्रोत्साहन तो मेरे जीवन का सबसे बड़ा सबल रहा है जिसके बल पर मैं जीवन पथ पर निरन्तर क्रियाशील रहा हूं। मैं किन शब्दों में उनके प्रति अपना आभार प्रकट कर सकता हूँ। मैं तो उनका चिर कृतज्ञ हूँ।

इस पुस्तक के संबंध में एक बात और कहना चाहता हूं। सं० १७०० १६००तक के हिंदी साहित्य मे श्रृंगारिकता, आलंकारिकता अथवा रीति रचना की प्रवृत्तियां प्रमुख थी और इसलिए हिन्दी के प्राय सभी समीक्षकों ने इसे श्रृंगारकाल रीतिकाल अथवा अलंकार काल आदि नामों से अभिहित किया है। 'गुरुमुखी लिपि' में हिन्दी का जो साहित्य उपलब्ध हुआ है उसमें ये प्रवृत्तियां गौण हैं और इनके स्थान पर आध्यात्मिकता और वीरता की प्रवृत्तियां प्रमुख हैं। मैंने अपने विवेचन में इन्हीं प्रवृत्तियों के उद्घाटन पर अधिक बल दिया है, ताकि इस युग की समस्त साहित्यिक सम्पदा को सामने रखकर और उसकी सभी प्रवृत्तियों का ठीक से नाप-तोल करके इस काल का सही तौर पर पुनर्मूल्यांकन किया जा सके, और हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे जो अधूरापन है उसे दूर किया जा सके जो भ्रान्तियां हैं, उनका निराकरण किया जा सके। इसमें यदि मेरे इस प्रयास का कुछ भी योगदान हुआ तो मैं अपने को धन्य समझूंगा और बड़ी भारी उपलब्धि मानूंगा।

२० मई, १६७०

—जयभगवान गोयल

डॉ० इन्द्रनाथ मदान को
जिन्होने इस साहित्य निधि का सकेत दिया
ताकि
पजाब हरियाणा की हिन्दी को देन उपेक्षित न रह जाए

शोध प्रबन्ध लिखे जा चुके हैं और पंजाब कुरुक्षेत्र, पंजाबी तथा दिल्ली विश्व-विद्यालयों से अनेक शोधकर्ता इस पर काम कर रहे हैं।

इस बात की बड़ी आवश्यकता थी कि इस साहित्य को हिन्दी में लाया जाए। मैंने यथाशक्ति इस काम को करने का प्रयास किया है और अब तक 'संक्षिप्त गुरु प्रताप सूरज' 'गुर शोभा' 'जंगनामा गुरु गोविन्दसिंह', 'गुर विलास', 'गुरु गोविन्दसिंह का वीरकाव्य' एवं 'वार अमरसिंह' के नाम से कुछ ग्रंथों का सम्पादन प्रकाशन कर चुका हूं, कुछ पर काम कर रहा हूं। इस काम में सबसे अधिक प्रेरणा, प्रोत्साहन तथा सहायता अपने साहित्य ममज्ञ उपकुलपति महोदय श्री सूरजभान जी से मिली। यह उन्हीं की कृपा और आशीर्वाद का फल है कि इनमें से प्रथम तीनों पुस्तकें पंजाब विश्वविद्यालय ने प्रकाशित की। वस्तुतः उनकी सत्प्रेरणा और प्रोत्साहन तो मेरे जीवन का सबसे बड़ा संबल रहा है जिसके बल पर मैं जीवन पथ पर निरंतर क्रियाशील रहा हूं। मैं किन शब्दों में उनके प्रति अपना आभार प्रकट कर सकता हूँ। मैं तो उनका चिर-कृतज्ञ हूँ।

इस पुस्तक के संबंध में एक बात और कहना चाहता हूं। सं० १७०० १६००तक के हिन्दी साहित्य में शृंगारिकता, आलंकारिकता अथवा रीति रचना की प्रवृत्तियां प्रमुख थीं और इसलिए हिन्दी के प्रायः सभी समीक्षकों ने इस शृंगारकाल रीतिकाल अथवा अलंकार काल आदि नामों से अभिहित किया है। 'गुरमुखी लिपि' में हिन्दी का जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसमें ये प्रवृत्तियां गौण हैं और इनके स्थान पर आध्यात्मिकता और वीरता की प्रवृत्तियां प्रमुख हैं। मैंने अपने विवेचन में इन्हीं प्रवृत्तियों के उद्घाटन पर अधिक बल दिया है, ताकि इस युग की समस्त साहित्यिक सम्पदा को सामने रखकर और उसकी सभी प्रवृत्तियों का ठीक से नाप-तोल करके इस काल का सही तौर पर पुनर्मूल्यांकन किया जा सके और हिन्दी साहित्य के इतिहास में जो अधूरापन है उसे दूर किया जा सके, जो भ्रांतियां हैं उनका निराकरण किया जा सके। इसमें यदि मेरे इस प्रयास का कुछ भी योगदान हुआ तो मैं अपने को धन्य समझूंगा और बड़ी भारी उपलब्धि मानूंगा।

२० मई, १६७०

—जयभगवान गोयल

डॉ० इन्द्रनाथ मदान को
जिन्होंने इस साहित्य-निधि का संकेत दिया
ताकि
पंजाब हरियाणा की हिंदी को देन उपेक्षित न रह जाए

विषय-सूची

१

आमुख पजाब मे हिन्दी

अब तक आमतौर पर लोगो की यही धारणा रही है कि पजाब पजाबी और उर्दू फारसी का ही क्षेत्र रहा है और जब हम हिन्दी भाषी क्षेत्र की बात करते हैं तो उसम मुख्यत उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान हरियाणा और बिहार आदि प्रदेशो की ही गणना करते है। पजाब को अहिन्दी भाषी प्रदेश ही मानते रहे है। हिन्दी के उद्भट विद्वान डा० नगेन्द्र ने एक स्थान पर लिखा था कि पजाब हिन्दी भाषी प्रदेश स बाहर पडता था, इसलिए यहा हिन्दी-साहित्य सृजन का काय नही हुआ। इधर नवीनतम खोजो ने यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दी भाषी क्षेत्र के अतिरिक्त गुजरात, महाराष्ट्र, बगाल और आसाम मे भी १७वी शती से १६वी शती तक प्रचुर परिमाण म हिन्दी-साहित्य की रचना हुई। बगाल मे 'ब्रजबूली' नाम से जो साहित्य प्रचलित है वह उसी ब्रजभाषा से सम्बन्धित साहित्य है जिसम ब्रजमडल म कृष्णलीलाओ का मधुर गान गुजरित हुआ। महाराष्ट्र के सत कवि ज्ञानदेव तथा नामदेव तो प्रसिद्ध है ही, इनके अतिरिक्त और भी कितने ही ऐसे कवि हुए हैं, जिन्होंने अपनी अमूल्य काव्य-कृतियो से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। गुजरात के भी कुछ हिन्दी कवि प्रकाश म आये है जिन्होने गुजराती लिपि के माध्यम स हिन्दी साहित्य का सृजन किया। इनमे अखाजी तथा गोविन्द गिलाभाई का नाम उल्लेखनीय है। दाक्षिणात्य कवियो मे काव्य की एक विशिष्ट 'मणिप्रवाल' शली प्रचलित है जिसम एक पद म विभिन्न भाषाओ की मणिया गुम्फित रहती है और उनमे हिन्दी भी एक थी। सुदूर दक्षिण म तजोर के पुस्तकालय म आज भी द्रविड भाषाओ की लिपियो म हिन्दी की रचनायें उपलब्ध है। त्रावणकोर के महाराजा स्वातिनाल ब्रज भाषा के एक उत्कृष्ट कवि थे। पजाब मे तो सकडो की सख्या म हिन्दी के ऐसे साहित्यकार हुए हैं जिन्होने न केवल हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध किया वरन् उसके माध्यम से जन-जागरण और सास्कृतिक चेतना के अभ्युदय का काय भी किया

और इस प्रकार उस युग के हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। यह सारा साहित्य अभी तक क्यों प्रकाश मे नही आ सका इसका मुख्य कारण यह है कि यह गुरमुखी लिपि म लिखा गया है और इधर गुरमुखी लिपि का पजाबी भाषा से कुछ ऐसा सम्बन्ध स्वीकार किया जाता रहा है कि जो भी साहित्य गुरमुखी लिपि मे लिखा दिखाई देता है उसे पजाबी का साहित्य घोषित कर दिया जाता है। पजाबी के बडे-बडे विद्वान भी इस भूल से नही बच पाये हैं। पजाब विश्वविद्यालय के पजाबी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डा० मोहनसिंह ने अपने शोध प्रबन्ध 'ए हिस्टरी ऑफ पजाबी लिटरेचर' म भाई सतोखसिंह की भाषा को ब्रज मिश्रित पजाबी कहा है जबकि उनके साहित्य म खोजने से ही कही पजाबी का शब्द मिल सकेगा अन्यथा वह शुद्ध एव परिमार्जित ब्रज भाषा है। इसी प्रकार की भूलें अन्य विद्वानो ने भी की हैं जो कि पजाब के ऐसे सारे ब्रज भाषा साहित्य को जिसकी लिपि गुरमुखी है पजाबी का साहित्य मान बैठे हैं। वास्तव मे लिपि और भाषा का जितना सघर्ष हमारे देश म आज दिखाई देता है उतना पहले कभी नही रहा। एक ओर हिन्दी के लिए गुजराती, फारसी, गुरमुखी बगला आदि लिपियो का प्रयोग हुआ तो पजाबी का अधिकतर साहित्य फारसी लिपि मे लिखा गया है और उर्दू के लिए तो रोमन लिपि का प्रयोग अग्रेजी काल मे बराबर होता रहा है। इसीलिए आज जब हम प्रातीय भाषाओ और राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विचार करते हैं तो इस तथ्य को आखो से ओझल नही कर सकते कि भाषा और लिपि का यह विवाद निराधार है। सभी प्रातो म वहा की लिपि मे भी हिन्दी का प्रयोग होता रहा है। दूसरे जैसाकि मैंने ऊपर कहा है हिन्दी इन प्रदेशो के लिए कोई नई चीज नही है। इन अहिन्दी भाषी प्रदेशों के कई कवियो द्वारा बराबर इस भाषा को अपनाया जाता रहा है। यदि हम इतिहास के पन्ने पलटें तो हम पता चलेगा कि मध्ययुग म विदेशी सस्कृति और आक्रमणकारी यवन शक्ति के विरुद्ध भारतीय जनता मे जिस सबल सास्कृतिक आदोलन का अभ्युदय हुआ था उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम मुख्यत हिन्दी ही रही है। ऊपर जिन प्रदेशो म हिन्दी साहित्य सृजन का मैंने सकेत किया है उन सभी स्थानो के हिन्दी कवियो ने इस सास्कृतिक चेतना को अपने साहित्य म मुखरित किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग मे भारत के विभिन्न प्रदेशो म हिन्दी भाषा का सामान्य प्रचार रहा है और उसने न केवल भारतीयो की राष्ट्रीय और सास्कृतिक चेतना को जगाने और उनमे भावात्मक एकता को बनाए रखने म सहायता की है वरन् उसको और भी बलवती बनाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग म हिन्दी समस्त भारत की सर्वाधिक सम्मान एव व्यापक साहित्यिक भाषा था और उसे राष्ट्रभाषा के समान सम्मान प्राप्त था। भले ही उसे राजकीय स्वीकृति प्राप्त न हुई हो। अभी हाल ही म तमिल प्रदेश तथा आसाम म भी हिन्दी ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं,

जिससे हमारी धारणा की पुष्टि होती है।

जहा तक पजाब का सम्बन्ध है, यहा १०वी शती से १९वी शती तक हिन्दी साहित्य सृजन की एक क्रमबद्ध धारा अजस्र रूप म प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। हिन्दी भाषा का आरम्भ विद्वाना न १०वी, ११वी शती स माना है। उस युग मे गुजरात तथा राजस्थान मे धम प्रधान रासक काव्यो अथवा चरित्र-प्रधान रासो-ग्रथो का प्रणयन हुआ और इन्ही ग्रन्था म देशी भाषा हिन्दी का रूप उभरता हुआ दिखाई देता है। 'सदेश रासक' का इन ग्रन्था म महत्त्वपूण स्थान है, जिसकी रचना अद्दहमान (अब्दुलरहमान) न ११वी शती मे की थी। इस ग्रथ मे हिन्दी के आरम्भिक रूप क दशन होते हैं। अद्दहमाण सिधुपूववर्ती प्रदेश के रहने वाले थे, जिससे सिद्ध होता है कि हिन्दी के इस प्रारम्भिक युग म भी पजाब न हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास मे योगदान दिया।

इसी युग म सिद्धा न भी लोक भाषा म अपने विचारा को व्यक्त किया। इन सिद्ध साहित्य मे भी हिन्दी के आरम्भिक रूप के दशन होते है। इन सिद्धो मे से चौरगीनाथ, चरपटनाथ, बालानाथ मसतनाथ, जयदेव आदि कई सिद्धो का क्षेत्र पजाब रहा है। इन सिद्धो की रचनाओ को हिन्दी के 'आदिकालीन' साहित्य मे महत्त्वपूण स्थान प्राप्त है।

इसके परचात हिन्दी का जो गौरवपूण साहित्य हमारे सामने आता है उसमे चन्दवरदाई का नाम उल्लेखनीय है, जिसे हिन्दी का सबसे बडा और सबसे पहला प्रबन्ध काव्य 'पृथ्वीराज रासो' लिखने का श्रेय प्राप्त है। इस महाकवि को जन्म देने का गौरव भी पजाब को ही प्राप्त है। उसी युग मे अर्थात् १२वी शती मे ही यहा फरिदुद्दीन शकरगज एव बूअलीशाह कलादर जैसे सूफी कवियो ने भी हिन्दी को अपनी लेखनी का माध्यम बनाया।

उत्तर मध्यकाल म पजाब के इतिहास म एक नए सास्कृतिक पुनरुत्थान के युग का प्रारम्भ होता है। यह समय था जब विदेशी सस्कृति और आतकवादी मुगल शक्ति के विरुद्ध सिक्ख गुरुओ न एक प्राणवान, प्रेरणादायक सास्कृतिक आन्दोलन का सूत्रपात किया था। सिक्ख गुरुओ ने भारतीय आध्यात्मिक सम्पदा को सरल और सरस वाणी म जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत किया। इस समस्त 'गुरु वाणी' की भाषा भी ब्रज है जो इस समय ब्रजमडल की साहित्यिक भाषा थी। गुरुनानक की भाषा 'साध' भाषा है। उन्होन लोक भाषा को अपनाया है परन्तु उनके उत्तराधिकारी गुरुओ का झुकाव बराबर ब्रज भाषा की ओर बढता गया। पचम गुरु तक आते आते उन्होंने परिमार्जित ब्रज भाषा को अपनाना

आरम्भ कर दिया था।

इस विवरण से हम इस निर्णय पर पहुचते है कि इस युग मे पजाब के हिन्दुश्रो, सिक्खो मुसलमानों, सिद्धों सूफियो सनो, राज्याश्रितो और लोक कवियो-सभी ने समान रूप से हिन्दी भाषा का प्रयोग किया तथा हिन्दी मे मूल्यवान साहित्य की रचना की है। वस्तुत, पजाब हिन्दी काएक गौरव-पूर्ण क्रमिक इतिहास हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

पजाब मे हिन्दी के विकास की यह कहानी यही समाप्त नही हो जाती वरन् इसके पश्चात् एक बडी सख्या मे हिन्दी रचनाएँ यहाँ उपलब्ध हुई है। रहीम, कृपाराम तथा हृदयराम भी पजाब की देन है, यह तथ्य हिन्दी प्रेमियो से छिपा नही है। इनके अतिरिक्त और भी एस सैकडो कवि हैं जिनके नाम स भी अभी तक हिन्दी के पाठक परिचित नही हैं। उनमे से कुछ के नाम ये हैं मिहरवान, हरिया जी, हरिजी, गुरुदास, साईंदास मनरेण, गुरदास गुणी, सहजराम, राजाराम दुग्गल, सुक्खा सिंह सेनापति हीर मगल, हसराम, अमृतराय, टहकण, अणिराय, सतराम छिब्बर सणा धन्ना, सुन्नामा, सुन्दर, आलमसिंह, सरूपदास भल्ला, निहाल, गुलाबसिंह, सतोखसिंह, कीरतसिंह बसावासिंह, जैमलसिंह आदि।

गुरु गाविन्दसिंह स्वय हिन्दी के उच्चकोटि के कवि थ और उनका 'दशम ग्रन्थ' हिन्दी के श्रेष्ठतम ग्रन्थो मे स्थान प्राप्त करने का अधिकारी है। उनके दरबार मे भी हिन्दी के अनेक कवि थे जिनकी रचनाओ की हस्तलिखित प्रतियो का भार ९ मन कहा जाता है और उस विद्यासागर' का नाम दिया गया था। पजाब के हिन्दी कवियो ने कुछ उत्कृष्ट प्रबन्धकाव्यो की भी रचना की, जिनम से वचित्रनाटक' (अपना कथा), हनुमान नाटक', 'गुरु विलास छवा पातसाही' गुरु विलास दसवी पातसाही, महिमा प्रकाश, साखी नानक साह की, गुरु नानक विजय', 'गुर प्रताप सूरज, श्री नानक प्रकाश, 'पथ प्रकाश आदि का नाम उल्लेखनीय है। पटियाला नाभा, सगरूर, जीन्द आदि सिक्ख रियासतो मे भी हिन्दी साहित्य खूब पल्लवित हुआ। कुछ सिक्ख शासको ने भी हिन्दी म रचना की।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पजाब म मध्ययुग म अत्यधिक परिमाण म हिन्दी काव्य की रचना हुई। वस्तुत इस साहित्य के अभाव म हिन्दी साहित्य का इतिहास सवथा अपूर्ण और अधूरा है।

यह तो हुई पजाब के हिन्दी काव्य ग्रन्थो की बात। इसके अतिरिक्त पजाब

की हिन्दी को एक महत्वपूण देन ग्रौर भी है। हिन्दी पाठको से यह बात छिपी नही है कि हिन्दी खडी बोली गद्य का इतिहास बहुत पुराना नही है भारतेन्दु को ग्राधुनिक हिन्दी गद्य का जन्मदाता माना जाता है, । उनसे पूव का जो गद्य-साहित्य उपलब्ध है, उसकी भाषा बहुत परिमार्जित ग्रौर व्यवस्थित नहीं है। हिन्दी के लिए यह ग्रत्यन्त लज्जा की वात रही है कि उसका गद्य १०० वष से ग्रधिक का नही है। परन्तु पजाब के हिन्दी साहित्य के सम्बन्ध मे जो शोध-काय पिछले कुछ वर्षो म हुग्रा है, इसने हमे इस ग्रवमानता ग्रौर ग्रपमान की स्थिति से बचा लिया है। पजाब म खडी बोली गद्य की एक ४००, ५०० वष पुरानी परम्परा प्राप्त हुई है। यह साहित्य गुरुमुखी लिपि मे है इसीलिए यह ग्रभी तक प्रकाश मे नही ग्रा सका। पजाब इस क्षेत्र मे हिन्दी भाषी क्षेत्रो से कितना ग्रागे रहा है ग्रौर यहा हिन्दी का कितना प्रचार, प्रसार ग्रौर विकास हुग्रा इसका ग्रनुमान ग्रब सहज ही लगाया जा सकता है। पजाब मे हिन्दी भाषा इतनी लोक प्रिय थी कि गुरुमुखी लिपि के माध्यम से यहाँ हिन्दी के पत्र पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होते रहे हैं।

सबसे ग्रधिक ग्राश्चय की बात तो यह है कि गुरुमुखी लिपि म रचित हिन्दी की कुछ पाठय-पुस्तकें भी उपलब्ध हुई हैं, जिनसे पता चलता है कि पजाब म उस समय गुरुमुखी लिपि के माध्यम से हिन्दी भाषा पढाई जाती रही है। उदाहरण के लिए मुफीदेग्राम प्रेस लाहौर स प्रकाशित 'हजूरी बाग' पुस्तक देखी जा सकती है उसकी रचना मु शी गुलाबसिंह की फरमाइश पर ज्ञानी हजूर हरिप्रसिद्ध नाम हजारा सिंह ने १८६१ ई० म की थी। यह पुस्तक स्कूलो ग्रौर कालिजो मे पढाए जाने के लिए लिखी गई थी। इस पुस्तक को पढने से पता चलता है कि उस युग म पजाब म फारसी ग्रौर ग्रग्रेजी का ग्रधिक मूल्य था। (दफ्तरो म उसी भाषा का प्रयोग होता था) परन्तु जनता की माग पर सरकार ने गुरुमुखी को 'लाजमी' (ग्रनिवाय) करार दे दिया था। इस पुस्तक से यही पता चलता है कि इस समय पजाब म गुरुमुखी लिपि के माध्यम से हिन्दी ही विद्यार्थियो को पढाई जाती थी। इस पुस्तक म ग्रग्रेजी राज्य तथा विक्टोरिया महारानी की प्रशसा की गई है ग्रौर विद्यार्थियो को नीति, परोपकार प्रेम विनम्रता सतोष ग्रादि की शिक्षा दी गई है। इस पुस्तक म पद्य की भाषा भी खडी बोली ही है जो पजाब म पल्लवित खडी बोली पद्य की परम्परा की ग्रोर सकेत करती है। पजाब म रचित खडी बोली का यह साहित्य हम हिन्दी गद्य ग्रौर पद्य का इतिहास फिर से लिखने को मजबूर करता है। हिन्दी भाषा के विकास म पजाब की यह महत्वपूण देन है।

पजाब म हिन्दी कितनी लोकप्रिय थी, इसके पक्ष म एक ग्रौर प्रमाण

कृष्णकाव्य

(अनुदित एव मौलिक)

श्रीमदभागवत पुराण भगवदगीता महाभारत, गीत गोविन्द के अनुवाद) कृष्णावतार (गुरु गोविन्दसिंह) सुदामाचरित (चार कवियो के अलग अलग, उमा दास, हिरदेराम निहाल, साहिबदास) उसतुति कृष्ण जी की (रायमल) सम्वाद ऊधो तथा गोपिया के (मसतराम) कथा श्री किशन जी (साढी मिहरबान), किशन कौतुहल तथारास मण्डल लीला (साहिबसिंह मिर्गेन्द्र) श्री गिरधर लीला (किशनदास) गोपी उधव सवाद (कुन्दनमिश्र), बालपन कृष्ण जी का (नजीर), ब्रिजबिलास (बजवासी दास) रुकमणी मगल (जातीदास), वाहगूजरी का झगडा (फत्ता, सदारग) आदि

सिक्ख मत से सम्बंधित

आदिग्रन्थ (गुरुग्रन्थसाहिब) कच्ची बाणी भाई गुरदास के कवित सवैये सुखमनी सहस्रनाम गोष्ट मिहरवान, हरिया जी का ग्रन्थ, एव दशमग्रन्थ।

उदासी सतो की बाणी—(प्रमुख कवि—श्रीचन्द, सतोरेण, अमीरदास)

सेवापथी बाणी—(प्रमुख कवि—कन्हैया जी सेवाराम, सहजराम)

निमल बाणी—प्रमुख कवि—(गुलाबसिंह सुक्खासिंह सतोखसिंह)

प्रमुख ग्रन्थ—महिमा प्रकाश (सरूपदास भल्ला) गुरु नानक वस प्रकाश (सुखवासी राइ) जनम साखी श्री गुरु नानक शाह की (सतदास) श्री गुरु नानक चन्द्रिका (पडित रतन हरि), गुरु चन्द्रोदय कौमुदी (श्री रामनारायण), श्री गुरु रतनावली (हरीसिंह) नानक प्रकाश गुरु प्रताप सूरज (सतोखसिंह), गुरु विलास पातसाही ६ (सोहन), गुरु विलास (कुइर्सिंह), गुरु विलास पातशाही १० (सुक्खासिंह), गुरु गोविन्द सिंह विलास (ब्रह्म अद्वैतानन्द) श्री गुरु रतन माल (साहिबसिंह) गुरु पचासा (ग्वाल) आदि।

वीर काव्य

वचित्र नाटक चडी चरित्र, रामावतार कृष्णावतार रुद्रावतार (दशम ग्रन्थ मे सकलित रचनायें) गुरु शोभा (सेनापति) जगनामा गुरु गोविन्दसिंह (अणीराय) गोविन्द बावनी (हीर) गुरु विलास (सुक्खासिंह), फतहनामा श्री गुरु खालसा का (गणेश) हमीरहठ विजय विनोद वार अमरसिंह की (केशव दास) हमीरहठ (चन्द्रशेखर वाजपेयी) आदि।

रीति ग्रन्थ एव छद शास्त्र

गरब गजनी (सतोखसिंह) साहित्य शिरोमणि (कवि निहाल) अलकार

सागर सुधा(टहलसिंह), सभा मण्ड (फतेसिंह आहलुवालिया), सुचित्रप्रसतारणव (सीतल), छन्द रत्नावली (हरिराम दास), दोहरा भेदावली (निहाल) पिंगल दपण (अज्ञात), छन्द बोधनी (ज्ञानराम), श्रीनिहालसिंह प्रेमोदेन्दु चन्द्रिका (हरिनाम), नवल रस चन्द्रोदय (सोभ), सभा प्रकाश(हरिचरनदास), प्रस्तार प्रकाश पिंगल(सुजानसिंह), प्रस्तार प्रभाकर(रस पुज), वदन कलानिधि(बदन सिंह), अलकार कला निधि (श्रीकिशनभट्ट) अष्ट नाइका (केशवदास),सभा मडन (अमीरदास), साहित्य बोध(हरिनाम), सुन्दर सिंगार (कविराज सुन्दर), सुधासर ग्रन्थ (गोपालसिंह—नवीन) सोभा सिंगार (गगाराम), श्री कृष्ण साहित्य सिंधु (अमीरदास), कुसुम वाटिका (साहिब सिंह) आदि।

पजाब म रचित हिन्दी का यह विपुल साहित्य हिन्दुओ और सिक्खो की सास्कृतिक एकता, राष्ट्रीय भावना एव सामाजिक चेतना का परिचायक है और हिन्दी भाषा की व्यापक लोक, प्रियता, उसके साहित्य की जीवतन्ता तथा समद्धि का निर्देशक है। नि सन्देह हिन्दी साहित्य के इतिहास मे इस साहित्य का महत्व-पूण स्थान है।

इस पुस्तक मे मेरे कुछेक शोध निबन्ध सकलित है। इन निबन्धो मे गुरु-मुखी लिपि म रचित प्रमुखकाव्य कृतिया का, विशेपरूप से प्रबन्धकाव्या एव वीरकाव्या का विवेचन किया गया है। दशमग्रन्थ' इस साहित्य निधि का सवश्रेष्ठ एव आदश ग्रन्थ है इसलिये उसकी प्रमुख प्रवृत्तिया (वीरता एव आध्यात्मिकता) तथा छन्द-पद्धति पर अलग अलग निबन्ध लिखे गये है। एक लेख खडी बोली गद्य-पद्य रचना पर है, जो पजाब की खडी बोली—साहित्य परम्परा की ओर सकत करता है। 'जपुजी की टीका गरबगजनी' पर भी एक लेख दिया गया है जिससे अनुवादो के स्तर समीक्षा के स्वरूप एव यहा के रीति ग्रन्थो की परम्परा का आभास मिल सकेगा। इसे हिन्दी की प्रथम आलोचनात्मक पुस्तक होने का गौरव प्राप्त है, इस दृष्टि से भी यह रचना महत्वपूण है। परिशिष्ट रूप म बाल्मीकि रामायण भाषा तथा श्रीमद्भागवत पुराण भाषा के कुछ अश दिये गए है जिनसे इन अनुवादा की मार्मिकता एव काव्य सौन्दय का बोध हो सके। इन काव्य ग्रन्थो क ऐसे सरस पद्यानुवाद अन्यत्र दुलभ है। श्रीमद भागवत पुराण' क उद्धत अशा को सहज ही नन्ददास की 'राम पचाध्यायी के समकक्ष रखा जा सकता है।

यह दावा तो नही मैं कर सकता कि इन निबन्धो म गुरुमुखी लिपि मे रचित सारे साहित्य का सर्वांगीण विवेचन प्रस्तुत किया गया है लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस साहित्योन्धि की कुछ मणियो का प्रकाश

कृष्णकाव्य

(अनुदित एव मौलिक)

श्रीमदभागवत पुराण, भगवदगीता महाभारत, गीत गोविन्द के अनुवाद) कृष्णावतार (गुरु गोविन्दसिंह) सुदामाचरित (चार कवियो के अलग अलग, उमा दास, हिरदेराम निहाल साहिबदास) उसतुति कृष्ण जी की (नत्थमल) सम्वाद ऊधौ तथा गोपिया के (मसतराम), कथा श्री क्रिशन जी (सोढी मिहरवान), किशन कौतुहल तथा रास मण्डल लीला (साहिबसिंह मृगेन्द्र) श्री गिरधर लीला (नि॰नदास) गोपी उधव सवाद (वृन्दनमिश्र) बालपन कृष्ण जी का (नजीर), ब्रिजबिलास (बजवासी दास) रुक्मणी मगल (जातीदास), का्हगूजरी का झगडा (फत्ता, सदारग) आदि

सिक्ख मत से सम्बधित

आदिग्रन्थ (गुरुग्रन्थसाहिब) कच्ची वाणी, भाई गुरदास के कवित्त सवैय, सुखमनी सहस्रनाम गोष्ट मिहरवान हरिया जी का ग्रन्थ, एव दशमग्रन्थ ।

उदासी सतों की वाणी—(प्रमुख कवि—श्रीचन्द सतोरेण, अमीरदास)

सेवापथी वाणी—(प्रमुख कवि—कन्हैया जी सेवाराम सहजराम)

निमल वाणी—प्रमुख कवि—(गुलाबसिंह सुक्खासिंह सतोखसिंह)

प्रमुख ग्रन्थ—महिमा प्रकाश (सरूपदास भल्ला), गुरु नानक वस प्रकाश (सुखवासी राइ) जनम साखी श्री गुरु नानक शाह की (सतन्दास) श्री गुरु नानक चन्द्रिका (पडित रतन हरि) गुरु चन्द्रोदय कौमुदी (श्री रामनारायण), श्री गुरु रतनावली (हरीसिंह), नानक प्रकाश गुरु प्रताप सूरज (सतोखसिंह), गुर बिलास पातसाही ६ (सोहन), गुरु विलास (कुइरसिंह), गुरु विलास पातशाही १० (सुक्खासिंह) गुर गोविन्द सिंह विलास (ब्रह्म श्रद्धानन्द) श्री गुरु रतन माल (साहिबसिंह) गुरु पचासा (ग्वाल) आदि ।

वीर काव्य

वचित्र नाटक, चडी चरित्र रामावतार, कृष्णावतार रुद्रावतार (दशम ग्रन्थ म सकलित रचनायें) गुरु शाभा (सेनापति) जगनामा गुर गोविन्दसिंह (अणीराय) गोविन्द बावनी (हीर), गुरु विलास (सुक्खासिंह), फतहनामा श्री गुर खालसा का (गणेश) हमीरहठ विजय विनोद वार अमरसिंह की (केशव दास) हमीरहठ (चन्द्रशेखर वाजपेयी) आदि ।

रीति ग्रथ एव छद शास्त्र

गरब गजनी (सतोखसिंह) साहित्य शिरोमणि (कवि निहाल) अलकार

सागर सुधा(टहलसिंह) सभा मण्ड (फतेसिंह आहलुवालिया), सुश्रितप्रसतारणव (सीतल), छन्द रत्नावली (हरिराम दास), दोहरा भेदावली (निहाल), पिंगल दपण (अज्ञात), छन्द बोधनी (ज्ञानराम), श्रीनिहालसिंह प्रेमोदेन्दु चन्द्रिका (हरिनाम), नवल रस चन्द्रोदय (सोभ), सभा प्रकाश(हरिचरनदास), प्रस्तार प्रकाश पिंगल(सुजानसिंह), प्रस्तार प्रभाकर(रस पुज), वदन कलानिधि(वदन सिंह), अलकार कला निधि (श्रीकिशनभटट) अष्ट नाइका (केशवदास),सभा मडन (अमीरदास), साहित्य बोध(हरिनाम), सुन्दर सिंगार (कविराज सुन्दर), सुधासर ग्रन्थ (गोपालसिंह—नवीन) सोभा सिंगार (गगाराम), श्री कृष्ण साहित्य सिंधु (अमीरदास), कुसुम वाटिका (साहिब सिंह) आदि।

पजाब मे रचित हिन्दी का यह विपुल साहित्य हिन्दुओ और सिक्खो की सास्कृतिक एकता, राष्ट्रीय भावना एव सामाजिक चेतना का परिचायक ह और हिन्दी भाषा की व्यापक लोक, प्रियता, उसके साहित्य की जीवतन्ता तथा समद्धि का निर्देशक है। नि सन्देह हिन्दी साहित्य के इतिहास मे इस साहित्य का महत्व पूण स्थान है।

इस पुस्तक मे मेरे कुछेक शोध निबन्ध सकलित है। इन निबन्धो मे गुरु मुखी लिपि मे रचित प्रमुखकाव्य कृतियो का, विशेपरूप से प्रबन्धकाव्यो एव वीरकाव्यो का विवेचन किया गया है। 'दशमग्रन्थ इस साहित्य निधि का सवश्रेष्ठ एव आदश ग्रन्थ है इसलिये उसकी प्रमुख प्रवृत्तियो (वीरता एव आध्यात्मिकता) तथा छन्द-पद्धति पर अलग अलग निबन्ध लिखे गय है। एक लेख खडी बोली गद्य पद्य रचना पर है, जो पजाब की खडी बोली—साहित्य परम्परा की ओर सकेत करता है । 'जपुजी की टीका गरबगजनी' पर भी एक लेख दिया गया है, जिसमे अनुवादो के स्तर, समीक्षा के स्वरूप एव यहा के रीति ग्रन्थो की परम्परा का आभास मिल सकेगा। इसे हिन्दी की प्रथम आलोचनात्मक पुस्तक होने का गौरव प्राप्त है, इस दृष्टि से भी यह रचना महत्वपूण है। परिशिष्ट रूप म बाल्मीकि रामायण भाषा तथा श्रीमद्भागवत,पुराण भाषा के कुछ अश दिये गए हैं, जिनसे इन अनुवादो की मार्मिकता एव काव्य सौन्दय का बोध हो सके। इन काव्य-ग्रन्थो के ऐसे सरस पद्यानुवाद अन्यत्र दुलभ हैं। श्रीमद-भागवत पुराण' के उद्धृत अशो को सहज ही नन्ददास की 'राम पचाध्यायी' के समकक्ष रखा जा सकता है।

यह दावा तो नही मैं कर सकता कि इन निबन्धो म गुरुमुखी लिपि मे रचित सारे साहित्य का सर्वांगीण विवेचन प्रस्तुत किया गया है, लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस साहित्योदधि की कुछ मणियो का प्रकाश

इनसे अवश्य मिल सकेगा और उनकी भ्रांति से मार्गदर्शन होकर यदि कुछ विद्वान इस साहित्य निधि के समुचित मूल्यांकन के लिये प्रवृत्त हो सके, तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूगा। वस्तुत जिन रचनाओं का अध्ययन इन निबन्धों म किया गया है उनका और अन्य ग्रन्थों का अधिक विस्तार से गवेषणात्मक अध्ययन अपेक्षित है। इस अध्ययन की उपयोगिता के सम्बन्ध म इतना और कहना चाहूगा कि शृगारिकता, कलात्मकता अलकारिकता एव रीतिबद्धता आदि की प्रवृत्तियो का प्राधान्य देखकर इस काल को (सवत १७०० से १९०० तक) शृगारकाल' 'कलाकाल अलकारकाल' अथवा 'रीतिकाल आदि नामो से अभिहित किया गया है। लेकिन इस युग म वीरता और भक्ति की प्रवृत्तियाँ भी कम महत्वपूर्ण नही रही। पजाब म गुरुमुखी म जो साहित्य इस युग म लिखा गया उसम तो इन प्रवृत्तियो (वीरता एव आध्यात्मिकता) का प्राधान्य है ही हिन्दी भाषी क्षेत्र के अन्य अनेक कवियों न भी इस प्रकार की रचनायें लिखी जिनम वीरता और भक्ति आदि की प्रवृत्ति के दर्शन होत हैं। भूषण लाल ग्वाल चन्द्रशेखर वाजपेयी पद्माकर जोध राज, सूदन, मान आदि इस युग के प्रसिद्ध एव परिचित वीररस के कवि हैं। बिहारी, देव, पदमाकर आदि इस युग के प्रतिनिधि कवियो म भक्ति के प्रस्फुट अकुर भी देखे जा सकते है। डा० टीकमसिहतोमर ने अपने शोध प्रबन्ध हिन्दी वीरकाव्य, (स० १७०० से १९०० तक)म इस युग के अन्य अनेक वीरकाव्यो का विवेचन किया है। दूसरे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जिन वीर रसात्मक रासो ग्रथो के आधार पर वीरगाथाकाल की तथा डा० रामकुमार वर्मा ने चारणकाल की स्थापना की है, अब यह निश्चित हो चुका है कि उनम से अधिकतर वीरकाव्य तथाकथित रीतिकाल की सीमा के अन्तगत आते हैं। अस्तु इन वीरकाव्यो के सामने होते हुए (इनम वीरता का स्वरूप चाहे कसा भी है) और गुरुमुखी लिपि म रचित अनेक ऐसे श्रेष्ठ वीरकाव्य को देखकर जिनम वीरता क अत्यन्त उदात्त रूप की अभिव्यञ्जना हुई है और जिनमे वीर रस सम्बन्धी लगभग २५००० छन्द उपलब्ध होते हैं, इस काल को रीति काल शृगारकाल,अथवा अलकारकाल कहनाउचित है अथवा नहीइस पर हिन्दी के विद्वानो को विचार करना होगा। गुरमुखी लिपि मे ऐसे भी अनेक काव्य ग्रथ इस युग म लिखे गए जिनम भक्ति एव आध्यात्मिकता का ठीक वैसा ही उत्कर्ष मिलता है जसा भक्तिकाल की अन्य रचनाओ मे। वस्तुत इस सारे साहित्य के आलोक म रीतिकाल के पुनमूल्याकन की आवश्यकता है। मेरा विश्वास है कि इस पुस्तक म सकलित निबन्ध के इस प्रश्न को उठाने और सुलझाने म कुछ दिशा निर्देश कर सकेंगे।

२

युग-परिस्थितिया

पजाब प्राचीनकाल से भारत का सिंहद्वार रहा है। उत्तर पश्चिम से जो भी आक्रमणकारी भारत आते थे, वे पजाब से होकर ही आगे बढते थे। अरब, तुर्क और मुगल शताब्दियो तक पजाव को झकझोरते रहे। गजनवी, गौरी, चगेजखा तैमूर, बाबर नादिरशाह तथा अब्दाली के क्रूर एव भीषण आक्रमणो का भार भी पहले पजाब को सहना पडा और पजाब की वीर शक्ति ने इनका बराबर जोरदार मुकाबला किया। स्थानेश्वर (थानेसर) के पराक्रमी राजा हर्षवर्धन के पश्चात भारत से एक सगठित सबल हिन्दू शक्ति का ह्रास हो गया था, यही कारण है कि ६वी शती के बाद मुसलमान आक्राता भारत की पुण्यभूमि को पददलित करते हुए निरन्तर आगे बढते रहे। भारत का मध्यकालीन इतिहास इन सघर्षो और युद्धो का ही इतिहास है। १४वी शती से १८वी शती तक क्रमश दास, खिलजी, तुगलक, सय्यद, लोदी, एव मुगल वशो ने भारत की शासन सत्ता को अपने अधीन रखा। इन सभी वशो के शासको की पराजित हिन्दू जनता के प्रति नीति एव व्यवहार एक सा था। भारतीय धर्म एव सस्कृति को वे घृणा और द्वेष की दृष्टि से देखते थे तथा उसे विनष्ट करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। हिन्दू जनता के प्रति उनकी दमन नीति उसी प्रकार चलती रही। परन्तु हिन्दुओ मे भी एक अद्भुत जीवन्त शक्ति थी। वे हार कर भी हारते नही थे। ज्यो ही यवन सेना एक प्रदेश को जीत कर दूसरी ओर अपना मुह मोडती थी, वहा के हिन्दू शासक तुरन्त स्वतन्त्रता की घोषणा कर देते थे। यही कारण है कि मुसलमान शासको को उनसे निरन्तर युद्ध करना पडता था।

मुगलकाल इस्लामी शासन का चरम उत्कर्ष काल था। अब तक पजाब, हरियाणा तथा राजपूताने के हिन्दू शूरवीर यवन-आक्रमणकारियो का डटकर प्रतिरोध करते रहे। परन्तु मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् हिन्दू

राजाओं ने उनके सम्मुख घुटने टेक दिये। 'आन पर मर मिटने वाले' बहुत से राजपूत भी पराजित हो जाने पर अपनी दुहिताओं से मुगल सम्राटों के रनिवासों को सुशोभित करके उनकी अनुकम्पा प्राप्त करने म ही गौरव का अनुभव करने लगे। राणा सागा, महाराणा प्रताप आदि शूरवीरो के पश्चात् देश भक्ति का दीपक उनम बुझने सा लग गया। औरगजेब जसे धम असहिष्णु आततायी शासको के आतक और अत्याचारो स भारतीय जनता इतनी पीडित थी कि या तो उनको इस्लाम कबूल करना पडता था, या उन्हे मृत्यु दड दिया जाना था, अथवा भारी जजिया देकर ही वे अपने प्राण बचा सकते थे। इस समय दो ही ऐसे राष्ट्रनायक थे, जिन्होने यवनो के विरुद्ध स्वतन्त्रता की पताका बुलन्द की। एक थे दक्षिण की ढाल शिवाजी और दूसरे हिन्दूपति पजाब केसरी गुरु गोबिन्दसिह। पजाब म मुसलमानो के नशस अत्याचारो के विरुद्ध विरोध की ज्वाला भीतर ही भीतर धधक रही थी। 'दशमगुरु' के नतृत्व म उसने विद्रोह का रूप धारण कर लिया। हिन्दुओ की दीन हीन एव अपमानित दशा तथा अपने पिता की नशस हत्या से क्षुब्ध होकर उन्होने यह घोषणा करते हुए, 'असत्य, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध खडग को धारण किया कि

चू कार अज हमह हीलते दरगुजशत
हलाल अस्त बुरदन ब शमशीर दस्त (ज़फरनामा)

अर्थात् जब अन्य सभी साधन विफल हो जायें तो खडग को धारण करना सवथा उचित है।' राष्ट्रीय एव सास्कृतिक स्वातन्त्र्य भावना से प्रेरित होकर गुरु गोबिन्दसिह ने हिन्दुओ की सनिक शक्ति को सगठित करना प्रारम्भ किया और खालसा की स्थापना की। खालसा' की स्थापना पजाब के इतिहास मे एक महत्वपूण घटना थी। इस पथ के माध्यम से दशमगुरु ने पजाब के जन जीवन को एक नई दिशा प्रदान की उसमे एक नई स्फूर्ति एव गति उत्पन्न की और उसमे एक नई प्राणवान शक्ति का सचार किया। सेवा और त्याग को जीवन का आदश मानने वाले सिक्ख अनुयायियो को साहस एव वीरता का जीवन व्यतीत करने के लिये उत्साहित किया। प्रसिद्ध इतिहासकार डा० गोकुलचन्द नारग के शब्दो मे गुरु गोबिन्दसिह ने साधारण कृषक को अद्भुत वीर बना दिया और उसमे अत्याचारी सिंह को उसकी माद मे ललकारने और पकडने की शक्ति भर दी।[1]

स्पष्ट है कि जिस समय मध्यदेश के हिन्दू राजा मुगलो से पराजय स्वीकार कर निरीह एव शक्तिहीन होकर विलासिता का जीवन व्यतीत कर

---

[1] Transformation of Sikhism ? G C Narang—P 262

रहे थे, पजाब म गुरु गोबिन्दसिंह उनके विरुद्ध एक सशक्त सैनिक एव सास्कृतिक आन्दोलन का सचालन कर रहे थे। गुरु गोविन्दसिंह के पश्चात उनके काय को बदा बैरागी न आगे बढाया। इसके अनन्तर मुसलमानो द्वारा सिक्खो के दमन का काय भी तेजी से चलता रहा। १७०० से १७७० वि० का समय सिक्खो के लिए घोर सकट का समय था। बहादुरशाह (१७००), फरुखसियर (१७१६), खान बहादुर (१७३५ ४५), लखपतराय (१७६३) आदि ने समय समय पर सिक्खो के कत्लेआम का आदेश दिया। उनके केशो और सिर के लिए भारी पुरस्कार रखे गये। सिक्खो को आश्रय भी प्राणो के जोखम से दिया जा सकता था। मुसलमानी सेना सदा उनका पीछा करती रहती थी। परन्तु सिक्खमत इन सभी सकटो एव आघातो के बावजूद जीवित रहा। अब तक सिक्ख शक्ति ने एक निश्चित सैनिक शक्ति का रूप धारण कर लिया था। अवसर पाकर वे यवनो पर आक्रमण भी करते रहते थे। बाद म मिसलो के रूप म उन्होने अपनी सत्ता भी स्थापित की, जिसको सशक्त एव सुदृढ रूप रणजीतसिंह के समय म प्राप्त हुआ।

यहाँ हमे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सिक्खो का यह सारा उपक्रम सास्कृतिक एव राष्ट्रीय चेतना से आन्दोलित था और जिस समय सिक्ख राज्यो की भी स्थापना हो गई, उस समय भी उन राजाओ की धम भावना सदा जागरूक रही। इन राजदरबारो का वातावरण निश्चित रूप से हिंदी भाषी प्रदेश के राजदरबारो के विलासी वातावरण से सवथा भिन्न था।

पजाब के इन देशभक्त वीरो की धमनिष्ठता, सास्कृतिक चेतना एव स्वातन्त्र्यभावना की ही अभिव्यक्ति उस युग के सिक्ख साहित्य म हुई है।

सास्कृतिक पृष्ठभूमि

भारत धमप्रधान सस्कृति का देश है। इस सस्कृति की एक निजी, विशिष्ट चेतना है जिससे हमारा वयक्तिक तथा सामाजिक जीवन नैतिक आदश, राजनतिक विधान, कला-कौशल आदि परिचालित रहा है। भारतीय सस्कृति एक विशाल वटवृक्ष के समान है, जिसकी जडें बडी गहरी और मजबूत हैं। कालक्रम से उससे अनेक मतमतान्तरो, पथा सम्प्रदायो चिन्तन धाराओ अथवा साधना पद्धतियो की शाखायें उपशाखायें उदभूत हुई, और जितना इन शाखाओ ने विस्तार विकास अथवा प्रसार प्राप्त किया, जडें उतनी ही गहरी होती गई। कई बार ऐसा भी भ्रम हुआ कि वे शाखायें—जटायें पृथ्वीतल मे इतनी दृढता से जम गई है कि लगा मानो कोई स्वतन्त्र वृक्ष है परन्तु यह भ्राति ही थी, क्योकि मूल जड तो एक ही है—वही आय सस्कृति। **वैष्णव,**

बौद्ध, जन, शव सभी उसके अग प्रत्यग हैं।

भारतीय सस्कृति ने समय-समय पर जो रूप धारण किये, उसका इतिहास बडा रोचक है। इन विभिन्न विचार पद्धतिया म बहुधा सघष भी हुआ परन्तु साथ साथ समन्वय एव सतुलन के प्रयत्न भी चलते रहे। यही कारण है कि शताब्दियो तक रहने वाले बाह्य सास्कृतिक आक्रमणो एव आन्तरिक कलह के बावजूद वह प्राणवान एव शक्ति सम्पन्न है।

भारतीय धम साधना का विकास मुख्यत ज्ञानप्रधान कमप्रधान तथा भाव प्रधान इन तीन पद्धतियो पर हुआ। इनम सघष भी हुआ और 'भगवद्गीता' म इनका समन्वय भी सामने आया वदिक युग की साधना कम प्रधान थी,उपनिषदा मे ज्ञान को महत्त्व दिया गया, बौद्धा ने भी वदिक कमकाण्ड का खडन करके सम्यक ज्ञान का प्रतिपादन किया। आगे चलकर भावना प्रधान उपासना पद्धति का भी प्रचार हुआ। पौराणिक युग मे इसी साधना पद्धति को अधिक प्रश्रय मिला, क्योकि अपनी सरलता और सरसता के कारण जन साधारण के लिए वह सुगम एव ग्राह्य थी। इस भागवतधम का बौद्ध धम और जैन धम से भी सघष हुआ, (गया और बौद्ध गया तथा काशी और सारनाथ आज भी इस सघष की कहानी सुना रहे हैं) जिसका सामना करने के लिए इस धम के उन्नायको ने ईश्वर के अवतारी रूप की कल्पना की तथा उसकी अनेक आकषक लोकरजनकारी एव लोकरक्षक लीलाओ की उदभावना की। जिसके आधार पर बहुत से पुराणा की रचना की गई। प्रचार को और अधिक जीवन्त बनान के लिए बहुत से भव्य मन्दिरो का निर्माण किया गया जिनम अत्यन्त सुन्दर एव मोहक मूर्तियो की स्थापना की गई और पूजा-पाठ की भी सरल एव सरस विधियो का प्रचलन किया गया।

सातवी आठवी शती तक बौद्ध मत अनेक शाखाओ उपशाखाओ के रूप म खडित एव विकृत होकर अपना प्रभाव खो बठा। शकराचाय का वदिक धम की धम प्रधान पद्धति की पुन प्रतिष्ठा द्वारा बौद्धमत के उन्मूलन का प्रयास बहुत सफल रहा। बौद्धमत न महायान, हीनयान वज्रयान मत्रयान आदि की अवस्थाओ को पार करके सहजयान की स्थिति को प्राप्त किया। कुछ सहजयानी सिद्धो ने मुद्रासेवन एव मदिरापान आदि सम्बन्धी अनेक कुत्सित साधनाओ द्वारा उसके एक रूप को और भी विकृत कर दिया। इनके विरोध मे नाथमत का प्रवत्तन हुआ, जिसम सिद्धो की सहज साधना के साथ शिव की आराधना एव हठयोग के महत्त्व को स्वीकार किया गया। बौद्धमत के ह्रास के साथ ही भागवत धम फिर से विकसित होने लगा। वस्तुत भारत का मध्यकालीन सास्कृतिक इतिहास सिद्धा नाथो, शैवो, शाक्ता वष्णवो,

वेदान्तियो, ज्ञानमार्गियो, कर्मकाण्डियो आदि के द्वन्द्व का इतिहास है। इसी समय भारत के उत्तर पश्चिम से यवन शक्ति के साथ इस्लामी धर्म का एक जोरदार हमला हुआ। यह आक्रमण धर्मान्ध शासको द्वारा हुआ, जिन्होने लाभ अथवा भय से धर्म प्रचार आरम्भ किया। भारतीय धर्म के उन्नायको ने इससे टक्कर लेने के लिए एक सयुक्त, सशक्त एव प्राणवान मोर्चा खडा किया। इस्लाम धर्म के आतक की प्रतिक्रिया-स्वरूप उसमे एक नई चेतना ने जन्म लिया और एक नई स्फूर्ति एव उत्साह के साथ वे उसका मुकाबला करने के लिए कटिबद्ध होकर खडे हो गये। इस कार्य मे उनका नेतृत्व किया दक्षिण ने। दक्षिण मे रामानुजाचार्य, निम्बार्क, मध्वाचार्य तथा विष्णुस्वामी आदि धर्म प्रवर्त्तको ने दर्शन की दृढ आधारभूमि पर भक्ति के एक शक्तिशाली आन्दोलन का सूत्रपात किया। जिस समय यह आन्दोलन उत्तर भारत मे पहुचा वहा हिन्दू धर्म विभिन्न मतमतान्तरो के पारस्परिक सघर्ष के कारण जर्जरित एव शक्तिहीन हो रहा था, उधर मुसलमान, धर्मान्धता के जोश मे हिन्दुओ के धर्म स्थानो, मन्दिरो एव मूर्तियो को खडित कर रहे थे। उनके धर्म नेताओ को जिन्दा जलाया जा रहा था तथा अपने धर्म पर दृढ रहने वालो को तलवार से मौत के घाट उतारा जा रहा था। सौभाग्यवश 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम। ४। ७। गीता की इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए यहा उस समय कबीर, नानक एव तुलसी जैसे महान समन्वयवादी तथा लोकनायक धर्म सस्थापको ने जन्म लिया। एक ओर तो बाकरी पथ, कबीर पथ, दादू पन्थ तथा सिक्ख मत आदि के प्रवर्तक सन्तो ने मिथ्याचार, बाह्याडम्बर, अहकार और पाखण्ड का खण्डन करके एक समन्वयवादी मत का प्रवर्तन किया तथा अद्वैतमूलक भक्ति के सरल, सहज साधना मार्ग का निर्देश करके हिन्दुओ की शक्ति को क्षीण होने से बचाया, दूसरी ओर तुलसी जैसे राष्ट्रनायक ने मर्यादापुरुषोत्तम राम के लोकरक्षक रूप को प्रस्तुत करते हुए आसुरी शक्तियो के सहार एव विनाश के लिए हिन्दू जनता को उत्साहित और प्रेरित किया। साथ ही उन्होने अनुशासन एव चरित्रोत्थान के लिए वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के आदर्श उनके सामने रखे, जिससे वे आत्मबल प्राप्त कर सके। कृष्ण भक्त कवियो ने भी कृष्ण की मनमोहक, मधुर क्रीडाओ के गान से हिन्दू जनता मे कम आशा, उत्साह और उल्लास का सचार नही किया। वस्तुत इस सम्मिलित अभियान का ही यह फल है कि भारतीय सस्कृति आज भी जीवित एव प्राणवान है।

पूर्वमध्यकाल मे पजाब[1] की सास्कृतिक अवस्था प्राय ऐसी ही थी, जिसका उल्लेख ऊपर किया है। पजाब भारतीय सस्कृति का उदगम स्थान है तथा यह विभिन्न सस्कृतियो का सगम स्थल भी रहा है। यहाँ वेदो की ऋचाओ का गान

(१) पजाब से यहा अभिप्राय पजाब और हरियाणा दोनो से है।

हुआ, श्रुतियो एवं स्मृतियो की रचना हुई तथा गीता का संदेश सुनाई पड़ा। बौद्धमत का प्रचार भी यहाँ ईसा की पूर्व शताब्दियों पूर्व हो चुका था। जगाधरी के निकट 'सुघ' नाम के एक गाँव में अभी अभी जो खुदाई हुई है, उससे ऐसा अनुमान लगाया गया है कि महात्मा बुद्ध स्वयं प्रचारार्थ पंजाब में आये थे। बौद्धमत की परवर्ती धाराओं का भी यहाँ खूब विकास हुआ। नाथों एवं सिद्धों ने भी इसे अपने प्रचार का क्षेत्र बनाया। चौरंगीनाथ बालानाथ, जालन्धरनाथ, जयदेव आदि पंजाब के ही रहने वाले थे। शिव एवं विष्णु की उपासना भी यहाँ प्राचीनकाल से प्रचलित है। भारत के उत्तर भाग के अन्य भागों की भाँति मध्ययुग में यहाँ भी शैवों, वैष्णवों, शाक्तों, नाथों सिद्धों, वेदान्तियों आदि का संघर्ष उसी प्रकार चल रहा था। गुरु नानक ने इन सभी समन्वयवादी भक्तिमार्ग से इनमें संतुलन लाने का समय प्रयत्न किया। 'आदि ग्रन्थ' उन सभी मतों के संघर्ष एवं उनके बाह्याचारों के गुरुओं द्वारा विरोध के स्पष्ट दर्शन होते हैं। यहाँ तक तो पंजाब की सांस्कृतिक स्थिति में उत्तरभारत के अन्य प्रदेशों से विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता, परन्तु उत्तर मध्यकाल में यह अन्तर स्पष्ट दिखाई देने लगा। अकबर के उपरान्त शासनकाल में भागवत धर्म का खूब विकास हुआ। परन्तु धीरे धीरे यह उत्साह मंद पड़ने लगा। मुगल दरबार का विलासपूर्ण वातावरण भक्ति की स्वच्छ धारा को भी दूषित करने लगा। कृष्ण भक्ति की रसमयी लीलाओं ने विहार-लीला तथा छद्मलीला का शृंगारिक रूप धारण कर लिया। हिन्दीभाषी प्रदेश में विलासग्रस्त हिन्दू राजदरबारों से भी इस प्रवृत्ति को प्रश्रय मिला। मन्दिर वैभव और ऐश्वर्य के केन्द्र बन गये और नर्तकियों एवं वेश्याओं की विभिन्न कामोत्तेजक भाव भंगिमाओं से युक्त नृत्यों की झनकार में भक्ति की सात्त्विकता लुप्त हो गई। राम की मर्यादित भक्ति भी रसिकता और विहार लीला का रूप धारण करने लगी। संतमत में गुरु गद्दियाँ स्थापित हो गईं। जिन बाह्याचारों के विरोध में संतमत खड़ा हुआ था वैसे ही बाह्यचिह्न तथा मिथ्या एवं पाखण्डपूर्ण आचरण उनकी विशिष्टता रह गए। उधर औरंगजेब का धार्मिक जिहाद पूरे जोरों पर था। उसने फिर से मन्दिरों को गिरवाना तथा मूर्तियों को तुड़वाना शुरू कर दिया था। मथुरा, वृंदावन पुष्कर, काशी जैसे धर्म स्थानों पर उसने हिन्दू मन्दिरों को तुड़वाकर मसजिदों का निर्माण किया। जजिया फिर से लगा दिया। इस समय इस क्षेत्र में हिन्दुओं के सांस्कृतिक आन्दोलन का नेतृत्व करने वाला कोई नहीं था। परन्तु पंजाब में अभी भी सिक्खों के दशम गुरु इस आन्दोलन का संचालन कर रहे थे। अन्य संतों भक्तों एवं धर्मउन्नायकों से उनमें एक अन्तर भी था। क्योंकि उन्होंने केवल धर्म प्रचार द्वारा सांस्कृतिक आन्दोलन को दृढ़ नहीं किया वरन् यवन आततायियों के विरुद्ध खड्ग को भी धारण किया। देश की रक्षार्थ जो कार्य शिवाजी एवं छत्रसाल कर रहे

थे, उस दिशा मे भी गुरु गोबिन्दसिंह ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया और साथ-साथ सास्कृतिक—पुनरुत्थान का प्रयत्न भी करते रहे। पजाब के लब्ध प्रख्यात इतिहासकार सरदार क्रिपालसिंह नारग के मतानुसार, जिस समय खालसा की स्थापना हुई, कोई ८०००० सिक्ख आनन्दपुर मे एकत्रित हुए थे।" इससे उन लोगो की उद्दीप्त धर्म भावना एव साहस का अनुमान लगाया जा सकता है। गुरु गोबिन्दसिंह के नेतृत्व मे सोया पजाब एक बार फिर जाग उठा और वे अपनी सस्कृति की रक्षार्थ कटिबद्ध होकर खडे हो गये। *गुरु गोबिन्दसिंह तथा* अन्य सिक्ख गुरुओ के इस सास्कृतिक आन्दोलन ने पजाब के जनसाधारण मे एक प्राणवान चेतना, शक्ति और साहस का सचार किया। इस युग की वीर भावना, सास्कृतिक चेतना एव राष्ट्रीय भावना की स्पष्ट अभिव्यक्ति 'दशमग्रथ' तथा 'गुरु शोभा' आदि ग्रन्थो मे हुई है। सिक्ख गुरुओ के बाद भी यह सास्कृतिक आन्दोलन तीव्र गति से आगे बढता गया। सिक्खमत की प्राणवत्ता एव जीवन्त शक्ति दिन प्रतिदिन बढती ही गई। यद्यपि यहा भी अनेक सम्प्रदायो ने जन्म लिया, जिनमे से प्रमुख थे उदासी सेवा पथी, सहजधारी, निर्मले आदि। परन्तु इन सम्प्रदायो के अनुयायी सिक्ख साधको ने भी उस आन्दोलन को क्षीण नही पडने दिया, वरन् उसे सशक्त और दृढ ही किया, जिसके प्रभाव स्वरूप यहाँ ऐसा साहित्य प्रचुर परिमाण मे लिखा गया, जिसमे उस युग के राजनैतिक एव सास्कृतिक सघर्ष का चित्रण हुआ है और उस सघर्ष मे से उभरती हुई हिन्दू शक्ति की वीर भावना, तेजस्विता, स्वाभिमान, राष्ट्र प्रेम एव सास्कृतिक चेतना की भी अभिव्यक्ति हुई है। महिमा प्रकाश, 'गुरु विलास, गुरु विलास पातसाही ६, 'गुरु नानक विजय', 'गुरु नानक प्रकाश' 'साखी नानक शाह की तथा गुरु प्रताप सूरज' ऐसी ही रचनाएँ हैं, जिनमे भारतीय सस्कृति के प्रमुख तत्त्वो का विशदता से प्रतिपादन किया गया है और यवनो को आसुरी शक्ति के रूप मे चित्रित *किया गया है। भारत के अन्य भागो मे* भी इस समय कुछ वीर-काव्यो की रचना हुई परन्तु उनका सम्बन्ध भारतीय सामूहिक राष्ट्रीय-चेतना और सास्कृतिक उत्थान से नही है बल्कि उनका सम्बन्ध आश्रयदाता राजाओ अथवा सामन्तो की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशसा से हैं। वे चारण पद्धति पर रचित वीरकाव्य हैं। जबकि पजाब के उपरोक्त वीर-काव्य राष्ट्रीय और सास्कृतिक चेतना से सम्पन्न है। वसे भी उत्तर भारत के अन्य भागो मे इस समय ऐसी सास्कृतिक चेतना का अभाव था इसलिए इस युग मे वहाँ कोई भी ऐसी महत्त्वपूर्ण रचना नही लिखी गई जो इन भावनाओ से ओत प्रोत हो। पजाब को ही यह गौरव प्राप्त है। पजाब ने इस युग मे देश का सास्कृतिक प्रतिनिधित्व किया और यही वह साहित्य लिखा गया जो भारतीय सस्कृति एव सभ्यता के गौरवपूर्ण तत्त्वो से युक्त

हुआ, श्रुतियो एव स्मृतिया की रचना हुई तथा गीता का सदेश सुनाई पडा। बौद्धमत का प्रवेश भी यहाँ ईसा की कई शताब्दियो पूर्व हो चुका था। जगाधरी के निकट 'सुघ' नाम के एक गाव म अभी अभी जो खुदाई हुई है, उससे ऐसा अनुमान लगाया गया है कि महात्मा बुद्ध स्वय प्रचाराथ पजाब म आये थे। बौद्धमत की परवर्ती शाखाओ का भी यहा खूब विकास हुआ। नाथो एव सिद्धो ने भी इसे अपने प्रचार का क्षेत्र बनाया। चौरगीनाथ, बालानाथ, जालन्धरनाथ जयदेव आदि पजाब के ही रहने वाले थे। शिव एव विष्णु की उपासना भी यहाँ प्राचीनकाल से प्रचलित है। वास्तव म उत्तर भारत के अन्य भागो की भाति मध्ययुग म यहाँ भी शवो, वष्णवो, शाक्तो, नाथो सिद्धो, वेदान्तियो आदि का सघष उसी प्रकार चल रहा था। गुरु नानक ने अपने समन्वयवादी भक्तिमार्ग से इनम सतुलन लाने का समथ प्रयत्न किया। आदि ग्रन्थ' उन सभी मता के सघष एव उनके बाह्याचारो के गुरुओ द्वारा विरोध के स्पष्ट दशन होते हैं। यहा तक तो पजाब की सास्कृतिक स्थिति म उत्तरभारत के अन्य प्रदेशो से विशेष अन्तर दिखाई नही देता, परन्तु उत्तर मध्यकाल म यह अन्तर स्पष्ट दिखाई देने लगा। अकबर के उदार शासनकाल म भागवत धम का खूब विकास हुआ। परन्तु धीरे धीरे यह उत्साह मद पडने लगा। मुगल दरबार का विलासपूण वातावरण भक्ति की स्वच्छ धारा को भी दूषित करने लगा। कृष्ण भक्ति की रसमयी लीलाओ ने विहार लीला तथा छदमलीला का शृगारिक रूप धारण कर लिया। हिन्दीभाषी प्रदेश के विलासग्रस्त हिन्दू राजदरबारो से भी इस प्रवृत्ति को प्रश्रय मिला। मन्दिर वभव और ऐश्वय के केन्द्र बन गये और नतकियो एव वेश्याओ की विभिन्न कामोत्तेजक भाव भगिमाओ से युक्त नत्यो की झनकार मे भक्ति की सात्विकता लुप्त हो गई। राम की मर्यादित भक्ति भी रसिकता और बिहार लीला का रूप धारण करने लगी। सतमत मे गुरु गद्दियाँ स्थापित हो गई। जिन बाह्याचारो के विरोध मे सतमत खडा हुआ था वसे ही बाह्यचिह्न तथा मिथ्या एव पाखण्डपूण आचरण उनकी विशिष्टता रह गए। उधर औरगजेब का धार्मिक जहाद पूरे जोरो पर था। उसने फिर से मन्दिरो को गिरवाना तथा मूर्तियो को तुडवाना शुरू कर दिया था। मथुरा, वृन्दावन, पुष्कर, काशी जसे धम स्थानो पर उसने हिन्दू मन्दिरो को तुडवाकर मसजिदो का निर्माण किया। जजिया फिर से लगा दिया। इस समय इस क्षेत्र म हिन्दुओ के सास्कृतिक आन्दोलन का नेतत्व करने वाला कोई नही था। परन्तु पजाब म अभी भी सिक्खो के दशम गुरु इस आन्दोलन का सचालन कर रहे थ। अन्य सतो भक्तो एव धमउन्नायको से उनम एक अन्तर भी था। क्योकि उन्होंने केवल धम प्रचार द्वारा सास्कृतिक आन्दोलन को दृढ नही किया वरन् यवन आततायियो के विरुद्ध खडग को भी धारण किया। देश की रक्षाथ जो काय शिवाजी एव छत्रसाल कर रहे

थे, उस दिशा म भी गुरु गोविन्दसिंह ने महत्त्वपूर्ण काय किया और साथ-साथ सास्कृतिक—पुनरुत्थान का प्रयत्न भी करते रहे। पजाब के लब्ध प्रख्यात इतिहासकार सरदार किरपालसिंह नारग के मतानुसार, जिस समय खालसा की स्थापना हुई, कोई ८०००० सिक्ख आनन्दपुर मे एकत्रित हुए थे।" इससे उन लोगो की उद्दीप्त धम भावना एव साहस का अनुमान लगाया जा सकता है। गुरु गोविन्दसिंह के नेतृत्व म सोया पजाब एक बार फिर जाग उठा और वे अपनी सस्कृति की रक्षाथ कटिबद्ध होकर खडे हो गये। गुरु गोविन्दसिंह तथा अन्य सिक्ख गुरुओ के इस सास्कृतिक आन्दोलन ने पजाब के जनसाधारण म एक प्राणवान चेतना, शक्ति और साहस का सचार किया। इस युग की वीर-भावना, सास्कृतिक चेतना एव राष्ट्रीय भावना की स्पष्ट अभिव्यक्ति 'दशमग्रथ' तथा 'गुरु शोभा' आदि ग्रथो म हुई है। सिक्ख गुरुओ के बाद भी यह सास्कृतिक आन्दोलन तीव्र गति से आगे बढता गया। सिक्खमत की प्राणवत्ता एव जावन्त शक्ति दिन प्रतिदिन बढती ही गई। यद्यपि यहा भी अनेक सप्रदायो ने जन्म लिया, जिनमे से प्रमुख थे उदासी, सेवा पथी, सहजधारी, निमले आदि। परन्तु इन सम्प्रदायो के अनुयायी सिक्ख साधको ने भी उस आन्दोलन को क्षीण नही पडने दिया, वरन् उसे सशक्त और दृढ ही किया, जिसके प्रभाव स्वरूप यहाँ ऐसा साहित्य प्रचुर परिमाण म लिखा गया, जिसमे उस युग के राजनतिक एव सास्कृतिकसघष का चित्रण हुआ है और उस सघष म से उभरती हुई हिन्दू शक्ति की वीर भावना, तेजस्विता, स्वाभिमान, राष्ट्र प्रेम एव सास्कृतिक चेतना की भी अभिव्यक्ति हुई है। 'महिमा प्रकाश', 'गुरु विलास, गुरु विलास पातसाही ६, गुरु नानक विजय', 'गुर नानक प्रकाश', 'साखी नानक शाह की' तथा 'गुर प्रताप सूरज' ऐसी ही रचनाएँ है, जिनमे भारतीय सस्कृति के प्रमुख तत्त्वो का विशदता से प्रतिपादन किया गया है और यवनो को आसुरी शक्ति के रूप म चित्रित किया गया है। भारत के अन्य भागो मे भी इस समय कुछ वीर-काव्यो की रचना हुई, परन्तु उनका सम्बन्ध भारतीय सामूहिक राष्ट्रीय-चेतना और सास्कृतिक उत्थान से नही है, बल्कि उनका सम्बन्ध आश्रयदाता राजाओ अथवा सामन्तो की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशसा से हैं। वे चारण पद्धति पर रचित वीरकाव्य हैं। जबकि पजाब के उपरोक्त वीर-काव्य राष्ट्रीय और सास्कृतिक चेतना से सम्पन्न है। वसे भी उत्तर भारत के अन्य भागो मे इस समय ऐसी सास्कृतिक चेतना का अभाव था, इसलिए इस युग मे वहाँ कोई भी ऐसी महत्त्वपूर्ण रचना नही लिखी गई जो इन भावनाओ से ओत प्रोत हो। पजाब को ही यह गौरव प्राप्त है। पजाब ने इस युग म देश का सास्कृतिक प्रतिनिधित्व किया और यही वह साहित्य लिखा गया जो भारतीय सस्कृति एव सभ्यता के गौरवपूर्ण तत्त्वो से युक्त है।

ललित कलाओं का स्वरूप और चमत्कार-प्रदर्शन

यह समय भारत के राजनैतिक इतिहास मे मुगल साम्राज्य के चरम उत्कर्ष, तथा उसकी अवनति, ह्रास एव विनाश का युग है। सन् १६२८ म शाहजहाँ शासनारूढ हुआ। उस समय मुगल साम्राज्य वैभव एव ऐश्वय की दृष्टि से मालामाल था। भारत की कला अपने चरम उत्कष पर थी। शाहजहाँ स्वय कला तथा सौन्दय प्रेमी शासक था। इसीलिए उसके शासनकाल म ललित कलाओ को पूरा प्रोत्साहन मिला, जिससे उनका खूब विकास हुआ। ताजमहल जसी कलाकृतियो का निर्माण उसी के शासन काल मे हुआ। 'वर्नीयर, टेवर्नियर, मनूची आदि विदेशी यात्री सम्राट के दरबार के ऐश्वय को देखकर स्तब्ध हो गये थे। उन सभी ने चित्रमय मुगल दरबार की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की थी। सम्पूण मुगल दरबार मे बहुमूल्य रत्नो और मणियो का मुक्त प्रयोग होता था। वर्नीयर ने मुगल बेगमो के वस्त्राभूषणो का विवरण देते हुए लिखा है कि 'मैंने (मुगल हरम म) प्राय प्रत्येक प्रकार के जवाहिरात देखे है। जिनमे बाज तो असाधारण हैं वे (बेगमे) मोती की मालाओ को कधो पर ओढनी की तरह पहनती हैं। इनके साथ दोनो तरफ मोतियो की कितनी ही मालाएँ होती हैं। सिर मे मोतियो का गुच्छा-सा पहनती हैं जो माथे तक पहुँचता है और जिसके साथ एक बहुमूल्य आभूषण जवाहिरात का बना हुआ सूरज और चाँद की आकृति का होता है। दाहिनी तरफ एक गोल छोटा-सा लाल होता है। कानो मे बहुमूल्य आभूषण पहनती हैं और गदन के चारो तरफ बडे-बडे मोतियो तथा अन्य बहुमूल्य जवाहिरात के हार जिनके बीच म एक बहुत बडा हीरा लाल याकूत या नीलम और इसके बाहर चारो तरफ बडे-बडे मोतिया के दाने होते हैं।'[1] इस विवरण से ऐसा प्रतीत होता कि उन बेगमो का सारा शरीर ही बहुमूल्य आभूषणो से ढका रहता था। यह अलकरण प्रवृत्ति मुगल शासको की रसिकता को आप्यायित भले ही करती हो, उसम स्वाभाविकता नही है। शासको की इस अलकरण प्रवृत्ति का तत्कालीन साहित्य पर भी बहुत गहरा प्रभाव पडा है। उस युग के काव्य म भी अलकरण की प्रवृत्ति रसिकता की आड मे ही पनपी है।

तत्कालीन स्थापत्य, चित्र, सगीत एव मूर्तिकला म भी इसी अलकरण प्रवृत्ति के दशन होते हैं। अकबर की अपेक्षा शाहजहाँ द्वारा निर्मित रगमहल मुमताज महल, ताजमहल जामा मसजिद दिवाने खास आदि म चमत्कार, कलात्मक सौन्दय तथा अलकरण कही अधिक है। जान माशल का कथन है कि उस युग मे हिन्दू और मुसलमान स्थापत्य कला की शलियो मे अलकृति

की समानता थी । इन दोनो शैलिया म यह तत्व इतना प्रमुख था कि उनका अस्तित्व ही मानो इन पर निभर था[1] '। दुग के भीतर के भवन इतने अधिक अलकृत थे कि वे चीनी आट गैलरियो से होड लेते थे ।[2] डा० ईश्वरी प्रसाद के मतानुसार भी मुगल कला मे अपने से पूवकालीन कला की स्थूलता एव सादेपन की अपेक्षा कही अधिक कोमलता तथा अलकृति थी ।[3] दिवाने खास म यह प्रवृत्ति अपने चरम-उत्कप पर है ।

मुगल शासको ने चित्रकला का भी अभ्युदय किया, परन्तु इस युग की चित्रकला मे भी अनुभूति की अपेक्षा आलकारिकता अधिक है । सभी चित्रो को फूला, पत्तो, पक्षियो आदि के सुन्दर रगीन हाशियो से सजाया गया है । चित्रो मे अलकरण का इतना प्राचुय है—रगो का इतना सूक्ष्म प्रयोग है कि लोगो को प्राय यह भ्रम हो जाता है कि रगो के स्थान पर इन चित्रा म मणियो के टुकडे ही जड दिए गए हैं ।[4] यही नही, 'इस युग म साधारण से साधारण पत्रा के भी किनारे रँगे जाते थे । शासन काय मे प्रयुक्त होने वाले आदेश पत्रो तक के किनारा को अनेक प्रकार के डिजाइनो से सजाया जाता था ।[5] इस युग मे रचित काय ग्रथो मे भी किनारो को सुन्दर रगीन हाशियो से सुशोभित किया गया है । दनिक जीवन मे प्रयोग की वस्तुओ को भी सुन्दर चित्रो से अलकृत करते थे । गृहद्वारा, दीवालो, देहरियो तथा मगलकलशो को भी सुन्दर चित्रकारी से सजाया जाता था । लोग हथेलिया और भुजाओ तक पर चित्रकारी करते थे ।

शाहजहा के समय मे सगीत की भी यही अवस्था थी । 'तानसेन के वशज लाल खा और हिंदू कलावत जगन्नाथी ने तानसेन आदि के सगीत म सूक्ष्मताओ की सृष्टि करते हुए अलकरण की श्रीवृद्धि की । रीतियुग मे सगीत की प्रवृत्ति भी मौलिक उद्भावना की ओर न होकर अलकरण और रसीलेपन की ओर ही थी[6] । उस युग की गुफाओ, पवत शिलाओ, स्मारको, धम स्तूपो

१ History of Muslim Rule in India—P 260

Ishwari Pd

२ वही पृ० ६०३

३ वही पृ० ७२२

४ रीतिकाल की भूमिका पृ० २३, द्वितीय सस्करण डा० नगेन्द्र ।

५ मतिराम और मध्यकालीन हिन्दी कविता मे अलकरण प्रवृत्ति—डा० त्रिभुवन सिंह पृ० ६

६ रीतिकाल की भूमिका पृ० २६ २७ (द्वितीय सस्करण), डा० नगेन्द्र ।

की कारीगरी में भी अलकरण के अधिक दर्शन होते हैं। अब मूर्तियों में भी बाह्य अलकारों को दिखाया जाने लगा था। मुगल शासकों द्वारा निर्मित शालेमार, निशात, पजोर इत्यादि बाग-बगीचों में भी उनकी अलकरण प्रवृत्ति सजीव हो उठी है।

उत्तर भारत में इस युग में ललित कलाओं का विकास प्राय उस मुगल राज्याश्रय में हुआ जो कि वैभव एव ऐश्वर्य से भरपूर होने के कारण विलास में डूबा हुआ था। उस वातावरण में इन कलाओं में रसिकता प्रधान शृंगारिकता तथा अलकरण प्रवृत्तियों का आ जाना स्वाभाविक ही था। बहुत कुछ यही स्थिति उस युग के हिन्दी साहित्य की थी, जोकि मुख्यत मुगल संस्कृति से प्रभावित राज्याश्रय में पल्लवित हुआ था। इस युग के साहित्य का सम्बन्ध विशेषत अभिजात वर्ग से ही रहा है इसीलिए उसमें शृङ्गारिकता एव अलकारिकता की प्रधानता है। दरबारी वातावरण से मुक्त काव्यधारा में अवश्य भाव प्रवणता अधिक है।

इस युग के राज दरबारों में कलात्मकता आलकारिक चमत्कार अथवा पाडित्य प्रदर्शन का इतना बोलबाला था कि वहाँ उसी कवि को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था, जिसे अलकार शास्त्र का पूर्ण ज्ञान हो और अलकारों के लक्षण कठ हो तथा जिसके काव्य में अलकारों के चमत्कार को सुलझाने में सभासदों की बुद्धि चकरा जाए। इस तथ्य का प्रमाण उस समय के कुछ हिन्दी कवियों की इन उक्तियों से मिल सकता है। यथा—

> रुचिर ग्रथ भूषन इते, रचि जान मतिराम।
> ताकी बानी जगत में बिलस अति अभिराम।३६६। (ललित ललाम)
> कठ करे जो सभनि में सोभै अति अभिराम (वही)।
> जो या कठाभरण को कठ कर सुख पाय।
> सभा मध्य सोभा लहै अलकृती ठहराय।४।
> (कविकुल कठाभरण—दूलह)
> ग्रथ काव्यनिनयहि जो समुझि करहि गेकठ।
> सदा बसगी भारती, ता रसना उपकठ। (काव्य निर्णय—दास)

यह कविता कवि समाज तथा अभिजात वर्ग में सम्मान पाने की इच्छा से ही लिखी जाती थी सामान्य लोक जीवन से इसका सम्बन्ध नहीं था 'आगे के सुकवि रीझि है तो कविताई (दास) तथा 'सुकवि रीझि है करि कृपा तो कविता लछिराम (लछिराम) इत्यादि उक्तियाँ भी इसी ओर सकेत करती है। उस युग में अलकारों के लक्षण कठ करने की एक

ारिपाटी सी चल पडी थी, क्योकि उससे वाणी विलसती थी, रसना ार सरस्वती निवास करती थी और सभाओ म सम्मान प्राप्त होता ा। दूलह आदि कवि अपने अनुभव से यह जान चुके थे[1]। उस युग के ासका की अलकार शास्त्र मे रुचि का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता ् कि मुसल्लेहखा जसे मुसलमान शासक ने भी अपने आश्रित कवि श्रीधर ो 'भरत आदि की परम्परा म एक रीति ग्रथ लिखने का अनुरोध किया था'[2]। अलकृती के इस सम्मान के कारण किसी 'रीतिग्रन्थ' की रचना करना उस युग के कवियो के लिए एक 'कवि परम्परा अथवा कवि पथ' बन गया था। इसका भी उस युग के कई कवियो न उल्लेख किया है। यथा—

सुकबिनहु कि कछु कृपा, समभी कबिन को पथ।
भूपण भूपणमय करत, शिव भूपण सुभ ग्रन्थ।
(शिवराज भूपण—भूपण)

× × ×

देखि कविन को पथ। १।
(पद्माभरण—पद्माकर)

पजाब के साहित्य और कला मे अलकरण प्रवृत्ति

जहा तक पजाब का सम्बन्ध है, यहा का वातावरण हिन्दी भाषी प्रदेश से कुछ भिन्न था। बाबर से औरगजेब तक छ मुगल शासको का समय गुरुनानक से गुरु गोविन्दसिह तक दस सिक्ख गुरुओ के समय से मेल खाता है। मुगल साम्राज्य के ह्रास के साथ-साथ पजाब मे मानववादी सिक्ख मत की नीव दृढ होती जा रही थी। गुरुओ के धार्मिक आदर्शो एव उपदेशो का पजाब के सामाजिक राजनतिक एव धार्मिक जीवन पर गहरा प्रभाव पडा था और यहाँ के लोगो मे अत्यधिक जागृति उत्पन्न हो गई थी। भारत के अन्य भागो मे जिस समय घोर सामाजिक एव धार्मिक पतन हो चुका था, सिक्ख-मत के आन्दोलन मे यथेष्ट प्राणवत्ता थी। इन गुरुओ ने लोक कल्याण, विश्व मगल, शुद्धाचरण एव भगवद भक्ति आदि का जो सदेश दिया, उसने तत्कालीन पजाब के जीवन को ही प्रभावित नही किया, वरन साहित्य को भी एक निणयात्मक

---

१ देखिये—हिन्दी अलकार साहित्य, पृ० १४६, डा० ओम प्रकाश।
२ तामे कह्यो कवि श्रीधर सो भरतादिक रीति जु बात बली है।
भासहि म भनि भूपण मा, सुरभास ज्यो भूमन भाति भली है।
(श्रीधर)

की कारीगरी में भी अलकरण के अधिक दर्शन होते हैं। अब मूर्तियों में भी बाह्य अलकारों को दिखाया जाने लगा था। मुगल शासको द्वारा निर्मित शालेमार निशात, पजोर इत्यादि बाग-बगीचो में भी उसकी अलकरण प्रवृत्ति सजीव हो उठी है।

उत्तर भारत में इस युग में ललित कलाओं का विकास प्राय उस मुगल राज्याश्रय में हुआ जो कि वैभव एव ऐश्वर्य से भरपूर होने के कारण विलास में डूबा हुआ था। उस वातावरण में इन कलाओं में रसिकता प्रधान शृ गारिकता तथा अलकरण प्रवृत्तियों का आ जाना स्वाभाविक ही था। बहुत कुछ यही स्थिति उस युग के हिन्दी साहित्य की थी, जोकि मुख्यत मुगल संस्कृति से प्रभावित राज्याश्रय में पल्लवित हुआ था। इस युग के साहित्य का सम्बन्ध विशेषत अभिजात वर्ग से ही रहा है, इसीलिए उसमें भृङ्गारिकता एव अलकारिकता की प्रधानता है। दरबारी वातावरण से मुक्त काव्यधारा में अवश्य भाव प्रवणता अधिक है।

इस युग के राज दरबारो में कलात्मकता आलकारिक चमत्कार अथवा पाडित्य प्रदर्शन का इतना बोलबाला था कि वहाँ उसी कवि को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था जिसे अलकार शास्त्र का पूर्ण ज्ञान हो और अलकारो के लक्षण कठ हो तथा जिसके काव्य में अलकारो के चमत्कार को सुलझाने में सभासदो की बुद्धि चकरा जाए। इस तथ्य का प्रमाण उस समय के कुछ हिन्दी कवियो की इन उक्तियो से मिल सकता है। यथा—

> रुचिर ग्रथ भूषन इते, रचि जान मतिराम।
> ताकी बानी जगत में बिलस अति अभिराम।३६६। (ललित ललाम)
> कठ करे जो सभनि में सोभै अति अभिराम (वही)।
> जो या कठाभरण को कठ करै सुख पाय।
> सभा मध्य सोभा लहै, अलकृती ठहराय।४।
> (कविकुल कठाभरण—दूलह)
> ग्रथ काव्यनिर्णयहि जो, समुझि करहि गेकठ।
> सदा बसगी भारती, ता रसना उपकठ। (काव्य निर्णय—दास)

यह कविता कवि समाज तथा अभिजात वर्ग में सम्मान पाने की इच्छा से ही लिखी जाती थी सामान्य लोक जीवन से इसका सम्बन्ध नहीं था 'आगे के सुकवि रीझि है तो कविताई (दास) तथा 'सुकवि रीझि है करि कृपा तो कविता लछिराम (लछिराम) इत्यादि उक्तियाँ भी इसी ओर सकेत करती हैं। उस युग में अलकारो के लक्षण कठ करने की एक

परिपाटी सी चल पडी थी, क्योकि उससे वाणी विलसती थी, रसना पर सरस्वती निवास करती थी और सभाओ म सम्मान प्राप्त होता था। दूलह आदि कवि अपने अनुभव से यह जान चुके थे[१]। उस युग के शासको की अलकार शास्त्र म रुचि का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि मुसल्लेहखा जैसे मुसलमान शासक ने भी अपने आश्रित कवि श्रीधर को 'भरत आदि की परम्परा म एक रीति ग्रथ लिखने का अनुरोध किया था[२]। अलकृती' के इस सम्मान के कारण किसी 'रीतिग्रन्थ' की रचना करना उस युग के कवियो के लिए एक 'कवि परम्परा अथवा कवि पथ' बन गया था। इसका भी उस युग के कई कविया ने उल्लेख किया है। यथा—

सुकबिनहु कि कछु कृपा, समभी कबिन को पथ।
भूषण भूषणमय करत, शिव भूषण सुभ ग्रन्थ।
(शिवराज भूषण—भूषण)

× × ×

देखि कविन को पथ। १।
(पद्माभरण—पद्माकर)

पजाब के साहित्य और कला मे अलकरण प्रवृत्ति

जहा तक पजाब का सम्बन्ध है यहा का वातावरण हिन्दी भाषी प्रदेश से कुछ भिन्न था। बाबर से औरगजेब तक छ मुगल शासको का समय गुरुनानक से गुरु गोविन्दसिंह तक दस सिक्ख गुरुओ के समय से मेल खाता है। मुगल साम्राज्य के ह्रास के साथ-साथ पजाब मे मानववादी सिक्ख मत की नीव दृढ होती जा रही थी। गुरुओ के धार्मिक आदर्शों एव उपदेशो का पजाब के सामाजिक, राजनैतिक एव धार्मिक जीवन पर गहरा प्रभाव पडा था और यहा के लोगो मे अत्यधिक जागृति उत्पन्न हो गई थी। भारत के अन्य भागो म जिस समय घोर सामाजिक एव धार्मिक पतन हो चुका था, सिक्ख-मत के आन्दोलन मे यथेष्ट प्राणवत्ता थी। इन गुरुओ ने लोक कल्याण, विश्व मगल, शुद्धाचरण एव भगवद भक्ति आदि का जो सदश दिया, उसने तत्कालीन पजाब के जीवन को ही प्रभावित नही किया, वरन् साहित्य को भी एक निर्णयात्मक

---

१ देखिये—हिन्दी अलकार साहित्य, पृ० १४६, डा० ओम प्रकाश।
२ तामे कह्यो कवि श्रीधर सो भरतादिक रीति जु बात बली है।
भामहि म भनि भूषण सो सुरभास ज्यो भूसन भाति भली है।
(श्रीधर)

दिशा प्रदान की। तथा उसमें दर्शन, भक्ति, विरक्ति आदि आध्यात्मिक भावनाओं एवं वीरता को प्रमुख स्थान मिला।

अकबर, जहांगीर, शाहजहां आदि मुगल शासक समय-समय पर पंजाब में, विशेष रूप से, लाहौर आते अवश्य रहते थे, और अपनी संस्कृति का कुछ प्रभाव भी यहाँ छोड़ जाते थे, तथापि उनके राज्य और संस्कृति का केन्द्र दिल्ली और आगरा ही अधिक रहा। उन्होंने लाहौर आदि स्थानों पर कुछ महल, मसजिदें तथा ताल भी बनवाए परन्तु उनके आश्रय में कलाओं को केन्द्रीय स्थानों पर ही अधिक प्रोत्साहन मिला। पंजाब की कला एवं साहित्य उनके प्रभाव तथा संरक्षण से प्रायः बाहर ही रहे। पंजाब में हिमालय के पहाड़ी प्रदेश—बसौली, कांगड़ा आदि में चित्रकला की एक स्वतन्त्र शैली का अभ्युदय तथा विकास हुआ। औरंगजेब के कट्टरपन के कारण भारत के अन्य भागों में अशांति व्याप्त थी, परन्तु इन उत्तरी पहाड़ी प्रदेशों में वातावरण प्रायः शांत था यहाँ के हिन्दू अपने धार्मिक विश्वासों का पालन निःशंक कर सकते थे। यही कारण कि हिन्दी भाषी प्रदेश के साहित्य में जिस समय शृंगारिकता का बोलबाला था, यहाँ की कला में भी धार्मिकता का अधिक प्रभाव था। इनमें से संत नारायण जैसे प्रभावशाली व्यक्तियों के प्रभाव से कला भी अछूती नहीं रह सकती थी। इसीलिए पुरातन बसौली चित्रकला में रामायण, महाभारत, पुराण गीत गोविन्द आदि के धार्मिक विषयों को आधार बनाया गया है। बाद के चित्रों में राधा-कृष्ण के शृंगारिक चित्रों की प्रधानता है। परन्तु इन सभी में भावों की अभिव्यक्ति पर ही अधिक ध्यान दिया गया है अलंकृति नगण्य है। 'पुरातन बसौली कला में सादगी है, वह सीधी सादी पर प्रभावशाली है।'[1] इस कला में एक नदी तथा संगीत का सा भावपूर्ण प्रवाह और रवानी है। बाद में यह बसौली कला मानकोट, नूरपुर, मंडी, सुकेत, बिलासपुर, नालागढ़, चम्बा, गुलेर तथा कांगड़ा में भी फैल गई और वहाँ के पहाड़ी राजाओं के आश्रय में उसने उन्नति की। इस समय की कला में भी रसमंजरी, 'बारहमासा आदि पर आधारित शृंगारिकता तथा आध्यात्मिकता की ही प्रधानता है। प्राकृतिक दृश्यों को अलंकृति के लिए प्रयोग में अवश्य लाया गया है तथापि उनमें भावाभिव्यक्ति पर ही अधिक बल दिया गया है। संसारचन्द के दरबारी चित्रकारों ने सिक्ख गुरुओं के भी कुछ चित्र बनाए हैं जिनमें सादगी एवं गरिमा है। इसी समय एक 'सिक्ख स्कूल' का अभ्युदय हुआ जिसमें धार्मिक भावना के साथ वीर का समन्वय था उसमें भी अलंकारों की अपेक्षा भावाभिव्यक्ति पर अधिक ध्यान दिया जाता था।

---

१ Basohli Painting, Page 26, M S Randhava

इसी प्रकार उस युग मे पजाब मे जो साहित्य रचा गया उसमे भी आध्यात्मिक भावो की प्रधानता रही और वह राजाश्रय से मुक्त रह कर सूफियो, सतो और दस सिक्ख गुरुओ के जीवन से प्रभावित होने के कारण जनसाधारण के कल्याण के लिए लिखा गया है। इसलिए उसमे चमत्कार प्रदशन का प्रश्न ही नही उठता, क्याकि सभाओ मे मान प्राप्त करने के लिए 'रीतिग्रथ' लिखने को भी यहाँ के साहित्यकार उत्कठित नही थे।

औरगजेब के निबल शासको की शक्तिहीनता एव नादिरशाह और अहमद शाह के आक्रमणो के परिणामस्वरूप पजाब म मुसलमाना की सत्ता क्षीण होने से सिक्खो ने शक्ति सचित करना आरम्भ कर दिया था। अब सिक्ख मिसलें जोर पकडने लगी थी, जिन्होंने पजाब के विभिन्न भागो पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था। इनमे से पटियाला, नाभा, कपूरथला आदि रियासतो के सरदारा के पास कुछ कवि भी रहते थे, परन्तु इन सिक्ख सरदारो की धार्मिक भावना भी जागरूक थी। इसीलिए उनके आश्रित कविया मे भी वेदान्त, भक्ति तथा वीरता आदि की प्रवृत्तिया ही प्रमुख हैं। नि सदेह इन दरबारो का वातावरण हिंदी भाषी प्रदेश के रीतिकालीन दरबारो स सवथा भिन्न था।

इस विवेचन से हम इन निष्कर्षों पर पहुचते हैं —

(१) पजाब मे नित्यप्रति के लडाई झगडो के कारण वैभव एव ऐश्वय कम था।

(२) पजाब का साहित्य उस दरबारी वातावरण की देन नही था। जिसने हिंदी भाषी प्रदेश के साहित्य सृजन मे सरक्षण का काय किया था।

(३) पजाब के साहित्य पर सूफी तथा सिक्ख समत की धार्मिकता का प्रभाव अधिक था।

(४) वह अभिजात वग के मनोविनोद अथवा सभाओ मे सम्मान प्राप्त करने के लिए नही लिखा गया था, वरन् उसका प्रणयन जनसाधारण के कल्याण के लिए हुआ था।

यही कारण है कि इस युग के पजाब के ब्रजभाषा साहित्य के लिए चमत्कार प्रदशन अथवा अलकरण के स्थान पर स्वाभाविक शली के विकास के लिए अधिक अनुकूल वातावरण था।

स० १८०० तक पजाब मे महाराजा रणजीतसिंह ने एक सुदृढ शक्तिशाली एव वभव-सम्पन्न सिक्ख राज्य स्थापित कर लिया था। लाहौर में उसके दरबार

की शोभा मुगल दरबार की शोभा से किसी भी भाति कम न थी।[1] वहाँ अल करण की ओर भी ध्यान दिया गया था। उनके राज्य म स्त्रियाँ भी विशेष अवसरो पर आभूषण धारण करती थी और उनका सामाजिक स्तर भी उन आभूषणो से ही आका जाता था। स० १८१० म कागडा रणजीतसिंह के हाथ आ गया था और तभी से वहाँ की चित्रकारी म भी सिक्खमत का प्रभाव दिखाई देने लगता है। रणजीतसिंह के दरबार म भी कागडा स्कूल के कुछ चित्रकार थे जिन्होने सिक्खगुरुओ के अनक चित्र बनाए हैं परन्तु उनम वह जान नही है जो उस समय क नूरपुर आदि के चित्रो म है। इस समय के चित्रो म दरबारी शोभा के अनुरूप कुछ अलकारिता भी आने लगी थी। इस समय जो गुरुद्वारे बने उनम भी अलकरण की इस प्रवृत्ति के दशन होते हैं। अमृतसर का स्वण हरि मन्दिर इसका साक्षी है फिर भी यह मानना पडेगा कि सिक्ख-कला म भव्यता एव लालित्य का सुन्दर समन्वय है और उसम चमत्कार अथवा अलकार प्रदशन की ओर विशेष ध्यान नही दिया गया।

रीतिकालीन ब्रजभाषा साहित्य का वास्तविक स्वरूप हिन्दी भाषी प्रदेश म ही स्थिर हुआ था और राज्य सभाओ म पल्लवित होने के कारण उसके प्रतिमान स्थिर हो चुके थे और इस साहित्य म चमत्कारिता का विशेष महत्व था। पजाब के हिन्दी कवियो की परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ चाहे उनसे भिन्न थी फिर भी उन्ह उस युग के साहित्यिक स्तर पर पूरा उतरने के लिए तथा परम्परा निर्वाह के लिए उस स्तर की कुछ कविता करनी ही पडती थी। इन्ही कारणो से रणजीतसिंह तथा उनके बाद के साहित्य मे अलकरण प्रवृत्ति के दशन होने लगते है।

दूसरे हिन्दी भाषी प्रदेश के बहुत से कवि पजाब म आकर रहने लगे थे। कुवरेश तथा आलम आदि कवियो का गुरु गोबिन्दसिंह के दरबार म आकर रहने के प्रमाण उपलब्ध है। ये कवि अपने साथ अपनी साहित्यिक परम्पराओ को भी लेते आए, पजाब म इससमय के बहुत से ऐसे रीतिग्रन्थ' गुरुमुखी लिपि म मिलते है जिनकी रचना हिन्दी भाषी प्रदेश म हुई थी। इनसे यह विदित होता है कि यहाँ के साहित्यिक वग को भी काव्य शास्त्र म रुचि अवश्य रही है और उन ग्रथो के अध्ययन स उन पर उस साहित्यिक परम्परा का प्रभाव पडना भी स्वाभाविक ही था। पजाब म प्राप्त इस युग के भाषा भूषण, ललितललाम,

---

१ सिक्ख इतिहास, पृ० ३३४ (प्रथम सस्करण) ठाकुर देसराज।

'अलकार माला','अलकार कलानिधि'जसे रीतिग्रथो के गुरुमुखी लिपि मे रूपान्तर तथा 'साहित्य शिरोमणि' (कविनिहाल १८६१),'अलकार सागर सुधा' (टहलसिंह १७८०), एव भावरत्न माला (फतेसिंह आहुलिवालिया १८६१) जसे मौलिक रीतिग्रथ भी इसी प्रभाव के सूचक है। फिर भी हिन्दी भाषी प्रदेश के सकडा रीतिग्रथो के सम्मुख, पजाब के इन कतिपय रीतिग्रथो की रचना, जबकि इस युग मे यहा ब्रज भाषा के सैकडो काव्य ग्रथ लिखे गए, इस तथ्य को प्रमाणित करते है कि यद्यपि रीतिकालीन अलकार प्रवृत्ति एव रीतिरचनापरम्परा का कुछ प्रभाव पजाब के परवर्ती साहित्य पर पडा अवश्य, तथापि 'अलकरण' एव 'रीति' को उतना अधिक सम्मान यहाँ प्राप्त नही हुआ। यहा के साहित्य मे वीरता और आध्यात्मिकता की ही प्रधानता है।

जो भी सतप्त एव अधम जीव वहा आ जाता है, वह पुरी के दर्शन पाकर शीतल एव पवित्र हो जाता है और उसम ज्ञान का उदय हो जाता है। यह ऐसी तपो भूमि है कि कोकिल, कीर, कपोत, नाग और सिंह एक साथ विचरत हैं, परन्तु गुरु आदेश के बिना किसी को कष्ट नही दे सकते। वह नगरी अमरपुरी से भी अधिक पवित्र एव सुन्दर है। ऐसी अनुपम नगरी म भूत,वर्तमान एव भविष्य के ज्ञाता गुरुदेव विराजमान है।[1]

गुरु जी के एक दरबारी कवि मगल ने आनन्दपुर के आनन्द मगल के वातावरण का चित्रण इस प्रकार किया है —

आनन्द दा वाजा नित वजदा अनन्दपुर
सुणि-सुणि सुध भुलदीए नर नाह दी।
भै भया भभीषणा नू लका गढ वसणे दा,
फेर असवारी आवदीए महावाहु दी।
बल छडड बल, जाई छपिया पताल विच
फते दी निशानी ददे दार दरगाह दी।
सोवणे न देंदी मुख दुज्जना नू रात दिन,
नौबत गोबिंद सिंह गुर पातशाह दी॥

---

१ सवया— औधपुरी जिम राम विराजित द्वारावती जदनाथ सवारी।
शकर मद्धि बनारस गावत सभर म कलकी क्रितसारी।
लौ सु लाहौर कूस जो कसूर है थाप बसियो रट है नर-नारी।
तिउ करुनानिध को पुर आनन्द चार पदारथ दाइक भारी। ५
ऊपर नन जु दव विराजित तीर महासतगग सु भारी।
सात धुजा प्रभ जी जहि पूरन चार पदारथ दाइक सारी।
हाट बजार सु धाम अनूपम देव समान बसै नर-नारी।
भूत भविक्ख भवान सदा जिह्न बीच सस दसवा अवतारी। ६
(अध्याय ७)

चौपाई—सिक्ख सखा पुर मे जोऊ बस। निज सुख निरख सुरग कह हस।
झरना झरै नीर सुखदाई। मोर चकोर विविध झड लाई। ४२।
बाग तडाग कूप फुलवारी। सोभत बाईस ललत रु चारी।
अधम जीव दरसन जोऊ आई। सीतल होत दरस कह पाई। ४३।
ग्यान छत्र उगवत तिह उरा। जो दरसत आनन्द चलि पुरा।
अप्रमान छबि इस मनोज। याकी उपमा या कह दीजै। ४४।

दोहरा—कोकिल कीर कपोत सिख विचरत नागरु शेर।
बिन आइस गुरदेव की सकत न किस ही छेर। ४५।
गुरु विलास (अध्याय १)

गुरु-दरबार की महिमा का वर्णन करते हुए इस कवि ने लिखा है —

वरन पुरख अवतार आन लीन आप,
जाके दरबार मन चितवे सो पाइए।
घटि घटि बासी अबिनासी नाम जाको जग,
करता करनहार सोई दिखराइए।
नमो गुरुनन्द जग बन्द तेरा त्याग पूरे,
मगल सु कवि कहि मगल सुणाईए।
आनन्द को दाता गुर साहिब गोविन्द राई,
चाहे ज आनन्द तो आनन्दपुर आइए।

गुरु जी के एक अन्य दरबारी कवि हसराम ने भी आनन्दपुर की शोभा का वर्णन किया है जो इस प्रकार है—

कौन बडा या जगत मे, को दाता को सूर,
काके रन अरु दान मे मुख पर बरसत नूर।
रच्यो ब्रह्म कर आपने दीनो भू को भार,
सो तो गुर गोविंद है नानक को औतार।
ऐसे काहू क नही सुर सुरपति के भौन,
ईस मुनीस दिलीस ए नीर नरेस कै कौन।
चार बरन चारो जहा आश्रम करत अनन्द,
ताको नाम अनन्दपुर है अनन्द को कन्द ॥

आनन्दपुर मे रहते हुए जहा गुरु जी अपने धर्मोपदेशो द्वारा हिन्दुओ की सास्कृतिक चेतना को जाग्रत कर रहे थे, वहा इस अभियान को और अधिक दृढ भूमि पर प्रतिष्ठित करने के लिये उन्होने साहित्य सजन का आश्रय लिया। आनन्दपुर उन दिनो एक प्रमुख साहित्यिक केन्द्र था। गुरु जी स्वय एक श्रेष्ठ कवि थे और अनेको कवियो के आश्रयदाता थे। कहा जाता है कि उनके दरबार मे बावन कवि[1] विद्यमान थे। उनकी सख्या ठीक बावन ही थी, या न्यूनाधिक, इस पर विद्वानो मे मतभेद है। कुछ विद्वानो की धारणा है कि यह सख्या स्थिर नही थी, कुछ कवि स्थायी रूप स भी वहा रहते होगे, परन्तु कुछ आते जाते रहते थे। जिन जिन कवियो के नामो का उल्लेख विभिन्न विद्वानो ने किया है यदि उन सब की तालिका बनाई जाए तो सख्या ६४ तक पहुच जाती है।[1]

१ हुते बवजा कवि गुर पास, सामह बानी करहि प्रकाश

गया है। इनके अतिरिक्त 'चौबीस-अवतार' (१-३४) 'विचित्र नाटक', 'ब्रह्मा वतार (१-१६) 'रुद्रावतार' (१६-१०६) आदि म भी अनेक स्थानों पर आध्यात्मि विचारक विकीर्ण हैं। इन सभी रचनाओं म सासारिक-वभव एव ऐश्वय की क्षणभगुरता, सासारिक सम्बन्धो की विस्तारता, जगत के मिथ्यात्व आदि पर प्रकाश डाला गया है। ब्रह्म और आत्मा के सम्बन्ध और स्वरूप का विवेचन है। वाह्याचारो, पाखडपूण साधना पद्धतियो, आडम्बर युक्त कर्मों, अहकारयुक्त यौगिक क्रियाओ का विरोध किया गया है, जाति-पाति एव मूर्ति पूजा आदि का खडन किया गया है और ब्रह्म और आत्मा की एकता और सत्यता मे विश्वास प्रकट करके सदाचार अहकार-त्याग, सयम सेवा सतोष आदि का महत्व दर्शाते हुए नाम-स्मरण के द्वारा उद्धार का माग सुझाया गया है। इस प्रकार के आध्यात्मिक विचारो से पूण यह एक ऐसी जीवत रचना है जो मानव धम मानव-एकता एव मानव-समता मे विश्वास जगाती है और और लोक मगलकारी भावनाओ को प्रश्रय देती है। यहाँ विभिन्न अवतारो के ब्रह्मत्व का खडन करके कवि ने एक 'अकाल पुरुष' मे ही अपनी आस्था प्रकट की है। इस प्रकार के आध्यात्मिक तत्त्व एव भक्ति भावना से अनुप्राणित होने के कारण रीतिकालीत साहित्य मे इस ग्रन्थ का विशिष्ट स्थान है। इन तत्वा के कारण यह रचना भक्ति काव्य के ही अधिक निकट है। (सत साहित्य) हजूरी— कवियो की रचनाओ म भी आध्यात्मिकता का यह स्वर इसी प्रकार मुखरित हुआ है 'गुरु शोभा' जैसे वीर रस प्रधान प्रबन्धो के आरम्भ मध्य अथवा अन्त मे ब्रह्म के स्वरूप सिखमत के सिद्धान्तो एव भक्ति भावना का निरूपण हुआ है। इसी प्रकार गुर विलास म भी सिक्खमत के आध्यात्मिक विचारो का विशदता से प्रतिपादन हुआ है। इन सभी पर दशमग्रन्थ (अकाल उस्तुति जापु वचित्रनाटक) के विचारो का गहरा प्रभाव है। इन रचनाओ म अवतार वादी भावना के दर्शन अवश्य होते हैं क्योकि इन सभी ने गुरु जी को भूमि भार उतारने के लिये अकाल पुरुष की आज्ञा से अवतरित अवतारी-पुरुष' के रूप मे चित्रित किया है और उनके प्रति अपनी भक्ति भावना प्रकट की है।

रीतिकालीन साहित्य के सन्दर्भ म, जबकि साहित्य शृ गारिक प्रवृत्तियो से आक्रान्त था, मानव मात्र की एकता, उन्नयन एव उद्धार म निष्ठा उत्पन्न करने वाले इस अनुभूतिपूर्ण आध्यात्म प्रधान साहित्य का विशेष महत्व है।

शौय प्रदशन, दानशीलता आदि का अत्युक्तिपूण वणन किया जाता था। इन म युद्धा का भी अत्यन्त ओजस्वी और सजीव वणन हुआ है। परन्तु इन काव्य ग्रथा की वीर भावना मे उस उदात्तता का प्राय अभाव है जो बृहत्तर सामाजिक, सास्कृतिक अथवा राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित होती है। किसी उच्च राष्ट्रीय, सास्कृतिक अथवा मानवीय उद्देश्य को लेकर ये ग्रथ नही लिखे गये। इनम वर्णित युद्ध किसी सुदर कया के अपहरण, केवल मात्र शौय प्रदशन, पारिवारिक वैमनस्य, अथवा अपने राज्य की रक्षा के लिये लडे दिखाये गए हैं। परतु आनदपुर मे जो वीर-काव्य लिखे गये, उन मे एक महान उद्देश्य की पूर्ति का स्वर मुखरित है। यहा पर रचित वीर काव्यो म दो प्रकार के ग्रथ आते हैं। एक तो ऐसे प्रबध, जो पौराणिक आख्यानो को लेकर लिखे गये है—जसे 'दशमग्रथ' के 'चौबीस अवतार (जिन म रामावतार एव 'कृष्णावतार' प्रमुख है) तथा 'चण्डीचरित', दूसरे वे ऐतिहासिक प्रबध हैं जिनमे गुरु जी द्वारा रचित 'अपनी-कथा' (विचित्र नाटक) तथा गुरु जी के जीवन पर आधारित—'गुरु शोभा, 'जगनामा गुरु गोविन्द सिंह एव 'गुरु बिलास' को रखा जा सकता है। गुरु-दरबार के अन्य कवियो हसराम, मगल, हीर, अमृतराई आदि की कुछ मुक्तक रचनाएँ भी ऐसी हैं जिन म उनकी धमवीरता, युद्धवीरता, अथवा दानवीरता तथा नगारो की चोट, उनकी कृपाण, खडग आदि के चमत्कार इत्यादि का चित्रण हुआ है। इन सभी वीर काव्यो की यह विशेषता है कि इन मे गुरजी को धम योद्धा के रूप मे चित्रित किया गया है। वे निजी स्वाथ, राज्य प्राप्ति अथवा शौय प्रदशन भर के लिये युद्ध करते नही दिखाए गए है वरन् उन्हे विवश होकर धम की रक्षाथ युद्ध करने पडे थे। 'दशमग्रन्थ' मे उन्होने स्वय कहा है कि उन्ह अकालपुरुष ने अधम के विनाश एव धम की स्थापना के लिये भूतल पर भेजा है।[1] और इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये उन्ह खडग का आश्रय लेना पडा। क्योंकि यह खड्ग सतो की रक्षक एव दुष्टो की सहारक है इसलिये उनके लिये 'अकालपुरुष, के समान वदनीय है। उसकी वदना करते हुए वे लिखते हैं —

खग खड विहड खल दल खड अति रणमड वर-वड।
भुज दड अखड तेज प्रचड जोति अमड भान प्रभ।
सुख सता करण दुर्मति दरण किल्बिख हरण अस सरण।

---

१ हम इह काज जगत मा आए। धरम हेत गुरदेव पठाए।
जहा तहा तुम धरम बिथारो। दुसट देखियनि पकरि पछारो।
(विचित्र नाटक ७ २९)

सास्कृतिक चेतना, राष्ट्रीयता एव लोकमगल की भावना का उमेष 'दशमग्रथ' मे हुआ है उसका रासो-काव्यो म अभाव है। असुर-सहार एव पापो का विनाश करके सतो के उद्धार एव धर्म-स्थापन की जिस भावना की व्यजना यहाँ हुई है, वह भी रासो-ग्रथो म नही मिलती। नि सन्देह यह आनन्दपुर के अध्यात्म प्रधान, उदात्त-वीर रसात्मक गुरु दरबार के वातावरण का ही परिणाम है। वीरता का जैसा उदात्त रूप तथा आध्यात्मिक विचारो का जसा विशद विवेचन आनन्द पुरीय वीर काव्यो म हुआ, वह किसी भी अन्य वीर-काव्य म उपलब्ध नही है। 'वचित्र नाटक' के कवि ने जिस प्रकार अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध विद्रोहात्मक भावना को जागृत किया है वह भी अन्य वीर-काव्या म नही है। वस्तुत वणन शली मे भले ही ये वीरकाव्य हिन्दी के अन्य वीर-काव्यो के निकट हो, इनकी आत्मा तथा इनका स्वर उनसे सवथा भिन्न है।

'दशमग्रथ' के अतिरिक्त 'गुरु शोभा', 'जगनामा गुर गोविन्दसिह तथा 'गुरु विलास अन्य प्रबन्धात्मक वीर काव्य हैं, जिनम गुरु गोविन्दसिह के अनेक युद्धा का (जगनामे म केवल एक ही युद्ध-कथा है) ओजस्वी वणन हुआ है और जहाँ तक इन वीर-काव्या की वीर भावना का सम्बन्ध है इनम भी 'वचित्रनाटक' की परम्परा का ही निर्वाह किया गया है। इन सभी प्रबन्धो म गुर गोविन्दसिह को धमयोद्धा एव राष्ट्र नायक के रूप मे चित्रित किया गया है और उनके युद्धो की पीठिका के रूप म भारत मे फले अनाचार अन्याय और अधम का वणन किया गया है, जिसका विनाश करके न्याय और धम की स्थापना करने के लिये गुरु जी अवतरित हुए थे। 'जगनामा गुर गोविन्दसिह' मे अणीराय ने स्पष्ट लिखा है जब औरगजेब के अत्याचार बहुत बढ गये और वह हिन्दुओ को जबरदस्ती मुसलमान बनाने लगा तथा उनके देवमदिरो को खडित करने लगा तो भगवान् की दरगाह म फरियाद हुई और उसने गुरु गोविन्द को पृथ्वी पर आकर कुटिल-कर्मी औरगजेब को सजा देने का हुक्म दिया।[1] यह जगनामा शिवाबावनी (भूषण) की समकालीन रचना है और

---

१ तखते बठे अनीति को सुने न चित अकुलाइ।
तांको करता दिनन के किउ न लग फल आइ।६।
मुसलमान हिंदू कर जु दउ ढहाव नित्त।
फरिआद लगी दरगाह म करता धर न चित्त।७।
हुक्म हूओ गोविंद को उतरयो अवनी जाइ।
कुटल करम औरग कर ताको देहु सजाइ।८।
धनुप चक्र खडा धरे हिंदूपति सुलतान।
साढवरा अवतार हो गोविंद सिंह बलवान।९।
(जगनामा गुरु गोविंदसिह)

वीररस के ओजस्वी चित्रण की दृष्टि से यह रचना 'शिवाबावनी से कम महत्वपूण नही है, वरन् इसकी एक दो ऐसी निजी विशिष्टताएँ हैं, जो उसे 'शिवाबावनी' से भी अधिक महत्व प्रदान करती हैं। प्रथम तो इसमे एक युद्ध-कथा का पूण विवरण दिया गया है, जबकि 'शिवाबावनी' मे कोई युद्ध-कथा नही है, दूसरे दुष्टो को दड देकर न्याय और धम की स्थापना करने का जसा उल्लेख इसमे हुआ है वैसा 'शिवाबावनी' मे नही है, यद्यपि पर पक्षी दोनो मे औरगजेब ही है। 'जगनामे' की इस भावना पर 'वचित्रनाटक' की 'जहाँ तहाँ तुम धरम बिथारो, दुष्ट दोखियनि पकरि पछारो' का ही प्रभाव लक्षित होता है। 'गुरु विलास' म तो कवि ने गुरु जी के अवतार धारण करने के कारणो पर बडे विस्तारपूवक प्रकाश डाला है। उसने उनके सम्बध मे ठीक वसी ही कल्पना की है जैसी कि अवतारो के सम्बध म की जाती रही है। कवि का कथन है कि अनाचार और अधम बढन से जब 'पृथ्वी व्याकुल हो उठी तब उसने 'अकाल पुरुष' के पास पुकार की और उन्होने प्रसन्न होकर 'सकल बिघन अघ हरन को (१।१) गुरु गोविन्दसिंह जी को भूतल पर भेजा।[1] 'वचित्रनाटक' (अपनी कथा) मे भी गुरु जी ने अपने आगमन के कारणो पर प्रकाश डालते हुए ठीक ऐसी ही कथा का वणन किया है। इसी प्रकार 'गुरुशोभा म भी 'असुर सिंहारब को दुरजन का मारबे का 'सकट निवारबे को खालसा बनायो है[2] अथवा 'दुष्ट बिडारन सन्त उधारण, सब जग तारण भय हरण[3] आदि ऐसी

---

१ नीति अनीति निहार मलछन दुखत भई धरनी सब सारी।
लोप भए सभ छत्रन के गुण जग सु पुन जु दान अपारी।
ईद चली बकरीद निवास सु गो बध होत सभ घर भारी।
कौन करै इह दूख सबै घर, दीन दिआल बिना अस थारी।
दूख निहार किधौ भूम्र को निज स्री असकेत भए बरदानी।
दीन दआल पठिओ गुर पूरन जा उपमा दसहू दिस जानी।
तास चरित्र प्रकाश कहो बर सत सुना मन लाह कहानी।४।
दुखत भई धरती जब ही जग नाइक प इह भाति पुकारी।
आकुल बिआकुल ह्वै निज मात रोवत भी बहु पाप निहारी।
काल सु देव प्रसन्न भयो निज या विधि सौस बचु सुद्ध उचारी।
होहु न आतुर धीर धरो निज धारत सत अनतावतारी।५।
यौ निज रिदै विचार कै दीन बध करतार।
दसमो स्री गुर बर पठयो मात लोक निरधार।७।
(गुरु विलास अध्याय ३)

२ गुरु शाभा १४ १३०।
३ वही १, १७

भोगवाद, असतोष, अवसाद, सघष और अशाति को जन्म दिया है। जीवन म सुख आदि शाति के लिए आस्था आदि विश्वास के मध्य युगीन मूल्यो की कितनी आवश्यकता है, यह यत्र-सभ्यता के दबाव स सत्रस्त आधुनिकतावादी भी अनुभव करने लगे है। उच्च मानवीय एव आध्यात्मिक मूल्यो से अनुप्राणित आनन्दपुरीय साहित्य इन्ही उदात्त भावनाओ को जगाने वाला सत्साहित्य है।

ऐतिहासिकता

इस साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यधिक महत्व है। यद्यपि इन कवियो ने कथानक को पौराणिक रूप देने का प्रयत्न भी किया है, तथापि गुरु गोविन्दसिंह के जीवन से सम्बन्धित जितनी प्रामाणिक सामग्री इस साहित्य म मिल सकती है अन्यत्र दुलभ है। गुरुओ के जीवन पर लिखन वाले परवर्ती कवियो एव इतिहासकारो न मुख्यत इसी साहित्य को आधार रूप म ग्रहण किया है। इसी प्रकार उस युग की राजनतिक, सामाजिक एव सास्कृतिक परिस्थितिया का भी इस साहित्य म यथाथ चित्रण हुआ है। यदि हम उस युग का प्रामाणिक सास्कृतिक इतिहास लिखना चाहते हैं, तो इससे अधिक उपयोगी सामग्री अन्यत्र नही मिल सकती। इस साहित्य म उसकी यथार्थता का ही पता नही चलता, वरन् जन-मानस मे उदित होती हुई अभिलाषाओ एव प्रतिक्रियाओ का भी परिचय मिलता है।

काव्यरूप

यह तो रही इस साहित्य की प्रवृत्यात्मक विशेषताओ की बात, जहाँ तक उसके रूप एव काव्य शिल्प का सम्बन्ध है, इस दृष्टि से भी आनन्दपुर मे रचित कृतिया का महत्वपूण योगदान है। आनन्दपुर म इस समय ब्रजभाषा (हिन्दी) के ही नही, फारसी और पजाबी के कवि भी विद्यमान थ। परिणाम स्वरूप इन सभी भाषाओ के विभिन्न काव्य रूपो मे यहाँ काव्य रचना हुई। भाई नन्दलाल की फारसी की कविता कलात्मकता एव मार्मिक भाव-व्यजना की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि की काव्य रचना है। गुरु जी का 'जफरनामा भी फारसी की बहरो म रचित श्रेष्ठ रचना है। अनीराय का 'जगनामा गुर गोविन्दसिंह' भी फारसी का एक विशिष्ट काव्य रूप है जिसमे एक क्षीण सी युद्ध-कथा होती है, गुरु जी ने करमसिंह गण्डासिंह, वीरसिंह रामसिंह और सणासिंह नाम के पाच सिक्खो को सस्कृत भाषा और शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने क लिए काशी भेजा था। जहाँ से सस्कृत की काव्य-परम्पराओ को भी वे साथ लेते आए होंगे।

---

१ कल्पलता पृ० १४०

उसने भी आनन्दपुरीय साहित्य की काव्य शैली को यदि प्रभावित किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। 'दशम ग्रंथ' के 'जापु' एवं 'अकाल उस्तुति' पर संस्कृत के स्तोत्र-प्रथा का ही प्रभाव लक्षित होता है। "शस्त्रनाममाला' पर भी संस्कृत के 'अमरकोश' जैसे ग्रंथों का ही प्रभाव है। पंजाबी में 'वार' लिखने की एक निजी परम्परा है, (जो प्राय वीर रसात्मक होती थी) उसका निर्वाह 'दशमग्रंथ' में संकलित 'वार भगवती' में हुआ है। अनेक हजूरी कवि ऐसे थे, जो हिन्दी प्रदेश से आए थे और अपने साथ वहाँ की काव्य परम्पराओं को भी लेते आए थे। चरित्-काव्य लिखने की जो परम्परा अपभ्रंश तथा आदिकालीन हिंदी साहित्य में चरित (चरिउ), विलास, प्रकाश, रासो आदि नामों से विकसित हुई थी गुरु शोभा, 'अपनी कथा' (विचित्र नाटक), 'चौबीस अवतार', चंडी चरित एवं 'गुरु विलास' उसी परम्परा के चरित काव्य हैं। इनमें पौराणिक एवं ऐतिहासिक दोनों प्रकार के काव्य हैं। जिस प्रकार इन ऐतिहासिक प्रबंधों में पौराणिकता एवं अलौकिकता के दर्शन होते हैं उसी प्रकार अपभ्रंश के चरित-काव्यों में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। जिस प्रकार इन प्रबंधों में चरित नायक को अवतारी रूप दिया गया है, उसी प्रकार उन चरित-काव्यों के नायक के भी महत्व की प्रतिष्ठा की गई है। इस प्रकार इन दोनों के रूपों में बेहद समानता है, यह दूसरी बात है कि इनकी चेतना उनसे भिन्न है। 'विचित्र नाटक' 'हनुमान नाटक' (हृदयराम) से प्रभावित दीख पड़ता है क्योंकि यह भी उसकी भांति प्रबंध रचना ही है। नाटक के तत्वों का दोनों में अभाव है। नाटक का अर्थ यहां 'लीला' हो सकता है। बहुत सम्भव है यह काव्यरूप अपभ्रंश के 'रूपक' का (जो एक प्रकार के चरित काव्य ही होते थे) ही अनुकरण रहा हो। हां आत्म-कथात्मक शैली में लिखे जाने के कारण उसकी एक विशिष्टता है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। दशमग्रंथ' में कुछ 'पख्यान चरित' भी आए हैं। भारत में वैदिक काल से अनेक 'उपाख्यान' प्रचलित रहे हैं। 'महाभारत' में "शकुन्तलोपाख्यान, मत्स्योपाख्यान, नलोपाख्यान, शिविउपाख्यान' इत्यादि अनेक उपाख्यान आए हैं। बाद के जातक साहित्य में तथा अपभ्रंश में भी ऐसे उपाख्यानों का प्राचुर्य रहा है। हिन्दी में सूफियों और अनेक दूसरे कवियों ने प्रेम प्रधान आख्यान भी लिखे हैं इनमें कुछ ऐसे भी हैं जिनमें आध्यात्मिक भावों की व्यंजना हुई है। यह परम्परा 'तुलसी' के समय में भी जीवित थी इसका निर्देश मानस' में हुआ है। 'दशमग्रंथ के 'पख्यान' इसी परम्परा के सूचक हैं। मैं यहां यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि वैज्ञानिक दृष्टि से उनका अध्ययन किया जाए तो उनमें कोई ऐसी चीज नहीं मिलेगी जिससे गुरु जी के चरित्र की क्षति पहुंचे।

भोगवाद, असतोप, अवसाद सघप और अशाति को जन्म दिया है। जीवन म सुख आदि शाति के लिए आस्था आदि विश्वास के मध्य युगीन मूल्या की कितनी आवश्यक्ता है, यह यत्र-सभ्यता के दबाव से सत्रस्त आधुनिकतावादी भी अनुभव करने लगे है। उच्च मानवीय एव आध्यात्मिक मूल्यो से अनुप्राणित आनन्दपुरीय साहित्य इन्ही उदात्त भावनाओ को जगाने वाला सत्साहित्य है।

ऐतिहासिकता

इस साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यधिक महत्त्व है। यद्यपि इन कवियो ने कथानक का पौराणिक रूप देने का प्रयत्न भी किया है तथापि गुरु गोविन्दसिंह के जीवन से सम्बन्धित जितनी प्रामाणिक सामग्री इस साहित्य म मिल सकती है, अन्यत्र दुर्लभ है। गुरुओ के जीवन पर लिखने वाले परवर्ती कविया एव इतिहासकारा न मुख्यत इसी साहित्य को आधार रूप म ग्रहण किया है। इसी प्रकार उस युग की राजनतिक सामाजिक एव सास्कृतिक परिस्थितिया का भी इस साहित्य म यथाथ चित्रण हुआ है। यदि हम उस युग का प्रामाणिक सास्कृतिक इतिहास लिखना चाहते हैं तो इससे अधिक उपयोगी सामग्री अन्यत्र नही मिल सकती। इस साहित्य म उसकी यथायता का ही पता नही चलता, वरन जन मानस म उदित होती हुई अभिलाषाओ एव प्रतिक्रियाओ का भी परिचय मिलता है।

काव्यरूप

यह तो रही इस साहित्य की प्रवृत्यात्मक विशेषताओ की बात, जहाँ तक उसके रूप एव काव्य शिल्प का सम्बन्ध है इस दृष्टि से भी आनन्दपुर म रचित कृतिया का महत्वपूण योगदान है। आनन्दपुर म इस समय ब्रजभाषा (हिन्दी) के ही नही फारसी और पजाबी के कवि भी विद्यमान थे। परिणाम स्वरूप इन सभी भाषाओ के विभिन्न काव्य रूपो म यहाँ काव्य रचना हुई। भाई नन्दलाल की फारसी की कविता कलात्मकता एव मार्मिक भाव-व्यजना की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि की काव्य रचना है। गुरु जी का 'जफरनामा' भी फारसी की बहरो म रचित श्रेष्ठ रचना है। अनीराय का 'जगनामा गुरु गोविन्दसिंह' भी फारसी का एक विशिष्ट काव्य-रूप है जिसम एक क्षीण सी युद्ध-कथा हाती है, गुरु जी न करमसिंह गण्डासिंह वीरसिंह रामसिंह और सणासिंह नाम क पाच सिक्खो का सस्कृत भाषा और शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने क लिए काशी भेजा था। जहाँ से सस्कृत की काव्य-परम्पराओ का भी वे साथ लते आए हाग।

१ कल्पलता पृ० १४०

उनने भी ग्रानन्दपुरीय साहित्य की काव्य शैली को यदि प्रभावित किया हो तो कोई ग्राश्चय नही। 'दशम ग्रंथ' के 'जापु' एव 'ग्रकाल उस्तुति' पर सस्कृत के स्तोत्र-ग्रथो का ही प्रभाव लक्षित होता है। 'शस्त्रनाममाला' पर भी सस्कृत के 'ग्रमरकोश' जसे ग्रथो का ही प्रभाव है। पजाबी म 'वार' लिखने की एक निजी परम्परा है, (जो प्राय वीर रसात्मक होती थी) उसका निर्वाह 'दशमग्रथ' मे सकलित 'वार भगवती' म हुग्रा है। ग्रनेक हजूरी कवि ऐसे थे, जो हिन्दी प्रदेश स ग्राए थे ग्रौर ग्रपने साथ वहाँ की काव्य परम्पराग्रो को भी लेते ग्राए थे। चरित्-काव्य लिखने की जो परम्परा ग्रपभ्र श तथा ग्रादिकालीन हिन्दी साहित्य म चरित (चरिउ), विलास, प्रकाश, रासा ग्रादि नामो से विकसित हुई थी, 'गुरु शोभा', 'ग्रपनी कथा' (विचित्र नाटक), 'चौबीस ग्रवतार', चडी चरित्र, एव 'गुरु विलास' उसी परम्परा के चरित काव्य हैं। इनम पौराणिक एव ऐतिहासिक दोनो प्रकार के काव्य है। जिस प्रकार इन ऐतिहासिक प्रबन्धो म पौराणिकता एव ग्रलौकिकता के दशन होते ह उसी प्रकार ग्रपभ्र श के चरित-काव्यो मे भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। जिस प्रकार इन प्रबन्धो मे चरित नायक को ग्रवतारी रूप दिया गया है, उसी प्रकार उन चरित-काव्यो के नायक के भी महत्व की प्रतिष्ठा की गई है। इस प्रकार इन दोनो के रूपो म बेहद समानता है, यह दूसरी बात है कि इनकी चेतना उनसे भिन्न है। 'वचित्र नाटक' 'हनुमान नाटक' (हृदयराम) से प्रभावित दीख पडता है, क्योंकि यह भी उसकी भाति प्रबन्ध रचना ही है। नाटक के तत्वो का दोनो म ग्रभाव है। नाटक का ग्रथ यहा 'लीला' हो सकता है। बहुत सम्भव है यह काव्यरूप ग्रपभ्र श के 'रूपक' का (जो एक प्रकार के चरित काव्य ही होते थे) ही ग्रनुकरण रहा हो। हाँ ग्रात्म-कथात्मक शली म लिखे जाने के कारण उसकी एक विशिष्टता है, जो ग्रयत्र दुलभ है। दशमग्रथ' मे कुछ 'पख्यान चरित' भी ग्राए हैं। भारत मे वैदिक काल स ग्रनेक 'उपाख्यान प्रचलित रहे है। 'महाभारत' मे 'शकुन्तलो पाख्यान, मत्स्योपाख्यान, नलोपाख्यान, शिविउपाख्यान इत्यादि ग्रनेक उपाख्यान ग्राए हैं। बाद के जातक साहित्य मे तथा ग्रपभ्र श मे भी ऐसे उपाख्यानो का प्राचुय रहा है। हिन्दी मे सूफिया ग्रौर ग्रनेक दूसरे कवियो ने प्रेम प्रधान ग्राख्यान भी लिखे हैं इनम कुछ ऐसे भी हैं जिनम ग्राध्यात्मिक भावो की व्यजना हुई है। यह परम्परा 'तुलसी के समय मे भी जीवित थी इसका निदेश मानस' मे हुग्रा है। 'दशमग्रथ के 'पख्यान' इसी परम्परा के सूचक हैं। मैं यहा यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हू कि वैज्ञानिक दृष्टि से उनका ग्रध्ययन किया जाए तो उनमे कोई ऐसी चीज नही मिलेगी जिसस गुरु जी के चरित्र को क्षति पहुचे।

हिन्दी भाषा एवं गाथा ने बहुत सी सामग्री ली है। पंजाब में भी रासो-साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। कुछ दरबार में रासो साहित्य लिखी अवश्य गई होगी पर वे अब उपलब्ध नहीं हैं। 'गुरु विलास' में और अन्यान्य के बाद में कवि ने लिखा है [illegible] वाणी पूर्ण हुई जिससे इस काव्य रूप का आभास मिल जाता है। [illegible] रचना तो [illegible] की [illegible] है। दशमग्रंथ के छन्द उसी के अनुरूप हैं। गीतिकाव्य में आकर लोक कवि एवं गायकों ने मुक्तक काव्य रचना करने की परम्परा को प्रोत्साहन दिया। शृंगार विषयक पदों के लिए तो गवैया [illegible] कोई और छन्द उपयुक्त ही नहीं समझा जाता था। दशमग्रंथ में कवित्त और सवैये तो बहुत आए हैं पर वे प्रबन्ध रचनाओं में ही प्रयुक्त हैं। श्रीगुरुदास [illegible] सवयों का मुक्तक रचना की दृष्टि से उल्लेख किया जा सकता है। इन्हीं कवित्तों का अधिकांश रचना इसी शैली में लिखी गई है। उनके कवित्त और सवैयों में बहुत से सुन्दर मुक्तकों की रचना की है। यह दूसरी बात है कि उन्होंने सवय का प्रयोग बारह रंग के लिए ही अधिक किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उस युग में प्रचलित हिन्दी के चरित (प्रबन्ध) एवं (छंद) गाथा, पम्यान, मुक्तक तथा पंजाबी की बार एवं वारताओं की भाँति प्राय सभी काव्य रूपों का [illegible] साहित्य में सफल प्रयोग हुआ है। इसमें नहीं समझना कि अन्य किसी एक स्थान पर एक दरबार में या एक व्यक्ति के सहयोग में काव्य के इतने रूपों पर साहित्य सृजन का कार्य हुआ है।

छन्द-योजना

इस साहित्य की एक और उपलब्धि छन्द-योजना से सम्बन्धित है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने रासो साहित्य विमर्श में 'रासो' काव्यों की दो परम्पराओं का उल्लेख किया है। एक छन्द-वविध्य वाली परम्परा और दूसरी ऐसी जिसमें केवल एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। पृथ्वीराज रासो प्रथम परम्परा का प्रतिनिधि काव्य है। 'रामचन्द्रिका' (केशव) में इस पद्धति का और अधिक विकास हुआ, क्योंकि इसमें १०० से अधिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। 'दशमग्रंथ' भी इसी परम्परा का ग्रंथ है जिसमें छन्द-वविध्य के दर्शन होते हैं। उसमें लगभग १३५ छन्दों का प्रयोग हुआ है जिनमें से अधिकतर ऐसे हैं जो इससे पूर्व केवल 'रामचन्द्रिका' में ही प्रयुक्त हुए हैं।

हिंदी के अधिकतर मध्ययुगीन प्रबन्धकाव्यों में दोहा चौपाई पद्धति को अपनाया गया है। जायसी का 'पद्मावत' एवं तुलसी का 'रामचरितमानस' इस पद्धति में रचित प्रमुख प्रबन्ध-काव्य हैं। हिंदी में इस पद्धति का प्रयोग

प्राय अवधी म रचित काव्य ग्रयो मे हुआ है । नन्ददास ने चौपाई के स्थान पर चौपई रख कर ब्रजभाषा के लिए इस पद्धति का प्रयोग किया, परन्तु उन्हे पूर्ण सफलता नही मिल सकी । यहा यह तथ्य उल्लेखनीय है कि 'दशमग्रंथ' की अवतार कथाओ म ही छन्द वैविध्य अधिक है शेष प्रबन्धात्मक रचनाओ म दोहा चौपई पद्धति का सफल प्रयोग हुआ है । यद्यपि बीच-बीच मे अरिल्ल, पद्धरि, रसावल, मधुभार, भुजगप्रयात, तोमर, तोटक कवित्त, सवैया, छप्पय, रुआल नराज सोरठा आदि १८ २० छन्द और आए हैं । 'गुरु शोभा, 'जगनामा गुर गोविंदसिंह' तथा 'गुर बिलास' की भी यही प्रमुख पद्धति है, यद्यपि इन सभी काव्य ग्रथो म दोहा अरिल, दोहा पद्धरि, दोहा भुजगप्रयात, दोहा रसावल आदि कुछ नवीन छन्द-पद्धतियो का भी प्रयोग हुआ है । कही कही अनियमित रूप से चौपई, रुआल अथवा सवैय आदि के साथ क्रमश रसावल, सवया, चौपाई आदि भी प्रयुक्त हुए है । पजाब म जो भी प्रबन्धकाव्य बाद मे लिखे गये प्राय उन सभी म (गुरु नानकविजय को छोडकर) छन्द पद्धति के इसी आदर्श को ग्रहण किया गया है[1] । चौपाई और चौपई का इन ग्रथो म भेद स्पष्ट नही है ।[2]

रीतिकाल मे प्रमुख छद-पद्धति कवित्त और सवैयो की थी जो मुक्तक रूप मे प्रयुक्त होते थे । यहा ये दोनो छद वर्णिक रूप म ही प्रयुक्त हुए हैं । आनदपुरीय साहित्य म भी इन छदो का खुलकर प्रयोग हुआ है, यद्यपि प्रधानता दोहा, चौपई अरिल, पद्धरि आदि मात्रिक छदो की है । दशमग्रथ' के १८००० छदो म ५५५५ चौपई, ३१४७ दोहे एव २२५२ सवये है । दूसरे, उन दोनो छदो का यहा प्रबध रचनाओ मे भी सफल प्रयोग हुआ है जबकि इन्हे इस प्रकार के प्रबध प्रयोग के लिए अनुपयुक्त समझा जाता था । तीसरे, इस साहित्य म सवये का मात्रिक रूप म अधिक प्रयोग हुआ है जबकि हिंदी के अन्य कवियो न इसका वर्णिक रूप ही अपनाया है । इस साहित्य मे सवये के कोई ३६ भेदो को प्रयोग मे लाया गया है, जिनमे से ७ भेद मात्रिक सवये के हैं[3] । कवित्तो के भी अनेक भेदो का उपयोग किया गया है ।

इस साहित्य मे हिंदी के ही नही सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, फारसी एव पजाबी के भी बहुत से छदो का प्रयोग हुआ है । फारसी की बहरे मुतकारिब सम्मन मक्सूर महजूफ का 'जफरनामे' मे एव पजाबी के सिरखडी छद का 'वार

---

१ विस्तार के लिए देखिए लेखक का शोध प्रबध 'गुरु प्रताप सूरज के काव्य पक्ष का अध्ययन', अध्याय ६ ।

२ वही पृ० १५३ ५४ ।

३ देखिए 'गुरु शब्द रत्नाकर' पृ० ५१८ ८२२ (कान्हसिंह)

भगवती' मे सफल प्रयोग हुआ है। यहा यद्यपि इन छन्दो का प्रयोग उन्ही भाषाओ के काव्य के लिए हुआ है, जिनके ये छद है, परतु पजाब के परवर्ती हिंदी साहित्य मे यही से प्रभाव ग्रहण कर इन छदा का प्रयोग हिन्दी रचना के लिए भी हुआ है। भाई सतोखसिंह ने गुर प्रताप सूरज[1] मे इनदोनो का सफल प्रयोग किया है। आदिग्रथ' के आधार पर पउडी एव शब्द का तथा हिंदवी की शली म 'रेखता' का भी आनन्दपुरी कविया न प्रयोग किया है इस प्रकार हम देखते है कि आनदपुर के इस साहित्य म उस युग की हिंदी,पजाबी तथा फारसी की सभी प्रमुख छद पद्धतिया का सफल निर्वाह हुआ है।

इसके अतिरिक्त इस साहित्य म छोटे से छोटे (एकाक्षरी चाचरी) एव बडे से बडे छद को प्रयोग म लाया गया है और इन छदा का चयन भाव भाषा एव प्रसग के अनुकूल हुआ है। वस्तुत, दशमग्रथ तथा गुर दरबार के अन्य कवियो की यह एक बडी भारी विशेषता रही है कि इन्होने छदा का प्रयोग भाव रस प्रसग अथवा भाषा के ही अनुरूप किया है। छन्द वविध्य एव छद परिवतन युद्ध वणन म ही अधिक है, क्योकि इसस युद्ध का गतिपूण चित्रण करने मे उन्हे सफलता मिली है। युद्ध का प्रचड एव भीषण वातावरण प्रस्तुत करने के लिए क्षिप्रगति छदो का प्रयोग किया गया है।

इस साहित्य म प्रयुक्त छदो की एक और विशेषता है सगीत छदा की, जिनसे अनुकूल ध्वनि उत्पन्न करके भाव अथवा प्रसग के अनुरूप वातावरण की सृष्टि की गई है। भाव व्यजना की समथता के लिए त्रिडका त्रिणण्णिा, त्रिगदा, भडथुआ आदि छद 'दशमग्रथ के कुछ विशिष्ट छद है[2]।

दशमग्रथ के छद प्रयोग की कुशलता की विद्वानो ने भूरि भूरि प्रशसा की है।

भाषा शैली

इस साहित्य मे प्रयुक्त भाषा एव शली की भी कुछ निजी विशेषताएँ एव गुण हैं। इन कवियो ने भाव, प्रसग, पात्र एव विषय के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया है और अपनी शली म भी उसी के अनुकूल गाम्भीय ओज मधुरता अथवा सहजता आदि गुणा का समावेश किया है। उसमे प्रेषणीयता की अदभुत क्षमता है। वस्तुत, इन कवियो का भाषा पर पूरा अधिकार था और वे भावो

---

१ देखिए—गुर प्रताप सूरज के काव्य पक्ष का अध्ययन—लेखक

(पृ० २०१ २१०)

के कुशल चित्रकार थे। उन्होंने अपने भाषा-सामर्थ्य को विभिन्न भाषाओं के शब्दों के उपयुक्त चयन द्वारा प्रकट किया है। एक एक शब्द भाव-व्यंजक एवं चित्र विधायक है। युद्ध प्रसंग में ध्वन्यात्मक एवं संगीतात्मक शब्दों का प्रयोग भी उनके भाषा-वैशिष्ट्य का परिचायक है। इन कवियों की भाषा और शैली ही पंजाब के परवर्ती कवियों के लिए आदर्श भाषा बनी, इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता।

उपसंहार

आनन्दपुर दरबार का बहुत सा साहित्य आज उपलब्ध नहीं है, पर जो कुछ भी आज प्राप्त है, उसके आधार पर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह अत्यन्त समृद्ध, सम्पन्न एवं उत्कृष्ट साहित्य है। हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं की धरोहर के रूप में ऐतिहासिक तथ्यों की प्रामाणिकता के लिए विभिन्न काव्य रूपों, विविध छन्द-पद्धतियों एवं सहज सम्प्रेषणीय शैली की दृष्टि से एक अनुपम साहित्य निधि है और हिंदी साहित्य को इन कवियों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। परिमाण तथा काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से ही नहीं, उसमें स्पंदित होने वाली चेतना के कारण भी इस साहित्य का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इस साहित्य की विषयगत कलात्मक एवं प्रवृत्त्यमूलक कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, कि उसे एक 'स्कूल' की संज्ञा दी जा सकती है। पंजाब में जो भी साहित्य बाद में लिखा गया उस पर किसी न किसी रूप में इस स्कूल की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। परवर्ती कवियों ने इस साहित्य से कथा-सामग्री प्रेरणा और प्रोत्साहन ही नहीं प्राप्त किया वरन् उस चेतना का भी अनुकरण किया, जो इसमें स्पंदित है। 'महिमा प्रकाश' 'गुरुनानक विजय' 'गुरु प्रताप सूरज' 'श्री नानक प्रकाश' जैसे महत्वपूर्ण महाकाव्य इस प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। ये ग्रंथ अनेक दृष्टियों से आनन्दपुरीय साहित्य के ऋणी हैं।

यह साहित्य इतना समृद्ध, अनुभूतिपूर्ण एवं विद्वत्तापूर्ण है कि इसके सामने रहते हिंदी साहित्य के इस काल को 'रीतिकाल', 'शृंगारकाल' अथवा 'अलंकार काल' नाम देना सर्वथा असंगत है। वस्तुतः हमें इस जीवंत साहित्य को सामने रख कर इस युग के हिन्दी साहित्य का पुनः मूल्यांकन करना चाहिए। इस साहित्य के योगदान की उपेक्षा करके हिन्दी साहित्य का जो भी चित्र बनेगा, वह अधूरा एवं अपूर्ण ही होगा। इस साहित्य के योगदान से हिन्दी साहित्य का इतिहास और समृद्ध एवं सम्पन्न होगा।

इस समय आवश्यकता इस बात की है कि साहित्य मिल नहीं रहा है जो उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए जो उपलब्ध है उसका वैज्ञानिक रीति से सम्पादन होना चाहिए। उसका हिन्दी में लिप्यान्तर होना चाहिए तथा उस पर शोधकार्य होना चाहिए।

४

'दशमग्रंथ' की वीररसात्मक रचनाओं का स्वरूप

पंजाब में वीर-काव्य की एक दीर्घ परम्परा रही है। यहां की युद्धमान परिस्थितियां इसे विकसित करती रही हैं और ये वीर-गाथाएं वीरों के गौरव को उत्तेजित करती रही हैं, गुरु गोविन्दसिंह के समय में यहां वार-कथाएं वारों के रूप में प्रचलित थीं लोकजीवन में विजयदशमी आदि के पर्व पर भी रामायण जैसी वीर कथाओं का गायन उत्साह से किया जाता था। शालिवाहन की वीर-कथाएं भी लोकगीतों के माध्यम से अत्यन्त लोकप्रिय थीं। औरंगज़ेब के अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध जो विद्रोह भावना पंजाब में जन्म ले रही थी उसने इस वीरकाव्य परम्परा को नया जीवन दिया और गुरु गोविन्दसिंह ने अपने अनुयायियों में वीरता उत्साह साहस एवं दृढ़ता का संचार करने के लिए इसका पूरा सदुपयोग किया।

गुरुगोविन्दसिंह परम संत साहसी शूरवीर मननशील चिंतक साहित्य मर्मज्ञ एवं राष्ट्रनायक थे। वे स्वयं प्रतिभाशाली कवि थे और उनके काव्य प्रेम से आकर्षित होकर कितने ही कवि उनके आश्रय में रहते लगे थे।

दशम ग्रन्थ युग चेतना से अनुप्राणित एवं प्राणवान ग्रन्थ है। इसमें अनेक रचनाएँ संकलित हैं। कुछ विद्वान तो सम्पूर्ण दशमग्रंथ को ही गुरु गोविन्द सिंह की कृति मानते हैं जबकि अधिकतर विद्वान 'जापु' अकाल उस्तति', 'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) आदि कुछ कृतियों को छोड़कर ग्रन्थ को उनके दरबारी कवियों की रचना मानते हैं परन्तु यह अगर मान भी लिया जाए, कि ये सभी रचनाएं दशमगुरु कृत नहीं हैं तो भी यह मानना पड़ेगा कि इन सभी पर उनकी स्वीकृति की मुहर लगी हुई है। उन्होंने जिस प्राणवान सांस्कृतिक चेतना स्वातंत्र्य भावना राष्ट्रीय-स्वाभिमान एवं धर्म रक्षा का भाव पंजाब के जन जीवन में जागृत किया था उससे सम्पूर्ण 'दशम ग्रन्थ' आन्दोलित है।

मोटे तौर पर 'दशमग्रंथ' में संकलित रचनाओं को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) भक्ति प्रधान एवं आध्यात्मिक विचारों से युक्त रचनाएं—जापु, अकाल उस्तति, ज्ञान प्रबोध, श्री मुखवाक् सवैये—आदि

(ख) वीर रसात्मक रचनाएँ—विचित्र नाटक (अपनी कथा), चौबीस अवतार कथाएँ, चण्डी चरित्र उक्ति विलास, चण्डी चरित्र द्वितीय, चण्डी दी वार (पंजाबी) एवं शस्त्रनाम माला।

(ग) पख्यान चरित्र—जिनमें नारी के प्रेम, शौर्य और प्रवंचना का विशद वर्णन करते हुए उसके चरित्र का उद्घाटन किया गया है। ✓

इनमें दूसरे वर्ग की रचनाएँ तो वीर-रस प्रधान हैं, ही प्रथम वर्ग की रचनाओं में भी कवि की वीर प्रवृत्ति का आभास मिलता है। 'अकाल उस्तति' में ब्रह्म का उन्होंने 'सर्वलोह' के रूप में स्मरण किया है और उसके असुर संहारक दुष्ट विदारक क्रूर-कर्मी रूप की भी वंदना की है। २० छन्दों में शक्ति स्वरूपा चण्डी की भी स्तुति की गई है और पंजाब की जनता को शक्ति का ऐसा संदेश दिया है, जिसने उनके जीवन में नये उत्साह का संचार किया। 'ज्ञान प्रबोध' में भी अश्वमेध-यज्ञ के प्रसंग में तथा जनमेजय के पुत्रों के युद्धों का ओजस्वी वर्णन किया गया है।[1] इन युद्धों का कारण भी शासकों की विलासिता अहंकार और प्रजा के प्रति विमुखता कहा गया है, जिसके द्वारा कवि ने अपने युग के अत्याचारी और अन्यायी शासकों के विनाश की आवश्यकता की ओर संकेत किया है। इन युद्धों के कारण पर प्रकाश डालते हुए कवि लिखता है—

उन दल दुहू भाइन को भाजा। ठाढ न सकियो रंचु अरु राजा।
मद करि मत्त भए जे राजा। तिनके गए एस ही काजा।
छीन छान छित छित्र फिराया। महाराज आप ही बहायो।

इन मदमत्त दैत्यों के विनाश के लिए ही युद्ध हुए। ज्ञान प्रबोध' के अन्त में इस ओर संकेत करते हुए वह लिखते हैं—

तसे ही मख कीजिए सुनि राज राज प्रचंड।
जीति दानव देस के बलवान पुरख अखण्ड।
तसे ही मख मार के सिरि इन्द्र छत्र फिराई।
जैसे सुर सुखु पाइओ तिब सन्त होई सहाई ३६६।

असुर विनाश की यही भावना उनके सम्पूर्ण वीर काव्य में परिव्याप्त है। इन युद्ध-वर्णनों में कवि ने दोनों पक्षों के योद्धाओं की वीरता का चित्रण किया है।[2]

---

१ ज्ञान प्रबोध २४५—२६६।
२ ज्ञान प्रबोध २२५—२३५

इसी प्रकार 'पख्यान चरित्र' मे भी अनेक स्थलो पर शौर्य प्रदर्शन के साथ उत्साह की व्यजना हुई है।

वस्तुत, 'दशम ग्रन्थ' की भक्ति भावना भी बहुत पुष्ट है, तथापि उसका मुख्य स्वर वीरता का है और उसका अधिक अश युद्ध वर्णनो से पूर्ण है।

सिक्खमत मूलत आध्यात्मिक आन्दोलन था परन्तु गुरु गोविन्दसिंह को वीर आचरण अपनाना पडा, इसका उत्तरदायित्व उस युग की परिस्थितियो पर है। जिस समय गुरु गोविन्दसिंह का प्रादुर्भाव हुआ, देश अत्यन्त दयनीय स्थिति से गुजर रहा था। इस समय औरगजेब सत्तारूढ था उससे पूर्व के मुगल शासक कुछ धर्म सहिष्णु एव उदार थे। विशेष रूप से अकबर ने धर्म स्वातन्त्र्य एव निरपेक्षता की नीति को अपनाया था और इसीलिए वह राजपूत शक्ति को अपने साथ मिलाने मे सफल भी रहा था परन्तु औरगजेब की धर्मान्धता असहिष्णुता आतक और अत्याचार से हिन्दू जनता त्रस्त और पद-दलित थी। निर्बल और असहाय बने भारतीयो को अपमान और अवमानना का जीवन व्यतीत करना पड रहा था। या इस्लाम कबूलो या पराधीनता की कटुता झेलो। इस शोषण और दमन के विरुद्ध दक्षिण मे सिरजा शिवाजी के नेतृत्व मे मराठो ने और पजाब मे गुरु गोविन्दसिंह के नेतृत्व मे सिक्खो ने एक शक्तिशाली विद्रोहात्मक स्वातन्त्र्य आन्दोलन का सूत्रपात किया। गुरु गोविन्दसिंह ने शाही फरमान की कोई चिन्ता न करते हुए अपना झण्डा लहरा कर और धौंसे की धुँकार से स्वतन्त्रता और विद्रोह की घोषणा कर दी। उन दिनो कोई भी हिन्दू अपना झण्डा नही लहरा सकता था और न ही धौंसा बजा सकता था। शिवाजी का विरोध मुख्यत राजनैतिक था जबकि गुरु गोविन्दसिंह सास्कृतिक एव राजनैतिक (सैनिक) दोनो मोर्चो पर लड रहे थे। हिन्दू धर्म की रक्षार्थ गुरु गोविन्दसिंह के पिता श्री गुरु तेगबहादुर अपना बलिदान दे चुके थे, परन्तु उनके शातिपूर्ण बलिदान से क्रूर मुगल शासक जरा भी नही पसीजा इसलिए विवश होकर गुरु गोविन्दसिंह को तलवार का आश्रय लेना पडा और उन्होने 'खालसा' पथ की स्थापना की। स्वय खड्ग धारण करके उन्होने चण्डी स्वरूपा भारत की सुप्त वीर शक्ति का आह्वान किया। परिणाम-स्वरूप यवनो से उन्हे कई युद्ध करने पडे जिनका वर्णन उन्होने 'विचित्र नाटक' मे किया है।

इस समय हिन्दुओ की भारी धार्मिक अवस्था भी दयनीय थी। शास्त्र सिद्धान्त नाना मतो के सघर्ष के कारण जर्जरित था। साधारण जनता अनेक मत-मतान्तरो के चक्कर मे फंसी हुई मिथ्याचार बाह्याडम्बर एव पाखण्डपूर्ण साधनाओ को ही वास्तविक धर्म समझने लगी थी और जाति पाँति एव वर्ण भेद के कारण से उत्पन्न हुए वे पृथक् खान-पान और रहन-सहन

को भी धर्म का मुख्य अंग मानते थे। जब गुरु गोविन्दसिंह ने 'खालसा' की स्थापना की और धर्म योद्धा के उत्साह से जाति पाति, एवं वर्ण-वर्ग भेद का खंडन करते हुए सब की समानता की घोषणा की तो पहाड़ी राजाओं ने उन्हें धर्म विरोधी करार दिया और उनके विरुद्ध औरंगजेब से शिकायत करने लगे। वास्तव में वे गुरु जी के बढ़ते हुए प्रभाव से भयभीत होने के कारण औरंगजेब की सहायता से उनके दमन का कुचक्र रच रहे थे। कुछ पूर्व गुरुओं के विरुद्ध भी उस प्रकार के आरोप लगाए गए थे, परन्तु पूर्ववर्ती मुगल शासकों ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया था। औरंगजेब स्वयं उस सुअवसर की खोज में था, इसलिए उसने सहर्ष पहाड़ी राजाओं को सहायता देना स्वीकार कर लिया। इस संयुक्त मोरचे के विरुद्ध लड़ने के लिए गुरु जी ने अपने अनुयायियों को संगठित करना आरम्भ किया और उनमें धर्म युद्ध का उत्साह उत्पन्न करने के लिए अपनी काव्य शक्ति का भी पूरा उपयोग किया। 'दशमग्रन्थ' उसी मंगलमय अभियान का एक अंग है। वह धर्म-योद्धाओं का प्रेरणा स्रोत है। यह भक्ति-काल एवं वीरगाथाकाल की साहित्यिक परम्पराओं एवं प्रवृत्तियों का प्रतिनिधि काव्य ग्रंथ है और पंजाब की उस युग चेतना को ध्वनित करता है जब संत-योद्धा गुरुगोविन्दसिंह राष्ट्र और धर्म की रक्षा, स्वतन्त्रता एवं स्वाभिमान के लिए जन साधारण को जागृत एवं उत्साहित कर रहे थे।

दशमग्रन्थ' में दो प्रकार की वीर रचनाएं उपलब्ध हैं—एक ऐतिहासिक प्रबंध के रूप में, जैसे 'बिचित्र नाटक' (अपनी कथा) और दूसरी पौराणिक प्रबंधों के रूप में जैसे चौबीस अवतार,' चण्डी चरित्र उक्ति बिलास' एवं चण्डी चरित्र द्वितीय'।

१ बिचित्र नाटक

अपनी कथा—गुरु गोविन्दसिंह द्वारा चरित-काव्य शैली में रचित यह एक ऐसा वीर-काव्य है, जिसमें किसी देवी-देवता या अन्य वीर पुरुष के चरित्र में अनेक अतिमानवीय, अलौकिक अथवा चमत्कारपूर्ण घटनाओं का समावेश करके उसकी वीरता, शौर्य, दृढ़ता साहस पौरुष आदि गुणों की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा नहीं की गई वरन् यह गुरुजी के अपने जीवन से सम्बन्धित है और उसमें 'आत्मकथा की सी सरलता, यथार्थता एवं सहजता है। तटस्थ आत्म निरीक्षण, एवं प्रभावपूर्ण आत्माभिव्यक्ति की दृष्टि से यह एक आदर्श उत्कृष्ट एवं विशिष्ट रचना है। यह अत्यन्त विश्वासपूर्ण दृढ स्वच्छ एवं आकर्षक शैली में रचित मनोहर आत्मकथा है। मध्यकालीन हिंदी साहित्य में इस प्रकार का साहसिक एवं ओजस्वी पद्यात्मक आत्मकथा दुर्लभ है। परन्तु इस रचना का उद्देश्य केवल मात्र आत्म अभिव्यक्ति अथवा आत्म प्रकाशन नहीं है, आत्म विज्ञापन तो बिल्कुल

नही। शहीद के पुत्र और शहीदो के पिता सत-योद्धा गुरु गोविन्दसिंह ने इस काव्य ग्रन्थ की रचना भी असहाय एवं निराश हिन्दू जनता मे जातीय स्वाभिमान, राष्ट्र प्रेम एवं धर्म रक्षा के उच्च भावो को जाग्रत एव उत्तेजित करने के महान उद्देश्य से ही की है।

इस धरातल पर अपने आगमन के उद्देश्य की ओर सकेत करते हुए व लिखते है कि मुझे गुरुदेव ने धर्म-स्थापन के लिए भेजा है और कहा है कि जहाँ जहाँ दुष्टो को देखो उन्हें मार गिराओ।[1] वे हिन्दुओ के मन मे यह बात बिठाना चाहते थे कि वे यवनो के अन्याय और अत्याचारो से उनका उद्धार करने के लिए ही यहा आए हैं और जो इस धर्म-युद्ध मे उनका साथ देगा, (वह ईश-कार्य मे योग दान देने के फलस्वरूप) ब्रह्म लोक को प्राप्त करेगा। उन्होने यह भी स्पष्ट कहा कि जो कोई भी किसी लोभ या मुगलो के भय से अन्याय और अधर्म के विरुद्ध लडने से विमुख होकर उनका साथ छोडकर जाएगा, वह अपने दोनो लोको को खराब करेगा। यहा उसका मुह काला होगा।[2] मुगल भी उसकी दुर्दशा करेंगे[3] तथा उसका परलोक भी बिगडेगा। ऐसे कायरो की उन्होने भर्त्सना की है और उन्हें सचेत भी किया है कि एक बार साथ छोड देने पर फिर वे उनकी रक्षा नही करेंगे[4] भले ही उन्हें मुगल लूटें या अपमान करके अन्य कष्ट दें।[5] वे उन्ह यह विश्वास भी दिलाते हैं कि जो उनकी शरण म आयेगा वे उसे सच्चा पाहुल (अमृत) प्रदान करेंगे[6] और शत्रु भी उसका कुछ बिगाड नही सकेंगे।[7] इस प्रकार वे अपने योद्धाओ मे उत्साह और साहस के साथ-साथ दृढता, आशा और विश्वास भी पैदा करना चाहते थे। वे यह स्पष्ट कर देना चाहते थे कि वे अपने लिए नही वरन उन्हें ही मुगलो के अन्याय और अत्याचार से मुक्त करने एव देश और धर्म की स्वतन्त्रता के लिए लड रहे है। वे प्रत्येक हिंदू के हृदय म अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की भावना जाग्रत करना चाहते थ। वे चाहते थे कि उनम ऐसा स्वाभिमान जगे कि वे स्वय

---

१ हम इह काज जगत मो आए। धरम हेत गुरुदेव पठाए। जहा जहाँ तुम धरम बिथारो। दुसट दोखयति पकरि पछारो।

(विचित्र नाटक ७ २८)

२ वही १४ २७
३ वही १४ १८
४ विचित्र नाटक १४ ६ ११,
५ वही
६ वही १४ १८
७ वही १४ १२

अन्याय और अनीति के विरुद्ध लड़ें। इसलिए उन्होंने सिक्खों को उन मसन्दों का विरोध करने का आदेश दिया जो उनसे अनुचित कर लेते थे।[1] कहना न होगा कि राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक प्रेम से युक्त ऐसी वीर भावना का इस-युग के अन्य वीर काव्यों में अभाव है।

मध्यकालीन भारत की हिंदू जनता रूढ़ि-ग्रस्त, प्रमाद युक्त आलसी और निरुद्यमी हो चुकी थी। उनके अन्दर एक नई कर्मण्यता एवं कर्मठता पैदा करने की जरूरत थी। ऐसी कर्मण्यता—जो उनमें शक्ति, साहस स्वाभिमान एवं उत्साह का संचार कर सके। 'विचित्र नाटक' में गुरुजी ने इन भावों को जाग्रत करने का स्तुत्य कार्य किया है। परिश्रम का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए उन्होंने लिखा है कि जो हमी में भी परिश्रम, उद्यम करेगा वह सभी सुखों और सिद्धियों को प्राप्त करेगा।[2]

व्यक्तित्व—'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) में गुरु गोविन्दसिंह एक वीर एवं साहसी यशस्वी शूरवीर कुशल सेना संचालक, राष्ट्र प्रेमी, धर्म रक्षक, दुष्ट संहारक, सत-उद्धारक निर्भीक, पराक्रमी दृढ़ निश्चयी, आशावादी आस्थावान एवं विनम्र राष्ट्रनायक के रूप में सामने आते हैं और देश और धर्म की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर दिखाई देते हैं। वे एक महान अभियान का संगठन और संचालन करने में समर्थ हैं। उनमें औदार्य भी है और साहस भी उत्साह भी है और विनम्रता भी। वे गजनवी और चंगेजखाँ की भाँति शक्ति संचित कर अत्याचार और अन्यायपूर्ण राज भोग करने वाले योद्धा नहीं हैं वरन वे शक्ति संगठन ही अत्याचार और अन्याय का विनाश करने के लिए करते है। बाह्याचारों पाखंडों एवं जाति-पाति भेद के कट्टर विरोधी और अकाल-पुरुष के सच्चे सेवक और भक्त हैं। वस्तुतः यहाँ वे एक सत-योद्धा के रूप में प्रकट हुए हैं।

रचना सौष्ठव—इस रचना में कुल १४ अध्याय हैं। जिनमें से आठ में युद्ध वर्णन है। रचना की उदात्त वीर प्रवृत्ति का परिचय आरम्भ में ही मिल जाता है जब कवि अधर्मी और अत्याचारी शत्रु की विनाशक खड्ग की वंदना इस प्रकार करता है—

> खग खंड विहंड खल दल खंड अति रण मंड बखंड।
> *भुज दंड अखंड तेज प्रचण्ड ज्योति अमंड भान प्रभं।*
> सुख संता करणं दुरमत दरणं किलविख हरणं अस सरणं।
> जै जै जग कारण स्रिसट उबारन मम प्रतिपारन जै तेगं।१२।

१ बिचित्र नाटक, १४ १२
२ वही, १४ १५

अर्थात तलवार टुकड़े अच्छी तरह करती है, दुष्टों के समूह के टुकड़े करती है, युद्ध को बहुत सुन्दर बना देती है ऐसी बलवान है। न टूटने वाला हाथ का डंडा है। बहुत तीक्ष्ण तेज वाली है। इसकी ज्योति सूर्य प्रभा को शोभाहीन कर देती है। यह तलवार संतों को सुखी करने वाली दुष्टों को नष्ट करने वाली पापों का नाश करने वाली है, यह मेरा आश्रय है जगत की कारण सृष्टि की पालक, मेरा प्रतिपालन करने वाली है। ए खडग तेरी जय हो[1]। वस्तुतः यह खडग ही उनकी उद्देश्य पूर्ति का मुख्य साधन है। इसी तरह दुष्ट विनाशक संतो की रक्षक एवं धर्म संस्थापक कृपाण कटार तीर तुफंग, गदा ग्रिसट सहथी आदि अस्त्र शस्त्रों को भी नमस्कार किया गया है।[2] कवि ने 'अकाल पुरख' की भी बाणपाणि चक्रपाणि (१८६-८६) कह कर वंदना की है और उनके दुष्ट विनाशक असुर संहारक, संत रक्षक वीर रसात्मक रूप का वर्णन किया है।

कथानक—कथानक का आरम्भ गुरु जी की पूर्व जन्म की कथा से होता है जिसमें वे अपने इहलोक में आगमन के उद्देश्य की ओर भी संकेत कर देते हैं। बीच में लव कुश की संतानों के युद्धों का भी ओजस्वी चित्रण किया गया है। गुरु जी ने अपने सोढी वंश का सम्बन्ध सूर्य वंश से स्थापित किया है जिससे उनके वीर चरित्र का ही परिचय मिलता है। युग की धार्मिक स्थिति का चित्रण करके उस युग में प्रचलित आडम्बरपूर्ण धार्मिक आचारों का खंडन करने के जिस उद्देश्य की ओर कवि ने संकेत किया है वह इस ग्रंथ की वीर भावना की पृष्ठभूमि का कार्य करता है। ऐसी धार्मिक प्रेरणा से उत्तेजित वीर भावना का इस युग के अन्य वीर काव्यों में सर्वथा अभाव है।

इस रचना में गुरु गोबिन्दसिंह का सम्पूर्ण जीवन वृत्त चित्रित नहीं है। अकाल स्तुति वंश-वर्णन तथा पूर्व जन्म एवं इस जन्म की संक्षिप्त कथा के पश्चात उन्होंने भगाणी नादौन खानजादा तथा हुसैनी युद्ध का वर्णन किया है। आनन्दपुर तथा चमकौर जैसे प्रसिद्ध युद्धों का इसमें उल्लेख भी नहीं है जिससे विदित होता है कि इस ग्रंथ की रचना इन युद्धों के घटित होने से पूर्व ही हो चुकी थी।

युद्ध कथाएँ—गुरु गद्दी पर बैठने के बाद उन्होंने धर्म प्रचार का कार्य आरम्भ किया परन्तु कुछ समय पश्चात वे आनन्दपुर छोड़कर कालिन्दी तट पर

---

१ रामावतार में भी दुष्ट विनाशक खडग की प्रशंसा में एक ऐसा ही छन्द आया है—रामावतार ५८८

२ विचित्र नाटक १८८।

पऊँटे के स्थान पर जा बसे और निकट के घने वनो म सिंह रीछ आदि का शिकार भी करने लगे। वहाँ बिना किसी कारण के श्रीनगर (गढवाल) के पहाडी राजा फतेशाह न उन पर आक्रमण कर दिया,[१] जिसका उन्होंने डट कर मुकाबला किया। यहा कवि ने दोनो पक्षो के प्रमुख वीरो के नामो का उल्लेख करते हुए उनके शौर्य की प्रशसा की है और उनके प्रहार प्रतिप्रहार एव भिडन्त का अत्यन्त सजीव एव ओजस्वी चित्रण किया है। उदाहरण स्वरूप महन्त कृपाल तथा नद चद आदि के युद्ध का वर्णन देखिए उन्होंने कितना भव्य किया है। वे कहते हैं कि कृपाल न क्रोधित होकर कुतका उठाई और हठी शूरवीर हयातखा के सिर पर दे मारी। उसके सिर म से मिझ की छीटे इतनी जोर से निकली, जसे कृष्ण द्वारा मक्खन की मटकी फाड देने पर मक्खन के छीटे उठे हो। उसी समय नदचद भी बहुत क्रोधित हुआ और उसन नजावनखा को बरछी मारीऔर साथ ही तलवार खीच ली। वह तीखी तलवार युद्ध करते करते टूट गई। तलवार के टूट जान पर उसने कटार निकाल ली। उस शूरवीर ने सोढी वश की लाज रख ली। कृपालदास का क्रोध भी भडक उठा, क्रोध म भरे उस शूरवीर ने भी घमासान युद्ध किया। उस वीर न अपने शरीर पर अनेक तीर सहे और अपने तीखे बाणो से बाके खानो के तीक्ष्ण घोडो को खाली कर दिया। साहब चद ने भी अनेक खानो का बध किया और बाकी बचे जान बचाकर भाग गए —

> क्रिपाल कापीय कुतका सभारी। हठी खान हयात के सीस भारी।
> उठी छिच्छि इच्छ कढा मेझ जोर। मनो माखन मटकी कान्ह फोर।७।
> तहा नद चद कीयो कोपु भारो। नगाइ बरछी क्रिपाण सभारो।
> तुटी तेग त्रिक्खी कढे जमदढ। हठी राखीय लज्ज बस सनढ।८।
> तहा मातलेय क्रिपाल क्रुद्ध। छकिया छोभ छत्री कर्यो जुद्ध सुद्ध।
> सहे देह आप महावीर बाण। करो खान बानीन खाली पलाण।९।
> हठिया साहब चद खेत खत्रियाण। हने खान खूनी खुरासान मान।
> तहा वीर बके भली भाति मार। बच प्राण लेकै सिपाही सिधार।१०।
>
> (८ १०)

कितना सजीव यथार्थ और ओजस्वी चित्रण है। नि सदेह कवि ने स्वय अपनी आखो से देखकर युद्ध की प्रत्येक घटना का यथार्थ चित्रण किया है।

---

१ इस युद्ध का कारण यह था कि गुरु जी के पास एक सफेद हाथी और तबू था जिन्हे फतेशाह ने अपने पुत्र के विवाह के लिए गुरुजी से आकर मागा था परन्तु गुरु जी न उसकी बदनीयत का सकेत पाकर य वस्तुएँ देने से इकार

योद्धाओं के भाव अनुभाव क्रोध, शस्त्र सञ्चालन, युद्ध-कुशलता घाव-सहन रक्त प्रवाह आदि का सजीव चित्र नेत्रों के सामने आ जाता है। हरीचन्द के क्रोध, दृढ़ता, शस्त्र सञ्चालन एवं प्रतिद्वन्द्वी से युद्ध का भी कवि ने सजीव वर्णन किया है यथा —

अट्टा एक बीर हरीचंद कोप्यो। भली भांति सों खेत मो पाव रोप्यो।
महाक्रोध कै तीर तीखे प्रहारे। लगे जौनि कै ताहि पारे पधारे।।१२।

हरीचंद कुद्धं। हने सूर सुद्धं।
भले बाण बाहं। बडे सन गाहं।।१३।
रसा ... राचं। महा लाह माचं।
हुए सस्त्रधारा। गिरे भूप भारी।।१४।
तबै ... मल्ल। हरीचंद ... भल्ल।
हिदै एक मार्यो। सुखेत ... उतार्यो।।१५।
लगे बीर बाणं। रिसियो तेज माणं।
समूहं बाजदारे। सवरग ... सिधारे।

पुनः ज्वान पूना पुरासान खग्गं। परी समत्र धार उठी आग अग्गं।
भई तीर भीरं कमाणं कडक्के। गिरे बाज ताजी लगे धीर धक्के।।१७।
बजी भर भुकार धुक्के नगारे। दुहू ओर ते बीर बंके बकारे।
करे बाहु आघात ससत्र प्रहारं। डकी डाकणी चावडी चीतकारं।।१८।
दुयं ... खचं दुवजार मारं। बली बार ताजीन ताजी बिदारे।
जिसे बान लागे रहे न समारे। तन बेधि ... ताहि पारे सिधारे।८।२७।

युद्ध की भीषण गति एवं युद्ध की विकरालता एवं भयानकता को प्रकट करने के लिये कवि ने डाकणी, भूत प्रेत, बीर-बेताल आदि के हसने नाचने रक्तपान करने तथा चवी चावडियो, गिद्धो, शृगालो आदि के मास नोचने का भी वर्णन किया है। (वही, ८ १८)। यही नही युद्ध मे सलग्न वीरो की एक एक गति, क्रिया अनुभाव आदि का अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण करके उसका यथार्थ एवं सजीव चित्र अकित किया है। हरीचन्द के अपने साथ हुए युद्ध मे एक-एक करके बाण छोडने एवं उसकी मार का चित्र देखिए—गुरुजी ने किस प्रकार प्रस्तुत किया है—

हरीचंद कोने कमाणं सभारं। प्रथम बाजीयं प्राण बाणं प्रहारं
द्वितीय ताक कै तीर मोको चलायं। रखियो देईव मे कान छ्वै कसिधायं।
त्रितीय बाण मार्यो सुपेटी मझारं। बिधिग्र चिलकत दुआल पारं पधारं।
चुभी चिच चरम कुछ घाइ न आयं। कल केवल जान दास बचायं।।३०।

यहाँ कवि (गुरु जी ने) हरीचन्द के निशानो का ही चित्रण नही किया, वरन् उसके क्रोध, उत्साह, शौर्य आदि को भी प्रकट किया है।

भगाणी की इस युद्ध-कथा मे कवि ने सामरिक विद्या एवं युद्ध-नीति का भी परिचय दिया है। युद्ध मे विजय प्राप्त करके वे उस नगर मे नही रहे आनन्दपुर मे आ बसे और जिन्होने युद्ध मे गुरु जी का साथ नही दिया था, उन सभी को नगर से निकाल दिया। क्योंकि ऐसे व्यक्ति ही भेदियो का काम करके हानि पहुचाते हैं (८ ३६-३८)।

भगाणी के युद्ध मे विजय प्राप्त कर गुरु जी आनन्दपुर पहुचे। इसी समय नादौन के राजा भीमचद पर अलफखा ने आक्रमण किया, जिसमे गुरु जी ने भीमचद की सहायता करके अलफखा को पराजित किया। इस युद्ध का भी उन्होने अत्यन्त वेगपूर्ण एव सजीव चित्रण किया है। दोनो पक्षो के योद्धाओ के नाम बताकर उनकी वीरता की प्रशसा भी की गई है और उनके उत्साह, रणोल्लास[1] प्रहार प्रतिप्रहार[2], अनुभाव[3] आदि के चित्रण के अतिरिक्त युद्ध के कोलाहलमय, विकराल एव भयावह वातावरण[4] को भी प्रस्तुत किया गया है। हरीचद जैसे वीरो का व्यक्तित्व भी खूब उभर कर सामने आता है। सेना के भागने और सधि आदि का भी सक्षिप्त उल्लेख है (९ २२ २३)। फाग के रूप मे युद्ध वर्णन का एक उदाहरण देखिए —

परी मार बुगं छुटी बाण गोली। मनो सूर बैठे भली खेल होली।।१९।
गिरे वीर भूम सर साग पलं। रगे स्रोण बसत मनो फाग खेल।(९ २०)।

इस युद्ध के कुछ समय अनन्तर एक मुगल योद्धा दिलावरखा ने रात के समय गुरु जी पर आक्रमण किया, परन्तु उसे भी हार खानी पडी। रात्रि के इस युद्ध के कुछ उदाहरण देखिए —

---

१ सब वीर बोले हम भी बुलाय। (अपनी कथा विचित्र नाटक) ९ ६
२ कुप्पिओ न्रिपाल। नच्चे मराल।
बज्जे बजत्र। कर अनल।
जुज्झन जुझाना। वाहे न्रिपाना।
जीअ धार क्रोध। छड्डे सरोघ।९।
लुज्झे निदान। तज्जत प्राण।
गिर परत भूम। जणु मेघ भूम।१०। (वही)
३ खरे दात पीस छुभै छत्रधारी।९ ५।
४ महानाद बाज। भयो सूर गाजे।१२।
महावीर गज्जे। महा सार बज्जे। (वही ९ १३)

सोर परा सभ ही नर जाग। गहि गहि ससन बीर रस पाग।
छूटन लगी तुपग तवट्टी। गहि गहि ससननि साने सवही।४।
बजी भेर भुकार धुके नगारे। महावीर बानेत बके बकार।
भए बाहु आघात नच्चे मराल। त्रिपा सिंधु काली गरज्जी कराल।५।
न दीप राखियो कालरात समान। करे सूरमा सीत पिंग प्रमान।
इत वीर गज्ज भए नाद भारे। भजे खान खूनी बिना समन भार।६।

रात्रि क अधकार म आकस्मिक आक्रमण स जो कोलाहल मचा और अस्त्र शस्त्रा की वर्षा होन लगी इसका यहा सजीव चित्र अकित किया गया है। इस युद्ध म से दिलावरखा भयभीत होकर भाग गया और सेवक हुसनी को युद्ध करन क लिय भेजा गया। उसन कुछ पहाडी गावा क लूट मार की जिससे पहाडी राजाओ का उसस कुछ युद्ध भी हुआ इस युद्ध म वह स्वय तो मारा गया और उसकी सना वापिस लौट गई। गुरु जी को इस युद्ध म भाग नही लेना पडा।

विचित्र नाटक म मुगल सना तथा कुछ पहाडी राजाओ का अन्य पहाडी राजाओ स किय गय एक अन्य युद्ध का भी वणन है। इस युद्ध म जुझारसिंह नाम का राजपूत योद्धा बडी शूरवीरता स लडता हुआ वीरगति को प्राप्त करता ह। कवि न जुझारसिंह क शौय उत्साह साहस आदि का भव्य चित्रण किया है। इस युद्ध के समाचार सुनकर औरगजेब न अपन पुत्र को सना सहित भेजा जिसस भयभीत होकर बहुत से लोग गुरु जी का साथ छोडकर भाग गए। भाग हुए बहुत से लोगो का मुगलो न वध कर दिया। इस युद्ध क बाद की किसी भी अन्य घटना का उल्लेख विचित्र नाटक म नही ह। इस प्रकार यह प्रबन्ध गुरु गोबिन्दसिंह का सम्पूण जीवन वृत्त उपस्थित नही करता वरन् उनकी २६ २७ वष की आयु तक क कुछ युद्धो का ही इसम वणन है फिर भी कथानक म अधूरापन नही झलकता। अन्त म कवि न बाह्याचारो मिथ्याडम्बरो का विरोध करत हुए, ब्रह्म की भक्ति का महत्त्व दर्शाया है और अपन उद्देश्य की ओर सकेत करत हुए कथानक को पूर्णता तक पहुचा कर उस उदात्त रूप प्रदान किया है।

इसम कोई सन्देह नही कि प्रबन्ध-कथा की दृष्टि स यह रचना शिथिल है। कथा म न प्रवाह है न सतुलन। युद्ध प्रसग ही इसम सर्वाधिक रोचक एव महत्त्वपूर्ण अश है। इन युद्ध-कथाओ म भी कवि न योद्धाओ की वीरता, शौय प्रदशन एव प्रहार प्रतिप्रहार (निरूपण) और उनम किए गए नाश-वणन का ही अधिक चित्रण किया है। युद्ध-कथा का सम्पूर्ण चित्रण नहीं किया। उनकी कामना, सना पक्षा का उत्साह सना प्रस्थान द्रुत भजन वीरो की

साज सज्जा उनकी ललकार प्रतिललकार, गर्वोक्तियाँ व्यूह रचना, छावनी डालना भाग म विश्राम करने, आक्रमण करने, घेरे म पडी सेना की कठिनाइयाँ आदि का चित्रण उन्होंने अधिक नही किया। समुचित कारणो के अभाव मे गुरुजी के युद्ध म प्रवृत्त होने के औचित्य पर भी आपत्ति उठाई जा सकती है। परन्तु हम समझते हैं कि यह युद्ध-कथाएँ जिन लोगो को उत्साहित करने के लिए लिखी गई हैं उनसे उस युग की परिस्थितियाँ छिपी नही थी। उन परिस्थितियो एव कारणो के निरूपण से कथा का विस्तार देने की आवश्यकता गुरुजी नही समझते थे। जिस उत्साह से उन्होने ये युद्ध लडे, उसी उत्साह से वे उनकी भिडन्त का वर्णन करते हैं। अनावश्यक इतिवृत्त विस्तार से उसकी गति को शिथिल बनाना नही चाहते। इन युद्धो का सजीव, ओजस्वी भीषण एव उग्रतापूर्ण चित्रण करने म वे पूर्ण सफल रहे हैं। भगाणी युद्ध के कुछ उदाहरण पीछे दिए गए हैं। यहा कुछ उदाहरण और देखिए —

करिकै गुमान। जुमै जुआन।
बज्जै तबल्ल। दुदभ दबल्ल।१८।
बज्जै निसाण। नच्चे किकाण।
वाहै तडाक। उठै कडाक।
बज्जै निसग। गज्जे निहग।
छुट्टै क्रिपान। लिट्टै जुआन।१९।
तुप्पक तडाक। ककर फडाक।
सैहथी सडाक। छौही छडाक।२०।
हुक्कै किकाण। धुक्कै निसाण।
वाहै तडाक। भल्ल भडाक।२१।

बजी भेर भुकार तीरं तडक्कं। मिले हत्थियं हत्थ क्रिपाण कडक्कं।२७।
खोल खडकिक तुपकि तडकिक। सथ सडक्क ककक धहाकि।
उठ वाह आघात गज्ज सुबीर। नव नद्र नीसान बज्जे अपार।
रनं तच्छ मुच्छं उठी ससत्र झार। टकाटुक टोप टका ढुक ढाल।११ १८।

यहाँ कवि ने निसाण दुदभि तबल आदि रण-वाद्यो के तुमुल-नाद से भीषण रूप धारण किए हुए युद्ध म योद्धाओ के क्रोध से उत्तेजित होकर जूझने, घोडो के हिनहिनाने जवानो के गरजने कृपाण और सैहथी के सडकने, परशु के खडकने तलवारो की कटाकट गोलियो की तडातड योद्धाओ की धुका धुक्क और जवानो की हत्था-हत्थी आदि का ओजपूर्ण एव सजीव चित्रण किया है। ध्वन्यात्मक शब्दो के प्रयोग से कवि ने युद्ध का ध्वनिपूर्ण वातावरण प्रस्तुत कर दिया है। इसी प्रकार आपस म जूझते हुए गोपाल और कृपाल के पौरुष,

बल एवं शौर्य को चित्रमय बनाते हुए कवि लिखता है कि मानो दो दांतों वाले मस्त हाथी आपस में लड़ रहे हैं अथवा सिंह बबर शेर से लड़ रहा है।

देखिए

> जुटे आप में बीर बीर जुझारे।
> मनो गज्ज जुट्टे दंतारे दतार।
> किधौं सिंह सो सारदूल अरुज्झे।
> तिसी भांति अपार गोपाल जुज्झे ।११ ३०।

हुसनी-युद्ध में कवि ने सेनापति के मिथ्याभिमान एवं गर्व का भी मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। संधि के लिए आए हुए राजाओं को देखकर हुसैनी फूल जाता है और अहंकारवश किसी को आंख नीचे नहीं लाता, जैसे सूर्य के तेज से रेत तपने लगता है और मूल सूर्य के तेज को भूल कर अपने को ही तेजयुक्त समझने लगता है। वह संधि में और अधिक धन मांगने लगा। उसके इस मिथ्याभिमान का चित्र कवि ने इस प्रकार खींचा है —

> जैसे रवि को तेज ते रेत अधिक तपताइ।
> रवि बल छुद्र न जानई आपन ही गरबाई ।११ ७।
>
> तैसे ही फूल गुलाम जाति गयो। तिन न द्रिसट तरे आनत भयो।
> कहलूरीया कटौच संगि लहि। जाग्या आन न मौसरि महि महि ।११ ८।

परन्तु जब पहाड़ी राजे उसकी शर्तें न मानकर लौट जाते हैं तो उसका अहंकार घायल हो उठता है और वह क्रोधित होकर उन पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना को आदेश दे देता है। बिना युद्ध स्थिति के दांव को समझे उसने युद्ध का नगारा बजा दिया। कवि ने उसकी इस स्थिति का देखिए कितना मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है —

> चेरो तब तेज तन तयो। भला बुरा कछु लखत न भयो।
> छल्वल्ल नह नकु बिचारा। जात भयो दे तबहि नगारा ।११।
> दाव घाव तिन नकु न करा। सिहहि घेरि ससा कहु डरा।

यहाँ कवि ने हुसनी के लिए गुलाम, चेरो ससा आदि अपमान-सूचक शब्दों का प्रयोग किया है जो उसके प्रति उनकी घृणा एवं उपेक्षा के सूचक हैं।

युद्ध भूमि के विकराल भीषण एवं भयावह चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि ने युद्ध भूमि में टूटे हुए अस्त्र शस्त्र क्षत विक्षत योद्धाओं रुण्ड मुण्डों के बिखरने, लाशों पर लोथों के गिरने खाली फिरते घायल घोड़ों रक्त प्रवाह एवं उन पर मंडराते गिद्ध, शृगाल, काक एवं नाचते भूत प्रेत, डाकनि जोगनि आदि का भी विशद चित्रण किया है।

देखिए —

उठे टोप टक गुरज प्रहारे। रुले लुत्थ जुत्थ गिरे वीर भारे।
परे कतीय घात निरघात वीर। फिरे रुण्ड मुण्ड तन तच्छ तीर।११ २८।
नचे वीर वेतालय भूत प्रत। नची डाकिणी जागणी उरध रेत।६।

परम्परा रूप म अप्सराओं के वीरों को वरण करने एव किन्नरा, गधर्वों यक्षो के प्रसन्न होने का भी उल्लेख किया गया है। कहीं कहीं योद्धाओं के अनुभाव भी सजीव रूप मे प्रकट हुए है।

देखिए

तहा आप कीना हुसनी उनार। सभूहाथ बाण कमाण सभार।
रप खान खूनी कर लाग जुद्ध। मुख रकत नन भरे सूर क्रुद्ध।११।४५।

रस—यह रचना वीर रस प्रधान है और सभी युद्ध-कथाओं मे वीर रस का पूर्ण सचार है। भगाणी युद्ध मे फतेशाह आलम्बन है और गुरु जी तथा उनके वीर आश्रय हैं, फतेशाह का अकारण आक्रमण करना तथा गुरु पक्ष के योद्धाओं पर प्रहार करना उद्दीपन का काय करते ह। कृपाल का क्रोधित होकर कुतकी उठाना और हयातखा के सिर पर दे मारना अनुभाव हैं। उसक सिर से जो मिझ निकलती है वह कृपाल के उत्साह की वद्धि ही करती है। इसी प्रकार हरीचन्द (आलम्बन) के तीक्ष्ण प्रहारो से बाधित होकर (उद्दीपन) गुरु जी उस पर तीरों की बौछार करते हुए टूट पडते हैं (अनुभाव)। अत यहा आलम्बन, आश्रय उद्दीपन, अनुभाव आदि रस के सभी अवयव मौजूद है। बीच-बीच मे अमष मति, धृति, भय, दृढता, दप आदि सचारी सचरणशील है, जिनके सयोग से वीररस की पूर्ण निष्पत्ति हो जाती है।

हुसनी युद्ध मे हुसनी 'आलम्बन' है और गोपाल तथा उनके साथी राजा आश्रय है। हुसनी का आक्रमण अहकार के कारण सधि प्रस्ताव ठुकरा कर उन पर आक्रमण कर देना उद्दीपन' का काय करता है कृपाल द्वारा गोपाल को छल से पकडने या मारने का प्रयत्न भी 'उद्दीपन' का काय करते है जिससे क्रुद्ध (उत्साहित) होकर गोपाल के मुख और नेत्रो का लाल होना तथा शस्त्र धारण कर युद्ध म कूद पडना 'अनुभाव' है। दोनो पक्षो के रा का मस्त हाथियों एव सिंह शार्दूल की भाँति जूझना वीरो के उत्साह को उत्तेजित करता है। रोष अमष आदि कई मनोवेग सचारी का काम करते हैं जिनमे पुष्ट होकर रस पूर्ण परिपाक की स्थिति म पहुच जाता है। हुसनी अकारण आक्रमणकारी एव अत्याचारी है और उसके विरुद्ध लडने वाले गोपाल आदि वीर उदात्त भावो से युक्त वीर रस के उपयुक्त नायक हैं।

इस प्रकार भाव-व्यंजना, युद्ध कथा—वर्णन एवं उद्देश्य की महानता के कारण 'अपनी कथा' एक उत्कृष्ट रचना है।

दशमग्रंथ में दूसरे प्रकार की रचनाएँ पौराणिक आख्यानों के रूप में आई हैं जैसे 'चौबीस अवतार' तथा 'चण्डी चरित्र उक्ति विलास' एवं 'चण्डी चरित्र द्वितीय'।

चौबीस अवतार—इस ग्रंथ में मच्छ, कच्छ, नर नारायण, मोहिनी, वराह, नृसिंह, बावन, परशुराम, ब्रह्मा, रुद्र, जालन्धर, विष्णु, दुर्गा, अर्हन्तदेव, मनु, धन्वंतरि, सूर्य, चन्द्र, राम, कृष्ण, निहकलंकी, बौद्ध आदि अवतारों की कथाओं का निष्ठापूर्वक वर्णन किया गया है। ये कथाएँ मुख्यतः शिवपुराण (वराह) भागवत पुराण, पद्मपुराण (नृसिंह, राम) ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, भविष्य, मार्कण्डेय (ब्रह्मावतार) हरिवंशपुराण (धन्वन्तरि) आदि से ली गई हैं। आरम्भ में कवि ने ब्रह्म के स्वरूप एवं पृथ्वी पर अवतार आगमन के कारण एवं उद्देश्य का निरूपण किया है। जब पृथ्वी पर असुरों की शक्ति और आतंक बढ़ता है तथा सन्त दुःखी होते हैं तो दुष्टों के विनाश के लिए और सन्तों के उद्धार के लिए अवतार यहाँ आते हैं।

जब जब होत अरिस्ट अपारा। तब तब देह धरत अवतारा।

(चौबीस अवतार १०)

इन कथाओं में कच्छ, मच्छ, नर नारायण, मोहिनी, वराह, आदि धन्वन्तरि, मनु, सूर्य, चन्द्र आदि अवतारों से सम्बन्धित प्रसंग अत्यन्त संक्षिप्त हैं। अधिक विस्तार रामावतार तथा कृष्णावतार का ही दिया गया है। वस्तुतः ये ही दो रचनाएँ स्वतंत्र प्रबन्ध की कोटि में रखी जा सकती हैं। इनमें भावों की विशदता, मार्मिकता एवं सजीवता है। इनमें वीरों का शौर्य और उत्साह, स्त्री-पुरुष का रूप चित्रण, नख शिख, प्रेम मिलन, विरह, वन, पुष्प-लता, नदी, मेघ, वर्षा आदि से सम्बन्धित प्रकृति चित्रण, बारह-माहा, युद्ध, जन्म एवं विवाहोत्सव आदि के आकर्षक और प्रभावशाली वर्णन तथा स्निग्धतापूर्ण एवं रोचक संवाद भी उपलब्ध हैं। छंद-वैविध्य, अलंकार सौष्ठव एवं रचना-कौशल की दृष्टि से भी ये रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

अवतारवाद—इन अवतार-कथाओं के आधार पर कुछ विद्वानों ने गुरु गोविन्दसिंह की अवतारवादी भावना का पोषक कहा है और कुछ ने उनके अवतार विरोधी विचारों का ध्यान में रखते हुए उसे अवतार प्रायः भावना का नाम दिया है। यह मानकर कि उनका 'अकाल पुरुष' अवतार न होकर

भी अवतार के जितना निकट है उतना पूर्ववर्ती गुरुओं का अवतार पुरुष नहीं। हम समझते हैं कि ये दोनों ही धारणाएँ भ्रामक हैं।

दशमग्रंथ में चौबीस—अवतार कथाओं का निरूपण अवश्य किया गया है परन्तु उनमें कहीं भी उन्होंने अपनी ओर से यह नहीं कहा कि वे इन अवतारों के ब्रह्मत्व में विश्वास रखते हैं। पुराणों में जैसी अवतार कथाएं वर्णित हैं उन्हें उसी रूप में चित्रित कर दिया गया है। इन्हें ग्रहण इसलिए किया गया है कि उन्हें इन कथाओं की दुष्टदमनकारी प्रवृत्ति से अपने उद्देश्य की सफलता में बल मिलता था और उनके अनुयायियों को उत्साहित करने में वे सहायक हो सकती थीं और हुईं। परन्तु ऐसा करने से वे कदापि अवतारवादी सिद्ध नहीं होते। यदि जायसी कुतबन मंझन जैसे सूफी कवि हिंदू कहानियों को अपनाने से हिंदू नहीं हो जाते बल्कि सूफी ही रहते हैं वरन् उन कथाओं के माध्यम से सूफी मत का प्रचार और प्रसार करने में अधिक सफल रहते हैं तो गुरु गोविंदसिंह अवतार-कथाओं का वर्णन करने मात्र से अवतारवादी भावना के पोषक कैसे हो सकते हैं जबकि इन अवतार कथाओं में भी स्थान-स्थान पर आरम्भ अथवा अन्त में वे इन अवतारों के ब्रह्मत्व का खण्डन करते रहे हैं।

गुरु गोविंदसिंह ने पुराणों की अवतार कथाओं को अवश्य ग्रहण किया परन्तु अवतारवाद में उन्हें विश्वास नहीं था। उन्होंने इन अवतार कथाओं को इस रूप में ढाला है कि उनसे अवतारों के प्रति भक्ति उत्पन्न नहीं होती जैसा कि पुराणों का उद्देश्य है वरन् धर्मयुद्ध के लिए उत्साह और प्रेरणा मिलती है। उन्होंने लिखे ही ये अपने अनुयायियों में अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध लड़ने का उत्साह उत्पन्न करने के उद्देश्य से थे और इनमें युद्ध प्रसंगों का ही अधिक विस्तार दिया गया है। वस्तुतः उन्होंने पौराणिक कथाओं को अवश्य अपनाया पर पुराणों की अवतारी भावना को ग्रहण नहीं किया।

२ रामावतार—रामावतार उच्च नतिद स्वर एवं उदात्त वीर भावना से ओतप्रोत एक उत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य है जिसमें वाल्मीकि रामायण पद्मपुराण भागवत् हनुमान नाटक आदि राम-काव्यों के आधार पर प्रचलित राम की बीन कथा[1] का वर्णन किया गया है। डा० हरिभजनसिंह ने बीन कथा' का संक्षिप्त रूप दिया है[2] परन्तु हम समझते हैं कि बीन का अर्थ

[1] तिह त कही थारीए बीन कथा—रामावतार १५।

[2] गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन पृ० २०७।

'चुनना' लिया जाना चाहिए 'संक्षिप्त' के लिए तो 'थोरिए' शब्द कवि की उक्ति में पहले ही विद्यमान है। हमारी धारणा की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि कवि ने रामकथा किसी भी एक ग्रंथ से नहीं ली वरन् उपरोक्त कई ग्रंथों से ली गई है। अधिकतर प्रसंग पद्मपुराण की कथा पर आधारित हैं।

इस ग्रंथ में कथा का आरम्भ रघुवंश के प्रवर्तक रघु की कथा से और अन्त लव कुश को राज्य देकर राम लक्ष्मण सहित सभी अयोध्यावासियों के स्वर्गारोहण से होता है। राम-जन्म से पूर्व की कथा अत्यन्त संक्षिप्त है। राजा दशरथ के विवाह कैकेयी को वरदान देने और दशरथ के बाण से श्रवणकुमार की मृत्यु सम्बन्धी सभी प्रसंग मुख्य कथा की पूर्व पीठिका का कार्य करते हैं।

कथा में संतुलन एवं प्रवाह पूरा नहीं है। राम-कथा के सभी प्रसंगों को समुचित विस्तार भी नहीं दिया गया। कवि ने बीन बीन कर कुछ ही प्रसंगों को अधिक उठाया है। बहुत से प्रसंगों को तो इन बातों को इक ग्रंथ बढ़ नहिते कही थोरीए बीन कथा' कह कर चलता कर दिया है। रामकथा के मार्मिक प्रसंगों पर भी कवि का अधिक ध्यान नहीं गया। इसमें कोई संदेह नहीं कि कैकयी के राम-वनवास का वरदान मांगने पर दशरथ की प्रचंड प्रतिक्रिया मौन उन्माद, क्रोध, दया-याचना आदि की संक्षिप्त परन्तु नाटकीय व्यंजना की गई है सीता की पति परायणता लक्ष्मण के क्रोध एवं सुमित्रा की वेदना का भी बहुत संक्षेप में ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है परन्तु राम के वनवास को कवि ने दो छन्दों में ही चलता कर दिया है। धनुष भंग एवं सीता खोज का प्रसंग भी अत्यन्त संक्षिप्त है। दो-तीन छंदों में ही कवि जटायु वध राम की हनुमान-सुग्रीव आदि से भेंट और हनुमान के लंका से सीता की खबर लाने तक का वर्णन कर देता है।

यथा —

> पछराज रावन मारिके रघुराज सीतहि ले गयो।
> नभि ओर भार निहारके सु जटाउ सीस सदेस दयो।
> तब जान राम गए बला साग्र मत्त रावन ही हरा।
> हनवंत मारग मो मिले तब मित्रता तासो करी। ३६४।
> तिन बाल श्री रघुराज के कपिराज पाइन डारयो।
> तिन बैठ गैठ इकैठ ह्वै इह भांति मन्त्र बिचारयो। ३६५।
> दस बाट चार दिसा पठयो हनवंत लंक पठ दए।
> ले मुन्द्रका सस बारिधि जहमी हुती तह जात भे।
> पुर जारि अच्छ कुमार छै बन टारिके फिर आइयो।
> त्रिन चार जो अमरारि को सब राम तीर जनाइयो। ३६६।

इस विवरण से स्पष्ट है कि कवि की रुचि इन प्रसगो के वर्णन मे नही है। वह घटनाओ का उल्लेख मात्र करके पवन-सुत हनुमान की ही गति से किसी अन्य महत्वपूर्ण प्रसग पर तेजी से पहुचना चाहता है।

राम के विरह की अभिव्यक्ति भी शारीरिक व्यापारो द्वारा कुछ ही छदो मे की गई है —

उठ ठाढि भए फिरि भूम गिरे। पहरेकक लउ फिर प्रान फिरे।
तन चेत सुचेत उठे हरियो। रण मडल मद्धि गिर्यो भट ज्यो।
चहु ओर पुकार बकार थके। लख भ्रात भए बहु भात भगे। ३१८।
उठके पुन प्रात इसनान गए। जल जतु मरे जरि छारि भए। ३१९।

नि सदेह प्रथम दो पक्तियो मे उनके विरह और वेदना की अच्छी व्यजना हुई है, किन्तु आगे ऊहात्मक शैली म वन के वन-बाग तडाग, जल जतुओ आदि के विरह ताप से जलने का ही उल्लेख है। कवि ने यहाँ भी प्रथम छद म राम के विरह-वर्णन मे व्यजना से काम लिया है, उसे विस्तार अधिक नही दिया, जबकि युद्ध प्रसगो मे कवि ने व्यजना से अधिक काम न लेकर उस अत्यधिक विस्तार दिया है।

यदि हम रामावतार की कथा को ध्यानपूर्वक देखें तो मालूम होगा कि कवि की रुचि युद्ध-वर्णनो म ही अधिक है, अन्य प्रसगो का या तो उल्लेख मात्र किया है या अत्यन्त सक्षिप्त वर्णन करके आगे बढ गया है। जसे युद्ध के लिए उत्साहित वीर-योद्धा के लिए माग मे ठहरने का अधिक अवकाश नही होता वह केवल इधर उधर दृष्टि डालता जाता है और शीघ्रातिशीघ्र रण भूमि म पहुचना चाहता है, उसी प्रकार रामावतार का लेखक भी वायुयान की तीव्र गति से युद्ध भूमि की ओर बढ जाता है। वह माग की भूमियो घटनाओ पर नजर जरूर डालता है, मगर वह वहा उतरता नही। उतरता वह युद्ध भूमि म ही है। डॉ० हरिभजनसिंह के इस कथन से हम सहमत है कि कवि ने कथा निर्वाह पर्याप्त सक्षेप और सघनता से किया है।[1] इस सम्बन्ध मे उन्होने यह भी लिखा है कि सक्षेप के कारण कही-कही घटनाओ का अपर्याप्त वर्णन तो हुआ है, रसहीन वर्णन नही[2]। इस कथन की पहली बात से हम सहमत हैं हालाकि वहाँ भी यह कहना चाहिए था कि कही कही नही अधिकतर स्थानो पर ऐसा हुआ है। दूसरी बात सवथा ठीक नही है क्योकि बहुत से वर्णन रसहीन भी हैं इससे इकार नही किया जा सकता। ऊपर सीता खोज का जो उदाहरण दिया

१ वही, पृ० २१२
२ वही।

'चुनना' लिया जाना चाहिए 'सक्षिप्त' के लिए तो 'थोरिए' शब्द कवि की उक्ति म पहले ही विद्यमान है। हमारी धारणा की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि कवि ने रामकथा किसी भी एक ग्रथ से नही ली, वरन् उपरोक्त कई ग्रथो से ली गई है। अधिकतर प्रसग पदमपुराण की कथा पर आधारित हैं।

इस ग्रथ म कथा का आरम्भ रघुवश के प्रवतक रघु की कथा से और अन्त लव कुश को राज्य देकर राम-लक्ष्मण सहित सभी अयोध्यावासियो क स्वर्गारोहण से होता है। राम जन्म से पूव की कथा अत्यन्त सक्षिप्त है। राजा दशरथ के विवाह ककेयी को वरदान देने और दशरथ के बाण से श्रवणकुमार की मृत्यु सम्बधी सभी प्रसग मुख्य कथा की पूव पीठिका का काय करते है।

कथा म सतुलन एव प्रवाह पूरा नही है। राम कथा के सभी प्रसगो को समुचित विस्तार भी नही दिया गया। कवि ने बीन बीन कर कुछ ही प्रसगो को अधिक उठाया है। बहुत से प्रसगो को तो इन बातन को इक ग्रथ बढै नहिते कही थोरीए बीन कथा' कह कर चलता कर दिया है। रामकथा के मार्मिक प्रसगो पर भी कवि का अधिक ध्यान नही गया। इसमे कोई सदेह नही कि ककेयी के राम-वनवास का वरदान मागने पर दशरथ की प्रचड प्रतिक्रिया मौन उन्माद क्रोध दया-याचना आदि की सक्षिप्त परतु नाटकीय व्यजना की गई है, सीता की पति-परायणता लक्ष्मण के क्रोध एव सुमित्रा की वेदना का भी बहुत सक्षेप म ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है परन्तु राम के वनवास को कवि ने दो छदो मे ही चलता कर दिया है। धनुष यज्ञ एव सीता खोज का प्रसग भी अत्यत सक्षिप्त है। दो-तीन छन्दो म ही कवि जटायु वध राम की हनुमान-सुग्रीव आदि से भेंट और हनुमान के लका स सीता की खबर लाने तक का वर्णन कर दता है।

यथा —

> पछराज रावन मारिके रघुराज सीतहि ल गयो।
> नभि ओर सोर निहारके सु जटाउ सीघ्र सदस दयो।
> तब जान राम गए बलो सीघ्र सत्त रावन ही हरी।
> हनवत मारग मो मिले तब मित्रता तासो करी। ३६४।
> तिन आन श्री रघुराज के कपिराज पाइन डारयो।
> तिन बठ गठ इकठ हुँ इह भाति मन्त्र बिचारयो। ३६५।
> दल बाट चार दिसा पठयो हनवन लक पठ दए।
> ल मुद्रका लख बारिध जहसी हुती तह जात भे।
> पुर जारि अक्छ कुमार छ बन टारिक फिर आइयो।
> तिन चार जा अमरारि को सब राम तीर जनाइयो। ३६६।

इस विवरण से स्पष्ट है कि कवि की रुचि इन प्रसगो के वर्णन म नही है। वह घटनाओ का उल्लेख मात्र करके पवन-सुत हनुमान की ही गति से किसी अन्य महत्वपूर्ण प्रसग पर तेजी से पहुचना चाहता है।

राम के विरह की अभिव्यक्ति भी शारीरिक व्यापारो द्वारा कुछ ही छदो म की गई है —

> उठ ढाढि भए फिरि भूम गिरे। पहरेकक लउ फिर प्रान फिरे।
> तन चेत सुचेत उठे हरिया। रण मडल मद्धि गिर्यो भट ज्यो।
> चहू ओर पुकार बकार थके। लख भ्रात भए वहु भात भके। ३५८।
> उठके पुन प्रात इसनान गए। जल जतु सब जरि छारि भए। ३५६।

नि सदेह प्रथम दो पक्तियो मे उनके विरह और वेदना की अच्छी व्यजना हुई है, किन्तु आगे ऊहात्मक शली म वन के वन-बाग तडाग, जल-जतुओ आदि के विरह ताप से जलने का ही उल्लेख है। कवि ने यहा भी प्रथम छद मे राम के विरह-वर्णन मे व्यजना से काम लिया है, उसे विस्तार अधिक नही दिया, जबकि युद्ध प्रसगो मे कवि ने व्यजना से अधिक काम न लेकर उसे अत्यधिक विस्तार दिया है।

यदि हम 'रामावतार' की कथा को ध्यानपूवक देख तो मालूम होगा कि कवि की रुचि युद्ध-वर्णना मे ही अधिक है अन्य प्रसगो का या तो उल्लेख मात्र किया है या अत्यन्त सक्षिप्त वर्णन करके आगे बढ गया है। जसे युद्ध के लिए उत्साहित वीर-योद्धा के लिए माग मे ठहरने का अधिक अवकाश नही होता वह केवल इधर उधर दृष्टि डालता जाता है और शीघ्रातिशीघ्र रण भूमि म पहुचना चाहता है, उसी प्रकार रामावतार' का लेखक भी वायुयान की तीव्र गति से युद्ध भूमि की ओर बढ जाता है। वह माग की भूमियो घटनाओ पर नजर जरूर डालता है मगर वह वहा उतरता नही। उतरता वह युद्ध भूमि म ही है। डा० हरिभजनसिंह के इस कथन स हम सहमत है कि कवि ने कथा निर्वाह पर्याप्त सक्षेप और सघनता से किया है।[1] इस सम्बन्ध मे उन्होंने यह भी लिखा है कि सक्षेप के कारण कही-कही घटनाओ का अपर्याप्त वर्णन तो हुआ है रसहीन वर्णन नही[2]। इस कथन की पहली बात से हम सहमत हैं हालाकि वहाँ भी यह कहना चाहिए था कि कही कही नही अधिकतर स्थानो पर ऐसा हुआ है। दूसरी बात सवथा ठीक नही है क्योकि बहुत से वर्णन रसहीन भी हैं इससे इन्कार नही किया जा सकता। ऊपर सीता खोज का जो उदाहरण दिया

---

१ वही, पृ० २१२
२ वही।

गया है वह विवरण मात्र है, रसात्मकता भी नहीं है। और भी कुछ प्रसंग स्थल हैं। वास्तव में कवि त्यागी को जाने के लिए रेखा में क्षीण तारा से काम लेता है और बहुधा रसपूर्ण एवं मार्मिक प्रसंगों पर भी उसका मन नहीं रमता। पूरे मनोयोग से तो वह युद्ध का वर्णन ही करता दिखाई देता है। अन्य प्रसंग तो उसके पूरक या पूर्व पीठिका मात्र हैं। इस और प्रसंग में अपनी बात की पुष्टि करना चाहते हैं। यदि नगर के घर पुत्र जन्म पर उत्सव मनाए जाने की चर्चा कर रहा है तभी अपने यज्ञ की रक्षार्थ विश्वामित्र जी राम को मांगने आ पहुचते हैं और दशरथ भी मुनि के कोप के डर कर तुरन्त राम को उन्हें सौंप देते हैं[1]। राम को मुनि को सौंपते समय पिता की क्या मनोदशा हुई इसका उल्लेख तक भी नहीं किया गया। कवि पुत्र राम तथा जन्मोत्सव से राम को मांग ले जाने तक की घटना का वर्णन तो बहुत तेजी से करता है पर ताडका सुबाहु आदि के वध के वर्णन का पर्याप्त विस्तार देता है। इससे भी कवि की प्रवृत्ति युद्ध-वर्णन की ओर ही प्रकट होती है।

वैसे भी 'रामावतार' के ८६४ छंदों में से लगभग ४२० छन्द युद्ध-कथाओं से सम्बन्धित हैं। आश्चर्य की बात है कि डा० हरिभजनसिंह ने 'रामावतार' को महाकाव्य मानते हुए भी उसकी वीर भावना का बिल्कुल विवेचन नहीं किया जबकि यही इस रचना का मुख्य स्वर है। उन्होंने अपने विवेचन को राम के विरह और दशरथ कैकेयी संवाद तक ही सीमित रखा है। वस्तुतः 'रामावतार' प्रबन्ध कथा की दृष्टि से एक शिथिल रचना है क्योंकि उसकी कथा में स्तुतन नहीं है, मार्मिक स्थलों का चित्रण भी अधिक नहीं हो पाया परन्तु यह एक सफल वीर-काव्य है और वीर रसात्मक युद्ध कथाओं का वर्णन कवि ने विशेष सजीवता एवं कुशलता से किया है।

यह ग्रन्थ न तो 'वाल्मीकि रामायण' अथवा 'उत्तररामचरित' की भांति करुणा प्रधान है, न 'रामचरितमानस' की भांति भक्ति प्रधान न ही 'अध्यात्मिक रामायण' की भांति इसमें दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है और न ही 'पउम चरिउ' की भान्ति जनमत के आदर्शों का आख्यान है। 'रामचन्द्रिका' की भांति यह छंदों और अलकारों के चौखटे में जड़ी हुई चमत्कारपूर्ण रचना भी नहीं है और न ही इसमें 'साकेत' की भांति बौद्धिक एवं सामाजिक तथ्यों का प्रतिपादन हुआ है। इस रचना के नायक 'भुए भार उतारन' के लिए असुरों का संहार और संतों का उद्धार करने के लिए अवतरित हैं जिसके लिए उन्हें वीर रूप धारण करना पडता है और उनके वीर चरित्र का ही इस रचना में विशद

१ कोप देख मुनीस कउ नृप पुत्र तो संग दीन ६४

आख्यान उपलब्ध है। यह विशुद्ध वीर-काव्य है।

युद्ध कथा—इस ग्रथ की रचना कवि ने पाउटा निवास के समय सवत् १७५५ म की थी। इस समय गुरु जी बडे युद्धो की तैयारी मे थे और अपने अनुयायियो को सगठित एव उत्साहित कर रहे थे। इस ग्रथ की रचना भी इसी उद्देश्य से हुई थी और इसीलिए इसमे राम के ताडका, विराध, धूम्राच्छ, अकपन, नारातक, भूवातक,कुभकरण, त्रिसुड,महोदर, इन्द्रजीत कतवार्,मकराछ, कुभ अनकुभ एव रावण आदि दैत्यो से युद्ध का विशद, सजीव एव ओजपूण वणन किया गया है। इन युद्ध वणनो मे 'बिचित्र नाटक" (अपनी कथा) की भाति योद्धाओ की भीषण भिडत और प्रहार प्रतिप्रहार का ही वणन अधिक है तथा योद्धाओ अश्वो, गजो के क्षत विक्षत हो कर गिरने, भूत प्रेत, डाकनि योगनि, वीर-वैताल आदि के नाचने, एव गिद्धो, काक, कक, शृगाल आदि द्वारा मास नोचने रक्तपान करने आदि का भयावह दृश्य उपस्थित किया गया है। कवि ने युद्ध कथा का वणन अधिक नही किया।

राम के असुरो के साथ युद्ध के दो मुख्य कारण सामने आते है। विश्वामित्र के यज्ञ को असुरो द्वारा भग किया जाना और सीता हरण। तथापि सत उबारन और 'असुर सहार' का मूल उद्देश्य सवत्र कवि के सम्मुख रहा है। कवि ने बीच बीच म इस लक्ष्य की ओर सकेत भी किया है। यथा —

भुअ भार उतार्यो। रिखीस उबार्यो।
भया जग पूर। गए पाप दूर। ६३ ६५।

सेना प्रस्थान—कही कही सेना प्रस्थान का वणन करते हुए कवि ने उसकी विशालता, भयकरता आदि के साथ उसके प्रमुख योद्धाओ का भी उल्लेख किया है[1]। राम जब लका पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान करते है तो उनके दल-बल का इसी प्रकार का चित्रण किया गया है[1]।

इस आक्रमण की सूचना पाते ही रावण अपने शूरवीरो को सनद्ध-बद्ध कर युद्ध के लिए भेज देता है। इसके बाद कवि अनक दैत्यो के साथ राम के युद्धो का ओजस्वी उग्रतापूण एव विशद वणन करता है। जब राक्षस हल्लागुल्ला करके राम को घेर लेते है उस समय के कोलाहल मेघ के समान रणवाद्यो की गजना, कमानो के कडकडाने कृपाणो के भडकने तीरो की वर्षा और योद्धाओ के उत्साह से जूझने मे उनके रणोल्लास आदि का कवि ने अत्यन्त सजीव वणन किया है। उत्तरोत्तर तीव्र होती हुई युद्ध की गति के कुछ उदाहरण देखिए —

मार मार पुकार दानव ससत्र असत्र सभार।
बान पान कमान कउ धर तवर तिच्छ कुठार।

---

१ रामावतार ३३८, ३६७।

घेरि घेरि दसो दिसा नहिं सूरबीर प्रमाथ।
आइ क जूझे सब रण राम एकल साथ। ६८।
रण पेख राम । धुज धरम धाम।
चट्ट आर ढूके। मुख मार कूके। ६६।
बजे घोर बाजे। धुण मेघ लाजे।
झंडा गड्ड गाडे। मंडे बैर बाडे। ७०।
कडक्के कमाण। भडक्के क्रिपाण।
ढला ढुक्क ढालै। चली पीत पालै। ७१।
रण रंग रत्ते। मनो मल्ल मत्ते।
सर धार बरखे। महिखुग्रासु करखे। ७२।
करी बान बरखा। सुणे जीत करखा।
सुबाहु मरीच। चले बाछ मीच। ७३।

अन्यत्र भी कवि ने संयुक्ताक्षरों 'दोहरे अक्षरों'[1] ध्वन्यात्मक एवं संगीतात्मक शब्दों,[2] आरोह अवरोह-पूर्ण भिन्नगति लघु एवं संगीत छन्दों[3] तथा समानान्तर बिम्ब विधान[4] के सहयोग से युद्ध के चित्रात्मक गत्यात्मक ध्वनिपूर्ण, सजीव एवं भीषण चित्र उपस्थित किए हैं। ढोल नफीरी, तंबूरा संख तबला, तूर धौंसो आदि रणवाद्यों का तुमुल-नाद भी युद्ध का कोलाहलमय भीषण वातावरण उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हुआ है[5]। इसी प्रकार योद्धाओं की भिड़त में बख्तर टोप, जिरा पटा, खडग गोफल, गुरज चंद्रहास सनोन त्रिशूल जंबूआ कमान, तीर बरछी जमदड गदा, सहथी सरोही कृपाण कटार, ढाल आदि अस्त्र शस्त्रों की ढका ढुक तटाखट खटार भंकार कडाक सडाक आदि का भी ओजपूर्ण चित्रण किया गया है। कवि ने अस्त्र शस्त्रों की ध्वनि के अनुरूप नादात्मक शब्दों का चयन करके, संगीत छन्दों में बांध कर उनके प्रहार को सजीव रूप में प्रस्तुत किया है।

---

१ रामावतार ५४३ ३०८ ३०६।
२ वही ५४०, ३०८, ३०६।
३ वही, ६०६, ३२०, ३०८ ३०६।
४ 'रामावतार' युद्ध वर्णन में भजवा अनूपनिराज, भुजंगप्रयात रसावल, पद्धरि सुन्दरी तोटक, कलस, त्रिभंगी, नवनामक कड़खा छप्पय त्रिगत्ता, त्रिणनिण, सवैया सिरखण्डी निशपालिया अपूरब, संगीत पधिसटका, दोहा आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है।
५ देखिए छन्द संख्या ७० ३४८ ५११ ५२१ ५१४ ५१५ आदि।
६ देखिए छन्द संख्या ६०, ३१४, ३१५।

जूझने हुए योद्धाओं के अस्त्र शस्त्रों के खडित होने, योद्धाओं के क्षत विक्षत होकर गिरने, अग भग होकर लोथों के इधर उधर, बिखरने, हाथियों की मेघगजन को लज्जित कर देने वाली गजन, अश्वो के हिनहिनाने एव कट कट कर गिरने, सेना के भागने, मास मज्जा एव रक्त प्रवाह पर गिद्ध, काक, कक, शृगाल आदि के मडराने एव मास नोचने, भूत प्रेत, वीर-बैताल एव योगनियो के नाचने आदि से सकल युद्ध भूमि का भयावह, विकराल एव भीषण वातावरण अकित करने मे कवि पूण सफल रहा है[1]। कुछ उदाहरण देखिए —

गज गजे हय हले हला हली दली हलो हल।
बबज्ज सिधरे सुर छुटत बाण केवल।
पपक्क पक्खरे तुरे भमक्ख धाइ निरमल।
पलुत्थ लुत्थ बिथरा अभत्थ जुत्थ उत्थल। ३०८।
अजुत्थ जुत्थ बित्थरी मिलत हत्थ बक्खय।
अघुम्म घाइ घुम्मए बबक्क बीर दुद्धर।
किलक्क खप्परी पिपत स्रोण पाणय।
हहक्क भैरव स्रत उठत जुद्ध ज्वालय। ३०९।
फिकत फिकती फिर रडत गिद्ध त्रिद्धण।
डहक्क डामरी उठ बकार बीर बतल।
खहत्त खग्ग खत्रीय खिमत धार उज्जल।
घणक्क जाण सावल लसत बेग बिज्जुल। ३१०।

रावण की ओर से एक एक शूरवीर राम की सेना से युद्ध करने आता है और राम लक्ष्मण अथवा कोई अन्य वीर उससे जूझता है। इस प्रकार के द्वन्द्व युद्ध का भी रामावतार मे सजीव चित्रण किया गया है। राम और रावण का द्वन्द्व युद्ध वणन इस दृष्टि से अत्यन्त ओजपूण है। कुछ उदाहरण देखिए —

रावन रोस भर्यो रन मो रिस सौ सर ओघ प्रओघ प्रहारे।
भूमि अकास दिसा विदिसा सब ओर रुके नहि जात निहारे।
स्री रघुराज सरासन ल छिन मो छुम कै सर पुज निवारे।
जानक भान उदै निस कउ लखिकै सबही तप तेज पधारे। ६१३।
रोस भरे रन मो रघुनाथ कमान ल बान अनेक चलाए।
बाज गजी गजराज घने रथराज बने करि रोस उडाए। ६१४।
रावन रोस भरयो गरज्यो रन म लहिक सब सन भजायो।
आप ही हाक हथयार हठी गहि स्री रघुनदन सो रन ठा्यो। ६१५।

---

१ रामावतार, ८४, ३१९ ४०६, ४०७ ४०९, ४२७, ४२८, ४३२, ५०१, ५०९, आदि छन्द भी देखे जा सकते हैं।

ली रघुनाथ की भुज ते जब छोर सरासन बान उभारे ।
भूमि अकास पताल चहूं चक पूर रहे नहीं जात पछारो । ५१६ ।
रावन रोस भर्यो रन मो गहि बीसहू बाहि हथ्यार प्रहारे ।
भूमि अकास दिसा बिदिसा सरितार गनै नहीं जात निहारे ।
पोरन स पन त मद सं मध त मध म रन मदन मारे ।
छत्र धुजा बर बाज रथी रथ काटि सब रघुराज उतारे । ५१९ ।
रावन को रघुराज जबै रन मंडल आवत मद्धि निहार्यो ।
बीस सिलासित सायक लै करि कोप बडो उर मद्ध प्रहार्यो ।
भेद चले मरम सत्थल को सर स्रोण नदी भर बीच पखार्यो ।
आगे ही रंग चल्यो हठि कै भट धाम को भूल न नाम उचार्यो । ५२१ ।

यहां राम और रावण के एक-दूसरे पर प्रहार-प्रतिप्रहार का ही वर्णन नहीं किया गया, वरन् दोनों वीरों के शौर्य उत्साह साहस दृढ़ता, निर्भीकता युद्ध-कुशलता, प्रचंडता आदि का भी सजीव चित्रण किया गया है। इस ही युद्ध से वीरों का ओजस्वी चरित्र उभर कर सामने आता है। कवि ने दोनों पक्षों के योद्धाओं की वीरता की समान रूप से प्रशंसा की है। जहां राम लक्ष्मण हनुमान अंगद आदि की वीरता उसकी प्रशंसा का विषय रही है, वहां उसने अकंपन मेघनाद कुंभकरण, रावण आदि की वीरता की भी खूब प्रशंसा की है। अंगद राम तथा लक्ष्मण भी उनके शौर्य एवं साहस से मोहित होकर उनकी प्रशंसा करते दिखाई देते हैं[1]।

रण भूमि में योद्धाओं की उत्साहपूर्ण गर्वोक्तियाँ जहाँ वीररस को पुष्ट करने में सहायक होती हैं और युद्ध की गति को तीव्र करती हैं, वहां उन वीरों के उत्साह और साहस को भी प्रकट करती है। 'रामावतार' में ऐसी कुछ गर्वोक्तियों के भी दर्शन होते हैं यथा —

अब हाथि लागि कहा जाहु भागे ।
तब रक्या सन मकराछ आन । कह जाहु राम नही प हो जान ।

इसी प्रकार कवि ने मस्त होकर रण रंग में लीन योद्धाओं के क्रोधित होकर दांत पीसने (३४५) नेत्रों और मुख के लाल होने (७८, ५४), कटु वचन बोलने (५०४), क्रोध से गरजने और मूछें ऐंठने (७७) आदि विविध अनुभावों का भी उल्लेख किया है।

रस—इन प्रसंगों में वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। यहाँ मुख्य आलम्बन रावण तथा अन्य राक्षस हैं। रावण द्वारा सीता-हरण मुख्य उद्दीपन

१ रामावतार ३८८, ४७४।

है, तदनन्तर शत्रु पक्ष के असुरो का दल-बल के साथ राम को घेरना, उन्हें ललकारना, प्रहार करना आदि भी उनके उत्साह को उद्दीप्त करते हैं। राम रावण के उपर्युक्त उदाहरण मे रावण का बीस भुजाओ से राम पर प्रहार करना ऐसा ही 'उद्दीपन' है और राम का सरासन उठाकर तीर छोडकर उनके अगो को काटना, 'अनुभाव' हैं, वीरो के अग फडकना, नेत्र लाल होना, दात पीसना आदि 'अनुभाव' भी आए हैं। रोष अमर्ष, धैर्य आदि अनेक सचारी यत्र-तत्र सचरणशील हैं। इस प्रकार सभी अवयवो से पुष्ट होकर रस की पूर्ण निष्पत्ति होती है। कुभकर्ण के साथ युद्ध मे भी (४१६ ४४०) वीर रस के सभी अव यव मौजूद हैं। इन युद्धो म शत्रुपक्ष का क्रोधित होकर (रौद्र) भीषण प्रहार करना युद्ध भूमि के भयावह, विकराल दृश्य (वीभत्स) एव शत्रु सेना का भय भीत होकर भागना (भयानक) आदि भी वीरो के उत्साह की वृद्धि करते हैं और रसोत्कर्ष मे सहायक होते हैं।

इन युद्धो का मुख्य कारण असुर सहार दुष्ट विनाश तथा सत-उद्धार एव धर्म रक्षा है, इसलिए वीर रस म उदात्तता है। गुरु गोविन्दसिंह की युग-परिस्थितियो के अनुरूप होने के कारण राम की वीरता उनके अनुयायियो म मुगल आसुरी शक्ति के विरुद्ध लडने के लिए साहस और उत्साह का सचार करने मे सहायक सिद्ध हुई। नि सदेह 'रामावतार' युग चेतना से स्पदित एक उत्कृष्ट वीर-काव्य है।

३ कृष्णावतार—'कृष्णावतार' का 'बिचित्र नाटक' की चौबीस अवतार कथाओ म विशिष्ट स्थान है। यह 'भागवत दशम स्कध' के आधार पर रचित २४९२ छदो का एक बृहदाकार एव उत्कृष्ट प्रबन्ध-काव्य है। 'रामावतार' मे कवि का ध्यान मुख्यत युद्ध-वर्णन पर ही रहा है, अन्य महत्वपूर्ण प्रसगो का अत्यन्त सक्षिप्त वर्णन किया है, या उल्लेख मात्र कर दिया है। परन्तु 'कृष्णा वतार' म कवि ने कृष्ण के चरित्र का व्यापक एव विशद चित्रण किया है।

इसके कथानक मे एक विशालनद की सी गम्भीरता, वेग एव प्रवाह है। इसमे 'रामावतार' की भाति असतुलन भी नही है। कथानक का सतुलित एव सयमित ढग से विकास होता है और सभी प्रसगो का यथायोग्य निरूपण किया गया है। उसम जीवन की विविधता एव शक्ति है। यह प्रबन्ध चार भागो म विभक्त है—

(क) रसभ (बाल-लीला)	१—४४०= ४४०	छन्द
(ख) रास मडल	४४१—७५६= ३१६	छन्द
(ग) गोपी विरह	७५७—१०२८= २७२	छद
(घ) युद्ध प्रबन्ध	१०२९—२४९२= १४६४	छन्द

प्रथम प्रबन्ध मे कृष्ण जन्म, शिशु-सौन्दर्य, उसकी मोहक एव प्रारपव

चेष्टाएँ, हाव भाव शिशु-कौतक, बाल क्रीडा एव नन्द यशोदा के वात्सल्य[1] आदि के साथ कृष्ण द्वारा पूतना, शकटासुर, अघासुर, तृणावत, चडूर, बकासुर आदि दैत्यो के वध का वणन किया गया है।

'रास मडल' मे कृष्ण और गोपियो के आकषण, प्रेम, मिलन और अभिसार आदि का विशद् वणन किया गया है। गोपियाँ कृष्ण के वेणु वादन से मोहित होकर यमुना तट पर जाती हैं और वहा किस प्रकार उनके साथ नृत्य, गान, जल विहार अभिसार मान आदि करती हैं इसका बहुत ही सरस चित्र उप स्थित किया गया है[2]। इसी प्रकार अन्य लीलाओ का भी वणन है। इस प्रबन्ध मे कवि ने गोपियो की आसक्ति, मोह, विलास उल्लास, दीप्ति, गव लज्जा ईर्ष्या, जडता आदि का भी सजीव चित्रण किया है। इन वणनो मे कही कही अश्लीलता भी आ गई है।

'गोपी विरह' खड म कृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात गोपियो की जो करुण दशा हुई उसका चित्रण किया गया है और उसमे उनकी अधीरता, विह्वलता व्याकुलता, आतुरता वेदना, उन्माद आदि की व्यजना की गई है। उद्धव-गोपी सवाद भी इस दृष्टि से महत्वपूण है परन्तु भक्ति एव योग और निगुण सगुण के विवाद से उनकी करुण अभिव्यक्ति को कोमल नही बनाया गया। उनम नन्ददास की गोपियो की सी वाक्पटुता तक-नपुण्य एव वाक विदग्धता भी नही है। वे उद्धव के समाने अपनी हृदयगत करुण-मनोदशा को सहज एव सवेदनशील रूप म प्रकट करती दिखाई गई है। उनके विरह वणन म ऊहात्मकता, कृत्रिमता एव चमत्कार प्रदशन भी नही है। बारहमासे के माध्यम स भी कवि उनकी विरह वेदना की सयमित, एव मार्मिक अभिव्यजना करता है।

इस प्रकार इन दोनो खडो म सयोग एव विप्रलभ शृगार की दोनो अवस्थाओ की सरस अभिव्यक्ति हुई है, परन्तु कृष्ण भक्त कवियो की भाति यहाँ रास-लीलाओ को इतना अधिक महत्व नही दिया गया है कि यह प्रतीत हो कि यह लीला-गान करना ही कवि का उद्देश्य है। वह भागवत् की कथाओ का ही यथातथ्य रूप म वणन करता हुआ, कथा के मुख्य भाग की ओर अग्रसर हो जाता है।

---

१ कृष्णावतार १०३, ११३, ११४ ११८ ११६ १६४, २३७ आदि।

२ कृष्णावतार ४५२ ४५३ ४६३ ४७०, ४७१, ४६७, ६०७, ६०८, ४५० ४७४ ६ ६२८, ६५० ५१७ २२ ५२२, ५२५ २७ ५३० ३१, ५७० ६०२, ६११, ६१६ इत्यादि।

युद्ध प्रबन्ध—'युद्ध प्रबन्ध' ही इस रचना का मुख्य भाग है, जिसमे कवि ने कृष्ण के जरासन्ध, शिशुपाल आदि के साथ अनेक युद्धों का विस्तृत वर्णन किया है। इस प्रबन्ध में कृष्ण के पारिवारिक जीवन की अन्य घटनाओं का भी वर्णन हुआ है। उनके पुत्र-पौत्रों के विवाह कुरुक्षेत्र मे सूर्य-ग्रहण के अवसर पर सारे ब्रजवासियों के साथ एकत्रित होने, द्विज के मृत पुत्र को यमलोक से वापिस लाने एवं युधिष्ठिर के यज्ञों आदि का भी वर्णन किया गया है, परन्तु अधिक बल और विस्तार युद्ध कथाओं को ही दिया गया है। यही इस रचना की एक प्रमुख विशेषता है। पुराणों में अवतारों के आगमन के दो मुख्य कारणों का उल्लेख है। एक दुष्टदमन-हेतु, दूसरा भक्तों के लिए लीला-हेतु राम, नृसिंह आदि अवतार दुष्टदमन के लिए आए और कृष्ण का लीलामय रूप ही अधिक स्वीकार किया गया। हिन्दी मे भी कृष्ण को रसेश्वर लीलामय रूप में चित्रित किया गया है। अनेक कृष्ण भक्त कवियों ने उनकी अनेक मन-मोहक रास रसपूर्ण लीलाओं का वर्णन किया है। यदि वे किसी दैत्य का वध भी करते हैं तो वह भी लीला मे ही ऐसा करते हैं। उनका यह लोक-रंजनकारी रूप ही हिन्दी मे प्रचलित रहा है। परन्तु 'दशम ग्रन्थ' का कृष्ण केवल लीला हेतु नहीं आया, वरन् दुष्ट दमन करना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। कंस के केश पकड़कर जिस प्रकार कृष्ण उसका वध करते दिखाए गए हैं उससे उनके बाल-लीला या किशोर-कौतुक प्रकट नहीं होता, वरन् वे एक दुष्टदमनकारी, असुर संहारक सतरक्षक लोक-नायक के रूप में सामने आते हैं। सम्भवत हिंदी के कृष्ण-काव्य में यह पहला ग्रन्थ है, जिसमें कृष्ण के युद्धों का इतनी विशदता और विस्तार से वर्णन किया गया है। सम्भवत, पहली बार इसी रचना में कृष्ण एक असुर संहारक, धर्म-संस्थापक, धर्मवीर एवं युद्धवीर लोक रक्षक के रूप मे चित्रित हुए हैं। कृष्ण के इतने विशद, व्यापक चरित्र को लेकर लिखा जाने वाला भी सम्भवत यह पहला और अकेला प्रबन्ध है। ब्रज के कृष्ण भक्त-कवियों ने तो उसके रसेश्वर रूप की रसिक लीलाओं में ही रस लिया है, वे उनकी युद्धवीरता से उत्साहित नहीं हुए। 'कृष्णावतार' की रचना युद्धोत्साह प्राप्त करने के लिए ही की गई थी, इसलिए इसमें युद्ध प्रबन्ध पर ही इतना बल दिया गया है। 'कृष्णावतार' मे कवि ने कृष्ण के इस रूप को ग्रहण कर युग-चेतना के प्रति अपनी जागरूकता का परिचय दिया है। उसने युग परिस्थितियों की माग को पूरा करते हुए कृष्ण के युद्ध-वीर देश और धर्म के रक्षक रूप को ही महत्त्व दिया है। कवि ने अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए एक स्थान पर लिखा भी है[1] —

अवर वासना नाहि प्रभ धरम जुद्ध को चाइ (२४९१ कृष्णावतार)

---

१ छन्द १६०० तथा १६०१ मे भी कवि यही वर मांगता है कि वह संतों की रक्षार्थ दुष्टों का संहार करता हुआ युद्ध भूमि में जूझता रहे।

आश्चर्य है कि यह युद्ध प्रबंध अभी तक हिन्दी समीक्षकों द्वारा प्राय उपेक्षित ही रहा है। 'दशम ग्रंथ' पर कुछ शोध प्रबन्ध लिखे जाने पर भी इसका समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ।

वस्तुत, 'कृष्णावतार' के कथानक म विविध मानवीय मनोवेगों की व्यंजना हुई है। उसम सम्बद्धता भी है और सन्तुलन भी। प्रवाह भी है और विविधता भी। उसम बाल्य जीवन का चापल्य कैशोर्य की अल्हड़ता यौवन की मस्ती और प्रौढता का उद्दीप्त कर्म-सौन्दर्य है। उसम रुक्मणि-कृष्ण तथा सुभद्रा अर्जुन के विवाहों जैसे रोचक प्रसगो का भी वर्णन है और प्राकृतिक दृश्यों तथा जन्म एव विवाहोत्सवो के वर्णन से भी गरिमायुक्त है। कृष्ण की रसमय लीलाओं एवं उत्साहपूर्ण कर्मण्यता के साथ कथानक अग्रसर होता है।

पौराणिक तत्व एव अलौकिक घटनाएँ—कृष्णावतार' पौराणिक प्रबन्ध है। इसलिए इसम पौराणिकता, अतिमानवीय एवं अलौकिक तत्त्व का समाविष्ट हो जाना स्वाभाविक ही है। 'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) म एक भी चमत्कारपूर्ण अथवा अलौकिक घटना नहीं है। उसमे ऐतिहासिक यथार्थता का अवलम्बन लिया गया है, परन्तु 'कृष्णावतार' म कई स्थानो पर गधर्व किन्नर, यक्ष इन्द्र, शिव ब्रह्मा आदि भी कृष्ण की सहायतार्थ असुरो से युद्ध करने आते दिखाए गए है। अप्सराएँ नृत्य आदि से असुर योद्धाओ का ध्यान युद्ध स हटाकर अपनी ओर आकर्षित करती है और कृष्ण मृत्यु को अपने तीर पर बिठाकर शत्रुओं की ओर छोडते दिखाई पडते हैं[1]। यही नही सभी देवता शिव, ब्रह्मा आदि मिट्टी का पुरुष बनाकर उसम प्राणो का सचार करते हैं और उसे अपराजय होने का वर देकर दैत्यों के सहारार्थ भेजते है[2]। इस प्रकार की अलौकिक घटनाओं का मध्ययुगीन काव्यकारो ने अपने ऐतिहासिक प्रबन्धो म भी समावेश किया है परन्तु दशमग्रन्थ' के पौराणिक प्रबन्धो म ही इस प्रकार की घटनाओं के दर्शन होते हैं।

'कृष्णावतार' मे कहीं-कहीं कृष्ण के अवतारत्व के प्रति आस्था एव निष्ठा के भी दर्शन होते है[3]। अन्त मे कवि सासारिक सुखों, बाह्याचारो एव मिथ्या डम्बरो का विरोध करते हुए भक्ति के महत्व का प्रतिपादन भी करता है[4]। परन्तु साथ ही अपने वीर-चरित्र का परिचय देते हुए कहता है कि असहाय

१ कृष्णावतार, १५४२—८४।
२ वही १६६२।
३ वही ३६३, १५३१, १५८३।
४ वही, २४८४—८८।

अवस्था में बैठकर अन्याय और अत्याचार को सहते हुए भगवद् भक्ति में लगे रहना उसे स्वीकार नहीं है। वह ब्राह्मण सुत नहीं है कि इस प्रकार अकर्मण्य बैठा रहे, वह क्षत्री-पुत्र है और उसका वक्तव्य है अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध धर्मयुद्ध में लड़ना। इसीलिए वह अपने इष्टदेव से धर्मयुद्ध में जूझने का ही वर मांगता है। यथा —

छत्री को पूत हौ बामन को नहि कै तपु आवत है जो करो।
अरु अउर जंजार जितो ग्रह को तुहि तिआग कहा चित तामैं धरो।
अब रीझ कै देहु वहै हम कउ जोऊ हउ बिनती कर जोर करो।
जब आउ की अउध निदान बनै अति ही रन मै तब जूझ मरो। २४८९।

कृष्णावतार' की रचना संवत् १७४५ (सन् १६८८) में पऊंटे में हुई[1]। इस समय गुरु गोविन्दसिंह की आयु लगभग २२ वर्ष की थी। तारुण्य का जोश उनमें भरा हुआ था। अपने पिता श्री की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए वे दृढ़ प्रतिज्ञ थे और उसी के लिए यहां शक्ति सचय कर रहे थे। उनके साथ यहाँ कई समक्त कवि थे जो हिन्दुओं में सास्कृतिक एवं राष्ट्रीय जागरण के अभियान में, अपनी काव्य प्रतिभा से उनकी सहायता कर रहे थे। 'कृष्णावतार' इसी आंदोलन का एक अंग था। इसके द्वारा वे कृष्ण भक्ति का प्रचार करना नहीं चाहते थे। वरन् कंस, जरासंध आदि असुर उनके लिए मुगल-शासकों के प्रतीक थे। वे दिखाना चाहते थे कि उनके विरुद्ध वे उसी प्रकार से लड़ रहे हैं, जैसे कृष्ण असुरों के साथ लड़े थे और अपने अनुयायियों को इस धर्मयुद्ध के लिए उत्साहित करने के लिए ही वे कृष्ण की वीर कथाएँ सुनाते या सुनवाते थे।

इस प्रबन्ध में देश-काल की सीमाओं को भूल कर खड़गसिंह अमिटसिंह गजसिंह धनसिंह हरिसिंह अणगसिंह अजबसिंह आदि सिंह' नामधारी योद्धाओं की वीरता का निरूपण एवं सेरखां सदखां दिलवरखां दलेलखां आजादखां आदि मीरों, सयद्दों, सेखों, पठानों के वध का कथन भी रचनाकार के निहित उद्देश्य को ही प्रकट करता है। यहां अमितेस अचलेस जैसे शत्रु-पात्र भी विद्यमान हैं। कवि के कल्पना लोक पर उसका लक्ष्य इतना छाया हुआ है कि उस काल में भी वह 'सिंह' एवं 'खां' पात्रों की सृष्टि कर लेता है। सिंह नामधारी योद्धा यद्यपि कृष्ण के प्रतिद्वन्द्वी भी हैं, फिर भी उनके शौर्य वीरता, धीरता, दृढ़ता, उत्साह, साहस रणोल्लास आदि का ओजस्वी एवं विशद चित्रण किया गया है। केवल खड़गसिंह के युद्ध वर्णन में ३५० छन्द हैं। सभी योद्धा इन वीरों की वीरता की प्रशंसा करते हैं। कृष्ण भी उनके शौर्य प्रदर्शन एवं

---

१ कृष्णावतार २४६०।

साहस से मोहित होकर उनकी प्रशसा करने लगते हैं। शिव, ब्रह्मा इन्द्र कुबेर भी उनके युद्ध कौशल एव भयकर प्रहारो से भयभीत होकर भाग खडे होते हैं। प्रकारान्तर से कवि यहाँ अपने योद्धाओ की वीरता की प्रशसा करके उनके उत्साह को ही बढा रहा है।

युद्ध-कथा—'कृष्णावतार' के वर्णनो की एक विशिष्टता यह है कि कवि ने युद्ध का क्रमिक एव पूर्ण विकास दिखाया है जिसका 'बिचित्र नाटक' (अपनी कथा) म प्राय अभाव है। वहा योद्धाओ के जूझने, उनकी भिडन्त का ध्वन्यात्मक चित्रण ही अधिक हुआ है परन्तु 'कृष्णावतार म कृष्ण के जरासध एव शिशुपाल आदि के साथ अनेक युद्धो का पूरे ब्यौरे के साथ सजीव विशद एव ओजपूर्ण वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ जरासध के साथ युद्धो म पहले कवि उनके कारण पर प्रकाश डालता है। कस के केश पकड कर भूमि पर खीच कर मारने का जो चित्रण कवि ने किया है उससे इस तथ्य को व्यजित किया गया है कि कवि दुष्टो, अत्याचारियो के प्रति किस प्रकार का घृणा भाव रखता है और उसका सहार किस प्रकार करना चाहता है। यथा —

हरि कूदत भै रग भूमहि ते नृप थो सो जहा तहा ही पग धार्यो।
कस लई कर ढाल सभार क कोप भर्यो अस खच निकार्यो।
दउर दहि तिह के तन प हरि फाध गए अत दाव सभार्यो।
केसन ते गहि क रिपु को धरनी पर क बल ताहि पधार्यो। ८५१।
गहि केसन ते पटक्यो धर सो गहि गोडन त तब घीस दयो।
नृप भार हुलास बढयो जीऊ म अति ही पुर भीतर सोर भयो।
८५२।

कृष्ण द्वारा कस को मार दिए जाने पर उसकी पत्नी क्षुब्ध एव दुखी होकर अपने पिता जरासध के पास जाकर अपने पति के कृष्ण द्वारा मारे जाने का समाचार सुनाती है जिसे सुन कर क्रोध से उसके नेत्र लाल हो जाते हैं[1] और वह कृष्ण एव बलराम को मारने का व्रत लेकर अपनी सेना एकत्रित करने म लग जाता है। उसके क्रोध एव प्रतिशोध प्रण की व्यजना इस प्रकार की गई है —

हरि हलधरि सहार हो दुहिता प्रति कहि बैन।
रजधानी ते निसरियो मन्त्र बुलाए सैन। १०३०।

फिर कवि उसकी तयारी और सेना की साज-सज्जा का वर्णन करता है। दूत भेज कर देश-देश स वह अपने सहायक राजाओ को बुला लेता है[2]। हाथी,

१ कोप म आँख सरोज तची —कृष्णावतार १०२९।
२ देस देस परधान पठाए। नरपति सब दसन ते ल्याए।
माद नृपन को कीन जुहारू। दया बहुत धन तिन उपहारू। १०३१।

घाडो रथो और पैदलो की बडी भारी चतुरंगिनी सेना एकत्रित करके, उसे अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रो से सनद्ध-बद्ध कर लेता है। उसकी सेना की साज-सज्जा एव व्यवस्था का वणन इस प्रकार किया गया है —

जरासिंघ बहु सुभट बुलाए। भाति भाति के ससत्र बधाए।
गज बाजन पर पाखर डारी। सिर पर कचन सिरी सवारी।
पाइक रथ बहुते जुरि आए। भूपनि आगे सीस निवाए।
अपनी अपनी मिसल सभ गए। पाति जोर करि ठाढे भए। १०३३।

यहि सना चतुरग जरासध नृप की बनी।
साज्यो कवच निखग धनख बान ल रथ चढयो। १०३४।

इस प्रकार की शस्त्र-सनद्ध तेरह अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध के मारू बाजे बजाते हुए उसके प्रधान राजाओ ने कृष्ण पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया[1]। प्रलय जल के समान फली उस विशाल एव भयकर सेना का अलकारिक वणन कवि ने इस प्रकार किया है —

मानहु काल प्रलै दिन बारध फल पर्यो जल यो दल छायो। १०३५।
नग मानहु नाग बडे तिह मै मछुरी पुनि पैदल की बल जेती।
चक्र मना रथ चक्र बने उपजी कवि के मन मै कही तेती।
है भए बाचन तुलि मनो लहर बहरै बरछी दुत सेती।
सिंध किधौ दल सिंधजरा रहिगी मथुरा तिह मद्ध बरेती। १०३६।

कृष्ण को दूता से जब यह समाचार मिलता है तो वह तत्काल अपने मत्रियो को मत्रणा के लिए बुलाते हैं[2]। जरासघ के इस आक्रमण से उनका वीर भाव जाग्रत हो उठता है और उससे मुकाबला करन के लिए क्रोधित होकर अपने वीरो को ललकारते हुए वे कहते हैं —

तउ जदुबीर कह्यो उठिकै रिस बीच सभा अपने बल सो।
अब को बलवड बडो हम म चलि आगे ही जाइ लरै दल सो।
अपनो बल धार सहार कै दानव दूर करै सभ भूतल सो।
बहु भूत पिसाचन काकनि डाकनि तोख करै पल म पल सो। १०४०।

परन्तु जरासघ भी विश्व विख्यात शूरवीर था और उसके साथ एक विशाल एव शक्तिशाली सेना थी, इसलिए कृष्ण के किसी भी याद्धा की यह हिम्मत नही हुई कि उसका मुकाबला करन के लिए आगे बढे। कई सनिक तो भयभीत

१ कृष्णवतार १०३५।
२ वही १०३७, ३६।

साहस से मोहित होकर उनकी प्रशसा करने लगते हैं। शिव ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेर भी उनके युद्ध कौशल एव भयकर प्रहारो से भयभीत होकर भाग खडे होते हैं। प्रकारा तर से कवि यहाँ अपने योद्धाओ की वीरता की प्रशसा करके उनके उत्साह को ही बढा रहा है।

युद्ध-कथा—'कृष्णावतार' के वणनो की एक विशिष्टता यह है कि कवि ने युद्ध का क्रमिक एव पूण विकास दिखाया है, जिसका 'बिचित्र नाटक' (अपनी कथा) म प्राय अभाव है। वहा योद्धाओ क जूझने, उनकी भिडन्त का ध्वन्या त्मक चित्रण ही अधिक हुआ है, परन्तु 'कृष्णावतार' म कृष्ण के जरासध एव शिशुपाल आदि के साथ अनेक युद्धो का पूरे ब्यौरे के साथ सजीव, विशद एव ओजपूण वणन किया गया है। उदाहरणाथ जरासध के साथ युद्धो म पहले कवि उनके कारण पर प्रकाश डालता है। कस के केश पकड कर भूमि पर खीच कर मारने का जो चित्रण कवि ने किया है उससे इस तथ्य को व्यजित किया गया है कि कवि दुष्टा अत्याचारियो के प्रति किस प्रकार का घृणा भाव रखता है और उसका सहार किस प्रकार करना चाहता है। यथा —

> हरि कूदत ब रग भूमहि त नृप था सा जहा तहाँ ही पग धार्यो।
> कस लइ कर ढाल सभार कै कोप भर्यो अस खच निकार्यो।
> दउर दहि निह के तन प हरि फाध गए अन दाव सभार्यो।
> केसन ते गहि क रिपु को धरनी पर क बल ताहि पधार्यो। ८५१।
> गहि केसन ते पटक्यो धर सो गहि गोडन त तब घीस दयो।
> नृप भार हुलास बढयो जीऊ म अति ही पुर भीतर सोर भयो।
> ८५२।

कृष्ण द्वारा कस को मार दिए जान पर उसकी पत्नी क्षुब्ध एव दुखी होकर अपने पिता जरासध के पास जाकर अपने पति के कृष्ण द्वारा मारे जाने का समाचार सुनाती है जिसे सुन कर क्रोध से उसके नेत्र लाल हो जाते हैं[1], और वह कृष्ण एव बलराम को मारने का व्रत लेकर अपनी सेना एकत्रित करने म लग जाता है। उसके क्रोध एव प्रतिशोध प्रण की व्यजना इस प्रकार की गई है —

> हरि हलधरि सहार हो दुहिता प्रति कहि बन।
> रजधानी त निसरियो मत्र बुलाए सन। १०३०।

फिर कवि उसकी तयारी और सेना की साज-सज्जा का वणन करता है। दूत भेज कर देश-देश स वह अपने सहायक राजाओ को बुला लेता है[2]। हाथी,

---

१ कोप क भीत सरोज तचा —कृष्णावतार १०२६।

२ देस दस परधान पठाए। नरपति सब दसन ते ल्याए।
भाद सुनत को कौन जुहारू। दया बहुत धन तिन उपहारू। १०३१।

घोडो रथो और पदलों की बडी भारी चतुरंगिनी सेना एकत्रित करके, उसे अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रो से सनद्ध बद्ध कर लेता है। उसकी सेना की साज-सज्जा एव व्यवस्था का वणन इस प्रकार किया गया है —

जरासिंध बहु सुभट बुलाए। भाति भाति के ससत्र बधाए।
गज बाजन पर पाखर डारी। सिर पर कचन सिरी सवारी।
पाइक रथ बहुते जुरि आए। भूपति आगे सीस निवाए।
अपनी अपनी मिसल सभ गए। पाति जोर करि ठाढे भए। १०३३।

यहि सैना चतुरग जरासध नृप की बनी।
साज्या कवच निखग धनख बान लै रथ चढयो। १०३४।

इस प्रकार की शस्त्र-सनद्ध तरह अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध के मारू बाजे बजाते हुए उसके प्रधान राजाओं ने कृष्ण पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया[1]। प्रलय जल के समान फली उस विशाल एव भयकर सेना का अलकारिक वणन कवि ने इस प्रकार किया है —

मानहु काल प्रलै दिन बारध फैल पर्यौ जल या दल छायो। १०३५।
नग मानहु नाग बडे तिह मै मछुरी पुनि पैदल की बल जेती।
चक्र मनो रथ चक्र बने उपजी कवि के मन मैं कही तेती।
है भए बोचन तुलि मनो लहरैं बहर बरछी दुत सेती।
सिंघ किधौ दल सिंधजरा रहिगी मथुरा तिह मद्ध बरेती। १०३६।

कृष्ण को दूतो से जब यह समाचार मिलता है तो वह तत्काल अपने मंत्रियो को मत्रणा के लिए बुलाते है[2]। जरासध के इस आक्रमण से उनका वीर भाव जाग्रत हो उठता है और उससे मुकाबला करने के लिए क्रोधित होकर अपने वीरो को ललकारते हुए वे कहते हैं —

तउ जदुबीर कह्यो उठिकै रिस बीच सभा अपने बल सो।
अब को बलवड बडो हम मै चलि आगे ही जाइ लर दल सो।
अपनो बल धार सहार कै दानव दूर करै सम भूतल सो।
बहु भूत पिसाचन कावनि डावनि तोख करै पल म पल सो। १०४०।

परन्तु जरासध भी विश्व विख्यात शूरवीर था और उसके साथ एक विशाल एव शक्तिशाली सेना थी, इसलिए कृष्ण के किसी भी योद्धा की यह हिम्मत नही हुई कि उसका मुकाबला करने के लिए आगे बढे। कई सैनिक तो भयभीत

1 कृष्णवतार १०३५।
2 वही, १०३७ ३६।

होकर भाग जाते तक भी तैयार हो जाते हैं। यहाँ कवि ने अपने सचिव मनोविज्ञान का अच्छा परिचय दिया है।[1] उनकी कायरता, निबलता एवं भय को देखकर वीर-योद्धा कृष्ण उत्तेजित हो उठते हैं और कायरों के मन को सज्जित कर देने वाली सिंह-गर्जना करते हुए कहते हैं —

> जिन्हें नही धीरजु चीच सको सरबे ते डरे रन का मत भाज्यो।
> भाजत की सपत् बिष की जिनि नहीं कौन मरातनि साज्यो
> या हरि जू पुन बोलत उठिया मन को कचि कै जिम केहरी गाज्यो।
> मउर भली उपमा उपजी पुन को गुनकै घन सावन साज्यो।१०४२।
> राजा जिन मरो मन म हमह दाउ भ्रात गु जाइ लरगे।
> बान कमान किपान गदा गहि क रन भीतर जुद्ध करगे।
> जो हम उपरि कोप क आइ है ताहि क प्रसन्न लिउ प्रान हरग।

निर्भीकता धैर्य, साहस, उत्साह आत्म विश्वास एवं दृढ़ता से पूर्ण य शब्द किसी भी सनिक म नये प्राण फूक डालते हैं कायरो म भी अद्भुत साहस उत्पन्न कर देते हैं। ये कृष्ण के वीर-व्यक्तित्व को भी प्रकट करते हैं जो अकेला ही भाई को साथ लेकर तेरह अक्षौहिणी सेना के साथ जूझने को तयार है। गुरु जी भी ऐसे ही कुशल एवं साहसी सेनानायक थे और ऐसे ही ओज पूर्ण शब्दों द्वारा अपने अनुयायियो को शत्रु दल का धर्म-युद्ध म स्वागत करने के लिए उत्साहित किया करते थे।

अब कृष्ण माता पिता से आशीर्वाद लेकर बिना अधिक समय नष्ट किए युद्ध की तैयारी म लग जाते हैं और अपने योद्धाओं को एकत्रित करके शस्त्र सनद्ध कर देते हैं[2]। अपना रथ तयार करवा कर और उसमे कई प्रकार के अस्त्र शस्त्र रखवाकर कटि म निषग कसकर तथा हलधर एव अन्य योद्धाओं को साथ लेकर स्वय भी उत्साह के साथ दैत्यो के विनाशार्थ युद्ध क लिए प्रस्थान करते हैं[3] और निर्भय एव नि शक होकर शत्रु-दल को ललकारते हुए उस पर टूट पडते हैं। यहाँ उनके रोष, अमष, उत्साह तथा साहस आदि की व्यजना इस प्रकार की गई है—

> बाध क्रिपाण सरासन लै चढि स्यदन पै जदुवीर सिधारे। १०५०।
> देखत ही अरि की प्रतना हरिजू मन मो अति कोप भरे।
> सुधवाइ तहाँ रथु जाइ परे घुजनी पति ते नही नकु डरे।
> मनो इन्द्र के बज्र लगे टूट के धरनी गिर सिंग सुमेर परे। १०५१।

---

१ कृष्णावतार १०४० ४२।
२ वही, १०४५।
३ वही १०४८ ४९।

कृष्ण के तीरों की बौछार से बहुत से योद्धा घायल हो गए। बहुत से पदर्तों को उन्होंने मार गिराया, रथियों को विरथी कर दिया। अनेक योद्धा रण-क्षेत्र छोड़कर भाग गए। जिन्होंने भागने में लज्जा अनुभव की और फिर से सामने आकर युद्ध करने लगे वे फिर ब्रजनायक के प्रहार से जीवित घर को न लौट सके[1]। इसके पश्चात् दोनों सेनाएँ आपस में भिड़ पड़ती हैं। यहां योद्धाओं की मारा मारी, प्रहार प्रतिप्रहार ललकार प्रतिललकार, शस्त्र अस्त्रों की कटा-कटी आदि का यथार्थ, ओजपूर्ण एवं सजीव चित्रण किया गया है। एक उदाहरण देखिए —

एक मार डारे एक घाइ छित पारे,
एक त्रसे एक हारे जाने ताकत न तन मैं। १०५४।
इत तैं हरि की उमडी प्रतना उतते उमडयो नृप लै बल सगा।
बान कमान क्रिपान लै पान भिरे कटिगे भटि अंग पतगा।
पत्ति गिरे गजि बाज कहूं-कहूं बीर गिरे तिन के कहू अंगा।
ऐसे गए मिलि आपसि म दल जैसे मिले जमुना अरु गगा। १०६४।

जब चारों ओर से योद्धा उत्साह में भर कर एवं क्रोधित होकर ललकारते हुए युद्ध में कूद पड़े तो रक्त की नदी बहने लगी। तीर मार मार कर कृष्ण ने शत्रु के योद्धाओं के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। अनेक हाथी घोड़े मार गिराए, रथ तोड़ दिये कितने ही पदल सनिकों को ऐसे मार गिराया, जसे सिंह मृगों का सहार करता है। इधर कृष्ण ने ऐसे प्रहार किये, उधर शत्रु-दल उन पर टूट पड़ा। हाथों में बाण, कमान, कृपाण लेकर योद्धा आपस में भिड पड़े और कट कर गिरने लगे। कहीं पत्तों की भांति घोड़े एवं योद्धा कट-कट कर गिर रहे हैं। दोनों दल आपस में ऐसे भिड गए जसे गंगा और यमुना का जल मिलता है।

दोनों दलों की भिड़त का कितना सजीव, यथार्थ, स्वाभाविक एवं संश्लिष्ट चित्रण है। गंगा यमुना के जल से जो समानता दी गई है, उससे भी एक चित्र सामने आ जाता है।

इस प्रकार के युद्ध वर्णन इस प्रबन्ध में अन्यत्र भी मिलते हैं। विशेष रूप से द्वन्द्व युद्ध के अनेक सुन्दर उदाहरण इस रचना में उपलब्ध हैं। कवि समान बल वाले दो योद्धाओं को आमने-सामने लाकर उनके शौर्य, साहस एवं युद्ध-

---

१ श्री जदुबीर सरासन ते बहु तीर छूट छुटके भट घाए।
पैदल मार रथी बिरथी करि सत्र घन जम लोक पठाए।
भाज अनेक गये रन ते जोऊ लाज भरे हरी पै पुनो आए।
ते ब्रिजनाथ के हाथ लगे ग्रह कउ फिर जीवत जान न पाए। १०५२।

कुशलता का परिचय देता है और फिर उनके क्रोध एव रोषयुक्त होकर एक दूसरे पर विभिन्न अस्त्र शस्त्रो से प्रहार प्रतिप्रहार करने का सजीव चित्र अकित कर देता है। बलराम और कृष्ण के जरासध के साथ द्वन्द्व युद्ध का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि होश आने पर बलराम भी क्रोध मे भारी गदा लेकर शत्रु का सहार करने के लिये उसकी ओर बढे। राजा ने जब बलराम को अपनी ओर आते देखा, तो उसका भी क्रोध बढ गया और वह हाथ मे कमान लेकर युद्ध-हेतु सामने आ डटा। बलराम जो गदा लेकर आया था उसे जरासध ने एक ही तीर से काट दिया। गदा के कट जाने पर बलराम ने ढाल और कृपाण सभाली और नि शक होकर शत्रु पर वार करने के लिए दौडा। उसे आते देखकर जरासध गरजते हुए भयकर बाण-वर्षा करने लगा, उसने बलराम की ढाल के सौ टुकडे कर दिये और तलवार के भी अनेक टुकडे कर गिराए। जब कृष्ण ने देखा कि बलराम की गदा खडग, ढाल आदि टूट गये हैं, तो यह सोचकर कि कही जरासध बलराम को मार न दे वह अपना चक्र सभाल कर आगे आए और जरासध को युद्ध के लिए ललकारा। कृष्ण की ललकार सुनकर राजा सामने आ डटा और धनुष तान कर जोर से तीर छोडने लगा। तब कृष्ण ने भी तीर-कमान सभाला और खीच-खीच कर उसके छत्र पर तीर छोडने शुरू किए, जिससे वह खड-खड होकर पृथ्वी पर गिर पडा। ब्रजनाथ ने उसके धनुष को भी अपने तीरो से काट दिया। धनुष टूट जाने पर उसका क्रोध और बढ जाता है और वह खडग लेकर कृष्ण को ललकारता हुआ उनकी सेना पर टूट पडा। तब रण भूमि मे खडग से खडग, ढाल से ढाल ऐसे बजने लगीं मानो दावानल की ज्वाला से वन मे पत्ते और तिनके चटक-पटक रहे हो —

आवत देख हलायुध को सु भया तबही नृप कोप मई है।
जुद्धही कउ समुहाइ भयो निज पान कमान सु तान लई है।
ल्याइओ हुतो चपला सी गदा सर एकही सिउ सोऊ काट दई है। १८५१।

काट गदा जब ऐसे दई तबही बल ढाल क्रिपान सभारी।
धाइ चल्यो अरि मारनि कारनि सक कछ चित मैं न बिचारी।
भूप निहार के आवत को गरज्यो बरखा करि बाननि भारी।
ढान दई सतधा करिक करकी करवार त्रिधा करि डारी। १८५२।

ढान कटी तरवार गई कटि ऐसे हलायुध स्याम निहारयो।
मारत है बल को अबही नृप यो अपने मन माझि बिचारयो।
चक्र सभार मुरार तब कर जुद्ध के हेत चल्यो बल धार्यो।
रे नृप तू भिर मो सग आइ क राम भन इम स्याम पुकारयो। १८५३।

आवत भयो नृप स्याम के सामुहे तउ धनु स्री ब्रिजनाथ सभार्‌यो
कान प्रमान लउ तान कमान सु बान के सत्र कै छत्र पै मार्‌यो।
खड हुइ खड गिर्‌यो छित मैं मनोचद को राहु ने मार बिदार्‌यो। १८५५।
छत्र कटिओ नृप को जबही तबही मन भूपत काप भया है।
स्याम की ओर कुद्रिसटि चितै करि उग्र सरासन हाथ लयो है।
जोर सो खचन लाग्यो तहा नहि ऐंच सकै कर कप भयो है।
लै धनु बान मुरार तबै तिह चाप चटाक दै काटि दयो है। १८५६।

ब्रिजराज सरासन काट दयो तब भूपत कोपु कीयो मन म।
करवार सभार महा बल धार हकार पर्‌यो रिप के गन मैं।
तहा ढाल सो ढाल निपान क्रिपान सो यो अटक खटकेरिन म।
मनो ज्वाल दवानल की लपटै चटकै पटक तृन जिउ बन मै। १८५७।

यहा यह देखा जा सकता है कि कवि ने किस प्रकार उत्तरोत्तर तीव्र होती हुई युद्ध की स्थिति का सजीव चित्र अकित किया है। बलराम और गजसिंह का द्वद्व युद्ध भी काफी सजीव और ओजपूण बन पडा है[1]।

युद्ध भूमि—इसी प्रकार कवि युद्ध भूमि के विकराल एव भयानक वातावरण का भी बडी कुशलता से सजीव एव यथाथ चित्र अकित करता है। युद्ध भूमि मे कोई योद्धा तो घायल हुआ पडा है, जिससे भभक कर खून निकल रहा है, कोई क्षत विक्षत धरा पर पडा है जिसके शरीर को गिद्ध और गीदड नोच रहे हैं। किसी के मुख, होठ और आखो को काग चाचो से कुरेद रहे हैं। किसी के हृदय से जागिनें आतें निकाल कर उछाल रही हैं। कोई प्राण रहित होकर पृथ्वी पर पडा है तो कोई सिर के बिना ही दौड रहा है। किसी की लोथ को हाथ मे उठाकर योद्धा दूसरी ओर फेंक रहे हैं किसी का कबध ही तलवार लिए रणभूमि म घूम रहा है। किसी के पाँव कटे हैं तो किसी के हाथ और किसी की कटी हुई भुजाएँ जलहीन मीन की तरह तडप रही हैं। कही हाथियो की सूँड कटी पडी हैं, कही घोडे मरे पडे हैं। कोई योद्धा युद्ध कर रहा है तो कोई भागा जा रहा है। इस प्रकार युद्ध भूमि मे हलाहली और खलबली मच रही है और वहाँ का वातावरण बहुत ही भयानक और भीषण है। कुछ उदाहरण देखिए —

एक भरे भट स्रोनत सो भभकार धाइ फिरै रन डोलत।
एक परे गिरके धरनी तिनके तन जबक गीधक ठोलत।
एकन के मुखि ओठन आखन काग सु चोचन सिउ टकटोलत।
एकन की उर आतन को कढ जोगन हाथन सिउ भकभोलत। १७८७।

---

1 कृष्णावतार ११२६ ११३४।

एक परे बिनु प्रान धरा इक सीस कटे रन भूमहि धावै ।
एसन की वर लोथ परी कर से गहि अरि क ओर चलावै । १७८६ ।

एक कवध लीए करवार फिर रनभूम के भीतर डोलत ।
धाई पर तिह ओर वली भट जो तिह को ललकार कै बोलत ।
एक परे गिर पाई कटे उठके कहु बाहनि को वल तोलत ।
एक कटी भुज यौं तरप जल हीन जिउ मीन पखिओ झकझोलत ।१७७८।

एक कबध बिना हथियारन रा कहो रन भूम म दउर ।
सु डन ते गजराजन को गहिक न्दरि क बल सो झकझोर ।
भूम गिर अति अस्वन की दुहू हाथन सो गहि ग्रीव मरोर ।
स्यदन के अस्वारन के सिर एक चपेट ही के सग तोर ।१७७५।

कूदत है रन मैं भर एक बुलावत देकर जुद्ध कर ।
इक बान कमान क्रिपानन ते कवि राम कहै न रतीकु डर ।
इक कादर त्रास बढाई चितै रन भूम हुते तज ससत्र टर ।
इक लाज भरे पुन आइ अहै लरिके मरि के गिर भूम पर ।१७७६।

चित्र को अधिक भयानक बनाने के लिए कवि श्रोणित सरिता म अश्व गज रथ आदि के खड खड होकर बहने तथा भूत प्रत भैरवी योगिनी डाकनी, वीर वताल आदि के डकारने, रक्त पान एव नत्य करन तथा शृगाल, काक, कक गिद्ध आदि के मास नोचने आदि का वणन करता है[1] ।

जरासध के साथ कृष्ण के प्रथम युद्ध मे शत्रु सेना के कई योद्धा हताहत हुए और शेष के कृष्ण अथवा बलराम क पौरुष, साहस एव वीरता क सामने पाव न जम सके । कवि ने यहाँ भागती हुई सना का भी वणन किया है[2] । जब सेना भाग कर जरासध के पास पहुचती है तो वह क्रुद्ध और क्षुब्ध होकर अय योद्धाओ को युद्ध के लिए भेजता है और इस प्रकार कृष्ण क साथ उसके अनेक युद्धो का क्रम चलता है । इन सभी युद्धो का कवि ने अत्यत सजीव ओजस्वी एव विशद चित्रण किया है । इनम गडगम अमिटेश अमितम गजसिंह और जरासध आदि क युद्धो को अधिक विस्तार किया गया ह । इस प्रकार हम देखते हैं कि इस प्रबध म युद्ध वणन कवल लाश-वणन तक ही सीमित नही है वरन् कवि न युद्ध-कथाओ के विकास का पूण विवरण प्रस्तुत किया है ।

इन युद्ध-वणनो म कवि न दोनो पक्षो की विजय अथवा पराजय का वणन किया है । जहाँ शत्रु पक्ष की परास्त सना क भयभीत होकर भागन का वणन है,

---

1 कृष्णावतार १८०८, १८५८ १०८० ।
2 कृष्णावतार १०६६ ।

वहां शत्रु प्रहार से कृष्ण के मूर्छित होने[1], उसके सैनिकों की मृत्यु[2] एवं भयभीत होकर भागने[3] का भी वर्णन किया गया है। इसी प्रकार सैनिकों के युद्ध मनोविज्ञान का परिचय देते हुए कवि ने दिखाया है कि राजा के हताहत होने पर उनका उत्साह मंद पड़ जाता है और वे भयभीत होकर भाग खड़े होते हैं। अमिटस जैसे बलशाली राजा की मृत्यु पर उसकी सेना की ऐसी ही दशा होती है (१२५६)। ऐसे शूरवीर के मरने पर शत्रु दल में हाहाकार मच जाना भी स्वाभाविक ही है (१२५८)।

'कृष्णावतार' के युद्ध प्रबन्ध में योद्धाओं की चरित्रगत विशेषताओं का भी विशदता से निरूपण किया गया है। कृष्ण और बलराम की शूरवीरता, धैर्य, निर्भीकता, दृढ़ता, उत्साह, आत्म विश्वास, साहस, औदार्य एवं दया आदि का तो विशदता से चित्रण किया ही है, विपक्षी दल के वीरों के शौर्य, धैर्य, दृढ़ता, उत्साह, साहस, निर्भीकता, रणोल्लास, युद्ध कुशलता, सेना संचालन आदि का भी खुल कर वर्णन किया है। अमिटेस, अमिनेस, खड़गेस, जरासंध, नैपुण्य, जगसिंह आदि वीरों का शौर्य प्रदर्शित करते हुए कवि ने उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। खड़गेस की अद्भुत वीरता का विस्तार से वर्णन करते हुए कवि ने दिखाया है कि ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, यक्ष, गंधर्व कोई भी उसके सामने ठहर नहीं सका[4]। कृष्ण ने मृत्यु को बुलाकर अपने तीर पर बिठाकर उसे मारने के लिए भेजा, मगर वह भी उससे भय खाने लगी। असंख्य योद्धाओं को उस अकेले ने मार गिराया। अर्जुन, भीम आदि सभी पांडव भी उससे हार खा गए। उसकी अद्भुत वीरता से मोहित होकर कृष्ण भी मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा करते हैं।[5] इसी प्रकार अमिटेस के सम्बन्ध में लिखा गया है कि जो भी उसके सामने आता है, उसे वह वीर मार गिराता है। कृष्ण भी उसके सम्मुख ठहर नहीं सके।[6] इसी तरह गजसिंह के सम्मुख भी युद्ध में कोई नहीं ठहर सका।[7] अमिटसिंह तो ऐसा अद्भुत वीर है कि उसे कोई हरा ही नहीं सका।[8] कृष्ण उसकी वीरता की भी अत्यधिक प्रशंसा करते हैं।[9] शक्तिसिंह की वीरता की भी कृष्ण प्रशंसा

१ कृष्णावतार ११७३।
२ वही, ११०७ और १२२७।
३ वही, १०४१-४२, ११६५, १४४३-४४।
४ कृष्णावतार १३९५-१४४८।
५ वही, १३६५-६७।
६ वही १२२१-१२३५।
७ वही ११९८-३४।
८ वही १२४३।
९ कृष्णावतार १२४३।

शूरवीर दिखाया है।[1] अब तक हिंदी साहित्य उद्धव के व्यक्तित्व से कृष्ण के संदेशवाहक के रूप मे ही परिचित था। अक्रूर भी उनको लिवा लेने के लिए ही व्रज गए थे परन्तु यहा वे भी पराक्रमी योद्धा के रूप म सामने आते हैं। हिंदी साहित्य म सभवत सवप्रथम 'कृष्णावतार' म ही ये पात्र योद्धा रूप मे चित्रित हुए हैं।

अनुभाव—अपने पात्रो के वीर चरित्र को और अधिक पुष्ट करने के लिए कवि उनके युद्धगत अनुभावो का भी निरूपण करता है। क्रोधित हो कर जब वे शत्रु को ललकारते हैं, या युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं, तो उनके नेत्र लाल हो जाते हैं[2], मुख पर लाली छा जाती है, वे दात पीसने[3] या होठ काटने[4] लगते हैं और कुशलतापूवक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रो से शत्रु पर द्रुतगति से प्रहार करने लगते है।

अस्त्र शस्त्र—इन युद्धा म कवि ने देश-काल के अनुरूप बरछी कमान, गदा, वाण असि मूसल, कटारी मुगदर चक्र, त्रिशूल करधर कृपाण, सेहथी हल साग बरछा कवच शक्ति निषग आदि अस्त्र शस्त्रो के प्रयोग का उल्लेख किया है। एक स्थान पर आग्नेय (बदूको) के प्रयोग का भी उल्लेख है जो कवि के अपने युग प्रभाव का सूचक है।

रण-वाद्य—रण वाद्यो की भीषण ध्वनि जहा वीरा मे रणोत्साह का सचार करती है वहा वह युद्ध की गति को भी तीव्र करती है और वातावरण को भीषण बनाती है। 'कृष्णावतार' के युद्धो म कवि ने बब, सख दुदुभी, नगारे ढोल, परढे मरुग आदि युद्ध-वाद्या के तुमुल नाद का प्रसगानुकूल वणन करके युद्ध के ओजस्वी और यथाथ वातावरण की सष्टि की है।

छद—इस युद्ध प्रबन्ध म भूषण की भाति मुख्यत कवित्त सवये छद का ही प्रयोग किया गया है। बीच-बीच म दोहा चौपई तोटक तोमर, सोरठा अडिल भूलना आदि कुछ अन्य छद भी थोडी सी सख्या म आए हैं। यहा दशम ग्रन्थ' की अन्य वीर रचनाओ की भाति न तो छद परिवतन अधिक होता है और न ही छद-वविध्य अधिक है। अन्य ग्रन्थो की भाति इसम लघु छदा का प्रयोग भी अधिक नहीं हुआ और न ही सगीत छद आए हैं। कवि ने कवित्त सवया म युद्ध-कथा का ओजपूण चित्रण सफलतापूवक किया है। इसम कनारटी,

---

१ कृष्णावतार ११६१ ६२।

२ 'नव त्रिज भूपत कोप भरि याव्यो नत नचाइ', १७०७।

३ 'यो सुनि के हरि री बतीया भट गान पीस के कोप भरे' १७०२।

४ मार क वीर मन रन म बहु कोप के दातन ओठ चबावे, ११६६।

धुकाधुकी, दुकादुकी आदि का वर्णन अधिक नहीं है। इसलिए लघु छन्द, संगीत छंदों एवं छंद-परिवर्तन की आवश्यकता ही अधिक नहीं पड़ी।

भाषा—इसी प्रकार इस रचना में नादात्मक, कर्ण संयुक्त या दोहरे अक्षरों का प्रयोग अधिक नहीं हुआ। घटाघट सटासट, रटारट आदि प्रयोग, 'रामावतार' या 'अपनी कथा' की अपेक्षा बहुत कम मात्रा में मिलेंगे।[1] यहाँ ध्वन्यात्मक अथवा विकृत रूप में भी शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ। अनुप्रास एवं वीप्सा का प्रयोग अवश्य हुआ है, परन्तु इतना नहीं कि उन्हीं से युद्ध-वातावरण की सृष्टि की जा रही हो और वह युद्ध-कथा पर छा गए हों।

वीरों के हाव अनुभाव, उनकी मनोदशा युद्ध स्थिति अथवा युद्ध के किसी दृश्य को चित्रमय बनाने के लिए कवि ने अलंकार योजना से भी काम लिया है। समानान्तर बिम्ब विधान द्वारा कवि एक सजीव चित्र अंकित कर देता है। छन्द के तीन चरणों में वह उस दृश्य का वर्णन करता है और प्रायः चतुर्थ में उसके समानान्तर बिम्ब खड़ा करके उसे जीवन्त कर देता है।[2] इस रचना की यह शैली 'चण्डी चरित्र उक्ति बिलास' के अधिक निकट है। रामायण में इस प्रकार के अलंकार विधान का अधिक स्थान नहीं है। इन अलंकारों की उपमान योजना सरस, प्रभावपूर्ण, बिम्ब विधायक, सर्वग्राह्य एवं संवेद्य होने के कारण सजीव बिम्ब प्रस्तुत करने में समर्थ है। इसमें अधिकतर उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टान्त, उदाहरण आदि अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि ये अलंकार चित्रात्मक दृश्य विधान में सहायक होकर ही आए हैं, उनसे काव्य का प्रभाव भी बढ़ता है और भाषा में उत्तेजना भी आती है परन्तु रीतिकालीन अलंकरण प्रवृत्ति के अनुसार वे काव्यत्व पर हावी नहीं हो गए हैं। चमत्कार प्रदर्शन मात्र के लिए कवि ने कहीं अलंकारों का प्रयोग नहीं किया। हावों अनुभावों, घटनाओं, दृश्यों के सजीव चित्रांकन में सहायक अलंकारों के कुछ उदाहरण देखिए —

(१) इत ते हरि की उमडी प्रतना उतते उमड्यो निप लै बल संगा।
ऐसे गए मिलि आपसि मै दल जैसे मिलै जमुना अरु गंगा। १०६४।

(२) स्याम के बान लग्यो उर मै गडकै सोअ पखन लउसु गयो है।
मानहु तच्छक को लखिकै खगराज लख्यो गहि लीन गयो है। १०६२।

---

१ कृष्णावतार १०७१, ।

२ वही,१०६०, १०६२, १०६५, १०६६, १०८१ ८३, ११६१, ११५३, १०६०, १०६१, १०६६, ११६३, ११०६ ११, १११८, ११००, ११३०, ११४३ ४५ ।

शूरवीर दिखाया है।[1] अब तक हिन्दी साहित्य उद्धव के व्यक्तित्व से कृष्ण क सन्देशवाहक के रूप म ही परिचित था। अक्रूर भी उनको लिवा लेने के लिए ही ब्रज गए थे, परन्तु यहा वे भी पराक्रमी योद्धा के रूप मे सामने आते है। हिन्दी साहित्य म सभवत सवप्रथम 'कृष्णावतार' म ही ये पात्र योद्धा रूप मे चित्रित हुए हैं।

अनुभाव—अपने पात्रो के वीर चरित्र को और अधिक पुष्ट करने के लिए कवि उनके युद्धगत अनुभावो का भी निरूपण करता है। क्रोधित हो कर जब वे शत्रु को ललकारते हैं या युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं तो उनके नेत्र लाल हो जाते हैं[2], मुख पर लाली छा जाती है वे दात पीसने[3] या होठ काटने[4] लगते हैं और कुशलतापूवक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रो से शत्रु पर द्रुतगति से प्रहार करने लगते है।

अस्त्र शस्त्र—इन युद्धो म कवि ने देश-काल के अनुरूप बरछी कमान, गदा बाण असि, मूसल, कटारी मुगदर, चक्र, त्रिशूल, करधर कृपाण, सेहथी, हल साग बरछा कवच, शक्ति निषग आदि अस्त्र शस्त्रा के प्रयोग का उल्लेख किया है। एक स्थान पर आग्नेय (बदूको) के प्रयोग का भी उल्लेख है जो कवि क अपने युग प्रभाव का सूचक है।

रण वाद्य—रण वाद्यो की भीषण ध्वनि जहा वीरो मे रणोत्साह का सचार करती है वहा वह युद्ध की गति को भी तीव्र करती है और वातावरण को भीषण बनाती है। 'कृष्णावतार' के युद्धो म कवि ने बब, सख, दुदुभी, नगारे, ढोल पन्डे मदग आदि युद्ध-वाद्या के तुमुल नाद का प्रसगानुकूल वणन करके युद्ध के ओजस्वी और यथाथ वातावरण की सष्टि की है।

छन्द—इस युद्ध प्रबन्ध मे भूषण की भाति मुख्यत कवित्त सवये छन्द का ही प्रयोग किया गया है। बीच-बीच मे दोहा चौपई तोटक तोमर सोरठा अडिल झूलना आदि कुछ अन्य छन्द भी थोडी सी सख्या म आए हैं। यहा 'दशम ग्रथ' की अन्य वीर रचनाओ की भाति न तो छन्द परिवतन अधिक होता है और न ही छन्द वविध्य अधिक है। अन्य ग्रन्थो की भाति इसम लघु छन्दा का प्रयोग भी अधिक नहीं हुआ और न ही सगीत छन्द आए हैं। कवि ने कवित्त, सवयो म युद्ध-कथा का ओजपूण चित्रण सफलतापूवक किया है। इनम कटाकटी,

---

१ कृष्णावतार ११६१ ६२।

२ 'नव दिज भूपा कोप भरि दोऊ नन नचाइ' १७०७।

३ 'यो सुनि के हरि जी बलीया मट दात पीस के क्रोध भरे', १७०२।

४ 'मार क बीर घन रन म बहु कोप क दातन ओठ चबावै', ११६६।

धुकाधुकी, दुकादुकी आदि का वर्णन अधिक नहीं है। इसलिए लघु छन्दों, संगीत छंदों एवं छंद-परिवर्तन की आवश्यकता ही अधिक नहीं पड़ी।

भाषा—इसी प्रकार इस रचना में नादात्मक, पश्चर संयुक्त या दोहरे अक्षरों का प्रयोग अधिक नहीं हुआ। घटाघट, सटासट, रटारट आदि प्रयोग, 'रामावतार' या 'अपनी कथा' की अपेक्षा बहुत कम मात्रा में मिलेंगे।[1] यहाँ ध्वन्यात्मक अथवा विकृत रूप में भी शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ। अनुप्रास एवं वीप्सा का प्रयोग अवश्य हुआ है, परन्तु इतना नहीं कि उन्हीं से युद्ध-वातावरण की सृष्टि की जा रही हो और वह युद्ध-कथा पर छा गए हों।

वीरों के हाव अनुभाव, उनकी मनोदशा युद्ध स्थिति अथवा युद्ध के किसी दृश्य को चित्रमय बनाने के लिए कवि ने अलंकार योजना से भी काम लिया है। समानान्तर बिम्ब विधान द्वारा कवि एक सजीव चित्र अंकित कर देता है। छंद के तीन चरणों में वह उस दृश्य का वर्णन करता है और प्रायः चतुर्थ में उसके समानान्तर बिम्ब खड़ा करके उसे जीवन्त कर देता है।[2] इस रचना का यह शैली 'चण्डी चरित्र उक्ति विलास' के अधिक निकट है। रामायण में इस प्रकार के अलंकार विधान का अधिक स्थान नहीं है। इन अलंकारों की उपमान योजना सरस, प्रभावपूर्ण बिम्ब विधायक, सर्वग्राह्य एवं संवेद्य होने के कारण सजीव बिम्ब प्रस्तुत करने में समर्थ है। इसमें अधिकतर उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टान्त, उदाहरण आदि अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि ये अलंकार चित्रात्मक दृश्य विधान में सहायक होकर ही आए हैं उनसे काव्य का प्रभाव भी बढ़ता है और भाषा में उत्तेजना भी आती है परन्तु रीतिकालीन अलंकरण प्रवृत्ति के अनुसार वे काव्यत्व पर हावी नहीं हो गए हैं। चमत्कार प्रदर्शन मात्र के लिए कवि ने कहीं अलंकारों का प्रयोग नहीं किया। हावों, अनुभावों, घटनाओं, दृश्यों के सजीव चित्रांकन में सहायक अलंकारों के कुछ उदाहरण देखिए —

(१) इत ते हरि को उमडी प्रतना उतते उमडयो त्रिप ल बल संगा।
ऐसे गए मिलि आपसि में दल जसे मिले जमुना अरु गंगा। १०६४।

(२) स्याम के बान लग्यो उर में गडके सत्रु पखन लउसु गया है।
मानहु तच्छक को लरिका खगराज लख्या गहि लील गयो है। १०६२।

---

१ कृष्णावतार १०७१, ।

२ वही,१०६०, १०६२, १०६५ १०६६, १०८१ ८३, ११६१, ११५३ १०६०, १०६१, १०६६, ११६३ ११०६ ११ १११८ ११००, ११३०, ११४३ ८५।

(३) छांडि दया रा मैं बरछ धर्नसिंह को कादि के सीस उतारयो।
यों तरफयो धर भूम विर्ष गश मीन सरोवर ते गहि डारयो। १११६।

(४) पार कै पारि भयो फन को तिह की उपमा कवि यो उचरयो है।
मानहु कलिंद्र कै शृंग हुते निरम्यो अहि को फन साप भरयो है।११२३।

(५) मार लयो हरिसिंह जब रनसिंह तब हरि कै ऊपरि धायो।
मानहु नन करी बन म रिस कै म्रिगराज ऊपर आयो। १०६७।

(६) कोप भयो अति ही गर्जसिंह लयो बरछा कर मार चलायो।
पार प्रचंड भयो फन को जमुना छबि म का मन इह आयो।
मानहु गग की धार कै मद्धि उत्तग हुइ कूरम सीस उचायो। ११२६।

(७) इउ सुनि कै बतीया बिज नाइक आप कीउनो कर चक्र संभारयो।
नैंक भ्रमाइकै पा बिम बल के अरि ग्रीव कै ऊपर डारयो।
लागत सीस कट्यो तिहको गिर भूमि पर्यो जसु सिआम उचारयो।
तार कुभार ल हाथ बिर्ष मनो चाक ते कुंभ तुरत उतारयो।

(८) लै करिवार प्रहार कीयो कटियो तिह सीस कबंध लेरयो है।
फेर गिर यो मानो आधी कटै द्रुम दीरघ भू परि टूट परयो है। ११५०।

यहा उपमान-योजना प्राय परम्परा मुक्त एव सवग्राह्य है। उसम जडता, दुर्बोधता एव जटिलता नहीं है। कहीं-कहीं कवि ने अमूर्त साम्य-योजना से भी दृश्य विधान किया है। एक उदाहरण देखिए—

लै बरछी अपनी करि मे नृप गैरतखाँ पर कोप चलाई।
लाग गई तिहके मुख मैं कहि सउन चल्या उपमा ठहराई।
कोप की आग महा बढ़िक उढ़ के हीय कउ मनो बाहिर आई। ११५३।

रस—दशमग्रथ की अन्य वीर रसात्मक रचनाओं की अपेक्षा रस निष्पत्ति की दृष्टि से सबसे अधिक एव सबसे पूर्ण उदाहरण 'कृष्णावतार' मे ही मिलते हैं। यहा स्थायीभाव 'उत्साह' का उद्दीपन, अनुभाव एव विविध सचारियो के सयोग से पूर्ण परिपाक दिखाया गया है। उदाहरण स्वरूप अमतेस युद्ध का प्रसग लीजिए—अणगेस के मारे जाने पर जरासध अमतेस (अचलेस) को कृष्ण से युद्ध के लिए भेजता है। वह बाण, कृपाण, बरछे परसा आदि को लेकर कृष्ण की सेना का सहार करने के लिए दौडता है। कृष्ण का भी वह घर लेता है और गर्व से कृष्ण को ललकारते हुए कहता है— तुमने रणसिंह आदि वीरो को मार गिराया है गर्जसिंह और अणगेस को भी छल से तुम ने मार दिया, मैं जानता हूँ कि तुम धनसिंह तथा अन्य वीरो को मार कर अपने को बडा

वीर समझते हो, मगर इतना समझ लो कि गज तभी तक गरजता हैं जब तक सिंह सामने नहीं आता[1]।" साथ ही वह कस कर कृष्ण पर प्रहार करने लगता है। उसके तीरों से बिंध कर कृष्ण मूच्छित हो जाते हैं और जब तक सुध आती है तो अचलेस उन्हें फिर ललकारता है—"ठहरो भाग कर कहां जाते हो आज मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूंगा[2]।" उसके ये शब्द सुन कर कृष्ण क्रोध में भर कर उसके सामने रथ को ले जाकर खड़ा कर देते हैं, उस पर तीरों की वर्षा करने लगते हैं और शत्रु दल के असंख्य वीरों का सहार कर देते हैं।[3] अचलेस फिर सिंह-नाद करता हुआ गरजता है और अपनी वीरता का बखान करता है।[4] कृष्ण क्रोधित होकर उसे उत्तर देते हैं—'अरे मूर्ख चिड़िया वन मे तभी तक चहकती हैं, जब तक बाज को क्रोध नहीं आता। तू व्यर्थ का अभिमान कर रहा है जब मैं तेरा सिर काट दूंगा तभी तुझे पता चलेगा। अब बकवास बन्द करो और मुकाबला करो'।[5] अचलेस भी क्रोधित होकर उत्तर देता है, क्या इस प्रकार बोले जा रहे हो, कुछ लाज करो। मेरे सामने युद्ध मे खड़े रहो तो जानूं।'[7] यह कह कर वह फिर से तीर छोड़ने लगता है, जिन्हें कृष्ण बीच म ही काट गिराते हैं। कृष्ण भी क्रोधित होकर दामिनी की सी तीव्र गति से शत्रु पर प्रहार करते है। उस दुष्ट का सीस काट कर वे पृथ्वी पर गिरा देते हैं, मानो शार्दूल ने वन म बलपूर्वक सिंह का मार गिराया हो।[8]

इस प्रसंग का विश्लेषण करने पर हम देखते है कि यहां कृष्ण आश्रय हैं, जिनम दुष्टों, असुरों के सहार करने का अतुल 'उत्साह' स्थायीभाव के रूप म विद्यमान है। अमितेस आलम्बन है। आलम्बन के सामने आने पर कृष्ण का स्थायीभाव 'उत्साह सचेत हो जाता है और जब अमितेस शस्त्र धारण कर उनकी सेना का सहार करने लगता है तथा कृष्ण को घेर कर ललकारता है तो उसके य उत्तेजक शब्द एव शस्त्र प्रहार कृष्ण के 'उत्साह भाव को उद्दीप्त करने का काय करते हैं। कृष्ण उसके तीरों से मूर्च्छित हो जाते हैं और मूर्च्छा टूटने पर उसकी गवपूर्ण ललकार सुनकर उनमे अमर्ष, रोष, गर्व आदि सचारियों का

१ कृष्णावतार ११७२।
२ वही, ११७४।
३ वही, ११७५।
४ वही, ११७६।
५ वही, ११७७।
६ वही ११७८।
७ वही ११७९।
८ वही, ११८१।

जन्म होता है जो उनके उत्साह को और भी उत्तेजित करते हैं और तब उनके 'अनुभाव प्रकट होते हैं—वे रथ को उसके सामने ले जाकर खड़ा कर देते हैं उस युद्ध के लिए ललकारते है उस पर तीरो की वर्षा करते हैं और शत्रु दल का सहार कर देते हैं। अचलेस की गर्जना और गर्वोक्तियाँ, उनकी उत्तेजना म आहुति का काम करती हैं और वे क्रोध म भर कर कहते हैं—जब मैं तेरा सिर काट दूँगा तभी तुझे पता चलेगा। दोनो योद्धाओं की ललकार, प्रतिललकार से उनका उत्साह अमर्ष, रोष आदि से युक्त होकर उत्तेजित होता जाता है और अन्त म वे चक्र से उसका सिर काट कर भूमि पर गिरा देते हैं। इस प्रकार यहा 'उत्साह' स्थायीभाव, अमितेस की ललकार से उद्दीप्त होकर अमर्ष, रोष, गर्व आदि सचारियो से पुष्ट होता हुआ रस रूप ग्रहण करता है और अनुभाव स्वरूप कृष्ण की ललकार बाण-वर्षा एव चक्र सचालन आदि कृत्य देखे जा सकते हैं।

उत्तरोत्तर विकास प्राप्त वीर रस की सिद्धि का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यहा दुर्जन असुर सहार के लिए वीरता प्रदर्शन किया गया है, इसलिए उसमे उदात्तता भी है। देवताओ की जयजयकार का उल्लेख करते हुए कवि ने इस ओर सकेत भी किया है —

धनि ही धनि कहै सब देव बडे हरिजू भुअ भार निवारयो।१२१२।

कवि ने अन्यत्र भी उन्हे 'सत सहायक, सत-लायक' कहा है।[1] वीर रस की निष्पत्ति के ऐसे अनेक उदाहरण कृष्णावतार मे देखे जा सकते हैं[2] जहाँ रस के सभी अवयव विद्यमान हैं। अटलसिह गजसिह अरजनसिह अमिटसिह खडगसिह आदि के साथ युद्धो म भी वीर रस का इसी प्रकार उत्तरोत्तर विकास दिखाया गया है। जरासध-कृष्ण युद्ध भी रस-सृष्टि की दृष्टि से उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। यहाँ कृष्ण आश्रय और जरासध आलम्बन है।[3] जरासध ने कृष्ण की सेना के अनेक योद्धा मार गिराए। यह सहार कृष्ण के 'उत्साह' का उद्दीप्त करता है। उसकी गर्वपूर्ण ललकार से अमर्ष, रोष आदि सचारी उत्पन्न होते हैं। क्रोधित होकर जरासध पर टूट पडना और तीर मार कर उसे घायल कर देना अनुभाव' हैं। उसके घिघियाने पर उसे छोड देने म दर्प गर्व आदि सचारी हैं। इस प्रकार यहाँ उद्दीपन सचारी, अनुभाव आदि के सयोग से 'उत्साह स्थायीभाव रस की स्थिति को प्राप्त करता है। ऐसे स्थलो पर 'रनु

---

१ कृष्णावतार १३६६।

२ वही १२३८ १२८७ १३७१ १८४५, १८६१ ६३।

३ वही १०२४ ८२।

सेना का भयभीत होकर भागना भी उत्साह की वृद्धि मे ही सहायक होता है।[1]

सभी अवयवा से पुष्ट वीर रस के इनने उत्कृष्ट उदाहरण 'दशमग्रथ' मे अन्यत्र कम मिलग। इा सभी युद्धा म अगी रस वीर ही है, सहायक रूप म रौद्र, भयानक एव वीभत्स का भी सचरण है।

इस प्रकार हम दखत है कि 'कृष्णावतार' एक उत्कृष्ट प्रबध रचना है। उसमे शृङ्गार वात्सल्य, करुण अद्भुत शान्त आदि अनेक रसा की सृष्टि हुई है, परन्तु मुख्य रस वीर ही है। वीर रस का उसम धम-सस्थापन का उदात्त रूप भी है और कृष्ण रुक्मणी, अर्जुन-सुभद्रा आदि के विवाह प्रसगा मे शृङ्गाराश्रित वीर रस का भी चित्रण हुआ है। इस प्रबध मे भी वीर रस का युद्ध-वीर रूप ही प्रधान है। जरासध का पकड कर बार-बार छोड देने म कृष्ण का दया-वीर रूप भी सामन आता है (१८८१) और कृष्ण द्वारा पुत्र जन्म एव पुत्र पौत्र आदि के विवाहो के अवसर पर दान देन म उनकी दान वीरता भी प्रकट होती है।

४ नीह कलकी (कल्कि) अवतार—'कल्कि अवतार' भी ५८८ छदा का वीर रस प्रधान खण्ड-काव्य है, जिसमे आसुरी शक्तियो पर दवी शक्तियो की विजय दिखाई गई है। कथा के आरम्भ म पृथ्वी पर फले असत्य, अधम, अन्याय, अनाचार अत्याचार व्यभिचार एव पापाचार का विस्तृत वणन करते[2] हुए कहा गया है कि जब धरा इस प्रकार के अधम और पापाचार के भार से दुखी हो गई और अपने उद्धार के लिए अकाल पुरख का ध्यान लगा कर रोने लगी[3] तब आकाशवाणी हुई कि धम की स्थापना एव सतो की रक्षा के लिए कलियुग क अन्त म स्वय 'अकाल पुरख' कलिक रूप म सभल के स्थान पर अवतार धारण करेंगे और दुष्टो का विनाश करके पापाचार को समाप्त करेंगे।[4]

जब चारो ओर इस प्रकार का अनाचार फला हुआ था, तो वहाँ एक ऐसा गुणवान ब्राह्मण भी था जो नित्य शुभ निशुभ आदि दैत्यो की सहारक भगवती

---

१ कृष्णवतार १०६६।

२ निहकलकी अवतार १–१३६।

३ वही, १३६-१३७।

४ वही, १३८ १४१ दीनन की रच्छा निमित्त कर है आप उपाइ।
परम पुरख पावन सदा आप प्रगट है आई।१३६।
पाप समूह विनासन कउ कलिकी अवतार कहावहगे।
तुरकच्छि तुरग सपच्छ बडो करि काढ क्रिपान कपावहगे।१४१।

चडी की उपासना किया करता था।[1] कुचरित्र पत्नी उसकी इस साधना को पसन्द नही करती थी, इसलिए अनेक प्रकार से उसका अपमान करते हुए उसे इस उपासना को छोड देने को कहती है।[2] उसके दुर्व्यवहार के कारण ब्राह्मण उसे घर से निकाल देता है।[3] वह सभल के शुद्र राजा के पास जाकर शिकायत करती है[4]। राजा ब्राह्मण को बुलाकर देवी-उपासना त्यागने को कहता है अन्यथा उसके टुकडे-टुकडे कर दिए जाने की धमकी देता है[5] और जब ब्राह्मण अपनी साधना मे दृढ रहते हुए यह उत्तर देता है कि चाहे उसके शरीर के हजार टुकडे कर दिए जाएँ, वह देवी भक्ति नही छोडेगा[6], तो राजा अपने सेवको को उसको मार देने का आदेश दे देता है और उसके सेवक जब उसका सहार करने के लिए तलवार उठाते हैं, तो वहा भयकर ध्वनि के साथ पृथ्वी के गर्भ म से 'कल्कि अवतार' प्रकट होते हैं।[7] 'कल्कि' के प्रकट होने पर दरबार युद्ध भूमि म बदल जाता है। वहाँ ढाल से ढाल और खडग से खडग टकराने लगती है। महीनो तक युद्ध चलता रहता है। अन्त म कल्कि दुष्ट शुद्र राजा और उसके सभी साथियो को मार कर धरा पर फिर से सुख शांति और धर्म का राज्य स्थापित करते हैं। इस कथा का वातावरण गुरु गोविन्दसिंह की युग-परिस्थितियो का अत्यधिक व्यजक है।

इस लघु प्रबन्ध म भी कवि ने लघु क्षिप्रगति एव सगीत छन्दो म अनुनासिक-युक्त व्यजना, सयुक्ताक्षरो, सगीतात्मक एव ध्वनिपूर्ण शब्दो की सहायता से युद्ध का प्रचण्ड, उग्रतापूर्ण, ओजस्वी एव सजीव चित्रण किया है। यहाँ विचित्र नाटक' (अपनी कथा) की शैली मे योद्धाओ की भिडत अथवा लोह-वर्षण का ही अधिक वर्णन किया गया है। प्रहार प्रतिप्रहार के अनेक उग्रतापूर्ण एव ध्वन्यात्मक चित्र अकित किए गए है। कुछ उदाहरण देखिए —

समानका छद —

> सु कोप ओप के बली। कि राज मडली चली।
> सु प्रसन्न सस्त्र पान ल। विसेख बीर मान क। १९५।

---

१ निहकलकी अवतार १६४ ६५।
२ वही १६६ १६७।
३ वही १६६ ७०।
४ वही, १७०।
५ वही १७३।
६ वही १७२।
७ वही, १७७ १७८।

तोमर छन्द —

भट सस्त्र अस्त्र नचाइ। चित चोप ओप बढाई।
तर कुच्छ अच्छ तुरंग। रण रंग चार उतंग।।१८६।।
कर क्रोध पीसत दांत। गहि आप आपन घात।
भट मरे हक्क हुए वीर। कर कोप छाडत तीर।।१८७।।
कर काप कलि अवतार। गहि पान अजान कुठार।
तनवेध कीन प्रहार। भट जूझ गयो सै चार।।१८८।।

नडपुआ छन्द —

ढढकत ढाल। बबकत बोल।
उच्छकत ताजी। गजकत गाजी।
छुट्टकत तीर। बबक्कत बीर।
ढलक्कत ढाल। उठक्कत ताल।।१६०।।
खिमक्कत खग्ग। घघक्कत धग्ग।
छुटक्कत नाल। उठक्कत ज्वाल।।१६१।।

संगीत भुजगप्रयात छन्द —

कागड्दग बीर जागड्दग जूटे।
तागड्दग तीर छागड्दग छूटे।
सागड्दग सुआर जागड्दग जुझे।
कागड्दग कोपे गागड्दग रूझे।।३६१।।

इस प्रकार ढोलों के बजने, योद्धाओं के गरजने, घोड़ों के उछलने, हाथियों के चिंघाडने, ढाल के खडकने, तीरों के तड़कने, खड्गों के चमकने, कमानों के चटकने आदि के अनेक ध्वनिपूर्ण एवं गत्यात्मक चित्र इस कथा में उपलब्ध हैं।

५ पारसनाथ रुद्रावतार—विष्णु के २४ अवतारों के अतिरिक्त 'दशमग्रन्थ' में ब्रह्मा एवं रुद्र अवतारों की कथाओं का भी निरूपण किया गया है। ब्रह्मावतारों में वीर रस नहीं है, परन्तु रुद्रावतार-कथा भी वीर रस प्रधान है। इस प्रबन्ध में ३५८ छन्द हैं और युद्धों का ओजस्वी एवं सजीव चित्रण हुआ है। कुछ उदाहरण देखिए —

मो तो और बली को है।
जउन मोते जग जीते जुद्ध म करजै।
इन्द्र चन्द उपपाद को पल मद्धि जीतो जाइ।
अउर ऐसो को भयो रण मोहि जीत आइ।।१०६।।

मारु —

या कहि पारस रोस बढायो ।
दु दम ढोल बजाई महा धुनि समुहि सयासनि धायो ।
असत्र ससत्र नाना विधि छडडे त्राण प्रयाग चलाए ।
सुभटि सनाहि पत्र चल दल ज्यो मानन बेध उडाए ।१०७।

काफी —

चहु दिस मारु सबद बजे ।
गहि गहि गदा गुरज गाजी सब हट रण म्रान गजे ।
बान कमान त्रिपान सहथी त्राण प्रयाग चलाए ।
जानुक महामेघ बदन ज्या विसिख ब्यूहि बरसाए ।
चटपट चरम बरम सब वेधे सटपट पार पराने ।
घटपट सरब भमि के बधे नागन लाग मिधान ।
झमकत खडग काठ नाना विधि सथी सुभट चलावत ।
जानुक प्रगट बाट सुर पुर की नीके हिरदै दिखावत ।१०६।

इस कथा मे युद्ध-वर्णन के लिए छप्पय, रुमाल, तोटक नराज आदि छदो के अतिरिक्त कुछ पदा की भी रचना हुई है और उनमे युद्ध का ओजस्वी चित्रण करने म कवि सवथा सफल रहा ह ।

निष्कर्ष—उपयु क्त विवेचन से स्पष्ट है कि इन अवतार-कथाओ म यद्यपि विविध मानवीय मनोवेगा की अभिव्यजना हुई है तथापि प्रधानता वीरता (उत्साह) की ही है । 'कृष्णावतार रामावतार' एव कल्कि अवतार' इस दृष्टि स प्रमुख रचनाएँ हैं । वस मत्स्य, वराह नृप, दत्तात्रय आदि अन्य कथाओ म भी इन भावा की सुन्दर व्यजना हुई है । कवि ने पौराणिक वीर कथाओ का वेगपूर्ण एव ओजस्वी चित्रण करके अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनका समुचित उपयोग किया है । निबल और असहाय हिन्दू जनता म नया जीवन डालने के लिए तथा उनके सुप्त क्षात्रिमत्व को जगाने के लिए ही ये वीर-कथाएं लिखी गई हैं । ऐसी उत्साहपूर्ण एव साहसी कथाएँ किसी भी व्यक्ति म अपने धम और देश की रक्षा के लिए धमयुद्ध करने का अतुल उत्साह और साहस उत्पन्न कर सकता हैं ।

'कृष्णावतार' को छोडकर अन्य सभी अवतार-कथाओ म योद्धाओ की भिडन्त क वर्णन का ही अधिक महत्त्व दिया गया है । 'चण्डी-चरित्र' म भी इसी की प्रधानता है । कारण स्पष्ट है, युद्ध भूमि म योद्धाओ के उत्साहपूर्वक जूझने तीक्ष्ण प्रहार प्रतिप्रहार करने तथा उनकी गवपूर्ण उक्तियो या ललकार प्रतिललकार का वर्णन ही युद्ध के लिए प्रस्तुत वीरो म उत्साह और साहस का

सचार कर सकता है। कथा का ब्यौरेवार विस्तृत वणन रस-परिपाक की दृष्टि से भले ही समीचीन हो, परन्तु वह एकदम तलवार लेकर युद्ध भूमि मे कूदने के लिए तैयार करने मे असमथ होता है। युद्ध भूमि की विकरालता, भयानकता, एव भीषणता का चित्रण भी कवि इसीलिए करता है, क्योकि ऐसे वणन भी वीरो के उत्साह को उत्तेजित करते है। वस्तुत, जिस उद्देश्य से ये अवतार कथाएँ लिखी गई थी, उसकी पूर्ति के लिए उन्ह उपयुक्त एव उपयोगी रूप म ढाल कर प्रस्तुत करने मे कवि सफल रहा है।

६ चण्डी चरित्र उक्ति विलास—

७ चडी चरित्र द्वितीय—[1]गुरु गोबिन्दसिह ने जिस प्रकार चौबीस अवतारो की कथा का वणन किया है, उसी प्रकार 'चण्डी चरित्र उक्ति विलास', 'चण्डी चरित्र (द्वितीय)' तथा चण्डी दी वार' म, 'मार्कण्डेयपुराण' के आधार पर चण्डी की कथा का भी निरूपण किया है। इन रचनाओ म उन्होने चण्डी के मधु-कैटभ, महिषासुर, धूम्रलोचन, चड मुण्ड, रक्तबीज, शुभ, निशुभ नाम के आठ दत्यो से भयकर युद्ध, उनके विनाश और देवी की विजय का अत्यन्त ओजस्वी और चित्रात्मक वणन किया है। 'धमयुद्ध' म शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए देवी से वर माँगते हुए गुरु जी कहते हैं —

> देहि शिवा वर मोहि इहै सुभ करमन त कबहू न टरो।
> न डरो अरि सा जब जाइ लरो निसचे कर अपनी जीत करो।
> अरु सिख हो अपने ही मन का इह लालच हउ गुन तउ उचरो।
> जब आव की अउध निदान बने अत ही रन म तब जूझ मरो।
>
> (चण्डी चरित्र, पृ० ९९)

इन प्रसगो को देखकर कुछ विद्वानो ने उन्ह देवी का उपासक कहा है। अत इससे पूव कि हम 'चण्डी चरित्र के काव्य सौष्ठव पर विचार करें, गुरूजी की देवी भावना पर सक्षेप मे विचार कर लेना असगत न होगा। गुरु गोबिन्द सिंह ने अकाल उस्तुति मे कई स्थानो पर अवतारो देवी-देवताओ उनकी मूर्तियो आदि की उपासना और होम, यज्ञ आदि आडम्बरपूर्ण-कर्मों का कडा विरोध किया है, फिर देवी की इस प्रकार से स्तुति करने और उसके पौराणिक आख्यान का इतना विशद वणन करने का क्या कारण हो सकता है यह प्रश्न बना रहता है।

वस्तुत, जिस समय गुरु गोविन्दसिंह का प्रादुर्भाव हुआ, हिन्दू जनता धर्मान्ध औरगजेब के आतक, अत्याचार, अनीति और अन्याय के कारण दुखी,

1 इन रचनाओ के सम्बन्ध मे कुछ विद्वानो का मत है कि ये गुरु गोविंदसिह द्वारा रचित नही हैं, वरन् उनके किसी दरबारी कवि की रचनाएँ हैं।

प्रथम काल सभ जग को ताता । ता ते भयो तेज विख्याता ।
सोई भवानी नाम कहाई । जिन सगरी यह सिसटि उपाई ।२६।

वह भवानी 'अकाल पुरुष' से भिन्न पृथक व्यक्तित्व नही रखती । 'विचित्र नाटक' म भी उन्होने कहा है —

सरब काल है पिता अपारा । देवि कालका मात हमारा । १४ । ६ ।

यहा भी कवि का कालका से अभिप्राय महाकाल अथवा 'अकालपुरुष' स ही है, उससे पृथक किसी देवी विशेष से नही । इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए बिचित्र नाटक का वह उद्धरण प्रस्तुत किया जा सकता है जहा उन्होने कालका को स्वय 'महाकाल कालका' कहा है, यथा —

तह हम अधिक तपस्या साधी । महाकाल कालका अराधी । १ ।

अत स्पष्ट है कि गुरु जी की देवी भावना किसी भी भाति गुरमत विरोधी नही है । उनकी देवी असुरो की सहारक और सतो की रक्षक है वह अकाल पुरुष है । वस्तुत गुरु गोविंदसिंह की शक्ति भावना उनकी युग चेतना राष्ट्रीय जागरण सास्कृतिक सचेतना और उजागर वीर भावना की परिचायक है और सिक्खमत की आध्यात्मिक चिंतनधारा क सवथा अनुकूल है ।

युद्ध वणन—इन खण्ड काव्यो मे कवि ने योद्धाओ की भिडन्त अथवा प्रहार प्रतिहार का वण न अधिक किया है । चण्डी चरित्र म युद्ध के गतिशील और ध्वनिपूण चित्र ही प्रस्तुत किए गए हैं जिनसे युद्ध की भीषणता प्रकट होती है । चण्डी चरित्र उक्ति बिलास मे भी भिडन्त का चित्रण ही अधिक हुआ है तथापि यहा युद्ध-कथा के अन्य पक्षो पर भी सक्षप म प्रकाश डाला गया है । इस रचना म कवि न युद्ध चित्रो के अतिरिक्त असुरो के अत्याचारो से दुखी देवताओ द्वारा देवी स अपन परित्राणाथ प्राथना करने, देवी के युद्ध के लिए निकलने असुर सेना के प्रस्थान शत्रु सेना क भागने शु भ निशु भ द्वारा वीरो को दान देकर युद्ध के लिए भेजे जाने शत्रुओ द्वारा अपन सनिको की मत्यु पर मत्रणा करने आदि के साथ वीरो के उत्साह उनकी गर्वोक्तियो एव कायरो क त्रास आदि का भी वण न किया है । युद्ध म प्रयुक्त तीर तलवार, मुगदर त्रिशूल गदा, बरछी आदि अस्त्र शस्त्रो एव शखो घटो, बब आदि रणवाद्यो का भी उल्लेख हुआ है । इन रचनाओ से युद्ध सम्बन्धी कुछ उदाहरण देखिए —

सेना प्रस्थान —

कोप क सु भ निसु भ चढे धुनि दुदभ की दसहू दिस धाई ।
पाइक अग्र भए मधि बाज रथी रथ साज के पाति बनाई ।

मातै मतग के पुजन ऊपरि सुदर तुग धुजा फहराई।
सक्र सो जुद्ध के हेत मना धरि छाडि सपच्छ उडे गिरराई।१७५।
धूर उडी तव ता छिन मैं तिह के कनका पग सा लपटाए।
ठउर अडीठ के जै करिके कहि तेज मनो मन सीखन आए।१७६।
कोप चढे रन चण्ड अउ मुड सु ले चतुरगन सन भली।
तव सेस के सीस धरा लरजी जनु मधि तरगनि नाव हली।
खुर बाजन धूर उडी नभि को कवि के मा ते उपमा न टली।
भव भार अपार निवारन को धरनी मनो ब्रह्म के लोक चली।१०८।

आसुरी सेना के प्रस्थान का कितना यथार्थ एव काव्यमय चित्रण है। शुभ निशुभ की सेना चलने से शेष के सिर पर से पृथ्वी हिलने लगी। धूल इतनी उडी मानो पृथ्वी ही आकाश को उडी जा रही हो अथवा भूधर इन्द्र से युद्ध करने को पक्षी बने उडे जा रहे हो।

गर्वोक्ति—शुभ निशुभ की एक उत्साहपूर्ण गर्वोक्ति देखिए —

इउ सुनिके उनि के मुख ते तव बोलि उठिओ करि खग्ग सोभारे।
इउ हनिहाँ बरचण्डि प्रचण्डि अजा बन मैं जिम सिंह पछारे।१७३।
(चण्डी चरित्र उक्ति०)

युद्ध—धूम्रनैन, रक्तबीज तथा मधुकैटभ आदि के साथ देवी के युद्धों के कुछ उदाहरण देखिए।

दोहा —रकतबीज दल साजकै उतरे तट गिरराज।
स्रवण कुलाहल सुनि सिवा करिओ जुद्ध को साज।१२८।

सोरठा —हुई सिंहहि असवार गाज गाज कै चण्डका।
चली प्रवल असधार रकतिबीज के बध निमित।१२९।

कोप कै चण्ड प्रचण्ड चढी इत क्रुद्ध कै धूम्र चढे उत सनी।
बान क्रिपानन मार मची तव देवी लई बरछी कर पैनी।
दउर दई अर के मुख मैं कटि ओठ दए जिमि लोह की छैनी।
दात गगा जमुना तन सिआम सो लोहू बहिओ तिन माहि त्रिबेनी।
(वही, ९७)

चण्डी चरित्र उक्ति विलास' मे कवि ने अधिकतर सवैया छन्द का प्रयोग किया है। इसमे युद्ध-कथा का वर्णन सजीव तो बन पडा है, परन्तु उसमे उतनी तीव्रता, प्रचण्डता, उग्रता और भीषणता नही है। 'चण्डी चरित्र द्वितीय',

शक्ति का तो अनेक स्थलो पर निरूपण हुआ है। रक्तबीज तथा अन्य दत्या के हनन हेतु जब क्रुद्ध देवी के मस्तक से काली प्रकट होती है, तो उसके प्रचण्ड एव भयानक रूप का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है —

> दैतन के बध कारन को निज भाल ते जुआल की लाट निकासी।
> काली प्रतच्छ भई तिहते रन फत रही भयभीर प्रभासी।
> मानहु सिंग सुमेर को फोरिक धार परी धर प जमुना सी।
> मेरु हलिओ दहलिओ सुरलोकु दसो दिस भूधर भाजत भारी।१६५।
> चानि परिओ तिह चउदहि लोक म ब्रह्म भइओ मन मैं भ्रम भारी।
> धिआन रहिओ न जटी सुफटी धर यो बलि क रन मैं किलकारी।१६६।

(चण्डी चरित्र उक्तिविलास)

काली के प्रकट होने से चारो ओर आतक और भय छा जाता है और जब वह रण भूमि म किलकारती है तो मेरु हिल उठे सुरलोक दहल गया, पवत भागने लगे, चौदहो लोको म हलचल मच गई। गुरु गोबिन्दसिंह एसी ही भार तीय-वीरशक्ति को जागृत करना चाहते थे जिससे यवन शासक दहल उठें और चारो ओर आतक छा जाए। इस रचना म कवि के अदभुत काव्य-कौशल एव रचना-नपुण्य का परिचय मिलता है। इस कविता का प्रत्येक छन्द प्रत्येक चरण मुर्दों मे भी जीवन की ज्वाला दहकाने वाला और कायरो म वीर-दप का सचार करने वाला है। श्रोता अथवा पाठक के अग जोश से फडकने लगते हैं और उनका खून उबलने लगता है।

८ शस्त्रनाममाला—यह एक ऐसी रचना है जिसम गुरु गोविन्दसिंह के समय म प्रयुक्त होने वाले सभी अस्त्र शस्त्रो का विशद् वणन किया गया है। इसम युद्ध शस्त्रो का केवल विवरण मात्र नही है वरन उन योद्धाओ की वीरता का भी वणन है जिन्होने युद्ध मे इनका प्रयोग किया था। साथ ही इन्ह प्रयुक्त करने वाले देवताओ का भी उल्लेख किया गया है। आरम्भ म शस्त्रो का मानवी करण हुआ है और अन्त मे अकाल पुरुष की भी अस्त्र शस्त्रो के रूप मे वदना की गई है। यथा —

> तुमी गुरज तुमही गदा तुम ही तीर तुफग।
> दास जान मोरी सदा रच्छ करो सरवग।

'अकाल पुरुष स्वय असुर-सहारक दुष्ट विदारक एव पाप विनाशक है, इस लिए कवि ने अन्य रचनाओ म उनका 'असिपाणि' (रामावतार ८६३) 'असिधुज (प० चरित्र ४०५) असिधारी (शब्दहजारा ४) 'ससत्रपाणे, असत्रपाणे (जापु ५२), खडगपाने (विचित्रनाटक २।३), खडग धार (वही १८५) बाणपाण (वही १।८८), आदि के रूप म स्मरण किया

है। इसीलिए गुरु जी के लिए भी खडग असि, बाण, गुरज गदा आदि अस्त्र शस्त्र उपासना के केन्द्र ह क्योकि वे भी इन्ही की सहायता से दुष्टो, अत्याचारियो, अधर्मियो का विनाश कर रहे थे। 'बिचित्र नाटक' म उन्होने इसीलिए खड्ग की जयजयकार की है (जय तग)। 'शस्त्रनाममाला' म इनके पौराणिक महत्व की प्रतिष्ठा करके वे अपन योद्धाम्रो म इनके प्रति अनुराग और धमयुद्ध के लिए उमग उत्पन्न कर सके। इस प्रकार 'शस्त्रनाममाला' को भी वीर-काव्यो के अन्तगत स्थान दिया जा सकता है।

निष्कर्ष—इन सभी रचनाम्रो के विवेचन से स्पष्ट है कि 'दशम ग्रथ' मे सकलित सभी वीर-गाथा मे युद्ध का विस्तृत और विशद चित्रण हुआ है यद्यपि उसम योद्धाम्रो की भिडन्त अथवा प्रहार प्रतिप्रहार की ही प्रधानता है और उसका अत्यन्त ओजस्वी, उग्रतापूण प्रचड एव भीषण वणन करने म कवि पूण सफल रहा है। द्वन्द्व युद्ध दो दलो के पारस्परिक युद्ध एव एक योद्धा के अनेक सनिको से जूझने के चित्रण मे भी उसे पूण सफलता मिली है फिर भी सेना-प्रस्थान, युद्ध भूमि की विकरालता योद्धाम्रो की वीरता एव शौय प्रदशन तथा उनकी उत्साहपूण उक्तियो आदि का भी सजीव चित्रण किया गया है।

सेना प्रस्थान—रामावतार कृष्णावतार, चण्डीचरित्र आदि मे अनेक स्थानों पर कवि न सेना प्रस्थान का आनदपूण एव सजीव चित्रण किया है जिस पर इन प्रबधो के विवेचन म प्रकाश डाला जा चुका है। इनके अतिरिक्त मत्स्य (४१-४२), नरनारायण (१७ २८), वराह (५-१४), परसराम (१२-१३) रुद्र (१८ ३२), जालधर (१५ २०), सूय (१० १८) आदि मेभी सेना प्रस्थान का चित्रण हुआ है।

युद्ध भूमि—युद्ध भूमि मे जूझने हुए वीरो टकराते हुए अस्त्र शस्त्रा, शरीर का बेधन हुए तीरो हताहत होते हुए योद्धाम्रो भीषण ध्वनि करते हुए रण वाद्या, रक्तरजित भूमि, टूटते हुए खोल, ढुलकते हुए ढोल, कट कटकर गिरते हुए अगा, बिखरे हुए टोपी कटे हुए धड फटे हुए सिर से बहते हुए रुधिर की छीटे, कटी हुई परन्तु फडकती हुई भुजाम्रो, रक्त और धूलि म लोट पोट होते हुए क्षतविक्षत अथवा घायल चिघाडते हुए हाथियो, फिसे हुए शिरस्त्राण, योद्धा रहित अश्व घोडा शस्त्रा से उठते हुए अग्नि पुज कराहते हुए सनिको, भागती हुई भीड घूम कर चक्कर खाकर गिरते हुए जवाना, टूटे हुए अस्त्र शस्त्रो, मास, मज्जा और रुधिर पर लपकते हुए काग, कको एव गिद्धो चीत्कार करती हुई डाकनियो रुधिर पान करती हुई जोगनियो नाचते हुए वीर-बतालो आदि का विशद् वणन किया गया है।

'युद्ध भूमि म इन भयावह विकराल और वीभत्स, दृश्यो की सजीवता

प्रदान करने के लिए उन्होंने उनकी तुलना टकराते हुए पर्वतों, फुंकारते हुए सर्पों अमावस्या में जलते हुए मसानों, ढहते हुए कगारों, महाज्वाल में भस्मीभूत होते हुए तृण पुंजों, उच्छृंखल जलनिधि आदि से की है।"

कहीं-कहीं कवि युद्ध की विकरालता से हमारी दृष्टि हटाकर उसे शिशु मुख सुकोमल सिंहल राजकुमारी, शीतल बयार मृदुल पुष्पदल आदि कोमल सादृश्यों की ओर खींच लेता है। इस सम्बन्ध में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि युद्ध के विकराल एवं भयावह दृश्य कायरों को भले ही युद्ध से विमुख करते हों शूरवीरों में तो ऐसे भीषण युद्ध ही आकर्षण और उल्लास उत्पन्न करते हैं। दूसरे अप्रस्तुत विधान वही श्रेष्ठ होता है जो धर्म साम्य अथवा गुण-साम्य पर आधारित समानान्तर बिम्ब द्वारा समुचित प्रभाव उत्पन्न करने में सहायक हो। ऐसे उपमानों की दशम ग्रंथ में कमी नहीं है जो युद्ध के भीषण और भयावह वातावरण को यथार्थ और सजीव रूप देने में सहायक हुए हैं। परन्तु जहाँ कहीं कवि ने भयावह और विकराल दृश्यों के लिये कोमल उपमानों का प्रयोग किया है वहां इस कवि की निर्बलता ही समझनी चाहिए क्योंकि ऐसे उपमान प्रतिकूल प्रभाव की सृष्टि करते हैं। बरछी लगने पर मुख से रुधिर बहने की सिंहलद्वीप की पदिमनी के कंठ में लगे पान की पीक से तथा मांस भक्षण पर झपटते हुए गिद्धों की पाठशालाओं में पाठ पढ़ते हुए बालकों से तुलना वैसी ही असंगत और अनुपयुक्त है जैसी केशव द्वारा प्रभात के लाल वर्ण की रक्त सनी खोपड़ी से समानता दिखाना।

रण वाद्य, अस्त्र शस्त्र, तनत्राण, शिरस्त्राण एवं वाहन आदि—दशम ग्रंथ की वीर रसात्मक रचनाओं में युद्ध-वर्णन में प्रयुक्त होने वाले संख घंटा ढोल, मृदंग, नफीरी तबला, बीन, नगारे परढे आदि रण-वाद्यों बरछी कमान, गदा, बाण, असि कृपाण मूसल हल चक्र मुगदर त्रिशूल करधर सहथी, सांग बरछा शक्ति निषंग तुपक तुफंग कवच टोप आदि अस्त्र शस्त्रों एवं हाथी कई जातियों के घोड़ों रथ और सिंह आदि वाहनों का वर्णन हुआ है। कवि ने कहीं कहीं मदिरा, अफीम, भांग आदि के नशों का भी उल्लेख किया है।

युद्ध विधि—इसी तरह इन युद्धों में शस्त्र संचालन की अनेक विधियों एवं युद्ध-कला की अनेक युक्तियों पर भी प्रकाश डाला गया है जिसका उद्देश्य अपने अनुयायियों को युद्ध विद्या में पारंगत करना था। कवि ने तत्कालीन युद्ध विद्या की ओर कई स्थानों पर संकेत किया है। पहाड़ी राजा काठ के किले बनाकर आक्रमणकारी से लड़ते थे युद्धों में तोप का बड़ा महत्त्व था कई बार रात के समय आकस्मिक आक्रमण कर दिया जाता था हाथियों से दुर्ग द्वार तुड़वाने का काम लिया जाता था युद्ध के समय सेनाओं के भाग में

पडने वाले गावो को लूट लिया जाता था, युद्ध मे साथ न देने वाले लोगो को अपने स्थान से निकाल दिया जाता था, लूट का माल बहुधा सैनिको मे बाट दिया जाता था, शत्रु नगर का घेरा डाल कर भीतर के लिए मार्ग बन्द करके उनके लिए अन्न सकट उत्पन्न कर देते थे उस ओर जाने वाले जल स्रोतो को या तो रोक दिया जाता था, या उसमे मुर्दा पशु फेक कर उसके जल को खराब कर दिया जाता था इत्यादि। कुछ स्थानो पर सैनिक मनोविज्ञान का भी अच्छा परिचय दिया गया है।

युद्ध वर्णन के प्रसगो म शूरवीरो के व्यक्तित्व, उनकी आकृति डील डौल, साज सज्जा वेश भूषा, वीरता, साहस आदि के वर्णन का महत्वपूर्ण स्थान है। 'दशम ग्रथ' म युद्ध कार्य मे व्यस्त योद्धाओ के व्यक्तित्व का अकन सूक्ष्मता और सजीवता से किया गया है। ऐसे स्थलो पर कवि ने निष्पक्षता से काम लिया है और शत्रुपक्ष के वीरो की वीरता की भी प्रशसा की है। उनके शौर्य सैनिक शक्ति, युद्ध-कुशलता अस्त्र शस्त्रो के प्रहार आदि का वर्णन विशदता से हुआ है। इससे रचना म एक कलात्मक सौन्दर्य भी आ गया है क्योकि समान बल वाले योद्धाओ के युद्ध ही घोर सग्राम के रूप म सामने आते है और इसस वर्णन म सजीवता, स्वाभाविकता एव ओज का उचित प्रदर्शन हो सकता है। इसी प्रकार जहा विपक्षी दल के कायरो के भय और उनकी पराजय का वर्णन किया है, वहाँ स्वपक्ष के वीरो की कमजोरियो पर भी प्रकाश डाला गया है।

'दशम ग्रथ' के अनुसार सच्चा शूरवीर भूमि मे हँसते हँसते प्राणो की बलि दे देता है। ऐसा वीर वीर-गति पाकर विमानारूढ होकर स्वर्ग को जाता है और अप्सराए उसका वरण करती हैं। नि सन्देह यह भावना वीरो को धर्मयुद्ध के लिए उत्साहित और प्रेरित करती है। लेकिन 'दशम ग्रथ म ऐसे भी वीर हैं जिन्हे विमानारूढ होकर स्वर्ग जाने की अपेक्षा रणभूमि म निरन्तर लडते रहना अधिक रुचिकर है। मारू बाजे उन्हे सुहावने लगते हैं और युद्ध क्षेत्र उनके लिए क्रीडा क्षेत्र है।

ऐसे वीरो को कवि ने स्वामि भक्ति एव धर्म भावना से प्रेरित होकर युद्ध भूमि म उत्साह स लडते दिखाया है तथा उनके वीरोचित रणोल्लास की भी व्यजना की है। युद्ध के लिए वे उत्कठित दिखाई पडते हैं। किसी प्रतिद्वन्द्वी के न मिलने पर वे रुद्र से यही वर मागते हैं कि कोई उनके साथ जूझने वाला हो। इन वीरो का व्यक्तित्व वहाँ और भी निखर आता है, जब वे मृत्यु उपरान्त भी युद्ध करना चाहते है। हाथ पाव कट जाने पर भी लडते रहते है, सिर के कट जाने पर कबध ही खडग चलाते रहते हैं।

दशम ग्रथ मे वीरता के उच्च आदर्श के भी दर्शन होते है। शत्रु पक्ष के

प्रदान करने के लिए उन्होंने उनकी तुलना टकराते हुए पर्वतों, फुंकारते हुए सर्पों, अमावस्या में जलते हुए मसानों, दहकते हुए अंगारों, महाज्वाल में भस्मीभूत होते हुए तृण पुंजों, उच्छृंखल जलनिधि आदि से की है।

कहीं-कहीं कवि युद्ध की विकरालता से हमारी दृष्टि हटाकर उसे शिशु मुख, सुकोमल सिंहल राजकुमारी शीत वयार मृदुल पुष्पदल आदि कोमल सादृश्यों की ओर खींच देता है। इस सम्बन्ध में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि युद्ध के विकराल एवं भयावह दृश्य कायरों को भले ही युद्ध से विमुख करते हों पर वीरों में तो ऐसे भीषण युद्ध ही आकर्षण और उल्लास उत्पन्न करते हैं। दूसरे, अप्रस्तुत विधान वही श्रेष्ठ होता है जो धर्म-साम्य अथवा गुण-साम्य पर आधारित समानान्तर बिम्ब द्वारा समुचित प्रभाव उत्पन्न करने में सहायक हो। ऐसे उपमानों की दशम ग्रंथ में कमी नहीं है जो युद्ध के भीषण और भयावह वातावरण को यथार्थ और सजीव रूप देने में सहायक हुए हैं। परन्तु जहाँ कहीं कवि ने भयावह और विकराल दृश्यों के लिए कोमल उपमानों का प्रयोग किया है वहाँ इसे कवि की निर्बलता ही समझना चाहिए क्योंकि ऐसे उपमान प्रतिकूल प्रभाव की सृष्टि करते हैं। बरछी लगने पर मुख से रुधिर बहने की सिंहलद्वीप की पद्मिनी के कंठ में लगे पान की पीक से तथा मांस भक्षण पर झपटते हुए गिद्धों की पाठशालाओं में पाठ पढ़ते हुए बालकों से तुलना वैसी ही असंगत और अनुपयुक्त है जैसी केशव द्वारा प्रभात के लाल वर्ण की रक्त सनी खोपड़ी से समानता दिखाना।

रण-वाद्य, अस्त्र शस्त्र, तनत्राण, शिरस्त्राण एवं वाहन आदि—दशम-ग्रंथ की वीर रसात्मक रचनाओं के युद्ध-वर्णन में प्रयुक्त होने वाले संख घंटा ढोल मृदंग, नफीरी, तबला, बंब, नगारे परदे आदि रण वाद्यों बरछी कमान, गदा बाण असि कृपाण मूसल हल चक्र, मुद्गर त्रिशूल करधर सैंहथी, साग बरछा शक्ति निषंग तुपक, तुफंग कवच टोप आदि अस्त्र शस्त्रों एवं हाथी, कई जातियों के घोड़ों रथ और सिंह आदि वाहनों का वर्णन हुआ है। कवि ने कहीं कहीं मदिरा अफीम, भांग आदि के नशों का भी उल्लेख किया है।

युद्ध विधि—इसी तरह इन युद्धों में शस्त्र संचालन की अनेक विधियों एवं युद्ध-कला की अनेक युक्तियों पर भी प्रकाश डाला गया है जिसका उद्देश्य अपने अनुयायियों को युद्ध विद्या से पारंगत कराना था। कवि ने तत्कालीन युद्ध विद्या की ओर कई स्थानों पर संकेत किया है। पहाड़ी राजा काठ के किले बना कर आक्रमणकारी से लड़ते थे युद्धों में तोप का बड़ा महत्व था कई बार रात के समय आकस्मिक आक्रमण कर दिया जाता था, हाथियों से दुर्ग द्वार तुड़वाने का काम लिया जाता था, युद्ध के समय सेनाओं के मार्ग में

पडने वाले गावो को लूट लिया जाता था, युद्ध मे साथ न देने वाले लोगो का अपना स्थान से निकाल दिया जाता था, लूट का माल बहुधा सनिको मे बाट दिया जाता था शत्रु नगर का घेरा डाल कर भीतर के लिए माग ब द करके उनके लिए अन्न सकट उपन्न कर लेते थे, उस ओर जाने वाले जल स्रोतो को या तो रोक दिया जाता था, या उसमे मुदा पशु फक कर उसके जल को खराब कर दिया जाता था इत्यादि। कुछ स्थानो पर सनिक मनोविज्ञान का भी अच्छा परिचय दिया गया है।

युद्ध वणन के प्रसगो म शूरवीरा के व्यक्तित्व, उनकी आकृति, डील डौल, साज-सज्जा, वेश भूषा, वीरता, साहस आदि के वणन का महत्वपूण स्थान है। दशम ग्रथ मे युद्ध काय म व्यस्त योद्धाओ के व्यक्तित्व का अकन सूक्ष्मता और सजीवता से किया गया है। ऐसे स्थलो पर कवि ने निष्पक्षता से काम लिया है और शत्रुपक्ष के वीरो की वीरता की भी प्रशसा की है। उनके शौय, सनिक शक्ति, युद्ध कुशलता अस्त्र शस्त्रो के प्रहार आदि का वणन विशदता से हुआ है। इससे रचना म एक कलात्मक सौदय भी आ गया है क्योकि समान बल वाले योद्धाओ के युद्ध ही घोर सग्राम के रूप मे सामने आते है और इससे वणन म सजीवता स्वाभाविकता एव ओज का उचित प्रदशन हो सकता है। इसी प्रकार जहा विपक्षी दल के कायरो के भय और उनकी पराजय का वणन किया है, वहा स्वपक्ष के वीरो की कमजोरियो पर भी प्रकाश डाला गया है।

'दशम ग्रथ' के अनुसार सच्चा शूरवीर भूमि मे हँसते हँसते प्राणो की बलि दे देता है। ऐसा वीर वीर-गति पाकर विमानारूढ होकर स्वग को जाता है और अप्सराए उसका वरण करती हैं। नि सन्देह यह भावना वीरों को धमयुद्ध के लिए उत्साहित और प्रेरित करती है। लेकिन 'दशम ग्रथ' म ऐसे भी वीर हैं जिन्ह विमानारूढ होकर स्वग जाने की अपेक्षा रणभूमि म निरन्तर लडते रहना अधिक रुचिकर है। मारू बाजे उन्हें सुहावने लगते हैं और युद्ध क्षेत्र उनके लिए क्रीडा क्षेत्र है।

ऐसे वीरो को कवि ने स्वामि भक्ति एव धम भावना से प्रेरित होकर युद्ध भूमि म उत्साह से लडते दिखाया है तथा उनके वीरोचित रणोल्लास की भी व्यजना की है। युद्ध के लिए वे उत्कठित दिखाई पडते हैं। किसी प्रतिद्वन्द्वी के न मिलने पर वे रुद्र से यही वर मागते हैं कि कोई उनसे साथ जूझने वाला हो। इन वीरो का व्यक्तित्व वहाँ और भी निखर आता है, जब वे मृत्यु उपरान्त भी युद्ध करना चाहते है। हाथ पाव कट जाने पर भी लडते रहते हैं, सिर के कट जाने पर कबध ही खड्ग चलाते रहते हैं।

दशम ग्रथ' म वीरता के उच्च आदश के भी दशन होते हैं। शत्रु पक्ष के

वीरो के मूर्छित हो जाने पर परपक्ष के वीर स्वय उन्हे जलपान भी करवाते है। इतना समय देते है कि स्वस्थ होकर वे उनके साथ पूरी शक्ति से फिर युद्ध कर सकें।

'दशम ग्रथ' म कही-कही योद्धाओ की बाह्य एव स्थूल विशिष्टताओ का भी वणन किया गया है और साथ ही उनके अफीम भाग, मदिरा आदि के सेवन स मस्त होने का भी उल्लेख हुआ है। इन रचनाओ म गुरु गोविन्दसिंह, दुर्गा जरासध राम रावण, मेघनाथ कृष्ण, बलराम, अमितेस, खडगेस गजसिह अमतेस आदि अनेक वीरो के सबल और सशक्त व्यक्तित्व उभर कर सामने आते हैं। प्रत्येक रचना मे वीरो का जैसा व्यक्तित्व प्रकट हुआ है इस पर पीछे प्रकाश डाला गया है।

गर्वोक्तियाँ एव अनुभाव—शूरवारो की उत्साहपूण उक्तिया एव अन्य अनुभाव उनके व्यक्तित्व को सजीवता प्रदान करते है और उनके शौय, साहस दृढता, निश्चय निर्भीकता आदि की व्यजना करते है। 'दशम ग्रथ मे बहुद स वीरो की ओजस्वी गर्वोक्तिया और जोश के साथ शस्त्र सचालन, दात पीसने, मुख एव नेत्रा के लाल होने आदि अनुभवो के दशन होते हैं। अपनी कथा' रामावतार 'कृष्णावतार तथा 'चण्डी चरित्र' के विवेचन में इन पर विस्तार स प्रकाश डाला गया है। कृष्णावतार इस दृष्टि से एक विशिष्ट रचना है।

छद— दशम ग्रन्थ' म युद्धो के गतिशील वेगपूण एव ध्वनि युक्त चित्र प्रचुर परिमाण म उपलब्ध होते हैं। युद्ध के दृश्यो को तीव्रता वग एव क्षिप्रता प्रदान करने के लिए कवि ने अनेक विधियो से काम लिया है। उन्होन युद्ध *वणन म छन्द-वविध्य एव छन्द परिवतन का प्रयोग भी किया है। उदाहरणाथ* चण्डी चरित्र द्वितीय' के सत्रह पृष्ठीय युद्ध वणन मे सत्रह छन्दो का प्रयोग हुआ है और सत्तावन बार छन्द परिवतन हुआ है। इस छन्द-वविध्य एव छन्द परिवतन से एक तो युद्ध वणन मे एकरसता तथा नीरसता नही आने पाती, दूसरे अनुकूल छन्द के प्रयोग से युद्ध की गति का सही चित्रण हो जाता है। यहा कवि ने युद्ध का भापण और विकराल वातावरण प्रस्तुत किया है, इसलिए क्षिप्रगति एव लघु छन्दो का प्रयोग अधिक किया है। दीघ छन्दो म भी आन्त रिक तुक के प्रयोग से तीव्रता लाने का प्रयत्न किया गया है। युद्ध की ध्वनि *को चित्रित करन के लिए उन्होंने सगीत छन्दो का प्रयोग किया है। दशमग्रथ* म युद्ध की मन स्थिति-व्यापार तथा वेग के अनुकूल समय एव उपयुक्त छन्दा का प्रयोग कवि की काव्य-क्षमता का परिचायक है।

इन युद्धो म प्रयुक्त छन्द हैं—दोहा चौपई सोरठा, कवित्त, सवया, रसा वल, भुजगप्रयात पद्धरि, अडिल, तामर तोटक मधुभार, रुआवल नवनामक,

त्रिभगी, नराज सगीत भुजगप्रयात, सगीत मधुभार, सगीत नराज बलीविद्रुम त्रिगदा तिडका, त्रिणणिण, अजबा, अक्वा, दोहा आदि 'रामावतार' के विशिष्ठ छन्द है, जिनमे युद्ध की भीषण गति एव ध्वनि का चित्रण हुआ है। 'कृष्णावतार' तथा 'चण्डी चरित्र उक्ति विलास' मे सवये एव कवित्त से ही अधिक काम लिया गया है।

भाषा—भाषा पर कवि का असाधारण अधिकार है। उसकी भाषा मे शक्ति एव सामर्थ्य है और शैली प्रवाहपूर्ण और प्रभावशाली है। एक कुशल जडिया की भाति शब्दो का चयन करके उन्हे उपयुक्त स्थान पर जड कर वह अनुकूल वातावरण की सृष्टि कर लेता है। उसके पास शब्दो का अक्षय भण्डार है। पजाबी, फारसी सस्कृत, अरबी, अपभ्रश, डिंगल आदि के प्रचलित एव अप्रचलित शब्दो का प्रयोग करते समय भी वह सकोच नही करता। यदि वे शब्द युद्ध का अभीप्ट वातावरण निर्मित करने मे सहायक हो। उसकी वर्ण योजना अक्षर विन्यास तथा शब्द चयन ऐसा है कि युद्ध की गति एव ध्वनि के अनुकूल वातावरण उपस्थित हो जाता है। आवश्यकता अनुसार कवि शब्दो के रूप या उच्चारण को विकृत करके या नये अर्थों मे उनका प्रयोग कर लेता है। (असिपाणि, खडगकेतु, असिधुज, कालिका आदि का प्रयोग ब्रह्म के अर्थ मे किया गया है)। अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने के लिए वह अक्षरात्मक शब्दो एव मिश्रित विशेषणो का भी प्रयोग किया गया है। (चण्डीचरित्र द्वितीय २४८, रामावतार ५६६)।

इसके अतिरिक्त अनुकरणात्मक शब्दो, अनुप्रासयुक्त वर्ण-योजना सयुक्ताक्षरा अनियमित अनुनासिक, टकारात्मक या रकारात्मक व्यजनो ध्वनि शब्दो एव सगीत शब्दो के प्रयोग से वीररसानुकूल ओजगुण द्वारा भी युद्ध वर्णन मे सजीवता और ओज लाने का प्रयत्न किया गया है। प्रत्येक शब्द से युद्ध के अनुकूल ध्वनि निकलती है और तदनुरूप भाव का प्रेषण होता है। कवि ने बहुधा ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है, जिनसे खडगो की खटाखट कटारो की कटाकट, तोपो की तडातड तथा धौसो की धुकार सुनाई पडती है। शब्दो की ध्वनि युद्ध के वातावरण के अनुरूप है। प्रत्येक शब्द अपने मे एक ध्वनि चित्र लिए हुए है। त्रिडडिड त्रिडडिड, ढ्रिडडिड, भ्रिडडिड, टिडडिड झिडडिड आदि शब्द किसी विशेष अर्थ के सूचक नही है[1], फिर भी अपनी ध्वनि से वे एक

---

१ त्रिडडिड ताजी। ब्रिडडिड बाजी।
हिटडिड हाथी। भिटडिड साथी।
द्रिडडिड बाण। झिडडिड जवान।
छिडडिड छोरे। चिडडिड जोरे। ४१२। पृ० ५६६।

वीरो के मूर्छित हो जान पर परपक्ष के वीर स्वय उन्हे जलपान भी करवाते है। इतना समय देते है कि स्वस्थ होकर वे उनके साथ पूरी शक्ति से फिर युद्ध कर सकें।

दशम ग्रथ म कहीं-कही योद्धाग्रो की बाह्य एव स्थूल विशिष्टताग्रो का भी वणन किया गया है ग्रौर साथ ही उनके ग्रफीम, भाग, मदिरा ग्रादि के सेवन से मस्त होने का भी उल्लेख हुग्रा है। इन रचनाग्रो म गुरु गोविन्दसिंह, दुर्गा, जरासध, राम, रावण, मेघनाथ कृष्ण, बलराम ग्रमिटेस, खडगेस गजसिंह, ग्रमतेस ग्रादि ग्रनक वीरो के सबल ग्रौर सशक्त व्यक्तित्व उभर कर सामने ग्राते हैं। प्रत्येक रचना म वीरो का जैसा व्यक्तित्व प्रकट हुग्रा है, इस पर पीछे प्रकाश डाला गया है।

गर्वोक्तियाँ एव ग्रनुभाव—शूरवीरो की उत्साहपूण उक्तिया एव ग्रन्य ग्रनुभाव उनके व्यक्तित्व को सजीवता प्रदान करते है ग्रौर उनके शौय, साहस दृढता, निश्चय, निर्भीकता ग्रादि की व्यजना करते है। 'दशम ग्रथ' म बहुत स वीरा की *ग्राजस्वी गर्वोक्तियो ग्रौर जोश के साथ शस्त्र सचालन, दात पीसने,* मुख एव नेत्रा के लाल होने ग्रादि ग्रनुभवो के दशन होते हैं। ग्रपनी कथा रामावतार, कृष्णावतार तथा 'चण्डी चरित्र के विवेचन में इन पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। कृष्णावतार इस दृष्टि से एक विशिष्ट रचना है।

छन्द—'दशम ग्रन्य' म युद्धो के गतिशील वेगपूण एव ध्वनि युक्त चित्र प्रचुर परिमाण म उपलब्ध होते हैं। युद्ध के दृश्या को तीव्रता वेग एव क्षिप्रता प्रदान करने के लिए कवि ने ग्रनेक विधियो से काम लिया है। उन्होंने युद्ध वणन म छन्द-वविध्य एव छन्द परिवतन का प्रयोग भी किया है। उदाहरणाथ 'चण्डी चरित्र द्वितीय' के सत्रह पृष्ठीय युद्ध वणन म सत्रह छन्दो का प्रयोग हुग्रा है ग्रौर सत्तावन बार छन्द परिवतन हुग्रा है। इस छन्द-वविध्य एव छन्द परिवतन से एक तो युद्ध वणन म एकरसता तथा नीरसता नही ग्राने पाती, दूसरे, ग्रनुकूल छन्द के प्रयोग से युद्ध की गति का सही चित्रण हो जाता है। यहा कवि ने युद्ध का भीषण ग्रौर विकराल वातावरण प्रस्तुत किया है इसलिए क्षिप्रगति एव लघु छन्दा का प्रयोग ग्रधिक किया है। दीघ छन्दो मे भी ग्रान्तरिक तुक के *प्रयोग से तीव्रता लाने का प्रयत्न किया गया है।* युद्ध की ध्वनि को चित्रित करने के लिए उन्होंने सगीत छन्दा का प्रयोग किया है। दशमग्रथ म युद्ध की मन स्थिति-व्यापार तथा वेग के ग्रनुकूल समथ एव उपयुक्त छन्दा का प्रयोग कवि की काव्य-क्षमता का परिचायक है।

इन युद्धो म प्रयुक्त छन्द हैं—दोहा चौपई सोरठा, कवित्त सवया रसावल, भुजगप्रयात, पद्धरि, ग्रडिल, तामर तोटक मधुभार रूग्रावल, नवनामक,

त्रिभगी, नराज, सगीत भुजगप्रयात सगीत मधुभार, सगीत नराज, बलीविद्रुम त्रिगदा, त्रिडका, त्रिणणिण, अजबा, अक्वा, दोहा आदि 'रामावतार' के विशिष्ठ छद है जिनमे युद्ध की भीषण गति एव ध्वनि का चित्रण हुआ है। 'कृष्णाव तार तथा चण्डी चरित्र उक्ति विलास' म सवैये एव कवित्त से ही अधिक काम लिया गया है।

भाषा—भाषा पर कवि का असाधारण अधिकार है। उसकी भाषा म शक्ति एव सामर्थ्य है और शली प्रवाहपूण और प्रभावशाली है। एक कुशल जडिया की भाति शब्दा का चयन करके उन्हे उपयुक्त स्थान पर जड कर वह अनुकूल वातावरण की सृष्टि कर लेता है। उसके पास शब्दा का अक्षय भण्डार है। पजाबी फारसी, सस्कृत, अरबी, अपभ्रश डिंगल आदि के प्रचलित एव अप्रचलित शब्दो का प्रयोग करते समय भी वह सकोच नही करता। यदि वे शब्द युद्ध का अभीष्ट वातावरण निर्मित करने म सहायक हो। उसकी वण योजना, अक्षर विन्यास तथा शब्द चयन एसा है कि युद्ध की गति एव ध्वनि के अनुकूल वातावरण उपस्थित हो जाता है। आवश्यकता अनुसार कवि शब्दा के रूप या उच्चारण को विकृत करके या नये अर्थों म उनका प्रयोग कर देता है। (असिपाणि, खडगकेतु असिधुज, कालिका आदि का प्रयोग ब्रह्म के अथ म किया गया है)। अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने के लिए बहु अक्षरात्मक शब्दा एव मिश्रित विशेषणो का भी प्रयोग किया गया है। (चण्डीचरित्र द्वितीय २८८, रामावतार ५६६)।

इसके अतिरिक्त अनुकरणात्मक शब्दा, अनुप्रासयुक्त वण-योजना, सयुक्ता क्षरा, अनियमित अनुनासिक टकारात्मक या रकारात्मक व्यजना ध्वनि शब्दो एव सगीत शब्दो के प्रयोग से वीररसानुकूल ओजगुण द्वारा भी युद्ध वणन म सजीवता और ओज लाने का प्रयत्न किया गया है। प्रत्येक शब्द से युद्ध के अनुकूल ध्वनि निकलती है और तदनुरूप भाव का प्रेषण होता है। कवि न बहुधा ऐसे शब्दा का प्रयोग किया है जिनसे खडगा की खटाखट, कटारा की कटाकट, तोपो की तडातड तथा धौंसो की धु कार सुनाई पडती है। शब्दा की ध्वनि युद्ध के वातावरण के अनुरूप है। प्रत्येक शब्द अपने म एक ध्वनि चित्र लिए हुए है। त्रिडडिड, ब्रिडडिड, द्रिडडिड, भ्रिडडिड, ट्रिडडिड छिन्डिड आदि शब्द किसी विशेष अथ के सूचक नही हैं[१], फिर भी अपनी ध्वनि से वे एक

---

१ त्रिडडिड ताजी । ब्रिडडिड बाजी ।
हिडडिड हाथी । भ्रिडडिड साथी ।
द्रिडडिड बाण । छिडडिड जवान ।
छिडन्डि छोरे । छिडडिड जोरे । ४१२ । पृ० ५६६ ।

विशिष्ट वातावरण की सृष्टि करते हैं। ऐसे शब्दों से युक्त छन्दों के उच्चारण में भी युद्धोत्साह की वृद्धि होती है। वस्तुतः कवि चित्रात्मक बिम्ब विधायक ध्वन्यात्मक एवं भाव-व्यंजक शब्दों के प्रयोग में अति निपुण है। डॉ० हरिभजन सिंह का कथन है कि 'गुरु गोविन्दसिंह ने ध्वनि शब्दों अथवा संगीत शब्दों का आविष्कार किया है जो अर्थ की नहीं अनुभव का प्रेषण करते हैं। उन्होंने संगीत

उत्प्रेक्षाओं का कमाल देखा जा सकता है।[1] गढ़ के पनारे के समान रक्त प्रवाह[2] तिल के समान शत्रु को पीसना[3], पृथ्वी को फाड़ कर निकलने वाले बीज की भांति तीर का शरीर को बेध कर निकलना[4], मक्खन की मटकी फूटने पर उठने वाले मक्खन के छींटों की तरह फूटे हुए सिर में से गूदा के छींटें उठना[5] नक्षत्र अथवा वृक्ष के पत्ते या फल एवं लट्टू की भांति सिर का टूट गिरना आदि अनेक ऐसे चित्र हैं जहाँ कवि ने अनूठी उपमान-योजना प्रस्तुत की है। दामिनी सी चमक, बादल सी गर्ज, वर्षा सी तारों की बौछार आदि में भी प्रेषणीय उपमान देखे जा सकते हैं। पौराणिक घटनाओं प्रकृति, वन पर्वत पवन वर्षा, घन, पुष्प, कृषि व्यापार, रीति रिवाज विवाह, होली आदि से सम्बद्ध विम्ब इस ग्रन्थ में आए हैं। परन्तु कहीं भी अलंकार अभिव्यक्ति पर हावी नहीं होने पाए। वे सर्वत्र रसात्कर्ष में सहायक होकर ही आए हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'दशम ग्रन्थ' का अधिकांश भाग वीर रस से पूर्ण है और कवि ने इसमें युद्धों का अत्यन्त सजीव, गतिशील, वर्णपूर्ण एवं ओजस्वी चित्रण किया है। वीरों के उत्साह और उल्लास की अभिव्यंजना भी कुशलतापूर्वक की गई है। इस ग्रन्थ का युद्ध वर्णन रासो ग्रन्थों की टक्कर का है। हिन्दी का कोई भी अन्य ग्रन्थ इस दृष्टि से उसका मुकाबला नहीं कर सकता।

इस ग्रन्थ में वीरता का स्वर इतना प्रबल है कि काम, क्रोध आदि मानसिक विकारों की व्यंजना भी दुर्जेय शत्रुओं के रूप में की गई है जिन पर विजय प्राप्त करने के लिए शील, सन्तोष, संयम, विवेक आदि शूरवीरों की सेना का सहारा लेना पड़ता है। गुरु गोबिन्दसिंह ने इन वीरों के आकार, उनके वाहन एवं युद्ध का भी अनुपम वर्णन किया है। इसी प्रकार युद्धेत्तर प्रसंगों में भी युद्ध के वातावरण का प्रभाव लक्षित होता है। शृंगार वात्सल्य करुणा आदि से सम्बन्धित प्रसंगों में अप्रस्तुत विधान रूप में वीरता का भाव परिव्याप्त है। होली नृत्य मदिरालय आदि के रूप में भी युद्ध का वर्णन कई स्थानों पर किया गया है।

---

१ इस सम्बन्ध में चंडी चरित्र उक्ति विलास, के १६१, १६६ १८० १८३ एवं कृष्णावतार के ११०५ १३७२, १३८५ १४०८ १४११ १४१७ १४२३, १४२८, १४५०, १४३२ १४४० १५१२ १५२० १५४८, १५८७ १५८८ १५६७ १६०८ आदि छन्द देखे जा सकते है।

२ चंडी चरित उक्ति विलास १८७।

३ वही, १६६।

४ वही १८३।

५ वही १८०।

वस्तुत 'दशमग्रथ उदात्त वीर भाव से अनुप्राणित एक प्राणवान रचना है। जिस युग मे रसिक्तापूण शृगारिक एव चमत्कारपूण काव्य रचना हो रही थी, और कवि अपने आश्रयदाता सामतो की प्रशसा मे ऐसे वीर काव्य लिख रहे थे, जिनम न युग चेतना का प्रकाश है और न ही राष्ट्रीय भावना का सस्पश है, उसी युग म बृहत्तर सामाजिक चेतना, राष्ट्रीय एव सास्कृतिक जागरण की भावना से ओतप्रोत 'दशमग्रथ जसे वीर रस प्रधान काव्य ग्रथा का लिखा जाना एक महत्वपूण उपलब्धि है। इस रचना म क्षत्रियत्व का तेज और स्वाभिमान है तथा देश, धम एव लोकरक्षा का भाव निहित है। इस ग्रथ का ऐतिहासिक सास्कृतिक एव साहित्यिक दृष्टि से इतना अधिक महत्व है कि जब भी हिन्दी साहित्य के इतिहास का पुनमूल्याकन होगा तो उसकी वीर काव्य परम्परा म 'दशमग्रथ का महत्वपूण स्थान होगा और जिस काल म यह ग्रथ लिखा गया उसे शृगारकाल, 'रीतिकाल' अथवा अलकारकाल का नाम देते समय हम फिर से सोचना पडेगा कि क्या पजाब के हिन्दी साहित्य की भक्ति एव वीरता की प्रबल धारा की उपेक्षा करके इस युग के साहित्य के साथ न्याय किया जा सकता है। 'दशमग्रथ' के पश्चात् भी पजाब म वीर काव्या की एक समृद्ध एव सशक्त परम्परा रही है और वीर भावना, सास्कृतिक चेतना एव काव्य शली की दृष्टि से दशमग्रथ' का ही उन पर अधिक प्रभाव है।

५

दशमग्रन्थ-दर्शन

इसम कोई सदेह नही कि गुरु गोबिन्दसिंह एक साहसी शूरवीर और यशस्वी योद्धा थे और भारतीय तथा पाश्चात्य इतिहासकारो ने उनके इस रूप को काफी सीमा तक समुचित मूल्याकित किया है, परन्तु जहा उनका रूप युद्धवीर इन राजनतिक इतिहास लेखको की चर्चा का विषय रहा है, वहा उनका भक्त अथवा सत एव दार्शनिक रूप उनके द्वारा प्राय उपेक्षित ही रहा है। हमे यह नही भूलना चाहिये कि गुरु गोविन्दसिंह पहले एक धर्म प्रचारक अथवा धर्मसस्थापक थे और बाद मे योद्धा। उनका दूसरा रूप पहले का ही एक साधन था इस धरातल पर अपने आगमन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं —

मैं हौ परम पुरख को दासा। देखत आयो जगत तमासा।
हम इह काज जगत यौ आए। धरम हेत गुरदेव पठाए।
जहा तहा तुम धरम बिथारो। दुष्ट देखियनि पकरि पछारो। (पृ० ५७)

गुरु नानक ने पजाब म निर्गुण भक्ति प्रधान जिस सिक्खमत की नीव डाली थी परवर्ती गुरुओ ने उसी को विकसित एव समृद्ध किया। गुरु गोविन्द सिंह इसी परम्परा के अन्तिम एव प्रतिष्ठित विद्वान सत थे। उन्होंने वीर भावना का सचार कर सिक्ख अनुयायियो को एक नई दिशा अवश्य दी, परन्तु उनकी धार्मिक अथवा आध्यात्मिक भावना मूलरूप म पूर्व गुरुओ के ही अनुरूप थी। उनके साहित्य म दार्शनिक तत्व अथवा आध्यात्मिक विचार बहुत ही पुष्ट प्रौढ एव सुस्पष्ट हैं। उन्होने आध्यात्मिकता पर विशदता से प्रकाश डाला है यद्यपि उनके विचार विशुद्ध ज्ञानमार्गियों की भाति क्रमबद्ध और सगठित रूप म प्रकट नही हुए। उनके दार्शनिक विचार और आचार सम्बन्धी दृष्टिकोण दशम ग्रथ म अनेक स्थलो पर मोतियो की भाति बिखरे हुए हैं। सुरुचि एव सुदृष्टि से यदि उन्हे सकलित किया जाए, तो एक बहुत ही सुदर माला बन सकती है। मुख्य रूप से 'जाप', अकाल उस्तुति वचित्र नाटक (अध्याय २४),

'चौबीस अवतार' (१ ३४ छन्द) 'रामावतार' (छन्द २०४ २०५ ६६६, ६६४, ७०६ ७०७, ८५६) 'कृष्णावतार' (४३४, २४६१ २४६२, २६६६) ब्रह्मावतार, (१ १६) रुद्रावतार (७६ १०६), 'ज्ञान प्रबोध' शब्द हजारा 'श्री मुखवाक सवये' आदि में उनके ब्रह्म, जीव आत्मा सृष्टि जगत माया अवतार कर्म, ज्ञान विरक्ति, योग भक्ति आदि से सम्बन्धित विचार देखे जा सकते हैं।

अकाल उस्तुति इस दृष्टि से एक महत्वपूर्ण रचना है। इसमें गुरु जी ने ब्रह्म के स्वरूप सृष्टि रचना आत्मा एवं जीव के स्वरूप और स्थिति जगत की नश्वरता और क्षण भंगुरता, आवागमन आदि पर विशदता से प्रकाश डाला है। ज्ञान, कर्म, योग विरक्ति आदि के स्वरूप और दर्शाते हुए भक्ति के महत्व का प्रतिपादन किया गया है और बाह्याचारों मिथ्याडम्बरों पाखंड पूर्ण साधनाओं का खंडन करते हुए सहज और शुद्ध आचरण मानवतावादी भावना और नाम-स्मरण पर बल दिया है।

गुरु गोबिन्दसिंह को भारतीय अध्यात्म और विशेष रूप से 'आदि ग्रंथ' का विशद अध्ययन कियाथा और साथ ही उन्होंने अपने युग में प्रचलित विभिन्न मतों एवं सम्प्रदायों की विचारधारा और साधना पद्धतियों का भी सूक्ष्म निरीक्षण किया था। ऐसा कहा जाता है कि उन्हें सम्पूर्ण आदिग्रंथ और भक्त वाणी कण्ठस्थ थी और भाई मनीसिंह से उन्होंने गुरुवाणी स्वयं बोलकर लिपि बद्ध कराई थी। इसीलिये 'अकाल उस्तुति' पर आदिग्रंथ का इतना गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है।

ब्रह्म का स्वरूप

गुरुओं के ब्रह्म सम्बन्धी विचार बहुत कुछ अद्वैतवादियों के अनुरूप है। उन्होंने ब्रह्म को निर्गुण, निराकार अलख अगोचर निरंजन अभेद अव्यक्त माना है और साथ ही उसे सर्वव्यापक सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान कर्ता पुरख दाता दयालु कृपालु स्वामी कहकर उनके सगुण रूप को स्वीकारते हुए उसकी भक्ति का निरूपण किया है हालांकि उसके अवतारी रूप का उन्होंने स्पष्ट रूप से खंडन किया है। ब्रह्म के सम्बन्ध में गुरुमत का बीजमंत्र इस प्रकार है —

'१ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।

अर्थात् वह सत्ता एक है सदा एक रहने वाली है सब वस्तुओं में व्यापक होकर सत्ता धारण करने वाली है। सब वस्तुओं को उत्पन्न करने वाली है अपनी सृष्टि में व्यापक है। बिना भय के है बिना वैर के है। उस पर समय

का प्रभाव नही पडता, वह जन्म-मरण से रहित है। उसका प्रकाश अपने आप से ही है तथा गुरु की कृपा से जानी जाती है।

प्राय सभी गुरुओं ने ब्रह्म के इसी रूप को स्वीकार किया है और उनके ये विचार कबीर, दादू, सुन्दरदास, रदास आदि सभी सतो से मेल खाते हैं। 'आदिग्रंथ' मे निर्गुण और सगुण की अभेदता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि 'जो निर्गुण है वही सगुण भी है', क्योंकि सारी सृष्टि का वही कर्त्ता है, वही कण-कण मे व्याप्त सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान है —

निरगुन हरिआ सरगुन धरीआ। (आदिग्रथ रागु सुही महला ५।१। १।४।
निरगुणु सरगुणु आपदे सोइ। (वही, माझ महला ३। १। ३१। ३२।)
निरगुणु आपि सरगुनु भी ओही। (वही, गउडी सुखमनी महला ५।२। २८।)

गुरु गोबिन्दसिंह ने भी 'अकाल उस्तुति' मे ब्रह्म का इसी रूप मे निरूपण किया है। उनके अनुसार वह '१ओंकार आदि पुरुष, अव्यक्त, अविनाशी, अकाल, अद्वैत, अलख, अविगत[1], अक्षय, राग रूप रग रेख वर्ण चिह्न, रहित अविकारी[2], राग-द्वेष माता पिता, जाति-पाति, शत्रु मित्र[3] अजन्म, भरमरहित, परमपुरुष, निर्गुण और निराकार है। वही स्त्री है न पुरुष[4], अदेश, अनादि, और अनन्त है[5]। वह माया रहित, इच्छा रहित और निरजन है[6]। उसे किसी प्रकार भी जाना नही जा सकता[7]। ब्रह्मा, विष्णु भी उसका अन्त नही पा सकते, वे चारो मुखो से उसे 'नेति, नेति' कहते है[8]। गधर्व देवता, यक्ष, कृष्ण, राम, इन्द्र आदि सभी विचार करते हैं, मगर उस निराकार का पार नही पा सकते[9]। बहुत से लोग शरीर पर शीत, गर्मी और वर्षा सहते है, समाधि लगाकर कई कल्प बिता देते हैं, कई प्रकार के योग साधते हैं तब भी उस अलख, अरूप का अन्त नही पा सकते, जिसे वेद 'नेति नेति और कतेब अलख कहते हैं[10]।

गुरु गोबिन्दसिंह पर वैष्णवो के प्रपत्तिवाद का भी प्रभाव था। वे पूर्व गुरुओं की भाति ब्रह्म के सगुण रूप का भी इस प्रकार निरूपण करते हैं कि वह मायापति[11], सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वकालदर्शी[12] सर्वोपरि[13], कण-कण मे व्याप्त, कीट कुजर म समानरूप से स्थित, घट घट का अन्तर्यामी[14] जल, थल, हृदय, वन पर्वत, आकाश, यहा, वहा सर्वत्र विद्यमान,[15] त्रिलोक

१ अकाल स्थिति'२, २ वही, ३, २३६, ३ वही, ४,४ वही, २६११ ५ 'जिह आदि अन्त नही रूप रास, वही १२६, ६ वही, २५२ २६३, ७ खोज थके सभ ही सुजीआ सुर, हार परे हरि हाथ न आव, वही २४६ ८ वही ५, ६ वही २५७, १० वही १२१ १२६, ११ वही १, १२ वही ५१, १६४, ५८, १३ वही २, १४ सबठौर बिखै रमियो) वही ५१, १५ वही ४।

व्यापी, चौदहा लोकों म प्रकाशवान[१], महाकाल का भी काल, जगतपति, विश्वम्भर[२], अपार रूपवान अनुतरूप, अतुल, प्रताप अनाहद वाणी, करोडो इन्द्रो, वामन, ब्रह्मा रुद्र, राम कृष्ण, मुहम्मद दत्यो, देवो, शेषनाग, गधव, यक्षो को बनाने और खपाने वाला[३] स्वेदज, अडज, भूदज जीरज—चारों योनियो की रचना करने वाला[४] सभी का कर्त्ता पालक सहारक रोग, नाश, दोष का हरता मुक्ति प्रदाता अक्लक[५] सूय चद्र, जल, थल, आकाश, पवन, अग्नि और रात दिन का निर्माता[६] भूत भविष्य, वतमान मे विद्यमान[७], दुष्टहता[८] वरियो का घातक[९] युद्ध का जितया[१०] अनाथ-नाथ[११] दयालु कृपालु भयत्राता[१२] दाता[१३] पवित्र शुद्ध सिरताज[१४] दीनबधु स्वामी[१५], सब जीव-जन्तुओ की पालना करने वाला राजक रहीम[१६] है। परन्तु सजन सहार, पालन आदि का काय वह अकाल पुरुष ही करता है विष्णु या ईश्वर नहीं जसा कि कुछ अय मतो म माना गया है।

वस्तुत उन्हाने ब्रह्म का नेति नेति' और 'तत्वमसि—दोनो रूपा म स्मरण किया है। एक ओर उसे नेति नति, और विभ्रत विभ्रत कहा है[१७] तो दूसरी ओर उसका तुही तुही, तुही तुही तुही तुही, तुही तुही। जले हरि थले हरि [१८] के रूप म तिरूपण किया गया है। वह उसे एक रूप और सवरूप भी मानते हैं और अरूप भी। उनके अनुसार कभी वह हिन्दू होकर गुप्त गायत्री पाठ करता है कही तुक होकर बाग देना है कही मुल्ला कही योगी कही पुराणपाठी कही कुराणपाठी कभी त्रिगुणातीत कही सत्वगुण सम्पन्न कही यती कही क्षत्री कही जटाधारी कही कामी कहा न्याय कही दानी कहा भिखारी कही राजा कही रक कही कान कहा कुजर कभी सुन्दर कही कुरूप कहा ब्राह्मण कही मुसलमान कहा बालक कही वृद्ध सवत्र सभी कुछ वही है।[१९] वह अशरीरी भी है और तनयुक्त भी रूपवान भी है और नाशरहित भी द्वैत से मुक्त भी है और आशा रहित भी शान्त भी है और वेमन्न भी सवत्र उसी का प्रसार और प्रकाश है नाना भाषाओं और नाना पातालो म उसी अदृश्य का विस्तार है[२०]। वह सब म दूर और सबसे निकट है पूर्ण प्रकाश है।

---

१ वही १ २ वही १६४ ३ वही १५२ २२ २६ ४ ४ वही १६८
५ वही २, ६ वही १५१ १५२ ४६ ७ वही ६२ ८ वही १६४
९ वही १६४ १० वही १५३ ११ वही १६२ १२ वही ७४ १३ वही १२२ १४ वही १३२ १५ वही १६० २११, २१६ १६ वही २३६ २६६ १७ वही ११६ १८ वही ९६ १९ वही ११२०, ११६४।

मध्यकाल म उत्तर भारत मे कितने ही सम्प्रदाय प्रचलित थे, जो परमात्मा को अलग अलग नाम से पुकारते थे और आपस म लडते रहते थे। गुरु गोविन्दसिंह न इन सम्प्रदायो द्वारा दिये गये ब्रह्म के सभी नामो को ग्रहण किया है। उन्होने 'विष्णुसहस्रनाम' की शैली म उसके असख्य नामों और रूपो का उल्लेख किया है यद्यपि वे बार बार इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि उसका कुछ भी नाम रख लिया जाए, वह रूप रहित भेद रहित और नाम रहित है। पूर्व-पश्चिम, उत्तर दक्षिण, अरब, फ़ारस चीन, तिब्बत बगाल,द्रविड, सभी स्थानो पर उसे ही ध्याते हैं नाम भले ही भिन्न रख ल।[1]

अवतारवाद

आदिग्रथ म ब्रह्म के लिए राम, श्याम, गोविन्द, हरि आदि नाम आए हैं। यथा

गोविन्द गोविन्दु गोविन्दु हरि गोविन्दु गुणु निधान (महला ४ वार कानड)
राम राम राम कीरतनु गाइ। राम राम राम सदा सहाइ (महला राग गोंड)

मिस्राम सुन्दर तजि नीद किउ आइ (५, सूही)

परन्तु वहा गोविन्द राम श्याम अकाल पुरख के नाम हैं किसी अवतार के नही, क्योकि अवतारवाद का 'गुरु ग्रथ साहब म स्पष्ट रूप से खडन किया गया है —

नानक निरभउ निरकार होरि केते राम रवाल (गु०ग्र० सा० आसा महला १—पृ० ४६४)

इसी प्रकार गुरु गोबिन्दसिंह न भी ब्रह्म के लिए गोविन्द, राम, श्याम कृष्ण, अदम रामल कमाल रहीम, करीम आदि कितने ही ऐसे नामों का प्रयोग किया है। उन्होंने ब्रह्मा विष्णु और रुद्रावतार की अनक कथाओं का भी निरूपण किया है। इन तथ्यो के आधार पर कुछ विद्वानो ने गुरु गोविन्द सिंह को अवतारवादी भावना के पोषक कहा है और कुछ ने उनके अवतार विरोधी विचारो को ध्यान मे रखत हुए उसे 'अवतार प्राय' भावना का नाम दिया है। यह मानकर कि, उनका अकाल पुरख अवतार न होकर भी अवतार *के जितने निकट है उतना पूर्ववर्ती गुरुओ का अकाल पुरख नही।'* परन्तु हम समझते हैं कि ये दोनो ही धारणाएँ भ्रामक है। न तो गोविन्दसिंह अवतारवादी भावना के पोषक थे और न ही 'अवतारप्राय' भावना से कोई अर्थ निकलता है। अवतारवाद का तो दशमगुरु ने स्पष्ट रूप से खण्डन किया है। उनके अनुसार ब्रह्मा विश्वम्भर, चक्रधर चक्रपाणि, गोविन्द, गोपाल, गोपीनाथ, हरि, माधव,

---

१ वही, २५४, २५५

व्यापी, चौदहों लोकों में प्रकाशमान[1], महाकाल का भी काल, जगतपति, विश्वम्भर[2], अपार रूपवान अनन्तरूप, अतुल, प्रताप, अनाहत-वाणी करोड़ों इन्द्रों, वामन, ब्रह्मा, रुद्र, राम, कृष्ण, मुहम्मद, दत्ता, देवा शेषनाग, गधव, यक्षों को बनाने और खपाने वाला[3], स्वेदज, अण्डज, भूदज, जीरज—चारों योनियों की रचना करने वाला[4], सभी का कर्त्ता, पालक, संहारक रोग, चार दोष का हरता, मुक्ति-प्रदाता अकथक गुण चन्द्र, जल थल आकाश पवन अग्नि और रात दिन का निर्माता[5], भूत, भविष्य, वर्तमान में विद्यमान[6] दुष्टहंता[7] वरियों का घातक[8], युद्ध का जितया[9] अनाथ-नाथ[10] दयालु कृपालु भयत्राता[11] दाता[12] पवित्र शुद्ध सिरताज[13], दीनबन्धु स्वामी[14] सब जीव जन्तुओं की पालना करने वाला राजक रहीम[15] है। परन्तु सजन संहार पालन आदि का काय वह अकाल पुरुष ही करता है विष्णु या ईश्वर नहीं जैसा कि कुछ अन्य मतों में माना गया है।

वस्तुत उन्होंने ब्रह्म का नेति नेति' और तत्वमसि'—दोनों रूपों में स्मरण किया है। एक ओर उसे नेति नेति', और बिअन्त बिअन्त कहा है[17] तो दूसरी ओर उसको तुही तुही तुही तुही तुही तुही तुही तुही। जल हरि थले हरि [18] के रूप में निरूपण किया गया है। वह उसे एक रूप और सबरूप भी मानते हैं और अरूप भी। उनके अनुसार कहीं वह हिन्दू होकर गुप्त गायत्री पाठ करता है कहीं तुक होकर बांग देता है कहीं मुंडिया कहीं योगी कहीं पुराणपाठी कहीं कुराणपाठी कहीं त्रिगुणातीत कहीं सवगुण सम्पन्न कहीं यती कहीं क्षत्री कहीं जटाधारी कहीं कामी कहीं दाय कहीं दानी कहीं भिखारी कहीं राजा कहीं रंक कहीं कीट कहीं कुंजर कहीं सुंदर कहीं कुरूप कहीं ब्राह्मण कहीं मुसलमान कहीं बालक कहीं वृद्ध सवत्र सभी कुछ वही है।[19] वह अशरीरी भी है और तनयुक्त भी रूपवान भी है और नाशरहित भी द्वत से युक्त भी है और आशा रहित भी दाता भी है और बेअन्त भी सवत्र उसी का प्रसार और प्रकाश है सातों आकाशों और सातों पातालों में उसी अदृश्य का विस्तार है[2]। वह सब से दूर और सबके निकट है पूर्ण प्रकाश है।

---

१ वही १ २ वही १६४ ३ वही १५२ ३२ ३६ ६ ४ वही १४८
५ वही ३३ ६ वही १५१ १५२ २४६ ७ वही ९२ ८ वही १६४
९ वही १६८ १० वही १७३ ११ वही १५२ १२ वही ७५ १३
वही, १२२, १४ वही १७२ १५ वही १६०, २३३ २३६ १६ वही
२३६ २६६ १७ वही २१६, १८ वही ६६, १९ वही ११२०,
११४।

मध्यकाल म उत्तर भारत म कितने ही सम्प्रदाय प्रचलित थे, जो परमात्मा को अलग अलग नाम से पुकारते थे और आपस म लडते रहते थे। गुरु गोविन्दसिंह ने इन सम्प्रदायो द्वारा दिये गये ब्रह्म के सभी नामो को ग्रहण किया है। उन्होने 'विष्णुसहस्रनाम' की शैली म उसके असख्य नामो और रूपो का उल्लेख किया है यद्यपि वे बार बार इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि उसका कुछ भी नाम रख लिया जाए, वह रूप रहित भेद रहित और नाम रहित है। पूर्व-पश्चिम उत्तर दक्षिण अरब फ्राम चीन तिब्बत बगाल,द्रविड, सभी स्थानो पर उसे ही ध्याते हैं नाम भले ही भिन्न रख लें।[1]

अवतारवाद

'आदिग्रथ म ब्रह्म के लिए राम, श्याम, गोविन्द, हरि आदि नाम आए हैं। यथा

गोविन्द गोबिन्दु गोविन्दु हरि गोबिन्दु गुणु निधान (महला ४ वार कानड)
राम राम राम कीरतनु गाइ। राम राम राम सदा सहाइ (महला राग गोंड)

सिआम सुन्दर तजि नीद किउ आइ (५, सूही)

परन्तु वहा गोबिन्द राम श्याम अकाल पुरख' के नाम हैं, किसी अवतार के नही क्योकि अवतारवाद का 'गुरु ग्रथ साहब म स्पष्ट रूप से खडन किया गया है —

नानक निरभउ निरकार होरि केते राम रवाल (गु०ग्र० सा० आसा महला १—पृ० ४६४)

इसी प्रकार गुरु गोविन्दसिंह ने भी ब्रह्म के लिए गोविन्द राम, श्याम, कृष्ण, अदेस, कामल कमाल, रहीम, करीम आदि कितने ही ऐसे नामो का प्रयोग किया है। उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रावतार की अनेक कथाओ का भी निरूपण किया है। इन तथ्यो के आधार पर कुछ विद्वानो ने गुरु गोविन्दसिंह को अवतारवादी भावना के पोषक कहा है और कुछ ने उनके अवतार विरोधी विचारो को ध्यान मे रखते हुए उसे अवतार प्राय भावना का नाम दिया है। यह मानकर कि, उनका अकाल पुरख अवतार न होकर भी अवतार के जितने निकट है उतना पूर्ववर्ती गुरुओ का अकाल पुरख नही।' परन्तु हम समझते हैं कि ये दोनो ही धारणाएँ भ्रामक हैं। न तो गोविन्दसिंह अवतारवादी भावना के पोषक थे और न ही अवतारप्राय भावना से कोई अर्थ निकलता है। अवतारवाद का तो दशमगुरु ने स्पष्ट रूप से खण्डन किया है। उनके अनुसार ब्रह्मा, विश्वम्भर, चक्रधर, चक्रपाणि, गोबिन्द, गोपाल, गोपीनाथ, हरि, माधव,

---

१ वही, २५४, २५५

बनवारी, मुरारि, नारायण, मुकुन्द, पद्मापति, श्रीपति, नीलकंठ, राम, कृष्ण आदि सभी प्रतीक हैं ऐसे देहधारी अवतार नहीं, जिन्हें अकाल पुरुष के समकक्ष माना जाए क्योंकि यदि वह नारायण (जल में घर वाला) है तो कच्छ-मच्छ सभी नारायण है। गोपीनाथ हैं तो सब ग्वाले गोपीनाथ हैं, माधव हैं तो सभी भँवरे माधव हैं इत्यादि।[1] गुरु जी का कथन है कि ऐसा मानने वाले रूढ़ि का पीटने हैं वे भेद का नहीं जानते। उस ब्रह्म ने करोड़ों ही ब्रह्म, विष्णु राम, कृष्ण उपाए और खपाये हैं। ये सब यहीं उत्पन्न होते हैं और यहीं मिट जाते हैं। ये सभी काल के अधीन हैं। राम से कोई भी बड़ा या उनके बराबर नहीं है—

एक शिव भए एक गए एक फर भए,
रामचन्द्र क्रिसन के अवतार भी अनेक हैं।
ब्रहम गरु बिसन केते बेद औ पुरान
केन सिम्रति समूहन कै हुइ हुइ बितए हैं।
मोनदी मदार केते असुनी कुमार केते
अंस अवितार केते काल बस भय हैं।
पीर औ पिकाम्बर केते गने न परत ऐते,
भूम ही ते हुइ कै फेरि भूम ही मिलए है। (७६)

य सभी कीड़ा के समान हैं करोड़ो की सख्या मे जिन्हे परमात्मा बनाता है और फिर नष्ट कर देता है।[2] वह ब्रह्म तो आदि, अद्वै अविनाशी है।

'दशमग्रन्थ' में चौबीस अवतार कथाओ का निरूपण अवश्य किया गया है परन्तु उनमे कहीं भी उन्होने अपनी ओर से यह नहीं कहा कि वे इन अवतारों के ब्रह्मत्व में विश्वास रखते हैं। पुराणों में जसी अवतार कथाएँ वर्णित हैं उन्हें उसी रूप मे चित्रित कर दिया गया है। इन्हे ग्रहण इसलिए किया गया है कि उन्हें इन कथाओं की दुष्ट-दमनकारी प्रवृत्ति से अपने उद्देश्य की सफलता में बल मिलता था और उनके अनुयायियों को उत्साहित करने में भी वे सहायक हो सकती थी और हुई। डा० धर्मपाल अष्टा के इस कथन में आंशिक सत्य अवश्य है कि गुरुजी ने ये कथाएँ उन अनुयायियों के लिए लिखीं जो अभी अभी उनके आश्रय में आये थे और उनके धार्मिक विश्वासों और विचारों से पूरी तरह प्रभावित नहीं हुए थे वरन उनकी वीरता और साहस से प्रभावित होकर अन्याय और अधर्म के विरुद्ध लड़ने के लिए उनके साथ हो गए थे।[3] मगर यह पूरा सत्य नहीं

१ वही पृ० २४,

२ किते क्रिसन से कीट कोटे उपाए, उसारे गडे फेरि मेटे बनाए।
अगाधे अभै आदि अद्वै अबिनासी। परेअं परा परम पूरन प्रकासी।६६।
(अकाल उस्तुति)

३ The poetry of Dasham Granth, page 223

हैं, क्योंकि जो गुरु जी के विश्वासपात्र और सच्चे भक्त थे, उनमे उत्साह पैदा करने मे भी ये अवतार कथाएँ, जो मुख्यत युद्धकथाएँ है, काफी सीमा तक सहायक सिद्ध हुई। वैसे भी वैष्णव मत और पुराणवाद का उस युग मे सामान्य जनता पर इतना गहरा प्रभाव पड चुका था कि उसे उतार फेंकना आसान नही था। गुरुजी ने उनके इन विश्वासो से लाभ उठाया और इन अवतार कथाओं से उनके हृदय मे धर्मयुद्ध के लिए अतुल चाव, उत्साह पैदा करने मे वे सफल हुए।[1] परन्तु ऐसा करने से वे कदापि अवतारवादी सिद्ध नही होते। यदि जायसी, कुतबन, मझन जैसे सूफी कवि हिन्दू कहानियो को अपनाने से हिन्दू नही होजाते, बल्कि सूफी ही रहते हैं वरन् उनकी कथाओं के माध्यम से सूफी मत का प्रचार और प्रसार करने मे अधिक सफल रहते है, तो गुरु गोविन्दसिंह अवतार-कथाओं का वर्णन करने मात्र से अवतारवादी भावना मे विश्वास रखने वाले कैसे हो सकते हैं, जबकि इन अवतार कथाओं मे भी वे स्थान-स्थान पर, आरम्भ अथवा अन्त मे भी, इन अवतारो के ब्रह्मत्व का खण्डन करते रहे है।

'चौबीस अवतार' के आरम्भ मे वे लिखते हैं कि ब्रह्म अजन्म, अरूप, अलख है, फिर भी घट घट वासी है। वह सृष्टि का कर्त्ता,पालक और संहारक है, मगर ये जो चौबीस अवतार कहे गए हैं, वे यूँ ही भटकते रहते हैं उस बेअन्त को नही पा सकते। देखिए—

जो चउबीस अवतार कहाए। तिन भी तुम प्रभ तनक न पाए।
सभ ही जग भरमे भरमाय। ताते नामु बिअन्त कहाय॥
(चौ० अवतार आरम्भ ७)

'कृष्णावतार' मे भी वे लिखते हैं कि मैं इनमे से किसी अवतार के बारे मे नही जानता। मैंने उनके सम्बन्ध मे सुना जरूर है मगर मैं उन्हे ब्रह्म नहीं मानता[2]। इसीलिए उन्हें गणेश कृष्ण, विष्णु के ध्यान से कोई वास्ता नही। उन्होंने अन्य अवतार कथाओं के अन्तर्गत भी ऐसे विचार प्रकट किए है[3]। कुछ उदाहरण देखिए—

काल पुरख की देहि मो कोटिक बिसन महेस।
(शेष शय्या अवतार ११)
भूमभार हर सुरपुर जाई। काल पुरख मो रहत समाई। (ब्रह्म ४)

---

१ दसम कथा भागौत की भाखा करि बनाइ।
अवर वासना नाहि प्रभु धरमयुद्ध की चाइ। कृष्णावतार २४९१

२ कृष्णावतार ४३४ मैं न गनेसहि प्रिथम मनाऊँ, किसन बिसन कबहू नहि धिआऊँ। (वही)

३ पारस० ४, जालंधर २० २१, रुद्रा० ४, अरहत ७ ८, मनु० २ ३, धनतर० ३, सूर्य ३, चन्द्र ७ ८, राम० ३, कृष्ण २ ३ आदि।

जब जब होत अरिसटि अपारा । तब तब देह धरत अवतारा ।
काल सबन को पेख तमासा । अतह काल करत है नासा ।
(चौ० म० आरम्भ २)

'रामावतार' म भी उन्होने कहा है—

पाइ गहे जब ते तुमरे तब ते कोऊ आख तरे नही आयो ।
राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहैं मत एक न मायो—। ८६३ ।

ये अभी अकाल पुरुष की आज्ञा से यहाँ आए हैं,'स्वय अकाल पुरुष कसे हो सकते हैं । समय समय पर जब पृथ्वी पर अत्याचार बढ़ता है तो सन्तो की पुकार पर परमात्मा न अन्याय, अधम एव अत्याचार के विनाश के लिए और धम की स्थापना के लिए अनक पीरो, पगम्बरा नबियो देवो, अवतारा को भेजा परन्तु वे यहाँ आकर परमात्मा को भूल गय और स्वय को ही परमात्मा कहकर पुजवाने लगे तब परमात्मा ने उन्ह भी नष्ट कर दिया ।[2] । गुरु जी ने 'बिचित्र नाटक' मे ऐसे पथभ्रष्ट अवतारो की घोर भत्सना की है और स्वय को परमात्मा का दास कहा है और घोषणा की है कि उन्ह भी अकाल पुरुष ने इसी उद्देश्य से भेजा है—दुष्टदमन हेतु, परन्तु जो कोई उन्ह अवतार कहेगा वह नरक मे गिरेगा[3] । उन्होने अपने को 'कीट' कहा है और युद्ध म अपनी विजय को भी परमात्मा की कृपा माना है ।

अत स्पष्ट है कि गुरु गोबिन्दसिंह ने पुराणो की अवतार कथाओ को अवश्य ग्रहण किया परन्तु अवतारवाद म उन्हे विश्वास नही । उन्होने इन अवतार कथाओ को इस रूप म ढाला है कि उनसे अवतारा के प्रति भक्ति उत्पन्न नही होती जैसा कि पुराणो का उद्देश्य है किन्तु धमयुद्ध के लिए उत्साह और प्रेरणा मिलती है । उन्होने लिखे ही ये[4] इस उद्देश्य से थे और इसम युद्ध प्रसगो को ही अधिक विस्तार दिया गया है । वस्तुत उन्होने पौराणिक शली को अवश्य अपनाया पुराणो की अवतारी भावना को ग्रहण नही किया ।

गुरु गोबिन्दसिंह को वष्णवो की भाति ब्रह्म की कृपालुता, दयालुता मे आस्था है और उसकी भक्त वत्सलता दीनबन्धुता आदि का वणन उन्होने पूरी निष्ठा और श्रद्धा से किया है । यथा—

दीनन की प्रतिपाल कर नित सन्त उबार गनीमन गार ।
पच्छ पसू नग नाग नराधप सरब सम सभ की प्रतिपार ।

---

१ दीया आइस काल पुरख अपार । धरो बावना बिसन असटमावतार ।
लई बिसन आगिआ चलायो धाई ऐसे । लइयो दारदी भूप मडार जैसे ॥
(बावन १३)

२ बचित्र नाटक ६ २ ८६ ८

३ बचित्र नाटक ६ ३२ ।

४ कृष्णावतार २४६१ ।

पोखत है जल म थल म पल मै कल के नहो करम विचारे।
दीन दइग्राल दइग्रानिधि दोखन देखत है पर देत न हारै।
(अकाल उस्तति २४३)

परमात्मा सभी की पालना करता है, पेट तक मे खाने को देता है। जिस पर उसकी रक्षा का हाथ होता है, उसका कोई बार भी बाका नही कर सकता, शत्रु के अनक वार भी उसका कुछ बिगाड नही सकते¹। इसीलिये वे कहत है कि व्यथ की कल्पना जल्पना बेकार है। उसी पद्मापति का स्मरण करना चाहिये जो सबकी सुध लेता है

काहे को डोलत है तुमरी सुध सुन्दर स्री पदमापति ल है। २४७।

जो उसका स्मरण करते हैं वे पूण प्रताप को प्राप्त करत हैं सब प्रकार के सुख एव वैभव को पा लेते हैं—

जिनै तोहि धिग्राइग्रो तिन पूरन प्रताप पाइग्रो,
सरब धन धाम फल फूल सों फलत हैं। २५५।

वह दीनदयाल, कुजर से भी पहले चीटी की पुकार सुनता है—

हाथी की पुकार पल पाछे पहुचत ताहि।
चीटी की चिंघार पहले ही सुनीग्रतु है। २५६।

यह थी उनकी ग्रास्था और विश्वास।

गुरु जी ने ग्रकाल-पुरुष का स्मरण 'सब्रलोह' के रूप मे भी किया है वह 'सवलोह' जो ग्रसुर सँहारक, दुष्टदमन-कारी एव सत रक्षक है। 'बचित्र नाटक' के ग्रारम्भ म 'खडग' के रूप मे उन्होने इस सवलोह की वन्दना की है। उसे उन्होन चक्रपाणि' खडगपाणि, ग्रसिकेतु खडगकेतु, ग्रस्त्रपाणि शस्त्रपाणि भी कहा है।

आत्मा, जीव, आवागमन और मुक्ति

'ग्रादिग्रथ' मे ग्रात्मा को भगवदगीता' की भाँति सत, चित ग्रानन्द स्वरूप एव ग्रद्वैतवादियो की भाति ग्रात्मा ग्रौर परमात्मा को ग्रभिन्न माना गया है। ग्रात्मा ग्रौर परमात्मा के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए वहाँ जल-तरग तथा कनक-कुण्डल ग्रादि की उपमा दी गइ है। यथा—

जल त उठहि ग्रनिक तरगा। कनिक भूखन कीने बहु रगा।
बीज बीज देखिउ बहु परकार। फाके पाके ते एककारा।
(सूही महला—५)

गुरु गोबिन्दसिंह भी ग्रात्मा को परमात्मा का ही रूप मानते हैं। उन्होंने भी इनके सम्बन्ध को नदी-तरग, ग्रग्नि-स्फुलिंग धूलि-कन ग्रादि के माध्यम से प्रतिपादित किया है। यथा—

१ ग्रकाल उस्तति २४८

जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे
निआरे निआरे हुइ क फेरि आग म मिलाहगे।
जसे एक धूर त अनेक धूर पूरत है
धूर के कनूका फेर धूर ही समाहगे।
जैस एक नद त तरग कोट उपजत है पान के तरग सब
पान ही कहाहगे।
तस बिस्व रुप त अभूत भूत प्रगट हाइ ताही ते
उपज सब ताही म समाहगे। (अ० उस्तुति ८७)

उसी का सारा प्रसार है। यह प्रसार उसी मे से निकलता है उसी म समा जाता है। जसे एक अग्नि से करोडों अग्नि-स्फुलिंग उत्पन्न होकर अलग अलग दीख पड़ते ह परन्तु उसी म मिलकर एक रूप हो जाते है, जसे एक नद से करोडा तरगें उत्पन्न होती हैं मगर जल ही कहलाती हैं उसी प्रकार एक ब्रह्म से अनेक जीव प्रकट होते हैं और उसी मे समा जाते हैं। सभी उसी ब्रह्म के अश हैं, इसीलिए गुरु जी ने प्राणी मात्र की एकता और अभिन्नता मे विश्वास प्रकट किया है। उनका कहना है कि सभी मनुष्यो के एक ही से कान नाक, आख, शरीर हैं सभी एक से तत्त्वो से बने हैं फिर भेद भाव कसा। सभी मानव एक हैं—भद भ्रम है[1]। हिन्दू तुर्क, अरब, यम सभी देशा के प्राणी एक ही है। वे केवल बाह्य वश भूषा से भिन्न प्रतीत होते हैं[2]। एक ही वह बनावट है, उसी का यह सारा प्रसार है। एक का ही स्वरूप सब मे व्याप्त है[3]।

इसी आधार को ग्रहण करते हुए गुरु गोबिन्दसिंह ने जाति-पाँति, वर्ग भेद आदि के भेद भाव का भ्रम जाल बताते हुए उसका खडन किया है और हिन्दू मुसलमान योगी सन्यासी, क्षत्रिय ब्राह्मण, राव रक सभी को ब्रह्म का रूप मानते हुए मानववादी भावना म विश्वास प्रकट किया है। यथा—

कहू हुइ क हिन्दुआ गाइत्री को गुपत जपिओ।
कहूँ हुइ क तुरका पुकारे बाँग देत हो। १२।
कहू धरमधारी कहू सरब ठौर गामी।
कहू जती कहू कामी कहू देत, कहू लेत हो। १४॥
कहू ज्टाधारी कहू कठी धरे ब्रहमचारी।
कहू जोग साधी कहू साधना करत हो। १५॥

जब ब्रह्म की कोई जाति पाति, रूप रग, वर्ग नहीं है तो उसी के अशरूप

१ अकाल उस्तुति ८६।
२ वही।
३ वही —८४।

जीव म इस प्रकार की विभेदता को मानना भ्रम ही है। पूववर्ती गुरुग्रो ने इसी मानववाद का प्रतिपादन किया है और गुरु गोविन्दसिंह ने भी उन्हीं का अनुकरण किया है। उनका विश्वास है कि बिना किसी जाति-पाति एव भेद भाव के सच्चे हृदय से भक्ति करने पर सभी उसे प्राप्त कर सकते है।

दशमगुरु ने पुनजन्म और आवागमन मे भी विश्वास प्रकट किया है। 'बचित्र नाटक' म उन्होंने अपने पूर्व जन्म की कथा का वणन किया ही है। 'अकाल उस्तुति' म उन्होंने अनेक बार इस बात का उल्लेख किया है कि जीव जब तक भक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त नही कर लेता, वह काल के फँदे म फसा रहता है। सासारिक जीव' विषय-वासनाओ म लिप्त रहते हैं और अनेक प्रकार के बाह्याचार, जप, तप, करने पर भी मुक्ति प्राप्त नही कर पाते। मुक्ति का तो एक ही साधन है—'नाम-स्मरण'। उनका कथन है कि यदि तुम ब्रह्म को पाना चाहते हो, तो उसमे लीन हो जाओ[1]। मानव, इन्द्र, राजे, कुबेर, बहद दान स्नान करने वाले भी यम के फदे मे फसे रहते परन्तु 'श्रीपति' के चरण स्पर्श से वे फिर देह धारण नही करेंगे। उसके आश्रय म गये बिना मुक्ति हो ही नही सकती[2]।

सृष्टि रचना

सृष्टि रचना के सम्बन्ध म भी गुरुओ के विचार वेदान्त के ही अनुरूप हैं। गुरुमत के अनुसार वह ब्रह्म स्वय ही इस सृष्टि का कर्ता और कारण है। यथा—

करण कारण प्रभु एक है, दूसर नाहीं कोइ।

(आदि ग्रथ, गउडी सुखमनी महला ५ पृ० २७६)

आपै कारण करता करै स्रिसटि देखे आपि उपाई

(वही, सिरीराग, पहला ३। १। २०। ६५०। ३०)

'अकाल उस्तुति' म गुरु गोबिन्दसिंह ने भी ब्रह्म को ही सृष्टि का कर्त्ता और सहरता कहा है। सारी सृष्टि उसी से उत्पन्न होकर उसी मे समा जाती है। जल-थल, आकाश-पाताल, कीट-कुंजर सभी म वही व्याप्त है। सृष्टि के कण कण में वही समाया है। उसी विश्वरूप से ये सब अभूत भूत प्रकट होते है और उसी मे समा जाते हैं। उसी के सब बनाए हुए हैं, और वही इन्ह नष्ट करता है। चौदहा भवनो मे उसी ने अपना खेल रचा है और फिर वह अपने म ही उसे समेट लेता है। यथा—

तैसे बिस्वरूप ते अभूत भूत प्रगट होई।
ताही ते उपज सबै ताही मै समाहगे। १७। ८७।

---

१ अकाल उस्तति—२५५

२ वही—२८।

तेज जिउ अतेज म अतेज जैसे तेज लीन,
ताही ते उपज सब ताहि मैं समाहिंगे। ८८।
कोटि इन्द्र उपइन्द्र बनाए। ब्रह्मा रुद्र उपाए खपाए।
लोक चदुरदस खेल रचायो। बहुर आप ही बीच मिलायो।६।

गुरमत म सृष्टि की रचना ब्रह्म क हुक्म से मानी गई है, उसम ईश्वर माया या किसी अन्य शक्ति का कोइ हाथ नहीं होता।

माया

सन्तो न अद्वतवादियो की भाँति आत्मा और परमात्मा के मिलन म माया को ही मुख्य बाधा माना है। माया के ही कारण जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर सासारिक भोग विलास म डूबा रहता है। माया को उन्होने नटनी कहा है जो सारे ससार को भ्रम म डाले हुए है और माया के मुख्य साधन कचन-कामिनी के त्यागन का आग्रह किया है। गुरु गोबिन्दसिंह ने इतने विस्तार से तो 'अकाल उस्तति' म माया क स्वरूप पर प्रकाश नहीं डाला, तथापि सासारिक सुख धन वभव आदि की नश्वरता का प्रतिपादन करते हुए उनके मोह म न फँसने का प्रतिपादन उन्होने भी किया ह। 'अकाल उस्तति' म उन्होने यह भी कहा है कि ब्रह्म स्वय माया रहित निरजन है और वही मायापति है। माया उसके चरणो की दासी है।

साधना पद्धति

भारतीय धम साधना का विकास मुख्यत ज्ञान प्रधान कम प्रधान तथा भाव प्रधान इन तीन पद्धतियो पर हुआ, वदिक युग की साधना कम प्रधान थी उपनिषदो म ज्ञान को महत्त्व दिया गया, बौद्धो ने भी वदिक कम-काड और रीतियो का खडन करके सम्यक ज्ञान का प्रतिपादन किया। आग चलकर भावना प्रधान उपासना-पद्धति का अधिक प्रचार हुआ। विशेष रूप स पौराणिक युग की अवतारवादी भावना से बल पाकर उसे अधिक प्रश्रय मिला। सातवी आठवी शती म बौद्ध सिद्धो की अनेक गुह्य साधनाओ का प्रचलन हुआ और नाथों ने योग-साधना को अधिक महत्त्व दिया। वस्तुत भारत का मध्यकालीन इतिहास सिद्धो, नाथो, शवो, शाक्तो, वष्णवो, वदान्तियो ज्ञान मार्गियो, कम-काडियो, मूर्तिपूजको आदि के सघष का युग था और उनमे से अधिकाश म—प्राय सभी म बाह्याचारो का जोर था और धम ने पाखडो आडम्बरो का रूप धारण कर लिया था। सतो ने इन सभी प्रकार के मिथ्याचारो और विकृत पद्धतियो का खडन किया और सरल भक्ति माग का प्रतिपादन किया, जिसके लिये उन्होंने ब्रह्मज्ञान, शुद्ध आचरण शुभ-कम के महत्त्व को भी स्वीकार किया। सिक्खमत के प्रवत्तक गुरु नानक ने भी भक्ति को ही अधिक महत्त्व दिया और ब्रह्मज्ञान अथवा शुद्ध कर्मों को उसके अग रूप म स्वीकार किया। गुरु गोविन्दसिंह उसी परम्परा के साधक और सत है। सतो

तथा अन्य गुरुओं की भांति उन्होंने भी ज्ञान, यम, योग आदि के महत्त्व को स्वीकार तो किया है, परन्तु उन्हें भक्ति की धारा से सिंचित करते हुए मुख्य भक्ति को ही माना है। जहाँ ज्ञान-मार्गियों के लिए ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि के स्वरूप और सम्बन्ध का चिंतन ही ध्येय है, मुख्य साधना है, वहाँ भक्ति-मार्गियों के लिए यह चिंतन उनकी भक्ति को दृढ करने का साधन मात्र है।

ज्ञान के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए गुरु गोविन्दसिंह कहते हैं कि जो लोग कामना (विषय वासना) के अधीन होकर नाच रहे हैं, वे ब्रह्म ज्ञान के बिना ब्रह्म लोक को कैसे प्राप्त कर सकते हैं।[1] कोई आकाश में उडते हैं तो कोई जल में रहते हैं, मगर ब्रह्म ज्ञान के बिना वे धधकती ज्वाला में जलकर ही मर जाते हैं[2]। ज्ञान के बिना काल फाँस में फँसे जन्म-मरण की चक्की में पिसते रहते हैं[3]। जो लोग काम के वशीभूत हैं वे ज्ञान बिना भवसागर को कैसे पार कर सकते हैं[4]।

इस प्रकार के आत्म चिंतन से जीव अपने वास्तविक स्वरूप का बोध प्राप्त करता है और विषय-वासनाओं को त्याग कर भगवद् भक्ति में लीन होकर उसे प्राप्त करने में सफल होता है, क्योंकि भावना विहीन होकर उस जगदीश को प्राप्त नहीं किया जा सकता।[5]

गुरुओं ने अपनी साधना में 'नाम स्मरण' को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उनके अनुसार नाम से ही इस सृष्टि की रचना हुई है और नाम में ही सब समा जाते हैं।[6] उनके अनुसार नाम ही जप, तप, संयम का सार है। लाखों करोडों कर्म और तपस्याएँ भी 'नाम के सदृश नहीं है। नाम के बिना सारे कर्म, तप, जप व्यर्थ हैं।

हरि नामै तुलि न पुजइ जे लख कोटी करम कमाई।

(गु० ग्रंथ साहब, मारू सोलहे महला २ १४ पृ० १०३)

गुरु गोविंदसिंह ने भी नाम की महिमा का प्रतिपादन करते हुए लिखा है

---

१ कामना अधीन परिओ नाचत है नाचन सो
गिआन के विहीन कैसे ब्रह्म लोक पावई। अ० उस्तति ८२।

२ गगन मैं उडत केते जल मै रहत केते।
गिआन के विहीन जक जारेई मरत है। वही, ८८।

३ गिआन के विहीन काल फाँस के अधीन सदा,
जुगना की चक्करी फिराए ई फिरत है।७६।

४ भावना अधीन काम क्रोध में प्रवीन एक,
गिआन के बिहीन छीन कैसे कै तरत है।७१।

५ भावना विहीन कैसे पावै जगदीस को।७६।

६ जपजी पउडी—१६ गउडी पूर्वी महला ३ पृ० १४६

तेज जिउ अतेज मैं अतेज जसे तेज लीन,
ताही ते उपज सब ताहि मैं समाहिगे। ८८।
कोटि इद्र उपइद्र बनाए। ब्रह्मा रुद्र उपाए खपाए।
लोक चदुरदस खेल रचायो। बहुर आप ही बीच मिलायो।६।

गुरुमत म सृष्टि की रचना ब्रह्म के हुक्म स मानी गई है, उसम ईश्वर, माया या किसी अन्य शक्ति का कोई हाथ नही होता।

माया

सन्तो न अद्वतवादियो की भाति आत्मा और परमात्मा के मिलन म माया को ही मुख्य बाधा माना है। माया के ही कारण जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर सासारिक भोग विलास म डूबा रहता है। माया को उन्होने नटनी कहा है जो सारे ससार को भ्रम म डाले हुए है और माया के मुख्य साधन कचन-कामिनी के त्यागन का आग्रह किया है। गुरु गोबिन्दसिह ने इतने विस्तार से तो 'अकाल उस्तति' म माया के स्वरूप पर प्रकाश नही डाला, तथापि सासारिक सुख, धन वभव आदि की नश्वरता का प्रतिपादन करते हुए उनके मोह म न फँसने का प्रतिपादन उन्होने भी किया है। 'अकाल उस्तति' म उन्होने यह भी कहा है कि ब्रह्म स्वय माया रहित निरजन है और वही मायापति है। माया उसके चरणो की दासी है।

साधना पद्धति

भारतीय धम साधना का विकास मुख्यत ज्ञान प्रधान, कम प्रधान तथा भाव प्रधान इन तीन पद्धतियो पर हुआ, वदिक युग की साधना कम प्रधान थी उपनिषदो म ज्ञान को महत्त्व दिया गया बौद्धो न भी वदिक कम-काड और रीतियो का खडन करक सम्यक ज्ञान का प्रतिपादन किया। आग चलकर भावना प्रधान उपासना-पद्धति का अधिक प्रचार हुआ। विशेष रूप स पौराणिक युग की अवतारवादी भावना स बल पाकर उस अधिक प्रश्रय मिला। सातवी आठवी शती म बौद्ध सिद्धो की अनेक गुह्य-साधनाओ का प्रचलन हुआ और नाथो ने योग-साधना को अधिक महत्त्व दिया। वस्तुत भारत का मध्यकालीन इतिहास सिद्धो, नाथो शवो शाक्तो वष्णवो, वदान्तियो ज्ञान मार्गियो, कम-काडियो मूर्तिपूजको आदि के सघष का युग था और उनम स अधिकाश म—प्राय सभी म बाह्याचारों का जोर था और धम न पाखडो, आडम्बरो का रूप धारण कर लिया था। सतो ने इन सभी प्रकार क मिथ्याचारो और विकृत पद्धतियो का खडन किया और सरल भक्ति माग का प्रतिपादन किया, जिसके लिए उन्होने ब्रह्मज्ञान शुद्ध आचरण शुभ-कम के महत्त्व को भी स्वीकार किया। सिक्खमत क प्रवत्तक गुरु नानक न भी भक्ति को ही अधिक महत्त्व दिया और ब्रह्मज्ञान अथवा शुद्ध कर्मो को उसके अग रूप म स्वीकार किया। गुरु गोविन्दसिह उसी परम्परा क साधक और सत हैं। सतो

तथा अन्य गुरुओं की भांति उन्होंने भी ज्ञान, कर्म, योग आदि के महत्त्व को स्वीकार तो किया है, परन्तु उन्हें भक्ति की धारा से सिंचित करते हुए मुख्य भक्ति को ही माना है। जहां ज्ञान-मार्गियों के लिए ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि के स्वरूप और सम्बन्ध का चिंतन ही ध्येय है, मुख्य साधना है, वहां भक्ति मार्गियों के लिए यह चिंतन उनकी भक्ति को दृढ़ करने का साधन मात्र है।

ज्ञान के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए गुरु गोविन्दसिंह कहते हैं कि जो लोग कामना (विषय वासना) के अधीन होकर नाच रहे हैं, वे ब्रह्म ज्ञान के बिना ब्रह्म लोक को कैसे प्राप्त कर सकते हैं।[१] कोई आकाश में उड़ते हैं तो कोई जल में रहते हैं, मगर ब्रह्म ज्ञान के बिना वे धधकती ज्वाला में जलकर ही मर जाते हैं[२]। ज्ञान के बिना काल फांस में फँस जन्म मरण की चक्की में पिसते रहते हैं[३]। जो लोग काम के वशीभूत हैं वे ज्ञान बिना भवसागर को कैसे पार कर सकते हैं[४]।

इस प्रकार के आत्म चिंतन से जीव अपने वास्तविक स्वरूप का बोध प्राप्त करता है और विषय-वासनाओं को त्याग कर भगवद् भक्ति में लीन होकर उसे प्राप्त करने में सफल होता है, क्योंकि भावना विहीन होकर उस जगदीश को प्राप्त नहीं किया जा सकता।[५]

गुरुओं ने अपनी साधना में 'नाम स्मरण' को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उनके अनुसार नाम से ही इस सृष्टि की रचना हुई है और नाम में ही सब समा जाते हैं।[६] उनके अनुसार नाम ही जप, तप, संयम का सार है। लाखों करोड़ों कर्म और तपस्याएँ भी 'नाम' के सदृश नहीं हैं। 'नाम' के बिना सारे कर्म, तप, जप व्यर्थ हैं।

हरि नामै तुलि न पूजइ जे लख कोटी करम कमाई।

(गु० ग्रंथ साहब, मारू सोलहे महला ३ १४ पृ० १०३)

गुरु गोविन्दसिंह ने भी नाम की महिमा का प्रतिपादन करते हुए लिखा है

---

१ कामना अधीन परिओ नाचत है नाचन सो,
गिआन के बिहीन कैसे ब्रह्म लोक पावई। अ० उस्तति ८२।

२ गगन में उडंत केते जल में रहत केते।
गिआन के बिहीन जक जारेई मरत है। वही, ८६।

३ गिआन के विहीन काल फांस के अधीन सदा,
जुगना की चउकरी फिराए इ फिरत है।७६।

४ अगना अधीन काम क्रोध में प्रवीन एक,
गिआन के बिहीन छीन कैस कै तरत है।७१।

५ भावना विहीन कैसे पावै जगदीस को।७६।

६ जपजी पउडी—१६, गउडी पूर्बी महला ३ पृ० १४६

कि 'नाम स्मरण से पुण्यों का प्रताप राज बढ़ता है और पापों का झुण्ड जल जाता है'[१]। परमात्मा के प्रेम के बिना वह कदापि प्राप्त नहीं हो सकता।[२] सभी धर्मों कर्मों को त्यागकर 'नाम जाप' करना चाहिए, जिससे भवसागर को पार किया जा सकता है और फिर देह धारण नहीं करनी पड़ती

जिह फोकट धरम सब तजि है। इक चित्त कृपानिधि का जप है।
तेउ या भवसागर का तर है। भव भूल न देह पुनर धर है।१५६।

मध्ययुग के विभिन्न सम्प्रदायों म थोथे ज्ञान, पाखण्डपूर्ण यान्त्रिक क्रियाओं तथा मिथ्याडम्बर युक्त कर्मों का प्रचार हो रहा था और सामान्य जनता धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूलकर इन पाखडो और आडम्बरो म फँसी हुई थी। कबीर तथा नानक ने इन पाखडो का कडा विरोध किया था मगर गुरु गोविन्द सिंह के साहित्य का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि उस समय भी इस प्रकार के बाह्यकर्मों एव अध विश्वासो का बाहुल्य था तभी तो उन्हें इनका खडन करने की आवश्यकता पडी। उनका कथन है कि करामाती सिद्ध, योगी, सन्यासी वेदपाठी गैब जत्र मन्त्रो की सिद्धि म फँसे लोग, महाज्ञानी, मनयानी नाथ, उदासी, तुर्क, ब्राह्मण, मती, पुराण अथवा कुरानपाठी चन्द्रमा सूर्य अथवा अग्नि पूजक, फल फूल भक्षी पवनाहारी जपी, तपी तीर्थ व्रत करने वाले सभी ऐसे साधक हैं, जो मिथ्याचारो बाह्याडम्बरो पाखण्डपूर्ण कर्मों म फँसे हुए हैं। ये सभी अपना पेट भरने और लोगो को धोखा देने के धधे हैं[३] अन्यथा इनमे से कोई भी उस वाहिगुरु को प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि इनमे से कोई भी वाहिगुरु के प्रति प्रेम से युक्त नहीं है। उस करतार के प्रति श्रद्धा और प्रीति के बिना सभी एक रत्ती के समान हैं।[४] ये सभी अभिनेता और पाखडी हैं।[५]

इन पाखडियो और ढोगियो पर तीखे व्यग्य कसते हुए वे लिखते हैं कि बगुले की भाति आँखें मूदकर ध्यान लगाने से अथवा वन मे रहने से कोई लाभ नहीं। पशुओ अथवा विषयी लोगो म बैठकर ऐसे ही जन्म गँवा दिया। प्रभु को तो वही पाता है जो उसे प्रेम करता है।[६] सजदे करने, मूर्ति पूजने, कठी पहनने समाधि लगाने, कब्र पूजने, आदि का विरोध करते हुए वे कहते हैं कि

१ अकाल उस्तति २७
२ वही २४५।
३ चौ० अ० ४२५,
४ अकाल उस्तुति २१, २५२,
५ वही, ८२
६ वही, २६।

कोई पत्थर सिर पर रख रहा है, किसी ने शिवलिंग को गले में लटका रखा है, कोई हरि को पूर्व दिशा में देखता है, कोई पश्चिम में सीस नवाता है, कोई बुतों को पूजता है, तो कोई कब्रों को पूजने के लिए भागता है। परन्तु ये सभी क्रूर क्रियाओं में उलझे हुए हैं, ये निरकार का भेद नहीं पा सकते।[1]

जप, तप, व्रत, तीर्थ, यज्ञ, योग, वेद, पुराण, कुरान पाठ आदि का खंडन करते हुए वे कहते हैं—

कई सदा भुजाएँ ऊपर उठाए खड़े रहते हैं, कई उलटे होकर अग्नि में लटकते हैं, कई वेद शास्त्र, श्रुति स्मृति कोक कुरान पुराण पढ़ते हैं, कई तीर्थ, व्रत, होम-यज्ञ, दान-स्नान करते हैं, कई शाक पुष्प पत्र खाकर रहते हैं तो कई पवनाहारी हैं, कई देशाटन करते हैं और अनेक भाषाएँ रटते हैं, मगर इनमें से कोई भी उसका (ब्रह्म का) पार नहीं पा सकता, वह प्रत्यक्ष नहीं होता।[2] नवली, अश्वमेघ, ब्रह्म विद्या, धूप-दीप अघदान, पितृ कर्म, जल निवास, अग्नि-ताप, उल्टे लटक कर जाप करने अथवा अन्य करोड़ों यत्न करने पर भी उसका अंत नहीं पा सकते। उसके दर्शन नहीं होते।[3] शेख अल्लाह अल्लाह चिल्लाते हैं[4] और मुल्ला पांच बार बांग देता है, मगर सब बेकार। बांग देने से यदि वह मिले तो गदहा और कुंजर कितनी ही बार पुकारता है, वह क्यों नहीं मिल जाता—

पंच बार गीदर पुकारे परे सीत काल
कुंजर औ गदहा अनेकदा पुकारहीं।८३।

इन पाखंडियों पर अपने क्षोभ को और तीखा करते हुए वे कहते हैं कि यदि दुखों के सहने से ही वह मिलता है तो जख्मी व्यक्ति अनेक कष्ट सहन करता है, यदि जाप करने से ही न जपने योग्य स्वामी मिल सके तो पूतना (पक्षी) सदा ही 'तुहीं, तुहीं' करती है। आकाश में उड़ने से यदि नारायण मिले तो अनल पक्षी सदा ही आकाश में फिरता है आग में जलने से यदि मुक्ति प्राप्त हो तो पति के साथ जलने वाली विधवा को मिलनी चाहिए,

---

१ काहू ल पाहन पूज धरो सिर काहू ल लिंगु गरे लटकाइओ।
काहू लखिओ हरि अवाची दिसा महि काहू पछाह को सीस निवाइओ।
कोऊ बुतान कौ पूजत है पसु कोऊ म्रितान कौ पूजन धाइओ।
क्रूर क्रिआ उरझिओ सभ ही जग स्री भगवान को भेद न पाइओ।
(अकाल० ३०)

२ वही, १२१ १३६,
३ वही, १४०
४ वही, ४१ ५०।

पाताल म रहने से परमात्मा मिले तो सांप पाताल म ही रहता है। मगर जिस प्रकार जैरमी, पूतना, अनल, साप आदि को परमात्मा नही मिल सकता, उसी प्रकार प्रेम के बिना ऐसी साधना करने वाले पाखडियो को भी परमात्मा के दर्शन नही हो सकते।[1] इसी प्रकार गन्दगी खाने से भस्म रमाने से, श्मशान म रहने से, उदासी होकर फिरने स, मौन धारण करने से, वीर्य रोकने से, नगे पाव घूमने से भी परमात्मा नही मिलता, क्योंकि सुअर हमेशा गन्दगी खाता फिरता है, हाथी और गदहा भस्म लगाते रहते हैं, गिद्ध सदा श्मशान म ही रहता है मृग उदासियो की भाँति वन म घूमते रहते हैं वृक्ष सदा मौन धारण किये खडे रहते हैं हिजडे वीर्य को रोके रखते है वानरों के झुड सदा नगे पाव घूमते रहते हैं, मगर इनम से किसी को भी परमात्मा नही मिल सकता। जो लोग मान से हीन, स्त्री के अधीन और काम के वशीभूत है वे भला मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकते हैं—

खूक मलहारी गज गदहा बिभूत धारी गिदूआ मसान बास करिओई करत हैं।
घुघूमट वासी लगे डोलत उदासी म्रिग तरवर सदीव मौन साधेई मरत है।
बिंद के सधय्या ताहि हीज की बडय्या देत, बदरा सदीव पाइ नागे ई फिरत है।
अगना अधीन काम क्रोध म प्रबीन एक गिआन के बिहीन छीन कैसे कै तरत है।७१।

भूत वनचारी हैं बच्चे दुग्धधारी होते हैं सर्प पवनाहारी होते हैं घास फूँस खाने वालो को वल कहा जाता है आकाश म पक्षी उडते हैं, बगुला और बिल्ला आखें मीचकर बठते हैं। इनम से कोई भी सच्चा साधक नही है। गुरु गोविन्दसिंह ने इन मिथ्याचारो का खडन इस प्रकार किया है—

भूत वनचारी छित छउना सभ दूधा धारी,
पउन के अहारी सु भुजग जानीअत है।

---

१ ताप के सहे ते जो प पाइऐ अतापनाथ तापना अनेक तन घाइल सहत है।
जाप के किए ते जो प पायत अजाप देव, पूतना सदीव तुही तुही उचरत है।
नभ के उडे ते जो प नाराइण पाईयत। अनल अकास पछी डोलबो करत है।
आग म जरे ते गत राड की परत कर पताल के बासी किउ भुजग न तरत है।८४।

त्रिण के भछय्या धन लोभ के तजय्या,
तेतो गऊअन के जय्या ब्रिखभय्या मानीअतु है।
नभ के उडय्या ताहि पछी की वडय्या देत,
बगुला बिडाल ब्रिक धिम्रानी ठानीअतु है।
जेतो बडे गिआनी तिनो जानी पै बखानी नाहि,
ऐसे न प्रपच मन भूल आनीअतु है।७२।

गुरु गोविन्दसिंह का कहना है कि ऐसे कितन बडे बड ज्ञानी हुए जो इन बाह्याचारो के मिथ्यात्व और निरथकता को जानते तो थे, मगर इनके विरोध म किसी ने कहा कुछ भी नही। परन्तु वे ऊँचे स्वर मे पुकार पुकारकर कहते हैं कि ऐसे प्रपचों म मन को भूलकर भी फँसाना नही चाहिए। क्योकि जो फला को खाकर जीते हैं उन्ह वानर ही कहना चाहिए, जो छिपकर फिरने को बडी भारी साधना समभते हैं उन्ह भूत समभना चाहिए, जो पानी पर तरन मे ही बडाई समभते हैं, उन्हे जल जुलाहा कहना चाहिए, और आग को खाने वाले को चकोर कहना चाहिए।[1] आक और फल फूल को खाने वाला बकरे जैसा और कोई नही है, भेड सदा अपने सिर को वृक्षो से रगडती फिरती है और जोक सदा ही मिट्टी खाकर जीती है।[2] भला इस प्रकार की व्यथ की साधनाओ से कभी उस अनत ब्रह्म को पाया जा सकता है। य सब तो स्वाग हैं पेट भरत के साधन हैं लोगा को धोखे म डालने के प्रपच हैं, सभी फोकट धम हैं, इनम भूलकर भी फँसना नही चाहिए। मूख लोग ही ऐसी रूढियो को पीटते हैं। इन सभी बाह्य कर्मों को त्यागकर उस परमात्मा को भजना चाहिए

१ फल के भच्छय्या ताहि बादरी के जय्या कहै,
आदिस फिरय्या तेतो भूत कै पछानीए।
जल के तरय्या को गगेरी ही कहत जग
आग के भछय्या सो चकोर सम मानीए।७२।
सीस पटकत जाके कान मै खजूरा घसे
मूँड छटकत मित्रु पुत्र हू के शोक सौ,
आक को चरय्या फल फूल को भछय्या सदा,
बन को भ्रमय्या अउर दूसरो न बोक सो।
कहा भयो भेड जो घसत सीस ब्रिछन सो,
माटी को भछय्या बोलपूछ लीज जाक सौ।
कामना अधीन काम क्रोध म प्रवीन एक,
भावना बिहीन कसे भेटै परलोक सौ।८०।।

२—गुरुमुखी लिपि मे हिन्दी काव्य—पृ० ७६ डा० हरिभजन सिंह।

जो सबका रक्षक है, सभी की पालना करता है। ज्ञान के बिना जीव काल चक्र मे फँसा रहता है और भक्ति के बिना जगदीश को प्राप्त नहीं किया जा सकता। भक्ति के बिना सभी कर्म, यज्ञ, होम, योग, पुराण, कुरान, वेद, कतेब, तीर्थ, व्रत बेकार हैं—

मूड रूड पीटत न गूढ़ता को भेद पावै
पूजत न ताहि जाके राखे रहीयतु है।७५।

गिआन के बिहीन काल फास के अधीन सदा।
जुगन की चउकरी फिराए है फिरत है।७६।

कामना अधीन परिओ नाचत ह नाचत सो,
गिआन के बिहीन कैसे ब्रह्मलोक पावई।८२।

कामना अधीन सदा दामना प्रवीन एक,
भावना विहीन कैसे पावै जगदीस को॥७६॥

इस विवेचन से स्पष्ट है कि दशमगुरु ने बाह्य कर्मों मिथ्याचारो, पाखडपूर्ण योग, जप, तप आदि का कडा विरोध किया है और इन पर बडे ही तीखे और कटु व्यग्य किये हैं। एक विद्वान का कथन है कि गुरु गोबिन्दसिंह ने सतो की भाति इन बाह्याचारो और पाखडपूर्ण साधनाओं का विरोध तो किया मगर वह बहुत सयत था और खडन की प्रवृत्ति पर अकुश रखा गया है। उनमे कबीर जितना तीखापन नही है। परन्तु जो उदाहरण ऊपर दिये है तथा और भी ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, उनको देखकर कौन यह मान सकता है कि पाखडो आडम्बरो एव ढोगो के विरुद्ध उनकी वाणी कबीर से कम प्रखर, कम तीखी और कम कटु थी। कबीर ने जिस प्रकार कहा है कि बार बार के मूँडने से भेड और जल मे रहने से मछली नही तरती, उसी प्रकार गुरु जी ने ऐसे पाखडी साधकों को गदहे सुअर बदर, बकरे बिल्ले बगुले बिज्जू भूत, मोर वृक्ष, पक्षी जल जुलाहे, पूतना, जोक आदि के समान कह कर उन्हें बुरी तरह से फटकारा है। उन्होंने देहरी मसीत को पूजने वाले राम और रहीम पर भगडने वाले पुराण और कुरान की कथाओं मे उलझे हुए, उलटे लटक कर या भूखे रह कर तप करने वाले और बाग देकर खुदा को पुकारने वाले बहुरूपियो और ढोगियो की भर्त्सना करने मे कोई कसर नही छोडी। उन्होंने खूब कसकर उनकी खबर ली है। उन पर बडी ही तीखी और चुभती चोटें की हैं। धर्म साधना के परिष्कार, उन्नयन और सुधार का यह अत्यन्त मगलकारी अभियान था। हमारे सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की आज भी यह विडम्बना है कि जो लोग ऐसी बुराइयो, अन्ध विश्वासो, रूढ़ियो चारित्रिक हीनता आदि के विरुद्ध बढ चढ कर सरमन' देते फिरते हैं, वे स्वय बहुधा उनके शिकार हैं। गुरु गोबिन्दसिंह के जीवन से हम आज भी यह शिक्षा ग्रहण कर सकते है कि

उन्होंने जो उपदेश दिये, स्वय उन पर आचरण भी किया। वे साधक पहले थे, उपदेशक बाद मे।

जगत, ऐश्वर्य, अहंकार आदि

अद्वैतवादियो की ही भाँति सिक्ख गुरुओ ने जगत् को मिथ्या, अस्थिर, क्षण-भगुर एव नश्वर कहा है। उनके अनुसार यह बुदबुदे मृग तृष्णा धुएँ के धवल हर की भाँति असत्य और भ्रमपूर्ण है।[1] जगत असत्य है, तो इसके सभी सम्बन्ध और आकर्षण भी नाशवान और असत्य हैं। सासारिक जीव जगत के वैभव, श्री और ऐश्वर्य आदि आकर्षणो और प्रलोभनो से मोहित होकर विषय-वासना मे इतना लीन हो जाता है कि अपने वास्तविक स्वरूप को सर्वथा भूल जाता है। परमात्मा को वह दत्तचित्त होकर कभी भी स्मरण नही कर सकता।

सासारिक सुख और वैभव अहकार को जन्म देते हैं और अहकारी मनुष्य कभी मुक्ति प्राप्त नही कर सकता। यह अहकार (हउमैं) मनुष्य को विनाश की ओर ले जाता है। गुरु गोबिन्दसिंह ने भी कहा है कि 'देव और दैत्य इसी अहकार के कारण विनष्ट हुए।[2] यह अहकार शरीर की सुन्दरता, धन, वैभव एव ऐश्वर्य की वृद्धि, बल विक्रम, विद्या जाति एव परिवार आदि की बडाई के कारण हो सकता है। गुरुमत मे ऐसे पाच प्रकार के हउमैं का निरूपण किया गया है। यही हउमैं मनुष्य को परमात्मा से विरत करने वाले मुख्य कारण है। गुरुओ के अनुसार ब्रह्म नाम, गुरु कृपा, साधु सगति आदि के द्वारा हउमै का विनाश किया जा सकता है।[3] हउमैं के विनाश से ही भक्ति और मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

गुरु गोबिन्दसिंह ने भी सासारिक धन, वैभव ऐश्वर्य, शक्ति बल, विक्रम आदि से उत्पन्न अहकार को मनुष्य का सबसे बडा शत्रु कहा है।[4] इसीलिये उन्होंने इन पदार्थों की नश्वरता, असत्यता क्षण भगुरता आदि का प्रतिपादन करते हुए मनुष्य को उनके आकर्षणो के जाल से बचे रहने को सावधान किया है। इस सम्बन्ध मे उनका कथन है कि अनेक मस्त हाथियो पवन से भी तीव्र गामी अश्वो और अनेक बलशाली राजाओ के भी स्वामी हुए तो क्या, अन्त मे सभी को नगे पाव जाना पडता है।[5] जो देश देशान्तर को जीतते फिरे जिनके

१ गुरुग्रथ दर्शन पृ० ११३

२ अकाल उस्तति २४५, ११७

३ गुरुग्रथ दर्शन—पृ० १२० १४३ डा० जयराम मिश्र।

४ अकाल उस्तति २४५।

५ मात मतग जरे जर सग अनूप उतग सुरग सवारे।
कोट तुरग कुरग से कूदत पउन के गउन कउ जात निवारे।
भारी भुजान के भूप भली बिधि निआवत सीस न जात बिचारे।
एते भए तो कहा भए भूपत अत को नागे ही पाइ पधारे।२।२२।

यहाँ नित्य ढोल, मृदग, पखावज और धोसे बजते रहे जिनके द्वार पर सहस्रा हाथी, घोडे झूमते रहे, तीनो काला म ऐसे कितने ही राजा हुए, मगर अत म सभी (मायापति परमात्मा के स्मरण बिना) यमपुरी को चले गय।[1] श्रीपति भगवान की कृपा बिना अत्यन्त पराक्रमी शत्रुओं का मदन करने वाले अहकारी और साहसी विश्वजयी वीर, रणभूमि म विचलित न होने वाल रणधीर, मस्त हाथियो का मदन करने वाले योद्धा, बडे-बडे सेनापति, राजे महाराजे, सामत, महादानी, प्रबल एव वभवशाली शासक योगी, यती ब्रह्मचारी बडे बडे छत्र धारी (जिनके छत्रो की छाया कई कोस तक फली हुई थी), बडे बडे राजाओ के अहकार को मिटा देने वाले मान्धाता जसे राजा दिलीप जसे चक्रवर्ती दारा जैसे दिल्लीपति, दुर्योधन जसे अहकारी इस दुनिया म भोग भोगकर अत म इसी मे मिल गये। कुछ उदाहरण देखिये —

सुद्ध सिपाह दुरत दुबाह सु साजि सनाह दुरजान दलगे।
भारी गुमान भरे मन मैं कर परबत पख हलै न हलगे।
तोर अरीन मरोर मवासन माते मतगेन मान मलगे।
श्रीपति श्री भगवान क्रिपा बिनु तिआग जहानु निदान चलगे।२५।

जोगी जती ब्रह्मचारी बडे बडे छत्रधारी।
छत्र ही की छाइआ कई कोस लौ चलतु हैं।
बडे बडे राजन के दाबति फिरति देस
बडे बडे राजन के द्रप को दलतु हैं।
मान से महीप औ दिलीप कसे छत्रधारी।
बडो अभिमान भुज दड को करतु हैं।
दारा से दिलीसर द्रुजोधन से मानधारी
भोग भोग भूम अत भूम मैं मिलतु है। ७८।

इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह ने स्पष्ट रूप से सासारिक वभव और ऐश्वय से मिलने वाले सुखो को क्षणिक एव नाशवान बताकर उनके मोह त्याग पर बल दिया है। क्योकि वे समझते थे कि धन-वभव बल विक्रम से युक्त जितने भी जीव हैं वे भगवद भक्ति के बिना खप कर यही मिट जायेंगे[2]। इन सभी सुखो की साथकता भगवद भजन से ही है, उसके बिना सभी कुछ निरथक है।

१ जीत फिरै सब देस दिसान को बाजत ढोल म्रिदग नगारे।
गुजत गूढ गजान के सुदर हसत ही हय गज हजार।
भूत भविक्ख भवान के भूपत कउन गन नही जात बिचारे।
श्रीपति श्री भगवान भजे बिनु अत कउ अत के धाम सिधारे।२३।
२ अकाल उस्तति २७।

इसलिये जीव को इससे विरक्त होकर परमात्मा के स्मरण में मन लगाना चाहिये। परन्तु इन आकर्षणों एवं सुखों से विरक्ति तभी संभव है जब मनुष्य ज्ञान का प्रकाश पा ले। स्पष्ट है गुरु गोविन्दसिंह ब्रह्म ज्ञान के साथ साथ विरक्ति के महत्व को भी स्वीकार करते हैं परन्तु मुख्य भक्ति को ही मानते हैं। भक्ति की दृढ़ता और परिपक्वता के लिए इनकी बड़ी आवश्यकता है, ये उसके अंग हैं। गुरुजी की यह समन्वय की भावना तुलसीदास की इस पंक्ति—श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ, संजुत विरति विवेक के अत्यधिक निकट है। मध्यकालीन भारतीय धर्म साधना का यह समन्वय एक सामान्य एवं महत्वपूर्ण तत्व है। सांसारिक सम्पदा के प्रति उनकी इस विरक्ति का ध्यान में रखते हुए हम डा० हरिभजनसिंह के इस कथन से सिद्धान्तरूप में बिल्कुल सहमत नहीं हैं कि गोविन्दसिंह के व्यक्तित्व में अपने पूज्य पिता की अपेक्षा भौतिक सम्पदा के प्रति कम अरुचि थी[1] हम निःसंकोच भाव से यह कह सकते हैं कि उन्हें न तो राजशक्ति की कामना थी न ही धन और ऐश्वर्य से कोई मोह था। धन, शक्ति यदि उन्हें इकट्ठा करना था तो केवल इसलिये कि उनको धर्मयुद्ध लड़ने के लिए आवश्यकता थी, न कि निजी सुख भोग के लिये।

'अकाल पुरुष' ने उन्हें धर्म स्थापन के जिस उद्देश्य से भेजा था, वह कार्य उन्होंने धर्मवीर और युद्धवीर दोनों प्रकार से किया। जहां वे साहसी शूरवीर थे और अन्याय, अधर्म, और अनीति के विरुद्ध अन्त तक लड़ते रहे, वहां वे एक मननशील चिंतक, ब्रह्म ज्ञानी और निष्ठावान भक्त भी थे। उन्होंने ब्रह्म, जीव, जगत, सृष्टि के स्वरूप का निरूपण अद्वैतवादियों की भाँति अन्य सिक्ख गुरुओं की परम्परा में बड़ी गम्भीरता और विशदता से किया और साथ ही विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, मत मतान्तरों के आडम्बरपूर्ण बाह्याचारों पाखण्डपूर्ण साधना-पद्धतियों का विरोध और खण्डन धर्मवीर के उत्साह से करते हुए, सामान्य और सरल भक्ति मार्ग का महत्व स्थापित किया। उनकी बाह्य विविधता और विभिन्नता को मिटा कर आन्तरिक एकता का उद्घाटन किया। उन्होंने बार बार इसी तथ्य पर जोर दिया कि मन्दिर मसीत, हिन्दू और मुसलमान, राम रहीम, पुराण-कुरान, वेद कतेब, एक ही है, सभी में उस ब्रह्म का प्रसार है, उसी का प्रकाश है। इसीलिये उन्होंने जाति पाति, वर्ण वैषम्य का विरोध करते हुए मानवीय एकता में विश्वास प्रकट किया और मानवतावादी भावना को प्रश्रय दिया।

---

१ गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य—पृ० ७८।

उनका न तो मुसलमानों से विरोध था, न इस्लाम से। विरोध था उन आसुरी शक्तियों से जो अन्याय, अधर्म, असत्य अनीति, अत्याचार का प्रतीक है। किसी अन्य मत या सम्प्रदाय से भी उनका कोई विरोध नहीं था। विरोध था—वाह्याचार, आडम्बर, पाखंड अधविश्वास और अज्ञान से और जीवन पर्यन्त एक सच्चे धर्मयोद्धा की भांति व उनके विरुद्ध लड़ते रहे। यह कहना गलत है कि 'जहां तुलसी जैसे भक्तों के लिये साधन और साध्य दोनों भक्ति हैं वहाँ गुरु गोविन्दसिंह के लिये भक्ति मुख्यतः साधन ही है।'[1] उनके लिये भी साध्य भक्ति ही है युद्धकर्म एक साधन मात्र है। वे साहसी योद्धा अवश्य थे और व्यक्ति के स्वाभिमान राष्ट्र की स्वतन्त्रता और धर्म की रक्षा के लिए भारतीयों में वीर भावना जगाकर मुगलों के विरुद्ध लड़ने के लिए उन्हें तैयार करना उनका एक मुख्य उद्देश्य था। इसी भावना को पैदा करने के लिए विचित्र नाटक में भी उन्होंने लिखा है कि यवनों के विरुद्ध जो गुरुजी का साथ नहीं देगा उस पर मुगल तो अत्याचार ढायेंगे ही, गुरुजी भी उसकी रक्षा नहीं करेंगे। उसे न इस लोक में सुख मिलेगा, न उस लोक में वह लोक परलोक दोनों को बिगाड़ेगा। इस तरह अधर्म और अन्याय के विरुद्ध इस प्रकार विद्रोही भावना उन्होंने जगाई अवश्य[2] मगर उससे भी पहले वे परम सन्त थे और भगवद् भक्ति में लीन रहकर परमात्मा के सान्निध्य को प्राप्त करना वे जीव का परम लक्ष्य मानते थे। वे सत्य का खड्ग न्याय का खांडा और नीति की तुफंग और नाम का अग्निबाण लेकर धर्मयुद्ध के लिए निकले थे और असत्य अन्याय और दुराचार की प्रतीक आसुरी शक्तियों (यवनों) की जड़ें हिलाने में उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई। उनका योग और भोग दोनों में विश्वास था। स्वाभिमान पूर्वक स्वतन्त्रता तथा निर्भीकता से जगत में रहते हुए इसका भोग करना चाहिए, परन्तु इसमें कमलवत् निर्लिप्त भाव से रहना चाहिए और परम पिता परमात्मा से प्रेम का सम्बन्ध जोड़कर उससे योग (मिलन) प्राप्त करना चाहिए। सत्य, न्याय, संयम सन्तोष परोपकार, भूत दया सेवा त्याग आदि इस पथ पर अग्रसर होने के लिए सबल हैं (देश प्रेम,

---

१ गुरुमुखी लिपि में हिंदी काव्य—पृ० ६४, डा० हरिभजनसिंह।

२ विचित्र नाटक अध्याय १३ ३—२५।

धम प्रेम, प्राणी प्रेम और प्रभु प्रेम यही उनका अमर सन्देश था। जाति-पाति, वर्ण-भेद एव वर्णाश्रम के कट्टर विरोधी और मानव मात्र की एकता मे दृढ विश्वास रखने वाले, सत्य और न्याय के लिए लडने वाले वे सच्चे धर्मवीर थे। उनकी जीवन दृष्टि आशामयी, उत्साहपूर्ण और आस्थावादी थी और जीवन चर्या साहसपूर्ण सयमित, सन्तुलित एव सात्विक। उनको योद्धा का रूप सन्त की रक्षार्थ ही धारण करना पडा था। योद्धा रूप धर्म स्थापन का साधन था, साध्य नहीं। वस्तुत वे सही अर्थों म सन्त-योद्धा थे।

६

'दशम-ग्रन्थ' का छन्द-विधान

राजशेखर ने छन्द को काव्य पुरुष के रोम के समान कहा है। उसमे की हुई रचना से स्वय काव्य की जननी सरस्वती भी पराजित अनुभव करती है। मनोविज्ञान के अनुसार सभी ललित कलाएँ हमारे मनोवेगो से सम्बन्धित हैं। जिस समय हमारे मनोवेग तीव्रता एव आवेग की स्थिति म होते है तो वे चित्र म रेखाओ और रगो से सगीत म स्वर और ताल आदि से, नृत्य म अग-सचालन एव भाव भगिमाओ स तथा कविता म शब्द और लय आदि से प्रकट होते हैं। लयादर्श की नियमित आवृत्ति पर छन्द का निर्माण होता है। अत छन्द का मनोवेग स भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। कविता म छन्द के प्रयोग से भावाभिव्यक्ति के लिए एक उपयुक्त एव समय साधन उपलब्ध हो जाता है और साथ ही इमसे भावाभिव्यक्ति पर नियन्त्रण भी रखा जा सकता है।

मनुष्य के मन म परिस्थिति के अनुरूप विविध मनोवेगो का उद्रेक होता है। कभी उनम अधिक तीव्रता एव आवेग होता है और कभी कम। मनोवेगो के अनुरूप ही हमारे स्वर की गति होती है और उन्ही के अनुसार भावाभिव्यक्ति की लय निर्मित होती है। वस्तुत लय का मनोवेगो के साथ इतना गहरा सम्बन्ध है कि विश्लेषण द्वारा उनको पृथक नही किया जा सकता। अत लय अथवा लयादर्श की आवृत्ति पर आधारित छन्द का रस से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। कवीन्द्र रवीन्द्र का कथन है कि भाव का मन म जो रूप होता है छन्द म तदनुकूल स्वरूप धारण करता है। कुशल कवि भावानुकूल छन्द-योजना द्वारा भावाभिव्यक्ति को अधिक पुष्ट सक्षम एव प्रभावशाली बना देता है।

भारतीय साहित्य म छन्दों की एक समृद्ध एव विकासोन्मुखी परम्परा रही है। वेदों के अधिकाश मन्त्र छन्दोबद्ध हैं। वहा केवल वर्णिक सख्या अथवा अक्षर गणना के आधार पर छन्दो का स्वरूप निर्धारित किया जाता था। सस्कृत काल म अक्षर गणना के साथ गण विभाग अथवा लघु गुरु क्रम का भी पूरा निश्चय कर लिया गया और उन्हें वृत्त, जाति की सज्ञा दी गई। प्राकृत

काल म इन छन्दा का प्रयोग भी होता रहा, साथ ही मात्रिक छन्दो का भी उदय हुआ। अपभ्रन्श मे मात्रिक छन्दो का जोर इतना बढा कि गोवधनाचाय (आय सप्तशती) तथा जयदेव (गीत गोविन्द) जैसे सस्कृत के प्रसिद्ध कवियो ने भी मात्रिका का प्रयोग किया। उस युग का अधिकाश जैन एव सिद्ध साहित्य इन्ही छन्दा म रचा गया। हिन्दी म भी मात्रिक छन्दो का ही अधिक प्रयोग हुआ। रीतिकाल (सवत १७०० १६००) मे अवश्य सवैया और कवित्त (वर्णिक छन्द) अवश्य लोकप्रिय हुए परन्तु मात्रिकों का प्रयोग भी बराबर होता रहा। पजाब म तो उस युग म लगाधिक मात्रिक छद लिखे गय।

सस्कृत महाकाव्य सगबद्ध होते थ और उनके एक सग मे एक छन्द प्रयुक्त करने का नियम था। किन्तु इस नियम का सस्कृत काव्यो म विकल्प मे ही पालन हुआ है। कालिदास, भारवि, भट्टि, माघ आदि महाकवियो न एक ही सग म अनेक छन्दा का और एक ही छद का कई कई सर्गों म भी प्रयोग किया है। महाकवि कालिदास ने रघुवश के नवें सग मे द्रुतविलम्बित, औपच्छादसिक, पुष्पिताग्रा प्रहर्षिणी, मजुभाषिणी, मत्तमयूर, वसन्ततिलका, वतालिक, शालिनी, स्वागता, तोटक, मन्दाक्रान्ता आदि अनेक छदा का प्रयोग किया है। इसी प्रकार भारवि न 'किरातार्जुनीय' के सोलहवें और अठारहवें सग म सोलह छन्दा का, भट्टि ने 'रावण वध' के दसवें सग म कोई अठारह छन्दो का प्रयोग किया है तथा माघ ने शिशुपाल-वध' के चौथे सग म अनेक छदो का प्रयोग किया है। 'रघुवश' का दूसरा, पाँचवा, सातवाँ, तरहवाँ, चौदहवा, सोलहवा, अठारहवा, सग केवल इन्द्रवज्रा छन्द मे रचित है।

एक सग म एक ही छन्द प्रयुक्त करने की परम्परा प्राकृत काल म बहुत कम रह गई। अपभ्रश म तो यह प्राय लुप्त हो हो गई। इस युग के जैन प्रबन्धकाव्य सन्धियों म विभक्त हैं जिन्हे पुन कडवको म भी उपविभक्त किया गया है। इनम कडवका का छन्द कभी तो सम्पूण सन्धि मे एक ही होता है और कभी बदल जाता है। कई-कई सन्धिया म एक हा छन्द भी चलता है और एक ही सन्धि म अनेक छन्द भी आए हैं।' सुदसण चरिउ' (नयनन्दी) 'सुलाचना चरिउ' (दवसेना) जिणिदत्त चरिउ' (पण्डित लाखू) इत्यादि चरित-काव्या म इसी प्रकार की छन्द विविधता के दशन हाते हैं। इसी पद्धति का विकास हिन्दी के उन रासा-काव्या म हुआ जिनमे बहुत से छन्दा का प्रयोग हुआ है—अर्थात छन्द-वैविध्य से युक्त रासो काव्यो म। अपभ्रश के कडवक-बद्ध शैली के प्रबन्धकाव्या म प्रत्येक कडवक क आरम्भ अथवा अत म घत्ता या कोई अन्य छन्द होता है और फिर कडवक का विशेष छद चलता है। कडवका म अधिकतर पज्झटिका, पद्धडिया, पादाकुलक अरिल्ल आदि १६मात्राओ के छन्दा का प्रयाग हुआ है। धवल ने कुछ कडवको मे चौपाई का भी प्रयोग किया है। परन्तु अत म घत्ता दोहे का नही है। जिनप्रभसूरी' ने घत्ता दोहे का दिया है,

परन्तु ग्रंथ म कडवक म चौपाई नही है। यशःकीर्ति के 'पाडव पुराण म दोहड, दोधक तथा कहीं-कहीं चौपाई में भी दशन होत ह। धनपाल के 'बाहुबलि चरिउ' म कडवक के आरम्भ म भी दोहरा (दोहा) है। अपभ्रंश की इस पद्धति को हिन्दी म सूफी प्रेमाख्यानक-काव्या की दोहा चौपाई पद्धति क रूप म अपनाया गया और इसी का तुलसीदास ने 'रामचरितमानस म प्रयोग किया। तुलसी ने चौपाई के साथ दोह के स्थान पर सोरठे का भी प्रयोग किया है इसके बीज भी अपभ्रंश क प्रबन्धचिन्तामणि' म विद्यमान है। एक ही छन्द के कइ सधियो म प्रयुक्त करने की पद्धति का विकास उन रासा काव्या म हुआ जा एक ही छन्द म लिखे गये।

इस प्रकार हम दखत हैं कि हिन्दी म मुख्य रूप से प्रबन्ध काव्या के लिए तीन प्रकार की पद्धतिया का प्रचलन हुआ—

१ छन्द विविधता वाले रासो काव्य जैसे पृथ्वीराज रासो। इस परम्परा का और अधिक विकास 'रामचन्द्रिका' म हुआ है जिसम लगभग १०० छन्दो का प्रयोग हुआ है।

२ दोहा चौपाई पद्धति म रचित 'पद्मावत तथा 'रामचरितमानस जस काय।

३ 'बीसलदेव रासो' आदि रासो-काव्य जिनम एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है।

दशमग्रथ म इनम से प्रथम दोना पद्धतिया के दशन होते हैं। उसम छन्द विविधता भी है और दोहा चौपाई तथा कुछ अन्य पद्धतियो का भी प्रयोग किया गया है। इसक अतिरिक्त जिस समय दशम ग्रथ की रचना हुई उस समय हिन्दी मे कवित्त एव सवया बहुत लोकप्रिय छद थे। पजाब के साहित्य म भाई गुरुदास पहल ही बहुत अच्छे कवित्त, सवय लिख चुके थे। अस्तु दशमग्रथ' म इन छन्दो का आ जाना स्वाभाविक ही था। रासो का प्रसिद्ध छप्पय पद्धति को भी इसमे अपनाया गया है।

पजाबी साहित्य म इस समय 'वार' पद्धति का बडा प्रचलन था। सिक्खमत के प्रसिद्ध व्याख्याता भाई गुरुदास' बहुत सी वारें लिख चुके थे। दशमग्रथ' के कवि ने भी वार भगवती को लिखकर इस परम्परा का प्रतिनिधित्व किया। सिद्धा और सन्तो की भाँति 'दशमग्र थ' म शब्द और पद भी आये हैं जिनकी आदिग्र थ' म बहुलता है। शब्द हजारा म रामकली, सोरठा, कल्याण बिलावल दवगधारी खियाल, आदि की रचना रागा मे हुई है।

रे मन ऐसी करि सनिआसा, वन स सदन सब करि समभहु
मनही माहि उदास।

आदि ग्रन्थ पर आदिग्रन्थ का सीधा प्रभाव लक्षित होता है। इसी प्रकार 'दशमग्रथ म पउडी का भी प्रयोग हुआ है। मध्ययुग म वीरगाथाग्रा के

उच्चारण के लिए चारण और भाट इस प्रकार के काव्य रूप का बहुत प्रयोग करते थे। युद्ध के अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने मे इसकी लय बहुत अधिक उपयोगी होती है। इसी प्रकार 'सिरखंडी' छन्द का प्रयोग भी 'दशमग्रंथ' की एक विशेषता है। पंजाबी का यह मुक्तक छन्द पंजाबियों की स्वतन्त्र प्रकृति का परिचायक है। गुरु गोविन्दसिंह ने इस छन्द का प्रयोग पूर्ण कुशलता से किया है। पंजाब में उस समय फारसी साहित्य का काफी बोलबाला था, जिसकी रचना बहुत मे होती थी। दशमगुरु ने फारसी के 'बहरे तवील' पसवर्ती, बहरे मुतकारिब, मुसम्मन मक्सूर महजूफ आदि छन्दों का भी सफल प्रयोग किया। यही नही फारसी कविता के लिए सवये का प्रयोग करके एक वैशिष्ट्य प्रदर्शित किया। 'रेखता' एक विशेष काव्य शैली है जिसमे दक्षिण की 'मणिप्रवाल' शैली की भांति विविध भाषाओं की मणियाँ मंडित होती हैं। 'दशमग्रन्थ' में इस काव्य रूप के भी दर्शन होते हैं। इस प्रकार हम देखते है कि 'दशमग्रंथ' में हिन्दी साहित्य का हर प्रमुख छन्द पद्धतियों को ही नहीं अपनाया गया, वरन पंजाबी तथा फारसी साहित्य की प्रमुख पद्धतियों को भी स्थान दिया गया।

'दशमग्रंथ' के कर्तृत्व की समस्या बड़ी पचीदा है। अभी तक विद्वान यह निर्णय नहीं कर पाये कि यह सम्पूर्ण ग्रन्थ 'दशमगुरु' द्वारा रचित है अथवा कुछ अंश ही उनका लिखा हुआ है और शेष उनके हजूरी कवियों द्वारा लिखा गया है। यह बात तो सर्वमान्य है कि 'दशमगुरु' बड़े काव्य प्रेमी थे और उनके दरबार में कवियों का जमघट लगा रहता था। एक समय तो उनकी संख्या ५२ तक थी। इसके इलावा बहुत से कवि आते जाते रहते थे। इन कवियों मे बहुत से कवि सुदूर हिन्दी भाषी प्रदेश से आये थे और अपने साथ वहां की छन्द पद्धतियाँ भी लेते आये थे। पंजाबी और फारसी के कवि भी उनके आश्रय में विद्यमान थे। वे सभी अपनी अपनी भाषा और छन्द पद्धतियों में काव्य-रचना किया करते थे। यही कारण है कि 'दशमग्रंथ' में हम इन तीनों भाषाओं और उनकी प्रमुख छन्द पद्धतियों के दर्शन होते हैं। हम समझते हैं कि इन छन्द-पद्धतियों के समुचित अध्ययन से 'दशमग्रंथ' के कर्तृत्व की समस्या बहुत कुछ हल हो सकती है।

कहते हैं हिन्दी के प्रसिद्ध चमत्कारवादी कवि केशव का पुत्र कुवेरेश अथवा कुवरेश भी 'गुरु गोविन्दसिंह' के हजूर में रहता था। यदि यह सत्य है तो आते समय वह अपने पिता की प्रसिद्ध रचना 'रामचन्द्रिका' भी अवश्य लाया होगा। कुवरेश गुरु दरबार' में रहा हो या न रहा हो, 'रामचन्द्रिका' वह लाया हो या कोई और परन्तु 'दशमग्रंथ' और 'रामचन्द्रिका' के छन्दों की तुलना करने से यह निश्चय अवश्य हो जाता है कि 'दशमग्रन्थ' के कवि के सम्मुख यह रचना रही अवश्य है। छन्द विविधता और छन्द चमत्कार 'रामचन्द्रिका' की एक प्रमुख विशेषता है। कवि ने आरम्भ में ही लिखा है 'रामचन्द्र की चन्द्रिका बरणत हूं बहु छन्द', मानो रामकथा कहना कवि का उद्देश्य नहीं है, उसे विवि

छन्दा के चौखटे म जड कर खडा करना ही अभिप्रेत है। हम यह तो नही कह सकते कि 'दशम ग्र थ' के कवि का भी एसा कोई उद्देश्य था परन्तु इतना अवश्य है कि उसम छन्द वविध्य 'रामचन्द्रिका' से कम नही है। 'दशमग्रन्थ' म अनि मालती (पान्नकुलव), अभीर (आभीर, अहीर) अवतार (मृतगति), अडिल्ल, ऐला (डिल्ला), कलस कु डलिआ, गाहाद्गना (गाथा प्राकृत), गीतिमालती घत्ता (अपभ्र श), चउबोला चतुष्पदी चरपट, चौपई, छप्पय, तोमर हरि गीतिका तिलोकी त्रिभगी दोहरा नवपदी पउडी, पदमावती, पद्धरि, अधपा धडी पुनहा बहडा (पुनहा), बहोडा, बिसुपद, बत (बहरे मुनसारिय मुसम्मन मक्सूर महजूफ) ब्रितगत (मृतगति) मकरा मधुभार, माधा (करीरा) मोहन मारह, मोहनी विजया सिरखडी (पल्वगम) सुखदा सुप्रिया (डिल्ला) सगीत मधुभार सारठा, हरिगीता, हीर (हीरक), हसा (हसी) असतर (भुजगप्रयात), असता (किलका, तोटक) अकरा (नशिवदन, अजवा) अक्वा (अजबा, तिलका हरिबालमना), अचकडा (मगविनी), अजव (अक्वा) अजा (अञ्जन) अनका (नशिवदना), अनहद (अकरा) अनाद अनुभव, अनूपनराज (पचचामर) अपूरब (अरूप नारा) अरूपा, अलका (कुसम बचित्रा), अडूहा (सजुता प्रिया), अनन्त तुकभुजगप्रयात, एन अच्छरी (इसम कई छन्द ह) उछला (हसक) उगाध (यगाधरा) उटक्ण (उतगन), उतभुज (सखनारी सोमराजी) कवित्त किलका कुसमविचित्र कुमार ललित (मल्लिका) कुलका (शशिवदना) कण्ड आभूषण दोधक, त्रिपानन्ति (मधुभार) चरपट चाचरी चामर (सोमवल्लरी) चचला (चित्रा) भूलना, भूला (सोमराजी) तरनराज तारक तारका तिलका तोटक, त्रिगता, त्रिणणिण (अकरा) त्रिडका, तिलकारिया (उगाधा) नगस्वरूपणि, नगस्वरूपणी अध नराज नराज अध नराज बिध नराज लघु, नवनामक निसपाल पधिसटका (तोटक) पकजवाटिका, प्रिया, बहिर तवीतपसवमी (फारसी), बचित्रपद वानतुरगम वेली बिद्रम बिशेषक, बिराज, भगउती (भगवती), भडथुआ (सखनारी) भुजग भुजगप्रयात भवानी (भगवती) मथान (मनथान) मधुर धुनि मदक (ताटक) मनोहर मत्तगयद, मालती, रमान रावणवाद, रणभुण (अकरा), रुआमल (रुआल, सरस्वती), रेखता (मनहर कवित्त) रसावल, समानका सवया अनततुक, सारस्वती सुखदावृद्ध, सुन्दरी सोमराजी, सगीत भुजगप्रयात सगीत नराज, सगीत पाधसटिका, सजुता (प्रिया) सखनारी *हरिबालमना, दोहा (सुधि) आदि सस्कृत, प्राकृत अपभ्र श, हिन्दी फारसी* तथा पजाबी के मात्रिक एव वणिक सम विषम एव मिश्र लगभग १३५ छन्दा का प्रयाग किया गया है। इन छन्दा म कुछ ता बहुप्रचलित छन्द हैं जिनका हिंदी के बहुत स कवियो ने प्रयोग किया है। परन्तु कुछ छन्द एस हैं जिनका प्रयाग बहुत कम कवियो ने किया है। 'रामचन्द्रिका' स तुलना करने पर विदित हाता

है कि एसे छन्द कवि ने उसी ग्रथ से लिए है। दोहा, कवित्त, सवैया, चौपई, तोमर, तोटक, मोहन, मालती, सोरठा, कुण्डलिया, त्रिभगी, नराज, छप्पय, भुजगप्रयात आदि प्रसिद्ध छदो के अतिरिक्त 'दशमग्रथ' मे प्रयुक्त कुसमविचित्रा, कुमारललित, प्रिया, नवपदी, षटपदी, पादाकुलक, आभीर हरिगीत, हीरक, चामर, चचला, झूलना नगस्वरूपणी, विशेषक, भगवती, विजया, तारक, मुग्दा, मधुभार, मालती, निशिपालक, सुन्दरी, सयुक्ता, पदमावती पकज-वाटिका, मोदक, सोमराजो, हीरक, आदि कितन ही ऐस छन्द है जिनका हिन्दी मे बहुत कम प्रयोग हुआ है और जो 'दशमग्रथ' म 'रामचद्रिका' से ही लिये गये हैं। इनम से बहुत से तो पृथ्वीराजरासो या और किसी भी हिन्दी काव्य-ग्रन्थ म नही आय। 'रामचद्रिका' 'दशमग्रन्थ' के कवि के सम्मुख थी, और वह उससे प्रभावित भी था इसके प्रमाण मे हम एक अन्त साक्ष्य और उपलब्ध हुआ है। 'दशमग्रन्थ के 'रामावतार' प्रबन्ध मे सीताहरण के प्रसग म राम की सहायताथ जाते समय लक्ष्मण रेखा का उल्लेख है। 'रामावतार के कर्त्ता न यह प्रसग 'रामचद्रिका से ही लिया है। एक बात और है, दशमग्रथ' के 'चौबीस अवतारा की पुराण-कथाओ मे जितनी छन्द विविधता है उतनी अन्य कथाओ मे नही। लगभग १२० छन्द इन अवतार-कथाओ म आये हैं, जबकि 'अपनी कथा' मे लगभग १४, 'चण्डी चरित द्वितीय' मे १७, 'पख्यान चरित्र' मे १६ छन्दा का ही प्रयोग हुआ है। 'रामचद्रिका' भी पौराणिक अवतार-कथा है, उसमे भी एसी ही छन्द विविधता है। दोना ग्रन्था की अवतार कथा म इस छन्द विविधता की समानता एक के दूसरे पर प्रभाव की सूचक है। राम चद्रिका की रचना सवत १६६८ म हुई और गुरु गोविन्दसिंह का रचना काल है लगभग स० १७६५ का दोनो के समय म अधिक अन्तर नही है। इस समय तक 'रामचद्रिका' की काफी प्रसिद्धि हो चुकी थी पजाब म भी उसकी पहुच अवश्य हो गई होगी। गुरुमुखी लिपि म रचित इसकी प्रतियाँ इसके प्रभाव एव प्रचार की सूचक हैं। एसी स्थिति म हम दृढतापूर्वक कह सकते हैं कि 'दशमग्रन्थ' की छन्द-पद्धति पर सबसे अधिक प्रभाव 'रामचद्रिका' का पडा है। परन्तु साथ ही उस पर चन्द, तुलसीदास, जायसी सूर आदि अन्य प्रसिद्ध कवियो का भी प्रभाव है।

'दशमग्रथ की अवतार-कथाओ म छन्द विविधता सबस अधिक है। 'रामावतार म ६८ तथा कल्कि अवतार म ७० छन्दो का प्रयोग हुआ है। इन दोना अवतार कथाओं म लगभग १२० छन्द प्रयुक्त हुए है। अन्य रचनाओ म छन्द-वैविध्य इतना नही है। उदाहरण के लिए 'जाप' म चौपई भुजगप्रयात चाचरी, रुआल, भगवता, हरिबोलमना, चरपट, मधुभार, रगावल, एक अछरी

छन्दा म चौगटे म जह मर रखा करना ही अभिप्रेत है। हम यह तो नहीं कह सकते कि 'दसम ग्र थ' म कवि का भी एसा कोई उद्देश्य था, परन्तु इतना अवश्य है कि उसम छन्द वविध्य 'रामचन्द्रिका' से कम नहीं है। दसमग्रन्थ म अति मालती (पानानुकर), अभीर (आभीर, अहीर) अकार (शृंगारि), अडिल्ल, ऐला (डिल्ला), अलग मु डलिमा गाहादूजा (गाथा प्राकृत), अनिमालना घत्ता (अपभ्रंश), चउवाला चतुष्पदी चरपट चौपई, छप्पय, तोमर हरि गीतिका तिलोकी, त्रिभगी दोहरा, नवपदी पउश पद्मावती, पद्धरि अथवा पदो पुाहा, बहडा (पुाहा), बहोडा, बिमुक्त बत (बहरे मुतकारिब मुसम्मन मक्सूर महज्फ) भ्रितगत (भृतगति) मकरा मधुभार, माधा (करीरा), मोहन मारह, मोहनी विजया, सिरखडी (प्लवगम) सुगल सुप्रिया (डिल्ला) सगीत मधुभार सारठा, हरिगीता हार (हीरक) हसा (हसी) असतर (भुजगप्रयात) असता (विलका तान्त) अकरा (शशिवदना, अजवा), अक्वा (अजया, तिलका हरिबोलमना), अचकडा (स्रग्विनी) अजव (अकवा), अजा (अन्जना), अनका (शशिवदना), अनहद (अकरा) अनाद अनुभव, अनूपनराज (पचचामर), अपूरब (अरूप कीरा) अरूपा, अतरा (कुसम बचित्रा) अडूहा (सजुता, प्रिया), अनन्त तुकभुजगप्रयात एक अच्छरी (इसम कई छन्द है) उछला (हसन), उगाघ (मनोहरा) उटकण (उतगन), उतभुज (सलनारी सोमराजी), कवित्त किलका, कुसमविचित्र कुमार ललित (मल्लिका), कुलका (शशिवदना) कण्ठ आभूषण दाधक, त्रिपानत्रिन (मधुभार), चरपट, चाचरी, चामर (सोमवल्लरी), चचला (चित्रा), झूलना झूला (सोमराजी), तरनराज, तारक, तारका तिलका, तोटक, त्रिगता, त्रिणणिण (अकरा) त्रिडका, तिलकारिया (उगाधा) नगस्वरूपणि, नगस्वरूपणी अध नराज नराज अध नराज बृध, नराज लघु नवनामक, निसपाल पधिसटका (तोटक) पक्वाटिका, प्रिया, बहिर तवीलपसचमी (फारसी), बचित्रपद बानतुरगम बेली बिद्रम, बिजोयक, बिराज, भगउती (भगवती), भड्युआ (ससनारी) भुजग भुजगप्रयात भवानी (भगवती) मथान (मनथान), मधुर धुनि मदक (तोटक) मनोहर मत्तगयद, मालती, रमान रावणवाद रणभुण (अकरा), रुआमल (रुआल, सरस्वती), रेखता (मनहर कवित्त), रसावल, समानका, सवया अनततुक सारस्वती सुखदावृद्ध, सुदरी, सोमराजी सगीत भुजगप्रयात सगीत नराज, सगीत पाधसटिका, सजुता (प्रिया) ससनारी हरिबोलमना, दाहा (सुधि) आदि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी फारसी तथा पजाबी क मात्रिक एव वर्णिक सम, विषम एव मिश्र लगभग १३५ छन्दा का प्रयोग किया गया है। इन छन्दा मे कुछ तो बहुप्रचलित छन्द है, जिनका हिंदी के बहुत से कवियो ने प्रयोग किया है। परन्तु कुछ छन्द एसे हैं जिनका प्रयाग बहुत कम कवियो ने किया है। रामचन्द्रिका' स तुलना करने पर विदित होता

है कि ऐसे छन्द कवि ने उसी ग्रन्थ से लिए हैं। दोहा, कवित्त, सवैया, चौपई, तोमर, तोटक, मोहन, मालती, सोरठा, कुण्डलिया, त्रिभगी, नराज, छप्पय, भुजगप्रयात आदि प्रसिद्ध छन्दो के अतिरिक्त 'दशमग्रथ' मे प्रयुक्त कुसमवचित्रा, कुमारललित, प्रिया, नवपदी, षटपदी, पादाकुलक, आभीर, हरिगीत, हीरक, चामर चचला, भूलना नगस्वरूपणी, विशेषक, भगवती, विजया, तारक, सुखदा, मधुभार, मालती, निशिपालक, सुन्दरी, सयुक्ता, पदमावती, पक्ज वाटिका, मोदक, सोमराजी, हीरख, आदि कितने ही ऐसे छन्द है जिनका हिन्दी मे बहुत कम प्रयोग हुआ है और जो 'दशमग्रथ' मे 'रामचन्द्रिका' से ही लिये गये हैं। इनमे से बहुत से तो पृथ्वीराजरासो या और किसी भी हिन्दी काव्य-ग्रन्थ मे नही आये। 'रामचन्द्रिका दशमग्रन्थ' के कवि के सम्मुख थी, और वह उससे प्रभावित भी था, इसके प्रमाण मे हमे एक अन्त साक्ष्य और उपलब्ध हुआ है। 'दशमग्रन्थ' के 'रामावतार प्रबन्ध मे सीताहरण के प्रसग मे राम की सहायतार्थ जाते समय लक्ष्मण रेखा का उल्लेख है। 'रामावतार' के कर्त्ता ने यह प्रसग 'रामचन्द्रिका से ही लिया है। एक बात और है, 'दशमग्रथ' के 'चौबीस अवतारो की पुराण-कथाओ मे जितनी छन्द विविधता है उतनी अन्य कथाओ मे नही। लगभग १२० छन्द इन अवतार-कथाओ मे आये हैं, जबकि 'अपनी कथा' मे लगभग १४, 'चण्डी चरित द्वितीय' मे १७, 'पख्यान चरित्र' मे १६ छन्दो का ही प्रयोग हुआ है। रामचन्द्रिका' भी पौराणिक अवतार कथा है, उसमे भी ऐसी ही छन्द विविधता है। दोनो ग्रन्थो की अवतार कथा मे इस छन्द विविधता की समानता एक के दूसरे पर प्रभाव की सूचक है। 'राम-चन्द्रिका' की रचना सवत १६६८ मे हुई और गुरु गोबिन्दसिंह का रचना काल है लगभग स० १७६५ का, दोनो के समय मे अधिक अन्तर नही है। इस समय तक रामचन्द्रिका की काफी प्रसिद्धि हो चुकी थी पजाब मे भी उसकी पहुच अवश्य हो गई होगी। गुरुमुखी लिपि मे रचित इसकी प्रतियाँ इसके प्रभाव एव प्रचार की सूचक हैं। ऐसी स्थिति मे हम दृढतापूर्वक कह सकते हैं कि 'दशमग्रन्थ' की छन्द पद्धति पर सबसे अधिक प्रभाव 'रामचन्द्रिका' का पडा है। परन्तु साथ ही उस पर चन्द, तुलसीदास, जायसी सूर आदि अन्य प्रसिद्ध कवियो का भी प्रभाव है।

'दशमग्रथ की अवतार-कथाओ मे छन्द विविधता सबसे अधिक है। 'रामावतार' मे ६८ तथा कल्कि अवतार मे ७० छन्दो का प्रयोग हुआ है। इन दोनो अवतार कथाओ मे लगभग १२० छन्द प्रयुक्त हुए हैं। अन्य रचनाओ मे छन्द वैविध्य इतना नही है। उदाहरण के लिए 'जाप मे चौपई, भुजगप्रयात, चाचरी, रुआल, भगवती हरिबोलमना, चरपट, मधुभार, रमावल, एक अच्छरी

छप्पय, चाचरी, रसावल मधुभार रगभुण, हरिबोलमना, नवनामक, हसक सावास, प्रमाणिका तोमर, चम्पकमाला, भुजगप्रयात, ताटक, निशिपालक, चचला, नराज, सवैया, अनुष्टुप, कबित्त, अनगशेखर, सिरखण्डी, बहर मुतकारिब मुसम्मा मक्सूर मह्जूफ आदि जिन ३३ छन्दो का प्रयोग हुआ है उनम से चम्पकमाला सावास, अनुष्टुप को छोडकर सभी दशमग्रन्थ म आये है। इस विवेचन स स्पष्ट है कि दशमग्रन्थ' का छन्द विधान परवर्ती प्रबन्धो के लिए आदर्श रहा है परन्तु उसम 'चण्डी चरित्र' तथा 'अपनी कथा' जितनी छन्द विविधता ही ह, 'चौबीस अवतार' की सी छन्द विविधता केवल गुर नानक विजय' (सनरण) म ही दिखाई पडती ह।

'दशमग्रथ म एक ही छन्द के लिए कई नई नामो का भी प्रयोग किया गया है यथा भवानी एव भगवती, अगाध एव तारका, तारक एव कलका, अकरा अनरा, अहर शशिवदना एव अनाद, अरुणा एव अजरा, अरूप एव अपूरब चरपट, हमक एव उछला, सखनारी एव सोमराजी आदि छन्द एक दूसरे के ही अनुरूप ह। कवि न कुछ ऐसे नामो का भी प्रयोग किया है जो बहु प्रचलित नही ह। हमन कोष्टक म उनके प्रचलित नाम द दिये हैं।

हिदी साहित्य म मात्रिक छन्दो का प्रयोग अधिक हुआ है। रीतिकाल मे आकर कवित्त एव सवया का प्रचार बहुत बढ गया था परन्तु मात्रिकों का प्रयोग भी बराबर होता गया। दशमग्रन्थ' मे भी मात्रिक छन्दो की सख्या अधिक है यद्यपि वर्णिक छन्दो का भी इसम प्रचुर प्रयोग हुआ है। दशमग्रन्थ' के लगभग १८००० छन्दो म से ५५५५ तो चौपइ हैं ३१८७ दोहे इसके अतिरिक्त अरिल्ल पद्धरि, त्रिभगी सारठा छप्पय आदि मात्रिक छन्द भी काफी सख्या म आय हैं। सवय केवल २२८२ ह। इनम से भी बहुत से मात्रिक सवय ह। पजाब के परवर्ती एतिहासिक प्रबन्धो मे भी मात्रिक छन्द अधिक हैं और वर्णिक कम। दोहा, चौपई, अरिल्ल पद्धरि का प्रयोग इन सभी ग्रथो म सर्वाधिक हुआ है। दोह चौपई के पश्चात सवय एव कवित्त का स्थान है, तदनन्तर पद्धरि, अरिल्ल रसावल, भुजगप्रयात आदि का।

पजाब के प्रबन्ध काव्यो मे सबमे पहले दशमग्रन्थ' म सगीत छन्दो का प्रयोग हुआ है। इस ग्रथ मे सगीत मधुभार, सगीत छप्पय सगीत बहडा, सगीत पाधडी सगीत भुजगप्रयात, सगीत नराज एव सगीत पाधसटिका आदि अनेक सगीत छन्दो का प्रयोग किया गया है। इन छन्दो म सामान्य छन्द से नियम म तो कोई अन्तर नही केवल कवि भावानुकूल वातावरण निर्मित करन के लिए अथवा छन्द म ध्वनि एव सगीतात्मकता लान के लिए ऐसे शब्दो का प्रयोग करता है जिनसे एक विशेष ध्वनि अथवा सगीत निकलता है। सगीत छन्द का एक उदाहरण देखिये —

कागड दग काती कटारी कडाक।
तागड दग तीर तुपक तडाक।

उसमे रसावल, भुजगप्रयात, मधुभार, नराज, तोटक, बिज, कुलक, रुग्रामल ग्रादि क्षिप्रगति तथा सगीत छन्दा का अधिक प्रयोग किया गया है। 'पख्यान चरित्र' मे नारी चरित्र का उदघाटन विभिन्न कथाम्रो के माध्यम से किया गया है, जिसके लिए दोहा, चौपई एव सवैये को उपयुक्त समझ कर उन्ही का अधिक प्रयोग हुआ है। इन प्रसगा मे जो अन्य भाव आये हैं, उनके अनुरूप बीच बीच म ही अन्य छद आये हैं। 'बचित्रनाटक' म क्षिप्रगति वीर रसात्मक छन्दो का तथा 'जाप साहब' एव 'अकालउस्तुति' म चाचरी एक अच्छरी, भगवती, चरपट आदि छदा का अधिक प्रयोग हुआ है। रामावतार' म कथा की विविधता है, इसलिए छन्दो मे भी अधिक वविध्य है। उसमे ६६ छन्दो का प्रयोग किया गया है। युद्ध-वणन की भीषणता एव तीव्र आवेग को चित्रित करने के लिए अजबा, त्रिणणिण, त्रिगदा, अनाद, रुणझुण, मधुभार, रसावल, चाचरी आदि लघु छन्दो का प्रयोग किया गया है। डा० हरिभजनसिंह के शब्दो म गुरु गोबिन्दसिंह छद के बाह्य आकार के निर्वाह मे ही निपुण नही, वे उसकी आत्मा को भी पहचानते ह। युद्ध से सम्बधित विविध व्यापारा, स्थितिया और आवेगो के उपयुक्त चित्रण के लिए वे अत्यन्त समथ छन्द का चयन कर लेते हैं। दीघ छन्द के अतिरिक्त तुक के प्रयोग द्वारा भी उन्हें लघु खण्डो मे विभक्त करके गति तीव्र करने का प्रयास किया गया है। पजाब के परवर्ती प्रबन्धकाव्या मे भी युद्ध वणन म ऐसी ही छन्द विविधता है और प्राय इन्ही छन्दा का प्रयोग हुआ है।

इसम घटना एव प्रसग के अनुरूप छोटे बडे, मदगामी तथा क्षिप्रगति छन्दो का प्रयुक्त किया गया है। छन्द परिवतन भी घटना अथवा घटना खडा की आवश्यकता के अनुसार हुआ है। युद्ध घटनाम्रो की गति का अनक छोटे बडे छदो के द्वारा और युद्ध ध्वनियो को सगीत छन्दा द्वारा यथावत ग्रहण करन का प्रयास किया गया है। प्रगीतात्मक कृष्णावतार' म मन स्थिति को लम्बे समय के लिए एक स्वर रखने के अभिप्राय से छन्द वविध्य को उचित नही समझा गया। 'कृष्णावतार' का मुख्य छद एक ही है—सवैया। बीच बीच म कवित्त, चौपई दोहा आदि का प्रयोग हुआ।[1] यहा शृगारिक छ द सवये का प्रयोग वीररस के लिए भी किया गया है और सूक्ष्म दार्शनिक एव भक्ति परक भावो को व्यक्त करने के लिए भी। 'कल्कि अवतार' म भक्तिपरक छन्द हरिबोलमना और मधुभार का प्रयोग वीररस के लिए किया गया है। इस तरह वीर रसात्मक छन्द भुजगप्रयात का प्रयाग भक्ति के लिए किया गया

---

१ गुरुमुखी लिपि म उपलब्ध हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ० २११,

है। परन्तु ...स्था । पर ...गम भावानुरूप है और उनें उत्तरोत्तर गम्भीर सहायक ही सिद्ध हुई है और विप्रगीति धारणा व उपयोगी ... रहन, वरन भक्ति भावना का प्रकट करने के लिए भी इनका प्रयोग हुआ है।

डा० हरिभजनसिंह ने दशमग्रन्थ में छन्द विधान की ...और विशिष्टता का उल्लेख किया है। उनका कथन है कि गुरु गोविन्दसिंह ने छन्द और अलकार के विषय म एक निश्चित नियम अपनाने का यत्न किया है। जहाँ छन्द वैविध्य है (चण्डी चरित्र द्वितीय और रामावतार) वहाँ अलकारो का प्रयोग अपेक्षाकृत विरल है, जहाँ अलकारो का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है (चण्डी चरित्र उक्ति विलास और कृष्णावतार) वहाँ छन्द वविध्य दृष्टिगत नहीं होता। वस्तुत गुरु जी ने क्रमश वीरगाथाकालीन पद्धति शैली और रीतिकालीन कवित्त सवया शैली का अनुसरण करते हुए उनके अलकार सम्बन्धी वशिष्ट्य को भी यथावत ग्रहण करने का प्रयास किया है।[2] डा० साहिब का यह कथन बहुत कुछ समीचीन है विशेषत उन रचनाओ के सम्बन्ध म जिनका उल्लेख उन्होने साथ साथ कर दिया है, मगर पख्यान चरित्र' का उन्होने उल्लेख नही किया, क्योकि वह उनकी धारणा के अन्तगत नही आता था। इसम दोहा, चौपई की भक्तिकालीन पद्धति का अनुकरण अधिक हुआ है, उसके पश्चात रीतिकालीन सवया है कुछ अन्य छन्द भी आये हैं, परन्तु उसकी शैली अलकृत नही है।

'दशमग्रन्थ म चौपई छन्द का प्रयोग काफी मात्रा म हुआ है। परन्तु यह सवत्र १५ मात्रा का चौपई ही नही है। कही तो यह १५ मात्रा का छन्द चौपई ही है और कही १६ मात्रा का चौपाई। वस्तुत पजाब के हिन्दी साहित्य में चौपइ एव चौपाई का भेद लुप्त सा हो गया है। दशमग्रन्थ,'गुरुशोभा गुरविलास महिमा प्रकाश' गुरु नानक विजय नानक प्रकाश गुरप्रताप सूरज पथ प्रकाश साहित्य सिरोमणि आदि सभी ग्रन्थो म इसे लिखा तो चौपई ही है परन्तु उसके अन्तगत बहुधा चौपाई का भी प्रयोग हुआ है। कई स्थानो पर तो ऐसा भी हुआ है कि एक चरण म १५ मात्राएँ है शेष तीनो मे १६। सम्भवत इसी असावधानी को देखते हुए रामसिंह ने चौपई की १६ मात्राओ के नियम का उल्लेख किया है[3]। दशमग्रन्थ के निम्न चौपई छन्द म सवत्र १६ मात्राएँ ही है —

डमडम डम डमरु बाजे, भूत प्रेत दिसउ दिसि गज्जे।
झिम झिम करत असन की धारा नाचे रुड मुड विकरारा।
(बचित्र नाटक १२। २२।)

---

१ गुरमुखी लिपि म उपलब्ध हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन,
२ वही पृ० २२१,
३ पजाबी व्याकरण—पृ० १०१६।

जैसाकि ऊपर कहा गया है 'दशमग्रन्थ' में किसी निश्चित छन्द पद्धति को नहीं अपनाया गया। इसमें अनेक शैलियों का प्रयोग हुआ है। मुग्ध शैली 'रामचरितमानस एवं 'प्रेमाख्यानक काव्यों' के अनुसरण पर दोहा चौपई की रखी गई है। 'विचित्र नाटक (द्वितीय अध्याय) के अधिकांश में, एवं 'पख्यान चरित्र' में मुख्य शैली दोहा चौपई की है। परन्तु वहीं भी उसमें स्थिरता एवं निश्चितता नहीं है। न ही वहीं तुलसी अथवा जायसी की भाँति चौपइयों की संख्या निर्धारित है। प्रायः अध्याय के आरम्भ में एक या दो दोहे आते हैं और अन्त तक चौपई चलती है या कुछ ही छन्दों में चौपई आकर बीच में कई दूसरे छन्द आने जाते हैं। कई बार अध्याय या प्रसंग का आरम्भ ही दोहे के स्थान पर चौपई कवित्त सवैया भुजंग, पद्धरि तोटक दोधक रसावल सुन्दरी, बिज, मनोहर, निशा, बहड़ा, सिरखण्डी, अडिल, गीतमालती छप्पय तोमर आदि छन्दों से होता है। एक, दो, चार या अधिक छंद आते हैं और फिर कुछ-कुछ दूर के लिए अन्य छन्द आते जाते हैं। वैसे कुछ ऐसी पद्धतियाँ हैं जिनका कुछ सीमा तक निर्वाह हुआ है। वे इस प्रकार हैं —

दोहा — सुपदा
दोहा — सवैया
दोहा — अडिल
दोहा — कवित्त
दोहा — भुजंगप्रयात
चौपई — रसावल
चौपई — भुजंगप्रयात
दोहा — छपै (छप्पय)

यहाँ हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि इनमें से कोई भी पद्धति स्थिर अथवा निश्चित रूप में प्रयुक्त नहीं हुई। बीच बीच में सर्वत्र अन्य छन्द आते जाते हैं। यह शैली अपभ्रंश की कडवक शैली के बहुत निकट पड़ती है जिसमें एक घत्ता होता था और उसके साथ कडवक का छन्द चलता था। यह घत्ता निश्चित रूप से घत्ता नामक छन्द का होना जरूरी नहीं था। हिन्दी में घत्ता का स्थान दोहे या सोरठे ने लिया। दशमग्रंथ' में दोहा सोरठा भी रहा और उसका स्थान नराज, पाधड़ी रसावल, छप्पय, आदि ने भी ले लिया। दूसरे अपभ्रंश के काव्यों में पूरे कडवक में उसका एक ही छंद चलता था। दशमग्रंथ में ऐसा नहीं है। आगे का छन्द अध्याय के अन्त तक भी वही हो सकता है और बीच-बीच छन्द परिवर्तन भी हो सकता है, अथवा अन्य कई छन्द भी आ सकते हैं। इसीलिए कहा गया है कि 'दशमग्रंथ में किसी स्थिर पद्धति का प्रयोग नहीं हुआ है। छन्द विविधता ही उसकी निश्चित पद्धति है।

पंजाब के दशमग्रन्थ के परवर्ती ऐतिहासिक प्रबन्धों ने भी **इस दृष्टि से**

'दशमग्रन्थ' का ही अनुकरण किया। उसमें भी दोहा चौपई की पद्धति प्रमुख है परन्तु यहाँ भी चौपइयों की संख्या स्थिर नहीं है। बीच बीच में अन्य छन्द सवैये आदि आये गये हैं। दोहा चौपई के साथ ही 'दशमग्रन्थ' के अनुकरण पर कुछ अस्थिर एवं अनिश्चित रूप में ही इन ग्रन्थों में कुछ अन्य पद्धतियों का भी प्रयोग हुआ है जैसा कि निम्न विवरण से प्रकट होता है —

गुरु विलास (सुक्खा सिंह)

दोहा — चौपई (मुख्य)
दोहा —सवैया —२
दोहा — रसावल
चौपई — सवैया
रसावल — चौपई
सवैया — चौपई
रसावल— सवैया

'दशमग्रन्थ की भांति अनिश्चित। अध्याय ७ के आरम्भ में २ रसावल चार सवैये ३ चौपई फिर भुजंगप्रयात—इत्यादि का प्रयोग हुआ है।

गुरु नानक विजय—संतरेण

दोहा — चौपई ४। २। १ ६
दोहा — कवित्त ८। १४। १ ४
दोहा — नराज ६। ११। १ ४
दोहा — भुजंगप्रयात १६। १३। १-६
दोहा — अड़िल १६। १७। १ ५

गुरु प्रताप-सूरज—संतोखसिंह

दोहा — हाकल रि० १। ४४ रा० ४ २८
दोहा — ललितपद रि० ६ १२ १७
दोहा — भुजंगप्रयात रा० १ ५३, रि० ४ ६
दोहा —पद्धरि रि० ३ ४, रि० २ ३६ रा० ४ १४
दोहा —निसानी रि० ६ ४५ रि० ६ ४६ ५० रि० ६ ५५ ५८
दोहा — तोटक रा० ३ ३०
दोहा — अड़िल ३ ३४
दोहा — कवित्त रि० २ ३७
दोहा —रसावल रा० ६ ४१

'गुरु प्रताप सूरज एक वृहद रचना है। उसकी छन्द पद्धतियाँ दशमग्रन्थ' से ही प्रभावित हैं परन्तु उसमें वैसी अस्थिरता नहीं है। उसमें कई जगह प्रायः सम्पूर्ण अंश, (अध्याय) में एक ही पद्धति चलती है—या कई कई अध्यायों में भी एकसी पद्धति देखी जा सकती है।

पथ प्रकाश

दोहा — चौपई—अधिकांश म
दोहा — पद्धरि—निवास १५
दोहा — ललितपद १६
दोहा — तोटक ४३
दाहा — रसावल ६, १०
दोहा — दुवया १७ २६ ७०, ६६ ५३।
दोहा —सवैया—६३, २६, ३६, ६५, ४६
दोहा — कवित्त—४६, १३, १०१, ११०
दाहा — निसानी—८४, ४५, ५३, ८१

उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि अपभ्रश के अनुकरण पर दोहा चौपई के अतिरिक्त अन्य बहुत सी पद्धतियो का 'दशमग्रन्थ' मे प्रयोग हुआ, परन्तु उनका स्वरुप अस्थिर सा रहा। आगे के प्रबधो मे 'दशमग्रन्थ' के अनुकरण पर उन्हें कुछ निश्चित एव स्थिर रूप मे प्रयुक्त किया गया। अशु निवास अथवा अध्याय का आरम्भ प्राय दोहे से हुआ और सम्पूर्ण अध्याय अरिल, रसावल, निसानी, भुजगप्रयात, कवित्त सवैया, ललितपद आदि मे लिखा गया। यद्यपि बीच-बीच म अन्य छन्द भी बराबर आते रहे तथापि दशमग्रन्थ' की सी विविधता उनम नही है। इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि पजाब की छन्द-पद्धति को छद-वविध्य का रूप प्रदान करने मे दशमग्रन्थ का ही मुख्य हाथ है।

'दशमग्रन्थ' के युद्ध वणन की शैलिया को डा० हरिभजनसिंह ने तीन रूपो म विभक्त किया है

कवित्त—सवैया शैली
पद्धटिका—शैली
विष्णुपदी—शैली।

इन शैलियो की विशेषताओं के सम्बन्ध मे उनके विचार उल्लेखनीय हैं। प्रत्येक शैली का अपना विशिष्ट प्रवाह और प्रभाव है। कवित्त-सवया शैली का प्रयोग सालकार चित्रण के लिये हुआ है। ऐसा चित्रण चाक्षुष सौन्दय का सृजन करता है। पद्धटिका शैली का प्रयोग अलकारहीन प्रकृत चित्रण के लिए हुआ है। पद्धटिका शैली का वशिष्टय युद्ध की गति और ध्वनि को अकित करने म है। ऐसे अकन से मुख्यत कर्णेन्द्रियो की सतुष्टि होती है। युद्ध वणन के लिए विष्णुपद शैली का प्रयोग बहुत कम देखने म आता है। वीरगाथाकाल के कवियो अथवा रीतिकालीन कवि भूषण म यह प्रवृत्ति नहीं पाई जाती। गुरु गोविन्दसिंह ने पारसनाथ रुद्रावतार म इस शैली का प्रयोग युद्ध को अमन्द कोमल क्रम

के रूप में प्रस्तुत करने के लिए किया है। पर सवैया गीत का प्रयोग अधिकतर प्रणय निवेदन के लिए ही होता रहा है। गीतों में लिखित युद्ध दृश्यों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है जैसे युद्ध-सुन्दरी कवि की अपनी प्रेयसी है। युद्ध के लिए ऐसा आत्मीय अनुराग के दर्शन अन्यत्र सर्वत्र अलभ्य हैं।

'गीति शैली में वर्णित युद्ध दृश्यों का प्रमुख वैशिष्ट्य यह है कि वे शूर-वीरों के व्यक्तित्व के कोमल पक्ष को उद्घाटित करने में समर्थ हुए हैं। कवित्त सवैया शैली में विकराल युद्ध-कर्म के कोमल समानान्तर प्रस्तुत करने का यत्न हुआ है। किन्तु वे युद्ध-कर्म की कोमलता को प्रकट करते हैं योद्धाओं की चरित्रगत कोमलता को नहीं, युद्ध-गीतों में योद्धाओं और उनके वरण के लिए उत्सुक अप्सराओं के मानस की मृदुता के दर्शन होते हैं।'[1]

इन शैलियों को कवि की अतिरिक्त विशेषता ही समझना चाहिए क्योंकि कवि ने अन्य उपर्युक्त कई शैलियों में भी युद्ध वर्णन किया है, छन्द-वैविध्य के कारण युद्ध-वर्णन में जो सजीवता आई है, उस पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है। गीति शैली में युद्ध वर्णन में जिस मार्दव की प्रशंसा डा० हरिभजनसिंह ने की है, उससे हम सहमत नहीं हैं। युद्ध कर्म का कोमलता से कितना वास्ता है और युद्ध के विकराल दृश्यों के लिए कोमल समानान्तर प्रस्तुत करने से युद्धवर्णन में,जो ओजपूर्ण होना चाहिए, कितनी सफलता मिलती है, यह विचारणीय प्रश्न है। 'वे युद्ध-कर्म की कोमलता को प्रकट करते हैं, योद्धाओं की चरित्रगत कोमलता को नहीं, आदि प्रशस्तिपूर्ण वाक्य एक पहेली सी बनकर हमारे सामने खड़े हो जाते हैं। वास्तव में डा० महोदय ने सर्वत्र 'दशमग्रन्थ' के गुण ही गुण देखे हैं उसकी न्यूनताओं पर उनकी दृष्टि कम ही गई है। गीति शैली इन युद्ध वर्णनों में सफल हुई है यह कहना इतना सरल नहीं है। हम समझते हैं कि युद्ध का ओजपूर्ण, भीषण एवं विकराल वातावरण उससे पूरी तरह निर्मित नहीं हो पाता। निःसन्देह इन युद्ध गीतों के सौजन्य से वीर शृंगार से भिन्न प्रतीत नहीं होता,[2] यहीं रस में यह रसाभास डा० महोदय को सहर्ष स्वीकार है।

'दशमग्रन्थ' की छन्द रचना सर्वथा दोष रहित नहीं। मात्रा अथवा वर्ण संख्या में घट बढ़ होना तो साधारण बात है। कई स्थानों पर यति तथा लय में भी शिथिलता है। वस्तुतः 'दशमग्रन्थ' में छन्द प्रयोग स्थिर और सुनिश्चित नहीं है उसमें कई स्थानों पर अस्थिरता एवं पंगुता है। बहुत से छन्दों में शास्त्रीय नियमों की उल्लंघना एवं उपेक्षा की गई है। कहीं कहीं तो यगण के छन्द को ही भुजंगप्रयात लिख दिया है। (पद्य संख्या ४) तरनराज में चरणों का ही

---

१ गुरमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन पृ०—२४२।

२ वही,

पूण छन्द बन गया है। (कल्कि अवतार ३२) । चाचरी म ३ से ५ वण तक तथा रसावल म ६ से ६ वण तक आ गये हैं ८ मात्राओं के छन्द को 'सुखदा' नाम दे दिया गया है जबकि इसमे २२ मात्रायें होती हैं। हरिबोलमना के दो मगण के नियम मे भी शिथिलता आ गई है। कई छन्दो मे प्रवाह की कमी है। लय की पूणता के लिए बहुधा शब्दा का विकृत करके पढना पडता है। 'दशम ग्रन्थ से प्रेरणा प्राप्त परवर्ती प्रबन्धो मे ऐसी शिथिलता एव अस्थिरता के दशन नहीं होते। 'गुर प्रतापसूरज' इस दृष्टि से बहुत ही परिपक्व रचना है। 'दशम ग्रथ' मे छन्द शिथिलता भी कहीं-कहीं ही है, सवत्र नही। क्या यह तथ्य इस ग्रथ के विभिन्न रचयिताओं की ओर सकेत नही करता?

७

सेनापति कृत वीरकाव्य—गुरु शोभा

गुरु गोविन्दसिंह एक महान धर्मगुरु और यशस्वी योद्धा ही नहीं थे वे एक उत्कृष्ट कवि और अनेक कवियों के आश्रयदाता भी थे। उनकी लीलाभूमि आनन्दपुर धर्म, संस्कृति एव युद्ध का क्षेत्र ही नही था, वह एक प्रमुख साहित्यिक केन्द्र भी था जहाँ राष्ट्रीय भावना, सांस्कृतिक चेतना और उदात्त वीर भावना से अनुप्राणित साहित्य सृजन का मगलकारी अभियान चल रहा था। गुरु जी के दरबार में लगभग ५२ कवि विद्यमान थे जिन्होंने महाभारत और पुराणों के अनुवादों और मौलिक काव्य रचना द्वारा युग चेतना को दृढ़ किया। उस समय जो साहित्य आनन्दपुर में लिखा गया, उसका भार नौ मन कहा जाता है और उसे 'विद्यासागर' का नाम दिया गया था।

✓ इन कवियों में सेनापति को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। अभी तक इनकी दो रचनाएँ 'गुरु शोभा' और 'चाणाक्य नीति भाषा (अनुवाद)' उपलब्ध हैं। इनके जीवन के सम्बन्ध मे अभी तक अधिक ज्ञात नही है। 'गुरु शोभा' से इतना ही विदित होता है कि इस ग्रन्थ का आरम्भ भादों सुदी पद्रस सवत् १७५८ को हुआ।[1] इस समय गुरुजी लाहौर और सरहद के नवाबो से आनन्दपुर में लड रहे थे।[2] 'गुरु शोभा' में कवि ने इस युद्ध से पूर्व की घटनाओ का अति सक्षिप्त वर्णन किया है, सम्भवत किसी से सुन कर या अपनी कथा (बचित्र नाटक) के आधार पर जबकि इसके बाद की घटनाओं का विशेष रूप से युद्धो का वर्णन कवि अपेक्षाकृत अधिक विस्तार और यथार्थता से करता है। इससे यही अनुमान होता है कि सेनापति इस युद्ध से कुछ समय पूर्व ही गुरु जी के आश्रय मे आया होगा। गुरु जी की मृत्यु का वर्णन करने के पश्चात् कवि उनके प्रति अपनी अनन्य भक्ति भावना प्रकट करता दिखाई देता है जिससे स्पष्ट है

---

१ समत् सत्रह स भए बरख अठावन बीत।
भादव सुद पद्रस भई रची कथा करि प्रीति। १। ६।

२ History of the Punjab P 265 by S M Latif

ि वह गुरु-मृत्यु के पश्चात् भी जीवित था। परन्तु चमकौर युद्ध के बाद की टनाओं का जैसा वर्णन 'गुरुशोभा' मे हुआ है, उससे यही संकेत मिलता है' ि सेनापति का गुरु जी से यही कही साथ छूट गया था और वह उनके साथ ाजस्थान अथवा दक्षिण यात्रा पर नही जा सका।

'गुरु शोभा' मे ऐसे पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि ेनापति गुरु जी को अपना इष्टदेव मानकर उनके प्रति अनन्य भक्ति भाव खता था। उसकी सिक्खी मे निष्ठा थी और खालसा की रहित मर्यादा म ी उसकी दृढ आस्था थी। 'गुरु शोभा का आरम्भ कवि ने सिक्ख परम्परा नुसार '१ ओंकार श्री वाहिगुरु जी की फत' से किया है। एक स्थान पर उसने अमृतपान कर खालसा सजने का भी उल्लेख किया हैं।[1] 'चाणाक्य शास्त्र भाषा ा सेनापति न विष्णु एव नारायण के प्रति भी आस्था प्रकट की है।[2] 'गुरुशोभा' ें उसने गणिका, अजामिल, गज आदि के पौराणिक प्रसगो का उल्लेख तो िया है, लेकिन कही भी गुरु जी या परब्रह्म के अतिरिक्त किसी अन्य देवी ेवता की वदना नही की। इससे यह ज्ञात होता है कि गुरु शरण म आने से ूर्व वह वैष्णव रहा होगा, जिसका प्रभाव सिक्ख बन जाने पर भी पौराणिक प्रसगो की स्वीकृति के रूप म प्रकट होता रहा।

✓सेनापति गुरु भक्ति और मुक्ति को जीवन का लक्ष्य मानने वाला पारमार्थिक लगन का व्यक्ति था और गुरु कृपा पर उसे पूर्ण विश्वास था। सासारिक वैभव ऐश्वर्य एव भोग विलास के प्रति उसकी तनिक भी आसक्ति नही थी। यही कारण है कि जिस प्रकार गुरु दरबार के अन्य कवियो—मगल, हसराम, अमृतराई आदि ने गुरु जी से अरबो-खरबो, हजारो रुपय-टके, हाथी घोडे, कनक मणि आदि पाने का गर्व से उल्लेख किया है वहा सेनापति ने कही भी इस प्रकार का दान प्राप्त करने का सकेत नही किया। 'गुरु शोभा' के अन्त म एक छन्द है जिससे सकेत मिलता है कि गुरु जी ने इसकी काव्य रचना से प्रसन्न होकर कुछ मागने को कहा था, परन्तु वह तो प्रभु के सम्मुख, उसका हाथ

---

१ (क) दोऊ हाथ जोरे स्त्रनि ताहि पाई।
कीउ नाम खालस लखासी बताई। १। ३८।
(ख) अम्रित पी कर त्रिपतिश्रो तहा करि सतन सो प्रीत।
दुरलभ मानस जनम है लीओ छिनक म जीत। ७२।६०६।
२ (क) प्रणवत है श्री बिसन को जो त्रिलोक क राइ। १।
(पटियाला पाण्डुलिपि न० २३६५ मे बिसन के स्थान पर कृष्ण पाठ है)
(ख) शास्त्र सकल विचार क मथ कढयो यह सार।
नारायन भजीए सदा करीए परे उपकार। १०।

पकड कर पार उतारने और सिदक मजबूत बनाए रखने की ही वर-याचना करता है।[1]

अपनी विनम्रता एव दीनता को कवि ने बार बार प्रकट किया है[2] और अपनी काव्य रचना को भी गुरु-कृपा का ही फल माना है। निसन्देह वह सामान्य राज दरबारी कवियो से एक भिन्न श्रेणी का दरबारी कवि था, जो धन अथवा यश प्राप्ति के लिए गुरु दरबार मे नही आया था वरन गुर भक्ति से प्रेरित होकर अपने आश्रयदाता की शौय गाथा चित्रित कर रहा था। कहाँ तो पाडित्य के अभिमानी उस युग के राज्याश्रित 'अलकृति' कवि और कहाँ अपने को कीट समान कहने वाला यह विनम्र भक्त-कवि। अपने आश्रयदाता को अपना इष्टदेव मानकर धम भावना से प्रेरित होकर उनका गुणगान करने वाला ऐसा दरबारी कवि इस युग मे अन्य नही मिलेगा। सेनापति का विनयशील व्यक्तित्व, गुरु भक्ति, खालसा म निष्ठा—अर्थात् उसकी यह धार्मिक भावना उसके काव्य के स्वरूप को एक ऐसी निश्चित दिशा देने मे सहायक सिद्ध हुई है जो अन्य राज दरबारी काव्यो स उसे एक अलग पक्ति मे खडा कर देती है। दोनो के लक्ष्य और भावना का यह अन्तर उनके काव्य के स्वरूप के अन्तर का निर्देशक है। 'गुरु शोभा' आश्रयदाता के आदेश से न लिखी जाकर हित चिंतक सिक्खो के अनुरोध पर लिखी गई।[3] इसलिए भी इसका स्वरूप अन्य दरबारी रचनाओ से भिन्न है।

प्रेरणा और प्रभाव

✓'गुरु शोभा' मे दशमगुरु के चरित्र उनके शौय, औदाय, प्रताप आदि

---

१ जथा सकति उपमा कही दरस परस के काज।
(क) जा चितवो सा देह मोहि तू समरथ तुहि लाज। ६६। ६३६

× × ×

(ख) कर आपन ते कर मो गहीए। ११२
(ग) सिदक मोर साबुत—मजबूत कीजो।
रहउ ताहि सनी न दूज भ्रमानो। १। ३६ ४०

२ (क) मति थोरी उपमा घनी किह बिधि बरनी जाइ। १। ३।
(ख) मति थोरी सी थोरी हूतं। १। २
(ग) मुख एक रसना कहा लउ बखानो।
भरे नीर सुभर लई बूद मानो।
महा कीट पतत कहा बुधि मेरी।
जथा सकति है सोम करतार तेरी।

३ एक समै हित सो हितू उचरी हित चित्त लाइ।
प्रभ रचना एसे रची सो कहू कहा सुनाइ। १।

'शोभा' का वर्णन किया गया है, इसलिए इसे कवि ने 'गुरु शोभा' नाम दिया है।[1] रचना-पद्धति, कथा शिल्प, चरित्र निरूपण, धार्मिक प्रवृत्ति, वीर भावना एवं उद्देश्य की दृष्टि से यह 'अपनी कथा' (दशमग्रन्थ) के अत्यधिक निकट है। अन्तर केवल इतना है कि वह गुरु-कवि की आत्म-कथा है और यह गुरु भक्त कवि द्वारा रचित गुरु-कथा। दोनों का आरम्भ और अन्त हिन्दुओं की तत्कालीन धार्मिक दशा का चित्रण करके गुरुमत के धार्मिक विचारों के प्रतिपादन द्वारा हुआ है। 'अपनी कथा' में गुरुजी ने अपने पूर्व जन्म की कथा, युग के धार्मिक अनाचार एवं पाखंडों, राजनैतिक अत्याचारों, अपने आगमन के उद्देश्य तथा अपनी लड़ाइयों का वर्णन किया है, जबकि 'गुरुशोभा' में इस सबकी ओर संक्षेप में ही संकेत किया गया है। आरम्भिक लड़ाइयों का वर्णन भी अपेक्षाकृत संक्षिप्त है, जबकि परवर्ती युद्धों एवं कथाओं का, जिनका उल्लेख 'अपनी कथा' में नहीं है, यहाँ अपेक्षाकृत विस्तार से वर्णन किया गया है। इस तरह 'गुरु शोभा' अपनी कथा की अपूर्ण कथा को पूर्ण बनाता है। दोनों में कथानक का वातावरण भी धार्मिक है।

'विचित्र नाटक' आदर्श रूप में सेनापति के समक्ष था, दोनों रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से इसमें तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता। इन दोनों ग्रंथों में वीरता और धार्मिकता की ही प्रधानता है और वीरता भी धर्माश्रित है।

'अपनी कथा' के १४ अध्याय हैं और 'गुरु शोभा' में २० अध्याय हैं। दोनों का कथानक न तो सर्गों में विभक्त है न 'कांड' अथवा 'खंडों' में। प्रायः एक एक प्रसंग से, 'इति स्री गुर सोभा मुलाकात बादसाह की सोलवा धिआइ सम्पूरन' इत्यादि के कथन के साथ अध्याय का अन्त होता है। 'गुरुशोभा' में एक स्थान पर 'साखी' शब्द का भी प्रयोग हुआ है,[2] और एक स्थान पर कवि ने यह भी संकेत किया है कि उस ने 'कछु सुनी कछु उक्तरर' यह कथा वर्णित की है 'गुरुशोभा' की कथा वर्णन शैली में 'साखी' के जिस रूप के दर्शन होते हैं, उसी का विकसित रूप 'महिमा प्रकाश' में मिलता है।

आरंभ

'रामचरितमानस' जैसे धर्म प्रधान प्रबन्ध-काव्यों की भांति 'गुरुशोभा' के प्रथम प्रकरण का आरम्भ गुरु-वंदना, ग्रन्थ के नाम, कथा महिमा, रचना काल, लिखी महिमा, आत्म परिचय, गुरु के ब्रह्मत्व, गुरु-महिमा, गुरु-परम्परा, गुरु तेगबहादुर की शहीदी के कारण गुरु गोबिंद अवतार का उद्देश्य, उनके पूर्व जन्म की कथा, अन्य अवतारों के अहंकार, खालसापंथ प्रकाशन, अन्य

१ गुर सोभा या ग्रंथ को धरो सु नाव विचार।
सुनत कहत गति होत है मन अंतरि उरधारि। १। ५।
२ तब मन मीन मोहि इम भाखी। प्रगटि कही सतिगुर की साखी। १।१६

पथा के पाराह, ब्रह्म-स्तुति, पथ के प्रमुख सिद्धान्त, आदि के ग्रंथ के आशीर्वात्मक, नाम निर्देशात्मक एव कथा निर्देशात्मक मगलाचरण स हुआ है और ग्रन्थ का अत भी धार्मिक उपाख्यान एव कथा महिमा के वणन स किया गया है। मुख्य कथा का आरम्भ दूसरे प्रकरण म गुरु जी के मातावाल छोडकर पावटे प्रवेश से होता है, परन्तु यहां भी आरम्भ के कुछ छन्दो म उनके पूव जन्म एव अन्य गुरुओ के साथ उनकी एकरूपता तथा गुरु-महिमा आदि का वणन किया गया है।

कथा शिल्प एव चरित्र चित्रण

'गुरु शोभा' म गुरु जी के जीवन वृत्त का आरम्भ पावट म फतेसाह क साथ हुए भगाणी के युद्ध से होता है। इससे पूव की किसी भी घटना का, यहां तक कि उनके जन्म तक का भी इसम उल्लेख नही है। भगाणी युद्ध म विजय के पश्चात उनके जीवन से सम्बन्धित भीमचद की सहायताथ अलिफखा से युद्ध (नादौन युद्ध), अलसूण लूट, दिलावरखां से युद्ध, हुसनी प्रसग, खालसा पथ की रचना, कलहूर हाडूर आदि पहाडी राजाओ स युद्ध (प्रथम आनन्दपुर युद्ध) निर्मोह युद्ध, कलमोट विजय, आनन्दपुर के युद्ध म शत्रु द्वारा घेरा डालने पर आनन्दपुर त्यागने, चमकौर युद्ध गुरु-पुत्रो का बलिदान दयासिंह के हाथ औरगजेब को जफरनामा भेजना, दक्षिण प्रस्थान औरगजेब की मृत्यु बहादुरशाह की सहायता करना, जहानाबाद, मथुरा वृन्दावन होत हुए आगरे पहुच कर बहादुरशाह से भेंट, उसक साथ राजस्थान अभियान पर जाना, अजमेर, जोधपुर चित्तौड आदि से हाकर नरबदा, बुरहानपुर से होते हुए नादेर पहुचना और वहा पर एक पठान द्वारा उनकी हत्या का वणन है। इन म से बहुत सी घटनाओ का तो इतिवृत्त सा दिया गया है अथवा उल्लेख मात्र हुआ है। खालसा की स्थापना, गुरुजी का आनन्दपुर छोडकर जाना और उनकी मृत्यु के प्रसग कितने महत्वपूण है किन्तु कवि ने इनका उल्लेख मात्र करके छोड दिया है। अधिकतर युद्ध प्रसग ही ऐसे है जिनका कवि ने कुछ विस्तार स वणन किया है। आधिकारिक कथा को छोडकर न तो उसम उप कथाएँ अथवा प्रासगिक कथाएँ ही अधिक हैं और न अवान्तर कथाओ क रूप म रामायण, महाभारत अथवा पुराणो आदि की कथाए अधिक आई हैं। दो छाट से एसे प्रसग है, जिन म खालसा की रहित मर्यादा 'भदर न करन और केश न मु डवान आदि का महत्त्व दर्शाया गया है और अन्त की ओर गुरु-महिमा के अन्तगत गज-ग्राह गनिका, अजामिल आदि की कथाओ का सकेत है। य विवरण इतन सक्षिप्त है कि इन स कथानक की सौष्ठव-वृद्धि म अथवा उस कमजोर बनान म कोई अन्तर नही पडता। य मुख्य कथानक के साथ स्वाभाविकता से अनुस्यूत हैं। घटनाओ का क्रम बराबर बना हुआ है, और उस म कही भी जटिलता या बिखराव नही है। कथा बिल्कुल सीधी,

साफ और सहज है। जब अधिक घटनाएँ, प्रसग, उपकथाएँ, अवान्तर कथाएँ ही नही, तो सगठन, या सम्बद्धता के न होने का प्रश्न ही नही उठता। इस रचना के कथानक म महान नद की सी विशालता या फलाव नही है यह तो एक वेगवती स्रोतस्विनी है जो धार्मिकता और वीरता के दो कूला के बीच बडी सहजता से अपने गन्तव्य की ओर अग्रसर होती दिखाई देती है। गुरु जी के जीवन की, विशेषत उनके पारिवारिक या गार्हस्थ्य जीवन की भी इस म कोई झलक नहीं मिलती। इस दृष्टि स यदि इसकी तुलना गुरु विलास १०वी पातशाही (सुक्खासिंह) या 'गुर प्रताप सूरज' (सतोखसिंह) मे वर्णित दशमगुरु की कथा से की जाए, तो मालूम होगा कि इसम न उतनी विशदता है, न सौष्ठव, न उतना विस्तार है और न उतनी मार्मिकता। हम नही समझते कि प्रबन्ध कथा-सौष्ठव या वस्तु विन्यास की दृष्टि से इस रचना का कोई विशेष महत्त्व है। 'दशमगुरु' की कथा म उनके पिता श्री का त्याग, अन्न जल के अभाव म आनन्दपुर के घेरे की विकट स्थिति गुरु-पुत्रो का बलिदान तथा गुरु जी की हत्या, कुछ ऐसे मार्मिक स्थल हैं, जिनका परवर्ती सिक्ख प्रबन्धो मे अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है, लेकिन इस ग्रन्थ म उनका इतिवृत्त मात्र उपलब्ध ह। रामकथा का सा स्वाभाविक विकास, मार्मिकता, विशदता, व्यापकता और प्रबन्ध सौष्ठव इस मे नहीं है।

चरित्र चित्रण

विविध सामाजिक समस्याओ, युग की परिस्थितियो एव विभिन्न पात्रो का समुचित विकास भी इसमे नही हुआ। किसी भी पात्र के चरित्र को विकसित होने नही दिखाया गया। गुरु जी के अतिरिक्त जीतमल, सगाशाह, साहबसिंह धर्मसिंह सतसिंह, अजीत सिंह जुझारसिंह, जोरावरसिंह फतेसिंह आदि कुछ ही पात्र ऐसे हैं, जिनके शौर्य, साहस दृढता, निर्भीकता, उत्साह आदि का चित्रण किया गया है।

'गुरशोभा' मे सबसे अधिक ध्यान दशमगुरु के चरित्राकन पर ही दिया गया है। व धर्म गुरु और वीर पुरुष हैं। उन्हे भूमि भार उतारने, पापो के विनाश एव सतो क उद्धार के लिये अवतरित अवतारी-पुरुष के रूप मे चित्रित किया गया है। उनके पराक्रम शौर्य प्रदर्शन, युद्ध कुशलता, धैर्य दृढता, उदारता, आदि का सजीव न अत्यन्त सजीव वर्णन किया है।[1] अलिफखा के विरुद्ध

[1] उनके वीर रूप का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

जूझ क साह सग्राम सुरग गयो ससत्र सभारि प्रभ आप धायो।
गहे गुन बान घमसान का जान कै छुटिग्रा गम्भीर इक तिह गिरायो।
बहुरि सभारि के वार ऐसा कोउ भीखन खान के मुख लायो।
बचिग्रो पठान पै खेत बाहन रहियो अउर इक तीर ते ताति छायो।
॥ ८१ ॥

अपने शत्रु भीमचन्द की सहायता करना तथा बहादुरशाह को विजय का आशीर्वाद देना उनकी धम सहिष्णुता एव उदारता के परिचायक हैं। इस प्रकार कवि ने गुरु जी का दान धम सत्य और न्याय के लिये आजीवन अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध जूझते दिखाया है फिर भी यह स्वीकार करना पडेगा कि गुरु जी तथा अन्य पात्रो के चरित्र की विविध विशेषताओ का निरूपण इतनी विशदता से इस ग्रन्थ म नही हो पाया, जिसम विविध मानवीय सम्बन्धो सवेदनाओ की अभिव्यजना हो सके। गुर सोभा' म विभिन्न वर्गों, स्तरो और श्रेणियो के ऐसे पात्र भी नही आए जिनके माध्यम से कथा प्रबन्ध महिमा मडित हो और जीवन और समाज के विविध रग उभर कर सामने आ सकें। शत्रु पक्ष के फतशाह अलिफखा दिलावरखा भीमचन्द हयातखा, राव हाडूर आदि पात्रो की वीरता का भी कही कही चित्रण हुआ है लेकिन उन्हे लेखक की सहानुभूति प्राप्त नही है। वस्तुत इस रचना म पात्रो का चरित्राकन एक 'वीर काव्य' की पद्धति पर ही हुआ है न कि प्रबन्धात्मक शैली म। यही कारण है कि प्राय सभी प्रमुख पात्रो के शौय और साहस का ही चित्रण हुआ है।[1]

वस्तु निरूपण

प्रबन्ध कथा म प्रकृति चित्रण एव नगर आखेट विवाह पर्वों आदि के वणन द्वारा कवि कथा के इतिवृत्तात्मक अशो को भी सरस बना सकता है परन्तु सेनापति का मन इस प्रकार के वस्तु वणन म रमता दिखाई नही देता। गुरु जी का विविध नगरो[2] वनो उपवनो,नदियो पवतो झरनो, तडागो, तीर्थों

१ जुझारसिंह की वीरता और युद्ध कुशलता का चित्र द्रष्टव्य है—

कर म गहे कमान तीर इह भात चलाव,
जिह उर मारत धाइ जाति विध बिलम न लाव।
निकस जाइ दुसार गिर असवार अत तहि,
छिन मैं तजे परान तीर लागत जाइ जिह।
मारे पठान इह भात कहि चहु ओर लोट पर,
नाहन सुमार ऐते अपार ऐसे जुझार तिन मैं नरे।१२।५७।५२७।

२ पवत की तलहटी म स्थित सतलुज के निकट की आनदपुर की सुन्दर नगरी का वणन सनापति ने केवल इन पक्तियो म किया है—

पुन आनदपुर गुर गोबिंदसिंह कव कव करत बखान।
गिरद पहार अपार अति सतिलुद्र तटि सुभ थान।५।१।११७।

गुर जी के अन्य दरबारी कवियों—मगल एव हसराम ने तथा गुरुविलास' एव गुर प्रताप सूरज' के रचयिताओ ने इस स्थान का बडा ही सुन्दर वणन किया है।

आदि के रम्य स्थानों पर सभी ऋतुओं में भ्रमण करने का अवसर प्राप्त हुआ, और यदि कवि चाहता तो वह उनका बड़ा ही सुन्दर वर्णन कर सकता था, परन्तु सेनापति ने इन स्थलों का उल्लेख मात्र करके छोड़ दिया है। किसी भी स्थान अथवा ऋतु का सश्लिष्ट चित्र अंकित नहीं किया। वह वर्णन करता है तो केवल युद्ध का। अन्य किसी वस्तु की ओर ध्यान देने का शायद उसे अवकाश ही नहीं है। 'गुरु प्रताप सूरज' के कर्त्ता भाई संतोखसिंह ने ऐसे अनेक स्थलों, पर्वों, ऋतुओं आदि का सजीव वर्णन किया है, जिससे उनके प्रबन्ध में एक विशेष सौष्ठव आ गया है। गुरु जी के आखेट, विवाहों, होली खेलने आदि का जैसा चित्रात्मक वर्णन वहाँ किया गया है, उसका भी 'गुरु शोभा' में सर्वथा अभाव है।

वीरकाव्य

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'गुरु शोभा' में न तो रामकथा की सी मार्मिकता, रोचकता और प्रबन्ध सौष्ठव है और न ही रामचन्द्रिका' सी विच्छिन्नता। वस्तुतः, इस रचना के कथानक का महत्त्व दो दृष्टियों से है। एक तो यह कि 'अपनी कथा' के बाद यह गुरु जी की समकालीन एक ऐसी रचना है, जो उनके जीवन से सम्बन्धित घटनाओं की एतिहासिकता पर प्रकाश डालती है, दूसरे यह कि कवि ने इसे एक चरित-काव्य अथवा प्रबन्ध-काव्य के रूप में न लिख कर शुद्ध वीरकाव्य का रूप दिया है और वीरकाव्य भी एक विशिष्ट प्रकार का जो सामान्य सामन्तीय वीरकाव्य-परम्परा से सर्वथा भिन्न है। अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के कारण, 'अपनी कथा' के पद चिह्नों पर प्रणीत। यही कारण है कि हम सिक्ख मत के दार्शनिक सिद्धान्तों एवं खालसा पंथ की रहित मर्यादा का इतना विशद विवेचन इस ग्रंथ में मिलता है कि उससे कथा प्रवाह में शिथिलता या अवरोध ही नहीं आता, वह उससे दबता सा प्रतीत होता है। २० अध्यायों में से कोई ६ या ७ अध्याय ऐसे हैं, जिनमें धार्मिक तथ्यों का प्रतिपादन है और ६ ७ ऐसे हैं जिनमें युद्धों का वर्णन हुआ है। कुल ९३६ छन्दों में से लगभग २३० साधारण कथा निरूपण के लिये प्रयुक्त हुए हैं, लगभग ३६० में युद्धों का वर्णन हुआ है और लगभग ३४० में धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण हुआ है। इससे कथा में असंतुलन भी आ गया है और कुछ नीरसता भी। यदि यह सिद्धान्त निरूपण रोचक कथा प्रसंगों के माध्यम से होता, जैसा कि 'मानस' या गुरु प्रताप सूरज में हुआ है तो अधिक उपयुक्त होता। गुरु जी की मृत्यु के पश्चात् सांसारिक सम्बन्धों वैभव एवं ऐश्वर्य की असारता एवं मिथ्यात्व तथा नाम-जाप एवं सत-सेवा का महत्त्व निरूपित है, जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भले ही उचित हो लेकिन वस्तु विन्यास की दृष्टि से उस इतना विस्तार देना दोषपूर्ण ही है। तथापि जिस उद्देश्य को लेकर यह काव्य लिखा गया है,

यदि उसे ध्यान मे रखा जाए तो हम देखेंगे कि राष्ट्र और धर्म की रक्षार्थ वीर भाव को जगाने तथा धार्मिक भावना को उद्दीप्त करने में कवि सफल रहा है।

ऐतिहासिकता

जहा तक सम्भव हुआ है कवि ने घटनाओं की ऐतिहासिकता की सुरक्षा की है और उनका यथार्थ एवं स्वाभाविक वर्णन किया है। आश्रयदाता की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा द्वारा, अथवा धार्मिक भावना के कारण अलौकिक एवं अति मानवीय घटनाओं के समावेश से अस्वाभाविक मोड़ देकर उन्हें विकृत नहीं किया। गुरु महिमा वर्णन में एक दो स्थलों पर पौराणिकता का आभास मात्र मिलता है लेकिन पौराणिक रूप देने के मोह में ऐतिहासिक घटनाओं में संशोधन, परिवर्तन अथवा परिवर्धन करने की कवि ने कहीं चेष्टा नहीं की।

ऊपर गुरु गोबिंदसिंह के जीवन से सम्बन्धित जिन घटनाओं का उल्लेख किया गया है वे सिक्ख इतिहास की प्रसिद्ध घटनायें हैं। फिर भी 'गुरु शोभा' में कुछ ऐसे तथ्य उपलब्ध हैं, जिनका विशिष्ट ऐतिहासिक महत्व है। जैसे दूसरे प्रकरण में इस तथ्य का स्पष्ट रूप में उल्लेख किया गया है कि गुरु तेगबहादुर ने अपना बलिदान जनेऊ और तिलक की अर्थात् हिंदू धर्म की रक्षार्थ दिया (१।१४।१६) यहाँ यह भी संकेत मिल जाता है कि दशमगुरु भी मूलतः धर्म गुरु थे और उन्हें युद्ध भी धर्म और न्याय के लिए ही करना पड़ा था। अलमूस और कहलूर आदि की खालसा द्वारा लूट के प्रसंग में समुचित कारणों का न दिया जाना कुछ खटकता है और ऐसे स्थलों पर जैसाकि डा० हरिभजनसिंह ने कहा है कवि के हाथों अपने वीर चरित्र का अनिष्ट भी हुआ है।" लेकिन हम यह नहीं भूलना चाहिये कि घटनाओं का सम्पूर्ण ब्यौरा प्रस्तुत करना इतिहासकार का विषय है। कवि अपने उद्देश्य, इच्छाओं और रुचियों के अनुसार घटनाओं में परिवर्तन भी कर सकता है और कुछ अंशों को छोड़ भी सकता है। इतिहासकार और कवि की दिशा रचना पद्धति और उद्देश्य सर्वथा भिन्न होते हैं। इन कारणों का उल्लेख न करने का एक कारण यह भी हो सकता है कि लेखक तत्कालीन इतिहास के इतना निकट था कि सर्वविदित घटनाओं का विवरण प्रस्तुत कर उसने अपने काव्य को अनावश्यक विस्तार देना उचित न समझा हो। फिर भी आज के पाठक के लिये यह दुविधा का स्थल है। गुरु शोभा में यह उल्लिखित है कि गुरु जी ने आजमशाह के विरुद्ध बहादुरशाह की सहायता की थी, परन्तु यह सहायता किस रूप में की गई, इसका उल्लेख नहीं है क्योंकि गुरु जी उस युद्ध की समाप्ति के पश्चात् ही आगरे में आकर उससे मिलते हैं। गुरु विलास में इस घटना को चमत्कारिक रूप में प्रस्तुत करते हुए कवि ने कहा है कि गुरु जी की अलौकिक शक्तियों ने आकाश मार्ग से आकर उसकी सहायता की थी जिसे केवल वह ही

गुरुमुखी लिपि मे हिन्दी काव्य, पृ० ५०५-५०६।

देग सरा था।[1] 'गुर शोभा' म ऐसी अलौकिकता के कहीं दर्शन नहीं होते। आगरे मे भेंट के पश्चात् बहादुरशाह के राजपूताने के अभियान पर गुरु जी के उसके साथ चित्तौड, जोधपुर, अजमेर आदि जाने का उल्लेख तो है, किन्तु उनके सैनिकों को उसकी ओर से कहीं भी लडते हुए नहीं दिखाया गया। इस ओर भी यही कोई सकेत नहीं है कि गुरु जी इस समय शाही सेना मे सेनापति के पद पर अधिष्ठित थे जैसे कि कुछ इतिहासकारों ने लिखा है।[2] यहाँ तो शाह को उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते ही दिखाया गया है।[3] 'गुरु-विलास' मे तो वह उनका भक्त ही हो गया है।

गुरु जी की मृत्यु का प्रसग भी इतिहासानुरूप है, अन्तर केवल इतना है, कि यहाँ मृत्यु घाव लगने के तुरन्त बाद ही हो जाती है। घाव को सिये जाने और फिर कुछ समय पश्चात धनुष की डोर खीचने पर घाव के खुल जाने की घटना का जैसा उल्लेख 'गुरु विलास', 'गुर प्रताप सूरज' तथा कुछ अन्य ग्रथो म हुआ है, उसका यहा जिक्र नहीं है। यहाँ पठान दो हैं, यद्यपि गुरु जी पर वार एक ही करता है और उनको सिक्खा द्वारा तत्काल हत्या कर दी जाती है।[4] 'गुरु विलास' म गुरु जी स्वय पठान को अपनी हत्या के लिए उकसाते दिखाए गए हैं।[5]

इतिहासकारों के अनुसार गुरु जी के जोरावर सिंह, अजीतसिंह, फतेसिंह, और जुझारसिंह नाम के चार पुत्र थे जिनम से जीतसिंह और जुझारसिंह[6] ने युद्ध करते हुए चमकौर मे वीरगति पाई थी और फतेसिंह और जोरावरसिंह की एक विश्वासघाती लोभी ब्राह्मण के कुचक्र से सरहिंद के नवाब द्वारा हत्या की गई थी। गुरुविलास' और 'गुरु प्रताप सूरज' मे भी यह प्रसग इसी प्रकार है। परन्तु गुरु शोभा' मे चमकौर युद्ध मे जोरावरसिंह, जुझारसिंह, फतेसिंह जीतसिंह (एक स्थान पर नाम अजीतसिंह है) और रणजीतसिंह नाम के पाच योद्धाओ के शौर्य का वर्णन हुआ है लेकिन इनमे किसी की भी मृत्यु का यहाँ उल्लेख नहीं है। एक स्थान पर इतना जरूर लिखा है कि जुझारसिंह और फते सिंह ने सरहिंद के नवाब की बात का कडा जवाब देते हुए अपना बलिदान दिया[7]

---

१ गुरु विलास २५। ८५-९५।

२ History of the Punjab by S M Latif page 269

३ गुरु शोभा (२१। ७११ २८। ११८, ३२। ७२०। १४। ६८७ ॥

४ वही, १४। ७८१।

५ गुरु विलास २६। २६ २६।

६ History of the Panjab p-265 M S Latif

अब या तो कवि न जान-बूझ कर अपने चरित नायक के गौरव की रक्षाथ, अन्या की धीरगति का उल्लेख नहीं किया, क्योंकि नायक यह गुरु जी की शोभा श्री का ही वणन करना चाहता है उनकी सक्ट स्थिति, हानि अथवा क्षति का वणन ही नही करता या फिर इस इतिहासिक घटना की ओर अधिक छान बीन की आवश्यकता है। विचित्र बात तो यह है कि इसम गुरु जी की राजस्थान यात्रा म जोरावर सिंह का उनसे आकर मिलन का भी उल्लेख किया गया है।[1] अब यह इतिहासकारो की गवेषणा का विषय है कि क्या जोरावरसिंह इस समय जीवित थे और यह रणजीतसिंह कौन थ। चौथे पुत्र का नाम अजीत सिंह था या जीत सिंह। गुरु शोभा' गुरु जी की समकालीन विशिष्ट एव प्रामाणिक रचना है इसलिए उसम वर्णित इन तथ्यो की सरलता से उपेक्षा नही की जा सकती। बहादुरशाह के राजपूताना अभियान म यह सकेत मिलता है कि इस समय राजपूतो की वीर शक्ति का ह्रास हो चुका था, और वे उसका मुकाबला किए बिना ही उसकी अधीनता स्वीकार करते चले गए। गुरु तेगबहादुर के बलिदान की घटना म यवनो की धार्मिक असहिष्णुता एव राजनतिक अत्याचारो का भी कुछ सकेत मिल जाता है। उस युग मे प्रचलित विभिन्न मत मतान्तरो सम्प्रदायों एव पथो आडम्बरपूर्ण मिथ्या साधनाओ पाखडो एव सामाजिक दुराचरण का वणन अपनी कथा की पद्धति पर ही किया गया है। लेकिन 'गुरु विलास एव गुरु प्रताप' सूरज जसे महाकाव्यो मे युग का जो व्यापक चित्र अकित है उसका इस वीरकाव्य म अभाव है।

वीर रस का स्वरूप

'गुरु शोभा म गुरु गोबिन्द सिंह के कोई ११युद्धो का वणन किया गया है जिनम उनके शौय, शक्ति, साहस दृढता, धम, निर्भीकता आदि से युक्त उत्साह की ही अधिक व्यजना हुई है। इन युद्धो मे भगाणी, नादौन आनन्दपुर और चमकौर के बड युद्धो का चित्रण अधिक विस्तार से हुआ है, अन्य छोटे युद्धो का सक्षेप म। कुछ युद्ध केवल साधारण लूट मार तक ही सीमित रह गए हैं और ऐसे स्थलो पर समुचित कारणो के अभाव म वीर रस के परिपाक म कुछ बाधा उपस्थित होती है क्योकि वीररस की निष्पत्ति मे वीर चरित्र के साहसपूण कम के औचित्य एव उसके प्रयोजन के लोक सम्मत होने का बडा महत्त्व होता है। यहा इस का परिहार इस बात से हो जाता है कि गुरु गोबिन्दसिंह प्रसिद्ध लोकनायक एव धम रक्षक योद्धा थे, इसलिए इन स्थलो म भी उनका यह चरित्र रस परिपाक म सहायता करता है। इन प्रसगो को छोडकर अन्यत्र ऐसे सकेत विद्यमान हैं जिनसे गुरु जी के वीर कम की उदात्तता स्थापित हो जाती है। 'गुरु शोभा म उनके धम योद्धा रूप को ही उभारा गया है क्योकि वे किसी स्वाथ के लिए न लडकर अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध न्याय,

---

१ गुरु सोभा ४५। ७३५।

सत्य और धम की रक्षाथ लडते दिखाए गए हैं। ग्रन्थ के आरम्भ, मध्य और अत म जो धार्मिक वातावरण प्रस्तुत किया गया है, वह इस भावना को मजबूत करता है। कवि अत म भी नाम जाप, सत सेवा, गुरु भक्ति आदि का ही महत्त्व प्रतिपादित करता है, जो उसकी वीर भावना के पीछे निहित धार्मिक भावना को उजागर कर देता है। वह बार बार यह दोहराता दिखाई पडता है कि वे दिन कब आयेंगे जब गुरु जी फिर से इस भूतल पर अवतरित होकर दुष्टो का विनाश करके सतो का उद्धार करेंगे। और धम की स्थापना करेंगे मैं नही समझता हिन्दी और राजस्थानी के सामनीय वीर काव्यो म वीरता का ऐसा ऊँचा आदश कही मिल सकेगा वहा सामन्तो की स्वाथ सिद्धि के लिए स्वामी धम का पालन करने वाले योद्धाओ को अप्सराओ द्वारा वरण किये जाने के लोभ स रणभूमि मे वीरगति पाने के लिए उत्सुक अवश्य देखा जा सकता है, परतु इ योद्धाओ मे 'परित्राणाय साधूना विनाशाय" चदुष्कृताम की वीर भावना कही दिखाई नही देती। वे युद्ध-वीर चाहे हो धम वीर उन मेसे कोई भी नही है। गुरु जी युद्धवीर भी हैं और धमवीर भी। हिंदी के नायक होगा जो धम-गुरु भी हो और योद्धा भी। गुरु शोभा' इस दृष्टि से वीरकाव्यो म शायद ही ऐसा और अपने ढग का एक विशिष्टवी 'रकाव्य' है जिसकी वीर भावना धार्मिक भावना से उत्पन्न, पल्लवित एव पोषित है।

इस दृष्टि से यह छत्रसाल प्रकाश' और शिवा बावनी' से भी अधिक महत्त्व की रचना है। सिक्खमत के सद्धान्तिक पक्ष का प्रतिपादन करत समय भारतीय सस्कृति के जिस महान आध्यात्मिक स्वरूप एव नैतिक मूल्यो का प्रतिपादन इस वीर काव्य म हुआ है वह भी उनम नही है। वे रचनाएँ सहृदय मे उत्साह का सचार तो कर सकती हैं किन्तु दुष्टदमन हेतु उत्साह और जीव की मुक्ति के लिय भक्ति, इन दोनो भावनाओं को एक साथ व नही जगा सकती, जसा कि 'गुरु शोभा म हुआ है। 'गुरु शोभा' का वीरता का आदश बहुत कुछ 'रामायण' और 'महाभारत से मिलता है। जिस प्रकार महाभारत के अन्त म अनेक युद्धो के उपरान्त भी जीव को मुक्ति के लिये उत्सुक बनाया गया है, इसी प्रकार गुरु शोभा' का भी अतिम लक्ष्य युद्ध न होकर मोक्ष' प्राप्त करना है। यद्यपि गुरुजी को सैनिक विजय के रूप म पूरी सफलता नही मिली, परन्तु वे अन्त तक अपने वीर कम म प्रवृत्त रहे और भारत की सुप्त वीर शक्ति को जगाने म और उसे धम और देश की रक्षाथ प्रवृत्त करने म सफल रहे हैं। यह भी उनके कम सौंदय का एक ज्वलत उदाहरण है।

वीररस निरूपण

'गुरुशोभा म सेना प्रस्थान, वीरो की साज-सज्जा, उनके शौय साहस प्रदशन, शस्त्र-सचालन, युद्ध-कुशलता, दृढ़ता, धय अमष, गव, धृति ललकार, प्रहार प्रतिप्रहार, विपक्षी का आक्रमण युद्धभूमि के विकराल . इसयों

के ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे, जिससे परिपुष्ट होकर वीररस का पूर्ण परिपाक होता है। जहाँ तक युद्ध-कथा का सम्बन्ध है, उसमें उसका उतना विस्तृत ब्यौरा तो नहीं है, जितना 'गुरु बिलास' अथवा 'गुर प्रताप सूरज' म है फिर भी युद्ध कथाओं की कुछ रूपरेखा अंकित जरूर है। आनन्दपुर युद्ध का तो लगभग पूरा विवरण ही दे दिया गया है यद्यपि इसे बहुत अधिक विस्तार नहीं दिया गया। 'गुरु शोभा' की युद्ध-वर्णन शैली बहुत कुछ 'अपनी कथा' (बचित्र नाटक) जैसी है। उसमें युद्ध का वर्णन अधिक है, युद्ध कथा का विकास कम। दशमग्रंथ के युद्ध-वर्णनों म योद्धाओं की भिडन्त, प्रहार प्रतिप्रहार ललकार प्रतिललकार का अधिक वर्णन हुआ है। 'गुरु शोभा म भी योद्धाओं के शौर्य प्रदर्शन का वर्णन ही प्रमुख है।

दोनों पक्षों के सैन्य प्रस्थान एवं रण सज्जा का इस ग्रन्थ म सजीव चित्रण मिलता है। १४। ३१०।

कहीं-कहीं सेना के विस्तार और उसकी विशालता का भी अत्यन्त चित्रात्मक वर्णन किया गया है¹। तदनन्तर शत्रुओं की पारस्परिक मन्त्रणा मोरचे लगाने, विविध रण-वाद्यों के बजने, विभिन्न अस्त्र शस्त्रों के प्रहार प्रति प्रहार और वीरों के वैयक्तिक शौर्य का वर्णन किया गया है। ऐसे स्थल भी गुरु शोभा' म मिलेंगे जहाँ शिवा बावनी' की भाँति कवि ने गुरु जी के शौर्य के आतंक की व्यंजना की है। जैसे गुरु गोविन्दसिंह के युद्ध के लिए प्रस्थान करने से सभी नगर-नगरिया काँप उठी, लोक अलोक भयभीत हो गये और शेष, महेश सुरेश सभी लरज उठे—

> डंका घोर सु घोर भई, सुनि कै पुरीआ सब ही लरजी।
> लरन सब भान भिग्रान भए किहु कारण काज चढ्यौ हीरजा।
> लोक अलोक सभ लरजे शिवजी कलाग पति भ डरजी।
> सुन शेस महेस सुरेश बडे लरजे सिंह गोबिंद के डर जी।

सेना का इस प्रकार से प्रस्थान वीरों के उत्साह को उद्दीप्त करता है और वे उल्लसित होकर रणभूमि म कूद पडते हैं।

सेनापति न जहाँ गुरु सेना की अद्भुत वीरता और दृढता का चित्रण किया है, वहा शत्रु पक्ष की सेना के त्रस्त होकर भागने के कुछ उदाहरण भी गुरुशोभा म देखे जा सकते है। यथा—

> भजे खान ताही सम मन म अति डर पाइ।
> म्रिग छउना जिउ सिंह ते भाजे पख लगाई।५।६।११०।

× × ×

---

१ सिआम घटा उमडे चहू ओर तें यउ उमेड दूत के आही।
दामन जो दमके तरवार लीये करवार फिरावत ताही।२६।३६२।

भाजी फौज कँहलूर की हुई करि सवल अधीर ।
मानो गुन ते छुटक कैं भजिग्रा जानि है तीर । ७ । ३८४ ।

शत्रु सेना का इस प्रकार रण भूमि से भागना गुरु पक्ष के वीरो के उत्साह की वृद्धि करता है और इस प्रकार ये वर्णन भी वीर रस के परिपाक म सहायक होते हैं।

गुरु शोभा' मे दोना दलो और विविध योद्धाओ के पारस्परिक प्रहार प्रति प्रहार का अत्यन्तसजीव और ओजस्वी चित्रण हुआ है। वस्तुत इस ग्रन्थ के युद्ध वर्णन की सब से बडी विशेषता वीरो के वैयक्तिक शौय प्रदर्शन साहस निर्भीकता, दृढता, धय आदि के चित्रण म ही है जिसका प्रकाशन प्राय द्वन्द्व युद्धो के माध्यम से हुआ है। जैमल, माहुरीचद, गगाराम कृपाल, साहनचन्द, उदेसिंह, धर्मसिंह, जीतसिंह जुझारसिंह जोरावरसिंह, फतेसिंह रणजीतसिंह आदि के शौय का कवि ने ओजस्वी चित्रण किया है। गुरु जी और हरीचन्द तथा हरीचद और जीतमल के द्वन्द्व युद्ध भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। जैमल के पराक्रम का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है—

जमल कोप चल्यो रण मैं कर मैं बरछी तिरछी गहि लीनी ।
फौज मैं धाइ परिग्रो खुनसाइ क केतन क उर अत्र दीनी ।
मारि लीए असवार किते अरि पेल दई चतुरग नवीनी ।
घूम परी सगरे रण मैं अब एक सवार यहै गति कीनी । १६ । ५७

इसके साथ ही कवि ने अस्त्र शस्त्रो के प्रहार प्रतिप्रहार एव युद्धभूमि मे वीरो के क्षत विक्षत होकर गिरने का भी यथाथ चित्रण किया है। दोनों दलो के युद्ध का यह चित्र देखिय जिसमे लोह-वर्षण को सजीव रूप म प्रस्तुत किया गया है

लग मोरचे तुरक क ऊपरि चढी कमान ।
इत सनमुखि भयो खालसा होन वीर सग्राम ।२२।३५८

सन मनो बरखैं घन ते, तहाँ गोला चल समता सु असाही ।२३।३५९
तोप छुट गरज घन जो लरजै ही अग मानो बिज कड ककैं ।१२।४१७
ठउर रह जिहके उर लागत होत है छाती कै पाट पडक्क ।
राजन के अवसान गए जब आनन्द कोटि ते तोप छुटक्क ।२

युद्ध भूमि म अस्त्र शस्त्र कसे टूट टूट कर गिरत है कसे योद्धाओ के अग क्षत विक्षत होकर रक्त के दरिया म पडे रहत हैं इसका एक उदाहरण देखिए

टूट कै साग दुइ टूक हुइ मुइ परी गही तरवार दल वढुन मारे ।
एक के सीस धरि दुइ टुकरे करे दुइ के सीस धरि करन चारे ।
भाँन इह पूर परवार दीन कई रक्त दरीग्राउ म परे सारे ।
गिरे बिकराल बेहाल सुध कछु नही पर रण माहि सन कछु बिसारे ।
४१ ।५११

करना, या ललकारना तथा युद्ध भूमि का भयावह एव विकराल वातावरण उद्दीपन का काय करते हैं। गुरु जी गुरु पुत्रा तथा उनके अनेक सिक्खो का क्रोधित होकर शत्रु पक्ष पर टूटना, अनेक अस्त्र शस्त्रो से उनसे जूझना, उनके पौरषपूण कृत्य, ललकार, गर्वोक्तिया आदि अनुभाव हैं और बीच बीच म रोष, श्रमप, धनि, हत्ता आदि अनेक सचारी आए हैं और इस तरह सवत्र वीर रस का पूण परिपाक हुआ है।

आध्यात्मिक विचार

सेनापति दसमगुरु का अनन्य भक्त था और सिक्खमत म उसकी दृढ आस्था थी इसलिए 'गुरु सोभा' म उसने सिक्खमत के दाशनिक सिद्धातो, साधना पद्धति एव खालसा की महिमा तथा उसकी रहित मर्यादा का निष्ठा पूवक प्रतिपादन किया है। यहाँ ब्रह्म, जीव जगत, माया आदि का विधिवत तात्विक विवेचन तो नही किया गया, फिर भी ब्रह्म आदि के स्वरूप पर जो कुछ भी प्रकाश डाला गया है, उस पर आदिग्रथ और दसमग्रथ (अकाल उस्तुति, जापु आदि) का सीधा प्रभाव दिखाई पडता है। उसके अनुसार ब्रह्म अगम, अपार, अचल अभेद करनहार भिरजनहार प्रतिपालक, आनदरूप सुन्दर सरूप, दयावत गरीब निवाज, धरनीधर, नाथनाथ निरकार, कलाकार निर्लेप है। वह सवत्र एव सब का स्वामी है। वह समस्त रिद्धियो सिद्धियो का दाता समस्त सुखों का समूह सृष्टि के कण कण म व्याप्त अमित ज्योति प्रकाशवान, सवरूप एव गीतवान है,फूला म गध एव दूध म घी की भाति इस जगत म सवत्र उसकी सत्ता समायी हुई है। ब्रह्मा शकर, विष्णु सभी देवी देवताओ सिद्धा साधका सता महता म उसी की ज्योति प्रकाशमान है। सारा उसी का खेल है उसका तमाशा है। वह अजरज, पतित उधारन, भैहरण दुष्ट सहारक भक्त वत्सल, पूण और अभय है। अथात् वह निगुण निराकार निरजन और सव शक्तिमान, सवत्र सवव्यापक दाता पतित-पावन, भक्त वत्सल दुष्ट-सहारक आदि होने के कारण सगुण भी है। 'गुरु ग्रथ साहिब' के अनुसार भी वह स्वय ही निगुण है स्वय ही सगुण (निरगुण सरगुण आप सोई, निरकार साकार आदि निरगुन सरगुन एक) गुरु नानक के अनुसार वह ब्रह्म 'एक ओकार सतिनामु, करता पुरखु निरभउ निरवैर, अकाल मूरति अजूनी सैभं है, जो गुरु कृपा स प्राप्त है। गुरुगोविन्दसिंह ने भी ब्रह्म का निरूपण इस रूप म किया है।

इस तरह 'गुरु सोभा' म व्यक्त ब्रह्म सम्बन्धी विचार गुरुमत के ही अनुकूल हैं। 'गुरु सोभा' म भी उसी तरह उसे 'सतिनाम करता' (८८।१२५) कहा गया है जैसे उपनिषद म तत्सोऽहं अहंब्रह्मास्मि कहा गया है।

१ देखिए —गुरु गोविन्द सिंह विचार और चिन्तन-सागर

जीव, जगत, माया, सृष्टि रचना आदि

जीव, जगत, सृष्टि, रचना आदि के सम्बन्ध मे सेनापति ने विशेष कुछ नही कहा है। ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करते हुए ही कही-कही इनकी ओर सकेत भर किया गया है। गुरमत के अनुरूप सृष्टि के सम्बन्ध मे उसका कथन है कि अनन्त प्रभु ही सृष्टि का कर्त्ता करनहार है[1] समस्त जगत भी उसी का खेल है।[2] उसी ने यह सारा तमाशा रचा हुआ है,[3] यह जगत स्वप्न समान है[4] वृक्ष की छाया के समान मिथ्या, अस्थिर और क्षणिक,[5] अत नाशवान है, इसलिए जीव को कभी इसमे फसना नही चाहिए।[6] यही कारण है कि कवि ने सासारिक वैभव, ऐश्वर्य आदि की निरर्थकता एव मिथ्यात्व पर प्रकाश डाल कर नाम-स्मरण की महत्ता का प्रतिपादन किया है।

सिक्खमत मे सृष्टि रचना के सदर्भ मे जैसे 'हुक्म' के महत्त्व को स्वीकार किया गया है, 'हुक्म' का वैसा विवेचन इस ग्रन्थ मे नही हुआ। जीव एव माया के तात्त्विक विवेचन पर भी इस मे प्रकाश नही डाला गया।

साधना पद्धति

वस्तुत 'गुरु शोभा' मे दर्शन पक्ष की अपेक्षा साधना पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। उसमे इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है कि ब्रह्म की प्राप्ति कैसे हो सकती है और मनुष्य आवागमन से छूटकर मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकता है। उसमे जहा एक ओर प्रभु प्राप्ति के लिए नाम स्मरण सत सेवा गुरु कृपा आदि का महत्त्व दर्शाया गया है वहाँ विषय वासनाओ, लोभ और मोह के त्याग पर भी बार-बार जोर दिया गया है।[7]

उसने यह भी कहा है कि यह दृश्य ससार मोह माया का जाल है, इसमे नित्य प्रति अनेक विकार उत्पन्न होते रहते हैं उसका परित्याग वे ही प्राणी कर सकते है जिनकी परमात्मा मे सच्ची प्रीति है। सत सेवा से वह इन प्रपचो से मुक्त होकर सुख और ज्ञान को प्राप्त करता है और गुरु की सेवा और उसकी कृपा से जीव आवागमन से मुक्त हो सकता है। इस प्रकार कवि ने अपनी साधना पद्धति के लिये भी भक्ति 'नाम स्मरण' सत सेवा और गुरु को ही अधिक महत्त्व दिया है।

१ २।८४०, ३६। ३२२ गुर शोभा।
२ ८१। ६१६
३ ४। ८४२
४ १। १६७
५ ४४। १६०
६ ५७। ८६४
७ ४८। ८८८,

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु गोविंदसिंह के जीवन पर आधारित एक वीरकाव्य होते हुए भी गुर शोभा' की धार्मिक भावना बडी बलवती है और सिक्खमत के सिद्धान्तो, साधना पद्धति एव खालसा के पथक आचरणा पर इस ग्रन्थ म विशन्ता स प्रकाश डाला गया है। इन धार्मिक विचारो को कवि न एक विशिष्ट शैली मे प्रस्तुत किया है। पहले गुर जी खालसे क आदर्श बतान हैं, फिर कवि उन्हे स्वीकृति देता हुआ उनकी महानता की घोषणा करता है।[1] उन मे अपनी आस्था प्रकट करता है और फिर कुछ प्रसगा के माध्यम से उनका महत्त्व स्थापित करता है। अन्त म फिर यह अरदास करता दिखाई देता है कि कब प्रभु गुरु देव फिर आएग और आकर इन आदर्शों की भूतल पर स्थापना करेंगे।

सेनापति भक्त कवि है उसने गुर जी को इष्टदेव मानकर उनके प्रति अपनी भक्ति भावना को बडी तन्मयता से प्रकट किया है। उन्ह अशरण शरण, भक्त-वत्सल दीनदयाल पतित पावन मानकर अपनी दन्यता एव विनय को भी व्यक्त किया है। उनकी भक्ति भावना सम्बन्धी कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(१) मोहि आसरो ताहि को ऐसो समरथ सोइ।
सरब धार समरथ प्रभ बिनु अवर न कोइ। ६३। १७६।

(२) ओट तिहारी धरत हो जानत अवर न कोइ।
मन बच करम कर भावनो मिश्रत हो इम तोहि। ४४। ८११॥

(३) काहू के मात पिता सुत हैं अर काहू के भ्रात महा बलकारी।
काहू के मीत सखा हित साजन काहू के ग्रिह बिराजत नारी।
काहू के धाम महा निधि राजत आपस मो करि है हितकारी।
होहु दइआल दया करि कै प्रभ गोविंद जी मुहि टक तिहारी।
४५। ८१२।

(४) नाइक लाइक है सब ही सिर नाम पुनीत महा प्रभ तेरो।
× × ×
या जन की पति राखो प्रभु सुख देहु सदा करि चेरनि चेरो।
४६। ८८६।

समन्वय भावना

नि सन्देह कवि सिक्ख गुरुओ के प्रति आस्थावान है और सिक्खी का प्रचारक है तथापि किसी प्रकार की साम्प्रदायिक कट्टरता उसमे दृष्टिगोचर नही होती। उसकी साधना वृहद हिन्दू सस्कृति का ही एक अग है। बेशक दवी देवताओ या दूसरे अवतारो क प्रति उसने भक्ति प्रकट नही है, लेकिन गुर

१ जो हुक्म तेरा सब सचु सचु मनाईए

गोविंदसिंह के लिये गोविंद[1], बनवारी[2], मुरारि[3], मोहन[4], राम[5] आदि नामो तथा नारद, गधव, किन्नर, सनक, इन्द्र[6] आदि हिन्दू सस्कृति के प्रतीक पुरुषो का प्रयोग और अजामिल, गणिका[7] आदि से सम्बन्धित पौराणिक कथाओ का उपयोग कवि की हिन्दू सस्कृति के प्रति आस्था का पुष्ट प्रमाण है। विभिन्न सम्प्रदायो के समन्वय का जैसा प्रयत्न परवर्ती सिक्ख साहित्य में मिलता है, वैसा पुष्ट प्रयत्न तो यहा नही है, लेकिन पृथकता का भी कोई लक्षण विद्यमान नहीं है। सम्भवत हिन्दुओ और सिक्खो की पृथकता का ही कोई चिह्न उस युग म विद्यमान नही था और यही कारण है कि सेनापति के समकालीन और कुछ परवर्ती कवियो ने गुरु जी को 'हिन्दू पति', 'हिन्दू सुलतान' आदि से सम्बोधित किया है। आज भी हिन्दुओ और सिक्खो की सास्कृतिक एव भावात्मक एकता के सदभ मे इस ग्रन्थ का विशिष्ट महत्त्व है।

अभिव्यक्ति पक्ष

गुरु शोभा' का अभिव्यक्ति पक्ष बहुत सशक्त नही हैं न ही उसकी कोई उल्लेखनीय विशेषता है। उसमे रचना शैली की दृष्टि से अधिकतर 'बचित्र नाटक' (अपनी कथा) के पठन' का ही अनुकरण किया गया है। छन्द पद्धति अलकरण तथा भाषा शैली मे दशमग्रन्थ की समकालीन रचना होते हुए भी, उसम वह सौष्ठव एव विलक्षणता नही है जो 'दशमग्रन्थ' की कुछ रचनाओ की विशेषता है। इसमे भाषा का भी बहुत ही सहज एव सरल रूप मिलना है। रीतिकालीन कवियो का सा पाडित्य, विदग्धता एव चमत्कार इसकी भाषा मे नही है। न उसम मतिराम अथवा देव का सा लालित्य है और न भूषण का सा ओज। न केशव का सा चमत्कार है और न घनानन्द की सी लाक्षणिकता। उसम कथा इतिवृत्त के अनुरूप प्रसाद गुण की प्रधानता है। यद्यपि प्रसगानुकूल अथवा भाव एव पात्रो के अनुरूप भाषा म कुछ अन्तर अवश्य है। भक्ति प्रधान प्रसगो मे कोमल वण योजना का तथा वीर रसात्मक प्रसगो म कुछ ओजपूण शब्दावली का प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है तथापि युद्ध वणनो म जसे ओजस्वी अनुकरणात्मक अक्षरो, सयुक्त-व्यजना, ध्वन्यात्मक शब्दो अनुनासिक वण योजना का कुशल प्रयोग दशमग्रन्थ' म हुआ है, वैसा गुरु शोभा मे बहुत कम देखन

१ ४८। ८१५
२ ४२। १५८
३ १२। ८५०
४ १७। ८५५
५ ६७। ६०४
६ ११। ८३७
७ २७। ८६५।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुर गोविंदसिंह के जीवन पर आधारित एक वीरकाव्य होते हुए भी गुर शोभा की धार्मिक भावना बडी बलवती है और सिक्खमत के सिद्धान्तो साधना पद्धति एव खालसा के पथक आचरणा पर इस ग्रन्थ मे विशदता से प्रकाश डाला गया है। इन धार्मिक विचारा को कवि ने एक विशिष्ट शली मे प्रस्तुत किया है। पहले गुरु जी खालसे के आदश बतात हैं फिर कवि उन्हे स्वीकृति देता हुआ उनकी महानता की घोषणा करता है।[1] उन मे अपनी आस्था प्रकट करता है और फिर कुछ प्रसगो के माध्यम से उनका महत्त्व स्थापित करता है। अन्त म फिर यह अरदास करता दिखाई देता है कि कब प्रभु गुरु देव फिर आएग और आकर इन आदर्शों की भूतल पर स्थापना करेंगे।

सेनापति भक्त कवि है उसन गुर जी को इष्टदेव मानकर उनके प्रति अपनी भक्ति भावना को बडी तन्मयता से प्रकट किया है। उन्ह अशरण शरण भक्त-वत्सल, दीनदयाल पतित पावन मानकर अपनी दयता एव विनय को भी व्यक्त किया है। उनकी भक्ति भावना सम्बन्धी कुछ उदाहरण प्रस्तुत हे।

(१) मोहि आसरो ताहि को ऐसो समरथ सोइ।
सरब धार समरथ प्रभ बिनु अवर न कोइ। ६३। १७६।

(२) ओट तिहारी धरत हो जानत अवर न कोइ।
मन वच करम कर भावनी सिमरत हौ इम तोहि। ४४। ८११॥

(३) काहू के मात पिता सुत हैं अर काहू के भ्रात महा बलकारी।
काहू के मीत सखा हित साजन काहू के ग्रिह बिराजत नारी।
काहू के धाम महा निधि राजत आपस मो करि है हितभारी।
होहु दइआल दया करि क प्रभ गोबिंद जी मुहिं टेक तिहारी।
४५। ८१२।

(४) नाइक लाइक है सब ही सिर नाम पुनीत महा प्रभ तेरो।
× × ×
या जन की पति राखो प्रभु सुख देहु सदा करि चेरनि चेरो।
४६। ८८६।

समन्वय भावना

नि सन्देह कवि सिक्ख गुरुओ के प्रति आस्थावान है और सिक्खी का प्रचारक है, तथापि किसी प्रकार की साम्प्रदायिक कट्टरता उसमे दृष्टिगोचर नही होती। उसकी साधना बृहद हिन्दू सस्कृति का ही एक अग है। वशव देवी दवताओ या दूसर अवतारा क प्रति उसने भक्ति प्रकट नही है, लेकिन गुर

१ जो हुकम तरा सब सचु सचु मनाईए

गोविंदसिंह के लिये गोविंद[१], बनवारी[२], मुरारि[३], मोहन[४], राम[५] आदि नामों तथा नारद, गंधर्व, किन्नर, सनक, इन्द्र[६] आदि हिंदू संस्कृति के प्रतीक पुरुषों का प्रयोग और अजामिल, गणिका[७] आदि से सम्बन्धित पौराणिक-कथाओं का उपयोग कवि की हिंदू संस्कृति के प्रति आस्था का पुष्ट प्रमाण है। विभिन्न सम्प्रदायों के समन्वय का जैसा प्रयत्न परवर्ती सिक्ख साहित्य में मिलता है, वैसा पुष्ट प्रयत्न तो यहां नहीं है लेकिन पृथकता का भी कोई लक्षण विद्यमान नहीं है। सम्भवतः हिंदुओं और सिक्खों की पृथकता का ही कोई चिह्न उस युग में विद्यमान नहीं था और यही कारण है कि सेनापति के समकालीन और कुछ परवर्ती कवियों ने गुरु जी को हिंदू पति, 'हिंदू सुलतान' आदि से सम्बोधित किया है। आज भी हिंदुओं और सिक्खों की सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता के संदर्भ में इस ग्रंथ का विशिष्ट महत्त्व है।

अभिव्यक्ति पक्ष

'गुरु शोभा' का अभिव्यक्ति पक्ष बहुत सशक्त नहीं है न ही उसकी कोई उल्लेखनीय विशेषता है। उसमें रचना शैली की दृष्टि से अधिकतर 'बचित्र नाटक' (अपनी कथा) के 'पटर' का ही अनुकरण किया गया है। छंद पद्धति, अलंकरण तथा भाषा शैली में दशमग्रंथ की समकालीन रचना होते हुए भी, उसमें वह सौष्ठव एवं विलक्षणता नहीं है जो 'दशमग्रंथ' की कुछ रचनाओं की विशेषता है। इसमें भाषा का भी बहुत ही सहज एवं सरल रूप मिलता है। रीतिकालीन कवियों का सा पांडित्य, विदग्धता एवं चमत्कार इसकी भाषा में नहीं है। न उसमें मतिराम अथवा देव का सा लालित्य है और न भूषण का सा ओज। न केशव का सा चमत्कार है और न घनानंद की सी लाक्षणिकता। उसमें कथा इतिवृत्त के अनुरूप प्रसाद गुण की प्रधानता है। यद्यपि प्रसंगानुकूल अथवा भाव एवं पात्रों के अनुरूप भाषा में कुछ अंतर अवश्य है। भक्ति प्रधान प्रसंगों में कोमल वर्ण योजना का तथा वीर रसात्मक प्रसंगों में कुछ ओजपूर्ण शब्दावली का प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है तथापि युद्ध वर्णनों में जैसे ओजस्वी अनुकरणात्मक अक्षरों, संयुक्त-व्यंजनों, ध्वन्यात्मक शब्दों अनुनासिक वर्ण योजना, का कुशल प्रयोग 'दशमग्रंथ' में हुआ है वैसा 'गुरु शोभा' में बहुत कम देखने

१ ४८। ८१५
२ ४२। १५८
३ १२। ८५०
४ १७। ८५५
५ ६७। ६०४
६ ११। ८३७
७ २७। ८६८।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुर गोविंदसिंह के जीवन पर आधारित एक वीरकाव्य होते हुए भी गुर शोभा' की धार्मिक भावना बडी बलवती है और सिक्खमत के सिद्धान्तो, साधना पद्धति एव खालसा के पथक आचरणो पर इस ग्रन्थ मे विशदता से प्रकाश डाला गया है। इन धार्मिक विचारो को कवि न एक विशिष्ट शैली मे प्रस्तुत किया है। पहले गुरु जी खालसे के आदश बताते हैं, फिर कवि उन्हे स्वीकृति देता हुआ उनकी महानता की घोषणा करता है।[1] उन मे अपनी आस्था प्रकट करता है और फिर कुछ प्रसगो के माध्यम से उनका महत्त्व स्थापित करता है। अन्त म फिर यह अरदास करता दिखाई देता है कि कब प्रभु गुरु देव फिर आएगे और आकर इन आदर्शों की भूतल पर स्थापना करेंगे।

सेनापति भक्त कवि है, उसने गुर जी को इष्टदेव मानकर उनके प्रति अपनी भक्ति भावना को बडी तन्मयता से प्रकट किया है। उन्हे अशरण शरण, भक्त-वत्सल, दीनदयाल पतित पावन मानकर अपनी दीनता एव विनय को भी व्यक्त किया है। उनकी भक्ति भावना सम्बन्धी कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(१) मोहि आसरो ताहि को ऐसो समरथ सोइ।
सरब धार समरथ प्रभ बिनु अवर न कोइ। ६३। १७६।

(२) ओट तिहारी धरत हो जानत अवर न कोइ।
मन बच करम कर भावनी मिम्रत हौं इम तोहि। ४४। ८११॥

(३) काहू के मात पिता सुत हैं अर काहू के भ्रात महा बलकारी।
काहू के मीत सखा हित साजन काहू के ग्रिह बिराजत नारी।
काहू के धाम महा निधि राजत आपस मो करि है हितभारी।
होहु दइआल दया करि कै प्रभ गोबिंद जी मुहि टेक तिहारी।
४५। ८१२।

(४) नाइक लाइक है सब ही सिर नाम पुनीत महा प्रभ तेरो।
× × ×
या जन की पति राखो प्रभु सुख देहु सदा करि चेरनि चेरो।
४६। ८८६।

समन्वय भावना

नि सन्देह कवि सिक्ख-गुरुओ के प्रति आस्थावान है और सिक्खी का प्रचारक है *तथापि किसी प्रकार की साम्प्रदायिक कट्टरता उसम दृष्टिगोचर नही* होती। उसकी साधना वृहत् हिन्दू सस्कृति का ही एक अग है। बेशक देवी देवताओ या दूसरे अवतारो के प्रति उसने भक्ति प्रकट नही है लेकिन गुर

१ जो हुक्म तेरा सब सचु सचु मनाईए

गोविंदसिंह के लिये गोविंद[1], बनवारी[2], मुरारि[3], मोहन[4], राम[5] आदि नामो तथा नारद, गधव, किन्नर, सनक, इन्द्र[6] आदि हिन्दू सस्कृति के प्रतीक पुरुषो का प्रयोग और अजामिल, गणिका[7] आदि से सम्बधित पौराणिक-कथाओ का उपयोग कवि की हिन्दू सस्कृति के प्रति आस्था का पुष्ट प्रमाण है। विभिन्न सम्प्रदायो के समन्वय का जैसा प्रयत्न परवर्ती सिक्ख साहित्य मे मिलता है, वैसा पुष्ट प्रयत्न तो यहा नही है, लेकिन पथक्ता का भी कोई लक्षण विद्यमान नही है। सम्भवत हिन्दुओ और सिक्खो की पृथक्ता का ही कोई चिह्न उस युग म विद्यमान नही था और यही कारण है कि सेनापति के सम कालीन और कुछ परवर्ती कवियो ने गुरु जी को 'हिन्दू पति', हिन्दू सुलतान' आदि से सम्बोधित किया है। आज भी हिन्दुओ और सिक्खो की सास्कृतिक एव भावात्मक एकता के सदभ म इस ग्रन्थ का विशिष्ट महत्त्व है।

अभिव्यक्ति पक्ष

'गुरु शोभा' का अभिव्यक्ति पक्ष बहुत सशक्त नही हैं न ही उसकी कोई उल्लेखनीय विशेषता है। उसमे रचना शली की दृष्टि से अधिकतर 'वचित्र नाटक' (अपनी कथा) के 'पैटन' का ही अनुकरण किया गया है। छन्द पद्धति, अलकरण तथा भाषा शैली म दशमग्रन्थ की समकालीन रचना होते हुए भी, उसम वह सौष्ठव एव विलक्षणता नही है जो 'दशमग्रन्थ' की कुछ रचनाओ की विशेषता है। इसम भाषा का भी बहुत ही सहज एव सरल रूप मिलता है। रीतिकालीन कवियो का सा पाडित्य, विदग्धता एव चमत्कार इसकी भाषा म नही है। न उसम मतिराम अथवा दव का सा लालित्य है और न भूषण का सा ओज। न केशव का सा चमत्कार है और न घनानन्द की सी लाक्षणिकता। उसम कथा इतिवृत्त के अनुरूप प्रसाद गुण की प्रधानता है। यद्यपि प्रसगानुकूल अथवा भाव एव पात्रो के अनुरूप भाषा म कुछ अन्तर अवश्य है। भक्ति प्रधान प्रसगा मे कोमल वण योजना का तथा वीर रसात्मक प्रसगा म कुछ ओजपूण शब्दावली का प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है तथापि युद्ध वणना म जसे आजस्वी अनु करणात्मक अप्सरा सयुक्त-व्यजनो, ध्वन्यात्मक शब्दो अनुनासिक वण योजना, का कुशल प्रयोग 'दशमग्रन्थ' मे हुआ है वसा 'गुरु शोभा म बहुत कम देखन

१ ४८। ८१५
२ ४२। १५८
३ १२। ८५०
४ १७। ८५५
५ ६७। ६०४
६ ११। ८३७
७ २७। ८६५।

को मिलता है। आध्यात्मिक विवेचन मे तत्सम, कथा इतिवृत्त मे तद्भव जफर नामे के प्रसग मे फारसी एव कुछ अन्य स्थलो पर पजाबी शब्दो का प्रयोग कवि की काव्य कुशलता का परिचायक है। कुल मिलाकर भाषा का पडित न होने पर भी कवि अपने कथ्य को कहने मे तथा सम्प्रेषित करने मे सफल रहा है। अपनी कथा की भाति 'गुर शोभा की मुख्य छन्द पद्धति दोहा चौपई है, यद्यपि इसमे भी कोई सट पैटन नही है। कुछ प्रकरणो म इसी पद्धति की प्रधानता है, और कुछ म दोहा तोटक दोहा अडिल दोहा छप्पय, दोहा-कवित्त इत्यादि अन्य पद्धतियाँ भी दिखाइ पडती हैं। वस्तुत कोई भी नियमित या स्थिर छन्द-पद्धति इसम नही है। बीच बीच म सोरठा रसावल भुजगप्रयात, छप्पय, त्रिभगी तोटक, रुआमल झूलना सवया, मधुभार चौलोटन पउडी निराज आदि अनेक छन्दो का प्रयोग हुआ है। ये ही वे छन्द हैं जिनका दशमग्रन्थ म सबसे अधिक प्रयोग हुआ है। छन्द परिवतन बहुत तेजी से तो नही होता मगर बहुत दूर तक भी एक ही छन्द नही चलता। इसीलिये कथा प्रवाह न तो अधिक टूटा है और न ही उसमे विशेष प्रवाह ही है। 'दशमग्रन्थ के युद्ध वणना म जसे क्षिप्रगति लघु छन्दा का प्रयोग हुआ है और युद्ध की एकरसता को दूर करन के लिये जस तेजी से छन्द परिवतन हुआ है वह भी 'गुर शोभा म नही हुआ। यहा युद्धा का वणन भी अधिकतर दोहा चौपई, कवित्त, सवया म ही हुआ है। कतिपय स्थानो पर रसावल, भुजगप्रयात, मधुभार आदि का प्रयोग अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। दशमग्रथ' क त्रिडका त्रिणणिण, भडयुआ जसे ध्वनिपूण तथा विविध सगीत छन्दो का इसम अभाव है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसमे भी छन्द का प्रयोग विषय के अनुरूप ही हुआ है, हालाकि यह कहना कठिन है कि इस दृष्टि से इसकी कोई विशिष्टता है। इस रचना म कवि का उद्देश्य रीतिकालीन अलकृता की भाति अलकारो का चमत्कार दिखाकर पाडित्य प्रद शन करना भी नही था, यही कारण है कि इसमे अलकारो का चमत्कार बिल्कुल दिखाई नही देता। जहाँ कही अलकारो का प्रयोग हुआ है वह भी भावाभिव्यक्ति के प्रवाह म अनायास ही हो गया है और वह रस के उत्कष मे सहायक सिद्ध हुआ है। यमक और श्लेष का चमत्कार इसम बिल्कुल नही है। यमक के दो एक उदाहरण मिल जायेंगे, लेकिन उनम कोई विशेष चमत्कार नही। इसी प्रकार अनुप्रास के कुछ उदाहरण विशेष रूप स भक्ति भावना या युद्ध वणन के प्रसग म मिलते हैं और वे रसोत्कपक हैं लेकिन अनुप्रास लाने के प्रति कवि का आग्रह बिल्कुल नही है। उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप व्यति रेक अनन्वय म कुछ उदाहरण ऐसे अवश्य मिलते हैं जो भावा की प्रेषणीयता मे सहायक सिद्ध हुए हैं अथवा वस्तु-वणन का सजीवता प्रदान करते हैं।

'गुरु शोभा' मध्ययुगीन भावना से युक्त आस्था और विश्वास की काव्य-कृति है। उसमे कलात्मक सौन्दय अधिक भले ही न हो परन्तु राष्ट्रीय स्वाभिमान एव सद्धम की रक्षा एव मानवीय चेतना के उन्नयन का यह एक प्रशसनीय प्रयास है। स्वाथ साधना से आक्रात रीतिकालीन साहित्य रचना के युग मे यह लोक हित की भावना से अनुप्राणिक काव्य परम्परा का एक चमकदार माणिक है। आज आधुनिकता के सदभ मे उठाए गए प्रश्नो की निरन्तरता, शका एव अनास्था की कसौटी पर उसे परखा-तोला नही जा सकता। वह युद्ध वणनों से आपूरित होते हुए भी शान्ति और आनन्द का सव मागलिक एव शाश्वत सन्देश देता है और यही उसकी सीमा और उपलब्धि है।

●

८

'जगनामा गुरु गोविंदसिंह' युद्धकाव्य

'जगनामा गुरु गोविंदसिंह' भी गुरु दरबार की एक विशिष्ट रचना है। इसकी रचना गुरु जी के दरबारी कवि अणीराय ने की थी। अणीराय के जीवन के सम्बन्ध मे अभी तक विशेष तथ्य प्रकाश म नही आ पाए। उनकी रचना से इतना ही ज्ञात होता है कि उन्ह गुरु जी ने नग स्वर्ण एव आभूषण आदि देकर सम्मानित किया था। इस तथ्य से सम्बन्धित छन्द इस प्रकार है—

अणीराइ गुरु से मिल दीनी ताहि असीम।
आउ कह्यो मुख आपने बहुर करी बखसीम।१
नग कचन भूखन बहुर दीो सतिगुर एह॥
नामा हुक्म लिखाइ क दीना सरस सनेह।२

यह जगनामा गुरु गोविन्दसिंह के जीवन पर आधारित एक लघु वीरकाव्य है जिसम ६६ छन्दो म कवि न उनके एक युद्ध का ओजस्वी चित्रण किया है। कथानक इस प्रकार है—

औरगजेब न शासनारूढ होने पर हिन्दुओ पर अनेक अत्याचार करने आरभ कर दिए। उन्ह बल पूवक मुसलमान बनाया जाने लगा। उनकी पुकार पर उस कुटिल कमीन को दण्ड देने क लिए अकाल पुरुष के आदेश से गुरु गोविन्दसिंह ने सोढी वश म अवतार धारण किया।[1] उन्होने उसका विनाश करने क लिए अस्त्र शस्त्र धारी खालसा की स्थापना की। उनसे भयभीत होकर पहाडी राजाओ ने बादशाह के पास एक पत्र भेजा जिसम लिखा था कि अब तू अपने शासन की सभाल कर, नही तो शीघ्र ही खालसा तेरे तख्ता-ताज को

---

१ तखते बठ अनीति को सुने न चित्त अकुलाइ।
ताको करता दिनन के, क्यु न लगे फल आइ।६।
मुसलमान हिन्दू करे, जु देउ ढहाव नित्त।
फरिआद लगी दरगाह मैं करता धर न चित्त।७।
हुक्म हूओ गोविन्द को उतर्यो अवनी जाइ।
कुटल कमम औरग करे ताको दहु सजाइ।८।

सभाल लेगा । इसी समय ग्र दुल्लाखा नाम के एव चुगलगोर दरबारी म बाद शाह को बताया कि गुरु गोविन्दसिह एव नये पथ का प्रचार कर रहे हैं इमलिय उन्हें देश म नही रखना चाहिए । उसके तथा कुछ ग्रय उमरावो के कहने से बादशाह ने अजीमखा को शाही सेना देकर गुरु जी पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया । जब अजीमखा की सेना सतलुज के किनारे पहुची तब गुरु जी ने उसका डट कर मुकाबला किया । अजीमखा ने अपनी सारी शक्ति उस स्थान पर लगा दी जहा गुरु जी खडे हुए थे । घमासान युद्ध हुआ जिसम हिम्मतसिह दलेलसिह मोहकमसिह विचित्रसिह आदि ने अदभुत वीरता का परिचय दिया । शत्रु द्वारा छोडे गए एक मद मस्त हाथी का भी विचित्रसिह एक बार म वध कर देता है । गुरु जी ने अजीमखा को ललकारा और बडी शूरवीरता का प्रदशन करते हुए उसका सहार कर दिया । उसके मरने पर उसकी सेना अधीर होकर भाग खडी हुई ।' यही इस रचना के कथानक का अत हो जाता है । अतिम कुछ पउडी छ द पजाबी भाषा म है, जिनमे कवि ने गुरु जी के शौय एव साहस की प्रशसा की है ।

'जगनामा वस्तुत फारसी काव्य रूप है । इसमे कथानक का अश बहुत क्षीण रहता है । किसी एक युद्ध के प्रहार प्रतिप्रहार के चित्रण पर बल दिया जाता है । इस रचना म भी गुरु गोविन्दसिह के केवल एक युद्ध का वणन किया गया है । न तो उनके जीवन से सम्बन्धित ग्रय घटनाओ का वणन है न गुरु शोभा' की भाति उनके अन्य युद्धो का चित्रण किया गया है । यह युद्ध रूप म एक युद्ध काव्य है । गुरु जी के जिस युद्ध का वणन इसम किया गया है वह ऐतिहासिक घटना है अथवा नही, यह विचारणीय है । इस रचना म कुछ ऐसी घटनाएँ अवश्य हैं, जो इतिहास से मल नही खाती । पहाडी राजाओ द्वारा औरगजेब का यह पत्र लिखा जाना 'कि तुम्हे अभी से सावधान हो जाना चाहिए अन्यथा खालसा मुगलो से राज्य हथिया लेगा । ऐसा ही प्रसग है ।

गुरु विलास' (सुक्खासिह) तथा 'गुरु प्रताप सूरज' (सन्तोखसिह) म ऐसी किसी घटना का उल्लेख नही है । वहा द्वार तोडने के लिए हाथी छोडे जाने का उल्लेख भी पहाडी राजाओ के युद्ध म हुआ है । यह रचना गुरु जी के समकालीन कवि की है । इसलिए इसका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है और इस प्रसगपर अधिक खोज करने की आवश्यकता है हम यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह एक साहित्यिक कृति है इतिहास ग्रथ नही, जिसम कवि कल्पना के लिए सवदा स्थान बना रहता है । इसलिए यदि चरित्र-नायक के महत्त्व स्थापन के लिए कवि ने किसी ऐसे प्रसग की उद्भावना की भी हो तो इसमे न तो उसकी प्रामाणिकता सदिग्ध होती है न रचनाकाल । इस प्रसग से हिन्दुओ की तत्कालीन राजनैतिक आकाक्षाएँ तथा कवि की राष्ट्रीय-स्वातन्त्र्य भावना भी प्रकट होती है ।

मत्त मतग उतग धुजा फरहरहिं इव।
धुरवा धावत लिये इद्र को धनुख शिव।
फिर धुरवा सँधर धाए धीरज धराधर।
कोर बाध गिर जाए कीने बराबर।
बग पत दत दरसाए बादल मेह के।
चुए गड मद पानी भारी दह के।
छाए मेघ जु डम्बर अम्बर से सरस।
भई धु द रज रुद सूर झपयो दरस।
अवस जडत जराउ, रिप तह अत भला।
जन घटा छटा आकाश जु चमक चचला।
कज्जल गिर से बरणो वरण बनाइ वर।
मार सु ड फुकार जु पारावारि पर।
जब मु डाहल सजै पूर सधूर रुच।
साझ ललाई माझ किधा गिरिराज उच। (२६)

युद्ध वणन —

शूरवीरो के जूझने उनके घोर सग्राम प्रहार प्रतिहार क्षत विक्षत हा कर गिरने आदि का भी कवि ने सजीव एव यथाथ चित्रण किया है। कुछ उदाहरण देखिये —

मची मार भारी दुहू ओर ऐसी।
भई भीर कुरखेत क खेत जसी।
छुट तोप बदूक घुर नाल गोला।
पर ऊव के पूख म बज्र ओला।
चल तान कमान सा तीर तिक्खे।
मना भूमि भारत्य पारत्य पिक्खे।
किते बान बुहक्त भुवक्त आव।
उड प्राण ज्या लाग ज्या लाग धाव।
बड़ वीर रन माहि कर खग्ग भार।
कर सीस लैं ईस समला सवारें।
करै घाउ पर घाउ सपूरा कटार।
मिन प्राण जिन सर जया परे प्यारे। (२८)

इस युद्ध म वीरा क उत्साह एव ओज का भी वणन किया गया है।

शूरवीरों का व्यक्तित्व —

युद्ध म जूझने वीरा का व्यक्तिगत वारता शौर प्रदशन धय एव गाम्भ का भी कवि न विशद वणन किया है। गुरु गोविन्दसिंह तथा उनके सनिक।

हिम्मतसिंह, दलेलसिंह, मुहकम सिंह आदि के पराक्रम की खूब प्रशसा की गई है।[1]

गुरु गोविन्दसिंह की ऋतुराज के समान विख्यात तलवार तथा तुरग की फौज को तोडने वाली, मतगो के मान का मदन करने वाली, घटा को विदीण करने वाली प्रचड कृपाण का भी यशोगान किया गया है। ऐसे स्थलो पर भूषण के साथ अदभुत समानता के दशन होते हैं। एक उदाहरण देखिये—

तुरग फौज तोर कै मतग मान मोर कै
लर कर अधीर शत्रु जत्त पत्र पान को।
जिते ममीप को गिनै, क्रिमान कोप जया हनै
प्रचण्ड खण्ड कित्त मुड तज पुज भान को।
घटा छटा बिदारनी, धनी धरा प्रहारनी
कि काल बिम्राल काल कूट गूढ विम्रान त्रान को।
प्रसिद्ध दीप देस मैं पुरी गनेस सेस मैं
गुरू गोबिन्दसिंह की क्रिपान के समान को।३०।

इसी प्रकार गुर जी की खडग की प्रशसा म निम्न छद देखिये —

तेग वली श्री गोविन्दसिंह चढे रण को मन को जुहुलासा।
राइ रहै ठहिराइ सु को नर, लाखन म भुज को भरवासा।
लोह के तेज त कादर मजेज तैं धाइ पर अरि को मधवासा।
सूक्त यौं मुव मूरन के धन थोर को सोर सुनजु जवासा।२८

भूषण ने केवल अपने आश्रयदाता की वीरता की ही प्रशसा की है जबकि अणीराय ने शत्रु पक्ष के योद्धाओ की वीरता की भी प्रशसा की है। अजीम खा को कवि न असाधारण शूरवीर के रूप मे प्रस्तुत किया है जो कि स्वामी भक्ति एव तमूर वश का गौरव बढाने के लिए युद्ध म प्रवृत्त दिखाया गया है। वस्तुत, समान बल वाल प्रतिद्वन्द्वी पर विजय दिखाने से चरित्र-नायक के यश की ही अभिवृद्धि होती है। गुरु सिक्खो की स्वामीभक्ति एव युद्ध कुशलता पर भी यथा स्थान प्रकाश डाला गया है।

---

१ मुहकम सिंह की शूरवीरता, दृढता, धय एव साहस का एक उदाहरण देखिये —

छाड छाड तीरन को मुडी है कमान केती
छुटकै बन्दूक गोली वानी ह्वै दुरत हैं।
मारि मारि बरछी मुरी है केती राइ कवि
बान भबकाइ मुरे भूमि म हुरत है।
काटि काटि सीस तरवार मुरि मिम्रान परी
हाथी घोरा मुरे जासो समर जुरत है।
लरि लरि मुर फेर लर पर रन माझ
मुहकम सिंह जू को मुख न मुरत है।३६।

इस 'जगनामे' म युद्ध भूमि के भी कुछ सजीव एव सश्लिष्ट चित्र उपलब्ध हैं। उदाहरण देखिय

गिरे लुत्थ पर लुत्थ जुत्थ जुग्गण जहाँ।
कर घाउ पर घाउ ताउ तमकै तहा।३४।

ऐसे स्थलो पर प्राय कवि ने सादृश्य विधायक बिम्बो के प्रयोग द्वारा दृश्य को अधिक चित्रमय बना दिया है।

अलकार

युद्ध वर्णनो म अलकार सौन्दय के भी कई स्थानो पर दर्शन होते हैं। उपमा रूपक आदि के विधान म कवि को विशेष सफलता मिली है। युद्ध को वर्षा के रूपक के रूप म तो प्रस्ट किया ही गया है। एक रूपक यह और देखिए—

आप घटा अकुश छटा बग दतन की पाति,
मद पानी, बानी गरज घन गज एक भान्ति।२४।

इसी प्रकार उपमाओ की भी कहीं-कहीं सुदर छटा दिखाई पडती है। साम्य विधान युद्ध के वातावरण एव उत्साह के मनोवेगो के अनुरूप हैं और ओजगुण के उत्कष म सहायक हुआ है।

छन्द

यह रचना दोहा सोरठा, कवित्त, सवया छप्पय, भुजगप्रयात, गीआ, चौपई, तोटक, अडिल मनहर, पउडी आदि छन्दों म लिखी गई हैं। कवित्त एव सवैया को पढकर तो कहीं-कहीं भूषण के कवित्त, सवैयो की याद ताजा हो जाती है।

भाषा ब्रज है जो वेगपूर्ण है और ओज सम्पन्न है। अंतिम छन्दो की भाषा पजाबी है और बहुत ही चुस्त वेगपूर्ण एव ओजस्वी है। मुझे ऐसा भी लगता है कि सम्भव है कि इस म मूल रूप म ब्रजभाषा के ५२ छन्द ही रहे हो और शेष बाद म बढाए गए हों।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस लघु आकार की रचना मे भी कवि युद्ध का सर्वांगीण सजीव एव ओजपूर्ण वर्णन करने म पूर्ण सफल रहा है। युद्ध की भीषणता तीव्रता एव वेग को व्यक्त करने के लिए उसने अनुप्रास युक्त अक्षरो, अनुकरणात्मक शब्दो, अत्यानुप्रास तथा अतिरिक्त तुक का भी प्रयोग किया है। प्रसगानुकूल छन्द वविध्य स भी काम लिया गया है। वस्तुत, राष्ट्रीय भावना, युग-चेतना एव वीरता से पूर्ण यह एक उत्कृष्ट वीर-काव्य है। उद्देश्य की अभिव्यजना एव वीर रस के ओजस्वी चित्रण म कवि को असाधारण सफलता मिली है। हिन्दी मे ऐसे जगनामे बहुत कम लिखे गये हैं।

९

'गुरु गोविंद बावनी—बनाम' 'शिवा बावनी'

गुरु जी के दरबारी कवियो म सेनापति और अणिराय का प्रमुख स्थान है, क्योकि इन्होने अपनी कथा' (गुरु गोविन्दसिंह) की पद्धति पर क्रमश 'गुरु शोभा" और 'जगनामा गुरु गोविंदसिह नाम के दो ऐसे महत्वपूण वीर काव्यो का प्रणयन किया जिनकी वीर भावना का स्वरूप हिन्दी क सभी वीर काव्यो से भिन्न और विशिष्ट है। इनम गीता की "परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम' की भावना के अनुरूप धम-स्थापन, दुष्ट विदारण एव सत रक्षा की भावना का प्रसार है, जिसका प्रस्तुतीकरण जहा तहा तुम धरम बिथारो दुष्ट दोखयनि पकरि पछारो' ('अपनी कथा) के अनुकरण पर "असुर सहारब को दुरजन के मारिब को सकट निबारबे को खालसा बनायो है' (गुरु शोभा), तथा 'हुक्म हुऔ गोबिन्द को उतरयो अवनी जाई-कुटल करम औरग कर ताको देहु सजाई' (जगनामा गुरु गोविंदसिंह) आदि उक्तियो के द्वारा हुआ है। दूसरे इन वीर काव्यों म 'महाभारत की तरह सत्य और न्याय के लिए युद्ध की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए भी मोक्ष को ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना गया है। अर्थात ये वीरकाव्य एक अध्यात्मपरक वीर भावना से अनुप्राणित है। इनम वर्णित युद्धो का प्रयोजन लोक मगलकारी है न कि व्यक्तिगत स्वाथ सिद्धि। हिन्दी के सामन्तीय वीरकाव्यो म वीरता के इस उदात्त आदश का प्राय अभाव है।

गुरु गोविंदसिंह के दरबार म हसराम मगल अमृतराइ एव हीर आदि और भी अनेक कवि थे। इनमे हीर का प्रमुख स्थान है। उसके कुछ छन्द 'अतक समर वीर के कवित्त' नाम से प्रसिद्ध हैं, जिन मे सत योद्धा गुरु गोविंदसिह की युद्ध वीरता और दानशीलता आदि का ऐसा ओजस्वी और सजीव चित्रण हुआ है कि उसे सहज ही 'शिवा बावनी के समकक्ष रखा जा सकता है। हीर भूषण का समकालीन था। दोना के आश्रयदाता भी समकालीन थे और लगभग एक से उद्देश्य से एक ही शत्रु के विरुद्ध दो सीमाओं पर लड रहे थे। (गुरु गोविन्दसिंह का उद्देश्य कुछ अधिक व्यापक था)। हीर का काव्य

भी उद्देश्य, स्वरूप, पद्धति एव रचना शिल्प की दृष्टि से सवथा भूषण के समान है। भाव भाषा और शैली की दृष्टि से दोना म अद्भुत समानता है।

हीर के जीवन के सम्बध मे अधिक ज्ञात नही है। इसकी रचनाओ से इतना पता चलता है कि वह गुरु गोविन्दसिंह जी के चरणो मे काफी समय तक रहा और उनके बहुत से युद्धो को उसने अपनी आखो से देखा था। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि खालसा सजने के पश्चात भी वह आनन्दपुर मे उपस्थित था। वह स्वय भी वीर स्वभाव का व्यक्ति था और युद्धो म गुरु जी के साथ रहा करता था।

गुरु आश्रय म आने की एक विचित्र कथा इसके सम्बध मे प्रचलित है। जो इस प्रकार है—गुरु जी का दरबार लगा हुआ था। सब कवि अपनी वीररस की कविताएँ सुना रहे थे तभी हीर कवि भी आ उपस्थित हुआ। उसे ज्ञात था कि गुरु जी वीर रस की कविता से बहुत प्रसन्न होते हैं, इसलिए आते ही वह हाथो, भुजाओ एव नेत्रो से इस प्रकार का अभिनय करने लगा, जसी शत्रु से लड रहा हो और उसे पराजित करने का प्रयत्न कर रहा हो। सारी सभा हँस पडी तब गुरु जी ने कवि से पूछा कि कवीश्वर जी क्या कर रहे हो ? हीर कवि ने गुरु जी को सम्बोधित करके कहा —

एक वीर बलवान
देत पढन नहिं किपा निधान।
ता सन लर लर कवित सुझ हैं
महाराज सुख खान रिझ हैं।

तब उसे गुरु जी ने वे कवित्त सुनाने का आदेश दिया। हीर ने उसी प्रकार अभिनय करते हुए ये कवित्त सुनाये।

दारिद कपूत ! तेरो मरन बयो है आज
करके सलाम विदा हुज कवि हीर सा।
नातुर गोविंदसिंह विकल करगे तेहि,
टूक टूक ह्व गाढ़े दानन के तीर सा।
जसे प्रह्लाद सुरपति कीनो पति देक,
याहू पनि आज नक चित्त दै समारीए।
जैसे बल बाध्यो धर बावन सरूप हीर,
टूक टूक करो चाढ आखिन पछारीए।
छाडत ने सग जुरयो रहै आठो जाम मेरे
सरे दान नाम त परेत मेरे भारीए।
एक गुरु गोविन्द गरर जाको वाहन है
जस मुर मारयो तस मरो अरि मारीए।

अपनी दानवीरता स सम्बंधित य कवित्त सुन कर गुरु जी उसकी काव्य

क्षमता से बड़े प्रसन्न हुए और दान मान देकर उसे अपने आश्रय में रख लिया। हीर ने गुरु जी के शौर्य, उनकी खड्ग एवं कृपाण, उनके नगारों की चोट, सेना प्रस्थान, हाथियों की मार, युद्ध भूमि की विकरालता 'दुष्टों के संहार' रोष, तेज आतंक आदि का अत्यन्त सजीव एवं ओजस्वी चित्रण किया है।

गुरु जी के रणजीत नगारे की ध्वनि सुन कर अरि भामिनियों तथा गोलकुंडा और बीजापुर की क्या दशा हुई, इसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है

कल नहिं परत विकल देस बंगस को,
पलक न लागै पल रूम साम सामनी।
गोलकुंड कुपति नगारन की धुनि सुनि,
बीजापुर बन्दर बसत बन जामनी।
आसमान दहल, दहल गिर्यो लंक 'हीर',
दरी में दबत फिरैं दसन जिऊ दामनी।
तेरे डर गोविंद त्रिगिंद गुरु अरिनि की,
टोला टोल जाइ सो खटोला मांगे भामिनी।

गुरु गोविंदसिंह अद्भुत शूरवीर थे। उनकी सेना के प्रस्थान से शत्रु के कलेजे दहल उठते थे और वे व्याकुल होकर कन्दराओं में छिपते फिरते थे। उनकी सेना प्रस्थान के आतंक का वर्णन 'हीर' कवि के शब्दों में देखिए —

भभर्यो भभीषण भवन तजि भटकत
ढहे पैर लंक की निशानन के बाजे तें।
पापर सो फूटत धराधर सु चूर होत,
सिंधु अकुलात गज राजन के गाजे तें।
बरनत 'हीर' गुरु गोविंद तिहारे त्रास
दवत फिरति अरि कन्दरान भाजे तें।
चूर होत कमठ दरारे दाढ अटकत,
फटे फन सहस प्रबल दल साजैं तें॥

उनके नगारों की ध्वनि, सेना प्रस्थान एवं उनके शौर्य के आतंक का एक और उदाहरण देखिए —

ता सों बैर बांधे धीर न धरति कहू,
धौंसा की धुंकार धराधर धसकत है।
दल के चलत, महि हालत हलत कोल,
कूरम कहल्ल फनी फन न सकत है।
प्रबल प्रतापी पातशाह गुरु गोविंद जी,
तेरे भय भीर भारी भूप ससकत है।
होत भूमचाल दिगपाल पाइमाल होति,
हलके हरल्ल हाथी माथे मतकत है।

भी उद्देश्य, स्वरूप, पद्धति एव रचना शिल्प की दृष्टि से सवया भूषण के समान है। भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से दोनो म पर्याप्त समानता है।

हीर के जीवन के सम्बन्ध म अधिक ज्ञान नहीं है। इसकी रचनाओं से इतना पता चलता है कि यह गुरु गोविन्दसिंह जी के चरणो म काफी समय तक रहा और उसने बहुत से युद्धो को उनके अपनी आँखो से देखा था। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि खालसा सजन के पश्चात भी यह आनन्दपुर म उपस्थित था। वह स्वय भी वीर स्वभाव का व्यक्ति था और युद्धो म गुरु जी के साथ रहा करता था।

गुरु आश्रय म आने की एक विचित्र कथा इसके सम्बन्ध म प्रचलित है। जो इस प्रकार है—गुरु जी का दरबार लगा हुआ था। सब कवि अपनी वीररस की कविताएँ सुना रहे थे, तभी हीर कवि भी आ उपस्थित हुआ। उसे ज्ञान था कि गुरु जी वीर रस की कविता से बहुत प्रसन्न होते हैं, इसलिए आते ही वह हाथो, भुजाओ एव नेत्रो से इस प्रकार का अभिनय करने लगा, जैसे शत्रु से लड रहा हो और उसे पराजित करने का प्रयत्न कर रहा हो। सारी सभा हँस पड़ी तब गुरु जी ने कवि से पूछा कि कवीश्वर जी क्या कर रहे हो? हीर कवि ने गुरु जी को सम्बोधित करके कहा —

　　　　एक वीर बलवान
　　　　देत पढन नहि विद्या निधान।
　　　　ता सन लर लर कवित्त सुझै हैं
　　　　महाराज सुन खान रिझै हैं।

तब उसे गुरु जी ने वे कवित्त सुनाने का आदेश दिया। हीर ने उसी प्रकार अभिनय करते हुए ये कवित्त सुनाये।

　　　　दारिद कपूत! तेरो मरन बन्यो है आज
　　　　　　करके सलाम विदा हुज कवि हीर सो।
　　　　नातुर गोविंदसिंह विक्ल करगे तेहि,
　　　　　　टूक टूक ह्वै गाढे दानन के तीर सो।
　　　　जसे प्रह्लाद सुरपति कीनो पति दे क,
　　　　　　याहू पति काज नक चित्त दे समारीए।
　　　　जसे बल बाध्यो धर बावन सरूप हीर,
　　　　　　टूक टूक करो काढ आंखिन पछारीए।
　　　　छाडत ने सग जुरयो रहै आठो जाम मेरे
　　　　　　तेरे दान नाम ते परेत मेरे भारीए।
　　　　एक गुरु गोविन्द गरुर जाको वाहन है,
　　　　　　जसे मुर मारयो तसे मेरो अरि मारीए।

अपनी दानवीरता से सम्बन्धित ये कवित्त सुन कर गुरु जी उसकी काव्य

क्षमता से बडे प्रसन्न हुए और दान मान देकर उसे अपने आश्रय मे रख लिया। हीर ने गुरु जी के शौर्य, उनकी खडग एव कृपाण, उनके नगारो की चोट, सेना-प्रस्थान हाथियो की मार, युद्ध भूमि की विकरालता,'दुष्टो के सहार, रोष, तेज, आतक आदि का अत्यन्त सजीव एव ओजस्वी चित्रण किया है।

गुरु जी के रणजीत नगारे की ध्वनि सुन कर अरि भामिनियो तथा गोलकुडा और बीजापुर की क्या दशा हुई, इसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है

कल नहि परत विकन देस बगस को,
पलक न लागे पल रूम सामे सामनी।
गोलकड कपति नगारन की धुनि सुनि,
बीजापुर बदर बसत बन जामनी।
आसमान दहल, दहल गिर्यो लक 'हीर',
दरी म दबन फिर दसन जिऊ दामनी।
तेरे डर गोविंद स्रिगिद गुर अरिनि की,
टोला टोल जाइ सो खटोला मागे भामिनी।

गुरु गोविंदसिंह अद्भुत शूरवीर थे। उनकी सेना के प्रस्थान से शत्रु के कलजे दहल उठते थे और वे व्याकुल होकर कन्दराओ म छिपते फिरते थे। उनकी सेना प्रस्थान के आतक का वर्णन 'हीर' कवि के शब्दो म देखिए —

भभरयो भभीपण भवन तजि भटकत,
ढहे पर लक की निशानन क बाजे त।
पापर सो फूटत धराधर सु चूर होत,
सिंधु अकुलात गज राजन के गाज त।
बरनत हीर' गुरु गोविंद तिहारे त्रास,
दबत फिरति अरि कन्दरान भाजे ते।
चूर होत कमठ दरारे दाढ अटकत,
फटे फन सहस प्रबल दल साज ते॥

उनके नगारा की ध्वनि, सेना प्रस्थान एव उनके शौर्य के आतक का एक और उदाहरण देखिए —

तो सा बैर बाधे धीर न धरति कहू,
धौंसा की धुकार धराधर धसकत है।
दल के चलत, महि हालत हलन कौन,
कूरम कहल्ल फनी फन न सकत है।
प्रबल प्रतापी पातशाह गुरु गोविंद जी,
तेरे भय भीर भारी भूप ससकत है।
हात भूमवान न्रिपाल पाइमाल हाति,
हलकं हरल्ल हाथी ...

गुरु जी के सनद्ध बद्ध होने पर चारो दिशाओ मे खलबली मच जाती है उनके इस अद्भुत प्रताप का वणन कवि ने बडे ही ओजस्वी रूप म किया है—यथा

बन टूटति गिर फटति छुटति धीरज सुधरन तन।
दिग्गज दिग कलमलत हलत तल शेष नाग मन।
उडिय रेन हय खुरनि सुरबर कह लुक्क गिया।
बिभीछन भहरति मूदि गढ द्वार दुरति भय।
कर गहि क्रिपाण गोबिंद गुर जबि सलोह पक्खर सजति,
कलमलत हरति पुर चक्कव सुधरन छाड त भजति।

इसी तरह गुरु जी के तीर तलवार, कृपाण, खडग आदि के प्रहारो का भी बडा सजीव और ओजपूण वणन 'हीर' ने किया है। उनके खडग प्रहार का यह चमत्कार द्रष्टव्य है—

नाहर समान झुकि झरि परे गुविंदसिंह,
खग गहि खण्ड कीनी खलत की खप्परी।
हने घने घेर घमसान को घमड कीनो
घाइल घुमति घाइलन की घराधरी।
रुध्र के कुड ते निकस काली कुल ठाढी,
उपमा बढी है 'हीर' अभिमति ते खरी।
दल दसमाथ रघुनाथ को मनाइ मन,
मानो सीअ सोह दै हुतासन ते निस्सरी।

हीर के गुरु गोविंदसिंह की दानशीलता, शूरवीरता, पराक्रम, प्रताप, साहस, युद्ध कुशलता, अमष, सेना प्रस्थान नगारो के घोष आदि के आतक, हाथियो की सूड काटने, खडग, तलवार, कृपाण के चमत्कार, तीर अदाजी, शत्रुओ के त्रास, रण भूमि की विकरालता आदि से सम्बधित कोई ३० छन्द मुझे प्राप्त हो चुके हैं। इन छन्दा मे गुरु गोविंदसिंह के स्थान पर यदि शिवाजी और 'हीर' के स्थान पर भूपण रख दिया जाए तो यह निश्चय कर पाना कठिन हो जाएगा कि ये कवित्त, सवये या छप्पय भूषण के हैं, या 'हीर' के। हमारा अनुमान है कि 'हीर' ने भूषण की भाति गुरु गोविंदसिंह के चरित्र पर ऐसे ५२ छन्द लिखे थे, जिसे 'गुरु गोविंदसिंह बावनी' नाम से अभिहित किया जा सकता है। शेष छन्द अभी अनुपलब्ध हैं। उनके कुछ और छद यहाँ उद्धृत हैं—

गुरु जी के आतक का वणन

(१) महाबाहु बीर गुरु गोबिंद तिहारे रोस,
बरनि की बधु बन बन बिलखानी है।
करो न गवन भूल भवन को भीतर ते
चढ़ती पहार निराधार अकुलानी है।

सुन्दर सरोज मुखी दुखी भइ मुक्ख प्यास,
पतिनि सो खीझै कहैं मौतन मैं पानी है।
चद सी चकोर जौन, बिंब से सुआ के माने,
कोक्ल सी काल नाग मोरन की मानी है।

रग भूमि का दृश्य

२ तेरे मारे खल दल घूमत घुसत महि,
छाती छोर जोर सो सहे बन की चमकैं।
कहू लोथ चोच से समेट डारे गीध गन,
खेलत धिभ्रानो धिगज मुख की हमकैं।
श्री गोविंदसिह रग भूम को मचय्या हीर,
लोहू की ललक घाट घारन का भभक।
भोर फिर भूत लै भभीख नाच द्वारपाल
भभक भभक बोलैं धाइन की भभक।

गुरु गोविन्दसिह की कृपाण का चमत्कार

३ पारथ के बान व क्रिपान सिह गोविंद को,
सिह न बचत बन, मारे भार भ्रार कैं।
केते भट सुभट भजाए, 'हीर' कई ओर
कई बेर काली श्रोन पीवत अहार क।
तेरे दल चलत दलत दल अरिनि के,
केहू न सभोर तन हांकत पहार कैं।
गासी के लगे ते पीलवान गिर्यो पील हू ते,
मानो गिर्यो बादर पहार फाध मार कै।

४ गोरि दुरावति गोद गनेसहि, अग विभूत महेस मलै नित्त।
शोर परे दिगपालन के भुव पालन के मन माहि नही थित।
द्वारि मु दे पुरि शत्रून के गुर गोविंद ख्याल ही खग्ग गहे इत।
हाथी न साथा सभार सक कोऊ चाल परे चतुरग चमू चित।

५ हूरन को नर सूर मिले वर, चौसठ जोगन सन अघाई।
देति असीस सभै मिलि जबूक, गीधन ते रण भूमि सुहाई।
छाडि सुहाग लीए विधवा इक, बरन की तिय कौ दुखताई।
खग्ग गहे गुर गोविंद के कर, नारद को घर होत बधाई।

गुरु जी के हाथ की चमत्कारपूर्ण तलवार

६ आवत न तीर तीर, मान न कमान करे
गोलन की गूद दुद बूद मनो बार है।

छीन बरछीन लेय, सँहथी है कोटिक,
कटारन को वीर अति बठि बरदार है।
छुरी न छुहति गुरजन हू की गुर जन,
बर तबरनि को निवारति निहार है।
सना अरि धाकति कहा कहू सुहाकी,
गुरु गोविंद के कर ऐसी बाँकी तरवार है।

शौर्य का शत्रु पर प्रभाव

७ शाहन व सोच शाह जाहन के रोज होत,
खेलिवे के खोज गो शिकारन सजत हैं।
व्याकुल विहग बिललात फिर अग अग,
अग भग क क जल थल ते भजत हैं।
वशवाहु बसेरा सुने ते गुरू गोविंदसिंह,
जाके गुन और गुनिबे को उपजत है।
काहे मगरूर खग पूछत शहूर गयो
गरूर गरूर गयो काहे न तजत हैं।

८ महाबाहू बीर गुरू गोविंद तिहारे रोस
सेस सुरपुरि हू धरा में धीर को धर।
लक्पति सक औ पलक हू में खल भल
भव भार खम्भ हैं मसक नाग ही धर।
धौसा की धुकार ते पुकार परै अलका में,
दल के दलेल देला पारावार धाहरै।
ससक सुमेर भार भसक कमठ पीठ,
कसकै करेजा अर अरराात जी भरै।

हाथी काटने का दृश्य

९ फोरत पहारन चुवत मद धारन जे,
गठन उदारन लखे ते बडी गत मे।
धूरि भरे धूसर धरनि धसकति पग,
कज्जल से कारे व दतार महा गनि मे।
गाज रन साजे गज ऐस पीलवान बने,
बरनत हीर महाबीर रतिपत म।
महा अग भारे त बिदारे स्री गोविंद सिंह,
डोलन दरारे हठ हिंदवान पति म।

गुरु जी की शूरवीरता

१० कमठ सो सेस मुरै, बल सो महेस मुरै,
सम्भु सो गनेस मुरै, मुरै ती अवग तै ।
मुर चलै सरिता, मलगन का मद मुरै,
भीम मुरै भारथ, पारथ मुर सग है ।
गोविंद मुरे न परसराम सो समथ मुर,
सीग्र सत मुरै, रूप मुरत अनग है ।
भूप मुरे लक को अतक हनुमान हीर,
मेरु मुरे मसक मुरे, मुरै न गुरू जग तै ।

●

छीन बरछीन लेय, सहथी है कोटिक,
कटारन को वीर प्रति बठि बरदार है।
छुरी न छुहति गुरजन हू की गुर जन,
धर तबरनि को निवारति निहार है।
सना भरि धावति कहा कहू सुहावी,
गुरु गोविंद के कर ऐसी बांकी तरवार है।

शौय का शत्रु पर प्रभाव

७ शाहन के सोच शाह जाहन के रोज होत,
खेलिबे क खोज गो शिकारन सजत है।
व्याकुल विहग बिललात फिर अग अग
अग भग क क जल थल ते भजत हैं।
बशबाहु बसेरा सुने ते गुरू गोबिंदसिंह,
जाके गुन और गुनिव को उपजत है।
काहे मगरूर खग पूछत शहूर गयो,
गरूर गरूर गयो काहे न तजत है।

८ महाबाहु बीर गुरू गोविंद तिहारे रोस
सेस सुरपुरि हू धरा मैं धीर को धर।
सकपति सक औ पलक हू मैं खल भल,
झक झार खम्भ हैं, अतक नाग ही धर।
धौसा की घु कार ते पुकार परै अलका मैं,
दल के दलेल देला पारावार धाहरै।
ससकै सुमेर भार भसकै कमठ पीठ,
कसकै करेजा अर अररात जी भरै।

हाथी काटने का दृश्य

९ फोरत पहारन चुवत मद धारन जे
गठन उदारन लखे ते बडो गत के।
धूरि भरे धूसर धरनि धसकति पग,
कज्जल से कारे वे दतोर महा गति के।
गाजे रन साजे गज ऐसे पीलवान बने
बरनत 'हीर' महावीर रतिपत के।
महा अग भारे ते बिदारे स्री गोविंद सिंह,
डीलन डरारे हठे हिंदवान पति के।

गुरु जी की शूरवीरता

१० कमठ सो सेस मुर, वैल सो महस मुरै,
सम्भु सों गनेस मुरै, मुरै ती अवग तै।
मुर चलै सरिता, मलगन का मद मुरै,
भीम मुरै भारय, पारथ मुर सग है।
गोविंद मुरे न परसराम सो समथ मुर,
सीग्र सत मुरै, रूप मुरत अनग हैं।
भूप मुरे लक को अतक हनुमान हीर,
मेरु मुरे मसक मुरे, मुरै न गुरू जग तै।

१०

'महिमा प्रकाश' संस्कृति और काव्य

जिस समय सिक्ख गुरुओं का अभ्युदय हुआ उस समय देश की राजनैतिक सत्ता मुगलों के हाथ में थी और हिन्दुओं को राजनैतिक दृष्टि से अवमानता और हीनता का जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था। सांस्कृतिक दृष्टि से भी उन्हें एक असहिष्णु सम्प्रदाय की प्रबल कट्टरता और धर्मान्धता का मुकाबला करना पड़ रहा था, उस पर दुर्भाग्य यह कि हमारा देश अनेक मत मतान्तरों के संघर्ष और मायाजाल से जर्जरित था। हिन्दू समाज अनेक मतों के बाह्याचारों, आडम्बरों, अन्ध विश्वासों एवं पाखण्डों में फँसा हुआ अपनी शक्ति खोता जा रहा था। इस समय उसके उद्धार और रक्षा का प्रश्न था। यह तभी सम्भव था जब विभिन्न मतों के संघर्ष को मिटा कर एक ऐसे शक्तिशाली सांस्कृतिक आन्दोलन का सूत्रपात किया जाय जिसमें बाह्याचारों एवं आडम्बरों के लिये कोई स्थान न हो और भारतीय संस्कृति के उन सनातन मूल्यों का प्रतिपादन किया जाय, जो समय के कठोर प्रहारों को सहकर भी शताब्दियों से जीवित रहे हैं। इसी अभाव की पूर्ति सिक्ख-गुरुओं ने की। उन्होंने एक ऐसे समन्वयवादी मत की नींव डाली, जिसमें भारतीय संस्कृति के महान तत्वों को तो अपनाया ही साथ ही, सरल और सतुलित साधना मार्ग का प्रवर्तन किया। पंजाब के हिन्दी साहित्य में इस सांस्कृतिक मे चेतना की प्रतिध्वनि साफ सुनाई पड़ती है।

सिक्खों के लिए सिक्ख-गुरु आध्यात्मिक नेता तो थे ही वे सांस्कृतिक जागरण, राजनैतिक एवं राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के प्रणेता भी थे। सिक्ख-गुरुओं ने जिस आन्दोलन का सूत्रपात किया था उस परम्परा को आगे बढ़ाने का काम उनके भक्त अनुयायी कवियों ने उनके जीवन की उपलब्धियों को आधार बना कर किया। यही कारण है कि सिक्ख-गुरुओं के जीवन पर आधारित कई प्रबन्ध काव्य पंजाब में लिखे गये। 'महिमा प्रकाश' इसी परम्परा का एक प्रारम्भिक एवं महत्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ है। 'महिमा प्रकाश' ऐसी पहली रचना है जिसमें सभी गुरुओं एवं बन्दा बरागी का जीवन चरित्र विस्तार से वर्णित है। इससे पूर्व केवल दशम गुरु के जीवन से सम्बन्धित कुछ प्रबन्ध ही लिखे गये थे। इस

दृष्टि से यह एक एतिहासिक महत्त्व की रचना है। बाद मे गुरु नानक तथा अन्य गुरुओ के जीवन से सम्बन्धित जो भी काव्य ग्रथ पजाब मे लिखे गये उन सभी पर किसी न किसी रूप मे 'महिमा प्रकाश' का प्रभाव अवश्य पडा है।

रचनाकाल तथा कर्त्ता

'महिमा प्रकाश' की रचना सरूपदास भल्ले ने सवत १८३३[1] म की। इसकी कई हस्तलिखित प्रतिया उपलब्ध हैं। हमने भाषा विभाग पटियाला मे प्राप्त प्रति को अपने अध्ययन का आधार बनाया है। यह प्रति १८५८ वि० की है। इस प्रति से एसा प्रतीत होता है कि यह ग्रथ १८५७ वि० माघ १३ को अमृतसर म पूर्ण हुआ यद्यपि इसका आरम्भ काशी म हुआ था।[2]

सरूपदास भल्ला के जीवन के सम्बन्ध म अधिक ज्ञात नही है। उनकी रचना से इतना ही पता चलता है कि उनका सम्बध गुरु अमरदास के वश तथा मोहरी जी के परिवार से था।

'महिमा प्रकाश' का अधिकाश भाग पद्य मे है, परन्तु कुछ हिस्सा गद्य म भी लिखा हुआ है। पद्य भाग के बीच-बीच मे भी 'साखी' के आरम्भ तथा अत मे गद्य आता है। इस प्रकार यह गद्य पद्य मिश्रित चम्पू काव्य की श्रेणी म आती है। यह रचना साखियो के रूप म लिखी गई है। साखियो मे कार्य कारण का सम्बन्ध नही है। किन्तु सभी साखिया गुरु विशेष के जीवन से सम्बन्धित हैं इसलिये उनम सम्बद्धता है। प्रत्येक साखी का आरम्भ 'श्री वाहिगुरु मुख करो उचार। होइ दयाल करे लेइ उधार। आगे साखी की निरूपण हायगी' से होता है और अन्त 'साखी पूरन होई' से होता है। पजाब के अन्य प्रबन्ध-काव्यो मे इस शैली को प्राय नही अपनाया गया। पजाब म गुरु नानक के जीवन पर आधारित जो जन्म साखिया लिखी गई हैं इस दृष्टि से यह रचना उन्ही का अनुकरण करती है परन्तु सभी गुरुओ से सम्बन्धित ऐसी साखियाँ और नही है।

कथानक

'महिमा प्रकाश' रासो रासक रूपक, प्रकाश, विलास आदि काव्य रूपो की प्राचीन परम्परा म रचित चरित-काव्य है। इसमे भी अपभ्रंश-कालीन चरित-काव्यो की भाति कथानक के माध्यम से धार्मिक आदर्शों अथवा सिद्धान्तो के प्रतिपादन पर बल दिया गया है। कथानक दशो सिक्ख गुरुओ के जीवन से

---

१ दस अस्ट सहस समत विक्रम,
अवर अधिक तेतीस।
सरूपदास सतिगुर करी
महिमा प्रकास बखसीस।

२ सवत १८५७ मिती माघ दी १३ पोथी महिमा प्रकाश की सपूरन हाई। होइ परम्भ कीता कासी जी अर अम्रितसर जी सम्पूरन होई (ग्रन्त)।

यह रचना पौराणिक भावना से पूणत प्रभावित है। सभी गुरुओं को पुराण पुरुष अथवा अवतारी पुरुष के रूप म चित्रित किया गया है। इस रचना के अनुसार गुरु नानक हरि के ही रूप हैं जो भारतवष के जीवो को कलियुग के प्रभाव से परित्राणार्थ अवतरित हुए हैं। कवि ने ग्रन्थ के आरम्भ म ही इस ओर निर्देश किया है कि एक बार नारद ब्रह्म के पास गय और उनसे पूछा कि भरत खण्ड के जीव घोर कलिकाल से कसे तरेंग। इस पर ब्रह्मा ने उत्तर दिया कि स्वय हरि (ब्रह्म) सन रूप मे अवतार धारण करेंगे और जीवो का उद्धार करेंगे। यथा

एक सम श्री नारद ब्रह्मा प गए।
सत सभा सुभ निरख चित्त रिख थिर थए।
प्रभ भरत खड कल घोर जीव कसे तरें।
× × ×
सुन ब्रह्म देव। निज मोर भेव।
लेवो अवतार। वपु सत धार। ११५।
अब या मैं समा नही हरि धरे सत वपु जाई।

सिक्ख मत मे अवतारवादी भावना का स्पष्ट रूप से खण्डन किया गया है, परन्तु स्वय गुरुओं के ही समय मे उनके अनुयायियो द्वारा अवतारवादी भावना को प्रश्रय मिलने लगा था। स्वय गुरु गोविन्दसिंह ने इस बात का घोर विरोध किया कि उन्हे कोई ब्रह्म रूप माने तथापि उनके अनुयायियो ने उनके आदेश के होते हुए भी उन्ह ब्रह्म का अवतार घोषित किया और पजाब के हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे भी उन्ह इसी रूप मे चित्रित किया गया है। महिमा प्रकाश' के अनुसार जिस समय गुरु नानक अवतरित हुए उस समय सम्पूण ससार म जय ध्वनि होने लगी, त्रिलोक म मगल-गान गाया जाने लगा नौ नाथ छ जती, बावन वीर, किन्नर, गधव द्वार पर आकर गीत गाने लगते हैं, अप्सरायें और देव कन्याएँ नृत्य करने लगती हैं। गोरख भी उन्ह अवतार रूप म देखते हैं। नानक १६ दिन की अवस्था मे ही उनसे वाद विवाद करने लगते है। स्कूल मे पढने बैठते हैं तो मौलवी जी को ही 'अलफ' य वे के आध्यात्मिक अर्थ समझाने लगते हैं। कवि ने उन्ह अवतार पीर फकीर, वली सच्चिदानन्द आदि विशेषणो से आभूषित किया है। इसी प्रकार गोविन्दसिंह के प्रकट होने पर उनकी प्रशसा भी अवतार के रूप म की गई है[1] और उन्ह

[1] उतरे जग बन्दन दुसटन दडन जन उर चदन सुख सारा।
सिक्ख सुख दाता भगत विधाता गिआन गिआता करतारा।
सिस वाल मुकन्दे आनन्द छन्दे सुर नर वन्दे अधकारा।
कलयुग घउ धारन सेवक तारन दुसट विदारन त्रिवहारा॥ २०२। १२

सबधित है और उसम इतिवृत्तात्मकता अथवा कथा तत्व म।
नक का आधार परम्परा रूप म प्राप्त मौखिक आख्यान आ
साखियो तथा 'बचित्रनाटक' आदि ग्रथो का भी आधार लि
ने गुरुओ की कथा का अत्यत श्रद्धा भाव से वणन किया है।
परब्रह्म (अकाल पुरुष) का अवतार है इसलिए उनके जीवन
घटनाओ म पौराणिकता एव अतिमानवीय तथा अलौकिक तत्व
स्वाभाविक है। गुरुओ की अलौकिक शक्ति के सम्बन्ध म जो कथ
थी उन का भी सग्रह इस ग्रथ म कर दिया गया है। पजाब म इसक
के जीवन पर आधारित जो भी 'विलास' (गुरु विलास आदि) तथ
(नाना प्रकाश) आदि चरित-काव्य लिखे गये, उन सभी ने इस ग्रथ क
को गुरुओ की जीवन घटनाओ को—अपनी रचनाओ का आधार बनाया
सिक्ख गुरुओ के इतिहास निर्माण म ग्रथ का महत्त्वपूण योगदान रहा है इ
भी इस रचना के कथानक का ऐतिहासिक दृष्टि से इतना महत्व नही है कि
सास्कृतिक। इतिहास की वज्ञानिक कसौटी पर शायद बहुत सी घटनाएँ ख
अथवा यथाथ न उतरें, पर कवि के पास जो सास्कृतिक दृष्टि है जिसके बल प
इस ग्रथ की रचना हुई है उसके प्रकाश म सभी घटनाओ का महत्त्व स्थापित
हो जाता है। कवि ने सिक्ख गुरुओ के सिद्धान्तो अथवा आदर्शों के प्रतिपादन
पर ही अधिक बल दिया है। कथानक के बीच बीच म गुरु वाणी आई है और
कवि ने विभिन्न प्रसगो के सदभ मे उसकी व्याख्या की है। किसी धार्मिक
सम्प्रदाय अथवा समाजगत-वग के प्रतिनिधि पात्र को सामने लाकर उनके
बाह्याचार अथवा अन्ध विश्वास आदि का खण्डन करते हुए गुरु अपनी सदवाणी
का उच्चारण करते हैं और कवि इस सदभ म उसकी उपयोगिता एव महानता
का प्रतिपादन करता है। वस्तुत, इस रचना म कवि का मुख्य उद्देश्य कथानक
के माध्यम से गुरु मत के उन सास्कृतिक तत्त्वो, धार्मिक तथा सामाजिक मान्य
ताओ का प्रतिपादन करना ही है। इस दृष्टि से भी इस ग्रथ का परवर्ती सिक्ख
प्रबन्ध-काव्यो पर प्रचुर प्रभाव पडा है। 'गुरु प्रताप सूरज' के कर्त्ता भाई
सतोखसिंह ने भी इसी शैली का अनुकरण किया है (यद्यपि उसकी कथा वणन
की शली इस से भिन्न है) और गुरुओ के महान सास्कृतिक सदेश को उनके
चरित-वणन के माध्यम से प्रकट किया है। पजाब के हिन्दी साहित्य मे सास्कृतिक
एवचेतना राष्ट्रीय-जागरण से ओतप्रोत जो काव्य परम्परा विकसित एव पल्लवित
हुई उसके विकास मे 'महिमा प्रकाश' का महत्त्वपूण योगदान है। इस रचना के
माध्यम स कवि ने गुरुओ की महिमा का बखान किया है और गुरुओ ने बाह्या
चारो बाह्याडम्बरो पाखडो का विरोध करते हुए सत्य सयम, सेवा अहकार,
त्याग, सत्सगति नाम जाप तथा सहज साधना के जिन आदर्शों का प्रतिपादन
किया है उन्ही के वणन पर जोर दिया गया है।

यह रचना पौराणिक भावना स पूर्णत प्रभावित है। सभी गुरुग्रा को पुराण पुरुष अथवा अवतारी पुरुष के रूप मे चित्रित किया गया है। इस रचना क अनुसार गुरु नानक हरि के ही रूप हैं जो भारतवर्ष के जीवा को कलियुग के प्रभाव स परित्राणाय अवतरित हुए हैं। कवि ने ग्रथ के आरम्भ म ही इस ओर निर्देश किया है कि एक बार नारद ब्रह्मा क पास गय और उनस पूछा कि भरत खण्ड क जीव घोर कलिकाल से कस तरेंगे। इस पर ब्रह्मा न उत्तर दिया कि स्वय हरि (ब्रह्म) सत रूप मे अवतार धारण करेंगे और जीवा का उद्धार करेंगे। यथा

एक सम श्री नारद ब्रह्मा पै गए।
सत सभा सुभ निरख चित्त स्थिर थिर थए।
प्रभ भरत खड कल घोर जीव कसे तरें।
× × ×
सुन ब्रहम देव। निज मोर भेव।
लेवो अवतार। वपु सत धार। १।१५।
अब या मैं सभा नही हरि धरे सत वपु जाई।

सिक्ख मत म अवतारवादी भावना का स्पष्ट रूप से खण्डन किया गया है, परन्तु स्वय गुरुओ के ही समय म उनके अनुयायियो द्वारा अवतारवादी भावना को प्रश्रय मिलने लगा था। स्वय गुरु गोविन्दसिंह ने इस बात का घोर विरोध किया कि उन्हे कोई ब्रह्म रूप मान तथापि उनके अनुयायियो ने उनके आदेश के होते हुए भी उन्हे ब्रह्म का अवतार घोषित किया और पजाब के हिन्दी प्रबन्ध-काव्यो म भी उन्हे इसी रूप म चित्रित किया गया है। 'महिमा प्रकाश' क अनुसार जिस समय गुरु नानक अवतरित हुए उस समय सम्पूर्ण ससार म जय ध्वनि होने लगी, त्रिलोक म मगल-गान गाया जाने लगा, नौ नाथ, छ जती, बावन वीर, किन्नर, गधर्व द्वार पर आकर गीत गान लगते हैं, अप्सरायें और देव कन्याएँ नृत्य करने लगती हैं। गोरख भी उन्हें अवतार रूप म देखते हैं। नानक १६ दिन की अवस्था म ही उनसे वाद विवाद करा लगते हैं। स्कूल म पढ़ने बठते हैं तो मौलवी जी को ही 'अलफ' व 'ब' के आध्यात्मिक अर्थ समझाने लगते हैं। कवि ने उन्हें अवतार पीर, फकीर, वली, सच्चिदानन्द आदि विशेषणा से आभूषित किया है।' इसी प्रकार गोविन्दसिंह के प्रकट होन पर उनकी प्रशसा भी अवतार क रूप म की गई है[1] और उन्हें

१ उतरे जग वन्दन दुसटन दहन जन उर चदन सुख सारा।
सिक्ख सुख दाता भगत विधाता गिम्रान गिम्राता करतारा।
सिस बाल मुकन्दे आनन्द छन्दे सुर नर वन्दे अघतारा।
कलयुग घड धारन सेवक तारन दुसट विदारन दिनहारा॥ २०२। १२

दुष्ट दमनकारी तथा सिक्खो को गुरु देने वाला कहा गया है।[1]

'महिमा प्रकाश' के पश्चात् पजाब मे गुरुप्रो के जीवन पर ग्राधारित 'गुरु बिलास' (सुक्खासिह), 'गुरु बिलास १०वी पातसाही' (कुइरसिह) गुरु बिलास *छेवी पातसाही, गुरु प्रताप सूरज, 'नानक प्रकाश', 'गुरु नानक विजय'* ग्रादि जो भी प्रबन्ध-काव्य लिखे गये उन सभी मे गुरुप्रो को इसी ग्रवतारी रूप म चित्रित किया गया है। उनकी इस प्रवृति को प्रभावित करने म 'महिमा प्रकाश' का प्रभाव भी स्वीकार करना पडता है।

इन रचनाग्रो मे जिस सस्कृति का प्रतिपादन किया गया है वह हिन्दू सस्कृति से किसी भी भाति भिन्न नही है। सभी गुरुग्रो को सिक्ख-परम्परा के ग्रनुसार एक ही ज्योति माना गया है।[2] परन्तु गुरुग्रा को ब्रह्म का ही ग्रवतार कहा गया है ग्रौर उनकी समानता कृष्ण, राम ग्रादि से की गई है। *नानक के विवाह वणन के प्रसग म दूलह दुल्हन को कृष्ण रुक्मिणी तथा राम* सीता के रूप म चित्रित किया गया है।

यथा —

(१) दुलह दुलहन ग्रनूप। सग क्रिसन रुकमन रूप।
सोभा कवन मुख गाऊ। बलिहार बल बल जाउ। ६। १६

× × ×

(२) भया कालू घर ग्रानन्द धाम। जिम दसरथ गृह सोभित सिया राम।

गुरु तेगबहादुर तथा गोविन्दसिंह को भी दशरथ एव राम के समान बताया गया है, यथा —

जब सतगुर जी निज ग्रिह ग्राए। स्री गोविन्द जी लेन सिधाए।
ग्रत सुन्दर सोभा ग्रमित ग्रपार। जिम दशरथ ग्रिह रघुवश कुमार।२०।३
जिम दशरथ गोद रघुवश मन सोहत सोभा सार।
तिम सतगुर गोद गोविन्द प्रभ सोभा ग्रमित ग्रपार।

एक स्थान पर सिक्ख सगत को इन्द्र सभा तथा गुरु जी को इन्द्र के समान ज्ञानी भी कहा गया है—

'इन्द्र सभा सगत गुरबनी। गिग्रान इन्द्र सोहत गुर घनी।८।(पत्र० ४१०) इस ग्रथ की रचना काशी ग्रौर ग्रमृतसर म हुई। ये दोनों ही स्थान क्रमश हिंदू धम ग्रौर सिक्खमत के प्रमुख केन्द्र हैं। इसलिय इस ग्रथ म जहा सिक्खमत के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है वहां हिन्दू पुराणवाद का प्रभाव भी स्पष्ट लक्षित होता है। इसम हिन्दू ग्रौर सिक्खो की पृथकता का भाव कही भी लक्षित

१ धारन धरन कारन करन तारन दिग्राल।
विध विधान कारज चहिग्रो भगन धरम प्रतपाल। २०८। १

२ जिम दीपक ते दीपक पूरन प्रकास उजिग्रार सभ।

नहीं होता। पंजाब में १६वीं शती तक रचित इस प्रकार के काव्य ग्रंथों में कहीं भी ऐसा भाव प्रकट नहीं हुआ। सिक्खमत को इन सभी ग्रंथों में हिन्दू संस्कृति का ही एक अभिन्न अंग माना गया है और हिन्दू धर्म के अन्तर्गत खालसा को एक 'पंथ' का स्थान दिया गया है। इन दोनों में सांस्कृतिक,सामाजिक, आध्यात्मिक दृष्टि से कोई भिन्नता अथवा पृथकता है भी नहीं। इस दृष्टि से इस ग्रंथ का एक विशिष्टमहत्त्व है और आधुनिकयुग में हिन्दुओं एवं सिक्खों की पृथकता के जिन विघटनकारी विचारों को कुछ स्वार्थी राजनतिक नेताओं द्वारा प्रश्रय दिया जा रहा है, उनका निराकरण करने के लिये 'महिमा प्रकाश' तथा इस परम्परा के अन्य ग्रंथों का अध्ययन बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इन सभी रचनाओं में सिक्ख गुरुओं को हिन्दू पति, हिन्दू धर्म के रक्षक और त्राता के रूप में चित्रित किया गया है।

भाव व्यंजना

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस रचना में कथात्मक इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता है। घटनाओं के वर्णन में मार्मिकता अधिक नहीं हैं। तथापि डा० हरिभजनसिंह ने जो सरूपदास के इस काव्य प्रयास को सौन्दर्य विहीन' कहकर उपेक्षा की दृष्टि से देखा है, वह उचित नहीं है। इस रचना में तत्कालीन पंजाब की युग-चेतना और सांस्कृतिक पुनरुत्थान का स्वर मुखरित हुआ है। कथा प्रबन्ध में रसात्मक प्रसंग भी स्थान स्थान पर आए हैं। भावों की व्यंजना में भी कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि 'महिमा प्रकाश' केवल मात्र कथा संग्रह हैं और उसमें मनोवेगों की व्यंजना सर्वथा हुई ही नहीं। इस ग्रन्थ में वात्सल्य, उत्साह भक्ति आदि से सम्बन्धित मनोवेगों की सफल व्यंजना हुई है इस पर यहाँ संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

वीर रस

वीर रस का चित्रण गुरु हरिगोविन्द तथा गोविन्दसिंह से सम्बन्धित युद्ध वर्णनों में हुआ है। इन युद्ध वर्णनों में विस्तार अधिक नहीं है। युद्ध वर्णन संक्षिप्त है परन्तु युद्ध-कथा में पूर्णता है। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ गुरु विलास (सुक्खासिंह) का अग्रणी है। 'गुरु बिलास' में युद्ध-कथा के ब्यौरों का और अधिक विस्तार दे दिया गया है। महिमा प्रकाश के युद्ध वर्णनों में 'विचित्रनाटक' (गुरु गोविन्दसिंह) जितनी गति वेग, भीषणता एवं प्रचण्डता तो नहीं है, न ही वे गुरु विलास अथवा 'गुरु प्रताप सूरज' जितने ओजपूर्ण एवं सर्वांगीण हैं, फिर भी सरूपदास ने सेना प्रस्थान, युद्ध के बाजों के बजने, आक्रमण,घेरा डालने, सैनिकों के कोलाहल, सेना के डेरा डालने, वीरों के उत्साह तथा कायरों के भागने आदि के साथ योद्धाओं के युद्ध भूमि में जूझने के कुछ सजीव चित्र अंकित किये हैं।

१ गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य पृ० ३०४

जहाँगीर के गुरु हरिगोविन्द के प्रति शंकित होने पर हस्त चौरी के सनिकों को उन पर आक्रमण करने के लिए आज्ञा देने सेना के डंका देकर प्रस्थान करने, रामदास पुरी को घेरने, बाबा गुरदित्ता का सवार होकर मुकाबला करने के लिए निकलने, तीर, तुफंग, तुपक, भाला आदि से योद्धाओं के जूझने शूरवीरों के वीर-गति प्राप्त करने, मारू बाजे बजने, कायरों के त्रस्त होकर भागने तथा रात को सेना के डेरा डालने का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है —

> सुन जहाँगीर गुसा बहु करा। बिना आग मानो तन जरा।
> हफ्त चौरी के सोर सभ जहू। कर दसतगीर उनको ले माहि।३
> डंका कीआ फौज सभ चली। बडे-बडे सरदार मत बली।
> जाइ रामदास पुर कीना घेरा। जिउ मघ मारी करे बसेरा।४
> बाबा गुरदित्ता जी भए सवार। सं आगिआ सतिगुर करतार।
> चपल तुरंग फेरा रण भूम। देख फौज आई सभ भूम।५
> तीर तुफंग तुपक चले अरू भाला फेरे बीर।
> रोप सभ बाबा तहा भए ठाढे रन धीर।६
> रण आयुध बरसें बाबा हरख निरखत धरक भट भारी।
> रण मारू बाजे घन हर गाज सना छाजें छटकारी।
> स ल सक्मान बाबा तान हनें जु आन बरि मारी।
> जिन रन तन तिआगे सनमुख लागे बड भागे सुर पुर धारी।८
> बाबा जी बहुते भट मारे। कायर रण मुख फेर पधारे।
> संधिआ समा तब लग होई आइआ तब रन फौजन डेरा पाइआ।६।३०६

यहाँ युद्ध-कथा का क्रमिक विकास संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है और बाबा गुरदित्ता के रणोल्लास तथा शौर्य की भी व्यंजना की गई है। इसी प्रकार कवि ने करतारपुर के युद्ध में भी सेना प्रस्थान आक्रमण, घेरा डालने, नगारे बजने, सेना के कोलाहल, वीरों की ललकारों आदि का सजीव वर्णन किया है। योद्धाओं की भिडन्त प्रहार प्रतिप्रहार, उत्साह, साहस एवं शौर्य का भी इस रचना में ओजपूर्ण चित्रण किया गया है। कुछ उदाहरण देखिये —

> तबो दिआल जी सबल डंका दीआ।
> लीआ तीर तरकस सो जिह मो दीआ।२५
> चले तीर सतिगुर के जिह तन लग।
> निकस जाइ सू केते ऊ तन तज।२६
> चले तार बदूक तापें हजार।
> पडा जग भारी भइआ अंधकार (पत्र० ३०७)
> रण अंधकार भइआ। उड धूड नभ रवि छइआ।
> दीस न हाथ पसार। भई गब की रण मार।४३।
> भिडे आप मो सभ आप। गई फौज रण मो खाप।
> पुन चडे सतिगुर दिआल। भैया घोर जुध बिसाल।४४।

जिम देख सिंह मिग्रार । भागे सगल सरदार ।
मम भई फौज पनाह । मिरतक पडे समाह । ४५ (पत्र ३०८)

नि सन्देह इन वर्णनो म गति वेग तथा ध्वनि उतनी नही है, जितनी 'बचित्र नाटक' म फिर भी युद्ध का एक ओजपूर्ण दृश्य अवश्य सामने आ जाता है। द्वन्द्व युद्ध का चित्रण करने मे तो कवि और भी अधिक सफल रहा है। पैंदेखान तथा श्री हरिगोविन्द दोनो अद्वितीय शूरवीर थे। उनके द्वन्द्व युद्ध का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है —

कर डका प्रभ रन मो आए। जिउ देख सिंह बन म्रिग कपाए।
तब चड पाइन्दा सनमुख आइआ। बाबा गुरदित्ता तिस पर धाइआ।
प्रियमे चलाए तीर। सभ कटे प्रभ रन धीर।
नेजा पकड किआ वार। पुन कटिओ गुरु करतार। १७।
बदूक पुर कर लीन। धर सिसत गोली दीन।
छूटत गई वह फूट। उड गए टुकडे टूट। १८।
पुन लीन तेग सभार। कीना सु गुर पर वार।
मोसनि भ गई ओ टूट। भया दीन धन गयो छूट। १९
तब दिग्राल भाखिओ नाह। लेहु वार हमरो आह।
कढ खडग सिर मिर मार। दुइ ते भए तन चार।२०। (पत्र ३०९)

यहा वीर रस का पूर्ण सचार हो जाता है। गुरु जी आश्रय हैं पैंदेखान आलम्बन पैदखा का अनेक अस्त्र शस्त्रो से प्रहार करना उत्साह के उद्दीपन का काय करता है। गुरु जी द्वारा उसे ललकारा जाना और खडग स प्रहार करना अनुभाव हैं। गव आदि सचारी है। अत वीर रस के सभी उपकरण विद्यमान हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस ग्रन्थ के युद्ध वर्णनो म विस्तार एव भीषणता अथवा चित्रात्मकता अधिक नही है, फिर भी इसम युद्ध के अनेक सजीव चित्र देखे जा सकते हैं। युद्ध वर्णन मे सजीवता और चित्रात्मकता लाने के लिये कवि न कहीं कहीं अप्रस्तुत विधान से भी काम लिया है यथा

(क) उमडे घटा घोर फौजे घुमड ।
(ख) उमड झूम फौजो ने घेरा किया ।
मानो चन्द के गिरद मण्डल भइआ ।
(ग) ल धनख तीर बरखा इमकरी । जिम बरखा रितु होइ चहुदिस ।
(घ) जिम देख सिंह सिआर । भागे सगल सरदार । पत्र १५२ ।

वात्सल्य रस

यह सबस पहला ग्रन्थ है जिसम गुरुओ के बाल्यजीवन का स्नेहमय चित्रण हुआ है। प्रथम प्रयास होने हुए भी काव्यत्व की दृष्टि से यह सवथा उपेक्षणीय नहा है। महिमा प्रकाश म कवि न 'दसमगुरु' के अवतार का वर्णन धम परित्राण तथा दुष्ट विनाशन हेतु माना है, इसलिए उनक बालरूप का चित्रण पर

पौराणिकता का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। भूले म भूलते हुए, चन्द्र के समान मुख वाले, माता तथा अन्य सिक्खों के हृदय को प्रफुल्लित करने वाले गोविन्दसिंह के रूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

मुदत मात मन भई बधाई। मन चिदिया भइ आपूरन फल पाई।
झूलने झूलत बाल मुकन्दा। जिम अध्र सोहत ध्रुह अटल अनन्दा।
यह दासन गुरमुख सिख करे। जनम जनम के किलविख हरे।
बाल मुकंद मुख पूरन चन्द। हिरदे धरे सिख परमानन्द।
सहज द्रिसटि जिह ढिग प्रभ धरे। ताके दुख सोक परहरे।
महातेज अस सोभ बिसाला। बालक रूप परम गुरु दिआला। १६॥

यहा कवि का ध्यान गुरु के दिव्य रूप की ओर ही अधिक है फिर भी उनके आकर्षक सौन्दर्य की झलक के साथ माता के मुदित मन की ओर भी संकेत कर दिया गया है।

श्री गोबिन्दसिंह का निम्न चित्र और भी अधिक सजीव और एव मोहक बन पड़ा है। देखिए —

जब सतगुर जी निज ग्रह आए। श्री गोविन्द जी लेन सिधाए।
आइ सतगुर के चरनन परे। देख दिआल आनन्द रस भरे। २
अत सुन्दर सोभा अमित अपार। जिम दसरथ ग्रिह रघुबंश कुमार।
मुख देखत दिआल गुरु मगनाने। विध राज जोग पूरन परमाने।३
पूरन परकास मुख चन्द गिआन। तेज पुंज तप ग्रीषम भान।
कमल नैन सुन्दर सुभ द्रिसटि। पलक झलक होइ अम्रित ब्रिसटि।४
मसतक दिख जोत परकास। उनमनी तिलकु सहजि सुख रास।
धनक अकार भवा सुख राजे। काम आदिक बाइस निरखत भाजे।५
मकराक्रित कुंडल लसत सोभा अमित अपार।
जिम ध्रुव निकटि सदा सोहत सपत परम उदार। ६
अलिक सिआम सुन्दर मुख सोहै। कर अनन्त बिम्ब रूप मुख जोहै।
ग्रीवा कंबु सत जोत प्रकास। निरखत सोभा ब्रह्म बिलास। ७
बहु रंगी चीरा सुख रास। कलगी राजत तडत प्रकास।
तपु तेज धरम रतन वपु धारा। गुरु बाल मुकन्द संग वासा करा।८
कंथ भुजा पूरन बल रास। सिख सहाइक दुसट प्रनास।
हसत कमल जिह ढिग बिसथरे। दे भगत दान पग इन करे। ९
छाती सुन्दर सुख की रासि। पावन हिरदा ब्रह्म प्रकास।
सुन्दर उन्दर गुनन रतनागर। नाभ गंभीर अम्रित अम सागर। १०।
केहर कट सतगुर धनी बाल मुकन्द उदार।
रण भूण कार अनन्त धुन पूरन सबद अपार॥११

सुन्दर जाप धरम रत क्षमा । कछू माहि भगत जग थमा ।
चरन कमल सोभा सुख धाम । मुक्त भुगत दाइक अभिराम । १२
गुर चरन कमल भव सिंधु जहाज । चढ पार होवत भव सिख समाज ।
अरविन्द वन्द बन्दन भई लोग । धिआन धरत हरि भगत मजोग । १३
गुर ससत्र दिव पुन परमान । धर खड्ग रूप सोहत बिगिआन ।
तेज रूप धर धनख तुनीर । गुर गिआन सरूप हान सर धीर । १४
रवि कमल ससत्र प्रभ भूखन । धिआन धरत मटत सभ दूखन ।
सुन्दर सोभा अमित अपार । सेस गनेस न पावत पार । १५

(साखी २०८ प० ३६२)

यहा गुरु गोविन्दसिंह के बाल रूप की आकृति, वेश भूषा एव नख सिख का चित्रण अत्यन्त सजीव और मोहक है। सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल सुन्दर मुख, कमल नेत्र, अमृत-वृष्टि करने वाले पलक, ज्ञानिपूर्ण मस्तक, धनुषाकार कवर्भी, मकराकृत कुडल कबु समान ग्रीवा, तडित के समान कलगी, शस्त्र से सन्नद्ध केहरी समान कटि, धर्म के स्तम्भ के समान जघाएँ मुक्तिदायक चरणकमल आदि का अनेक उपमाओ से सुसज्जित वर्णन उनके बाल-सौन्दर्य की एक मनोहर और पौरुषपूर्णझाकी प्रस्तुत करता है। उपमान योजना सार्थक और सुरुचिपूर्ण है। वह उनके चरित्र का तो उद्घाटन करती ही है साथ ही कवि की वीर भावना राष्ट्र प्रेम तथा सांस्कृतिक चेतना को भी प्रकट करती है। ऐसे अद्भुत सुन्दर, तेजपूर्ण, वीर पुत्र को देखकर पिता का हृदय आनन्दित हो उठना है। वह ऐसे परम प्रिय पुत्र को उठा कर हृदय से लगा लेते हैं, गोद म बिठाकर उसका मस्तक चूमने लगते हैं। उस समय वे ऐसे शोभित हो रहे थे, मानो दशरथ रघुवीर को अक म बिठाए हुए शोभित हो रहे हों, मानो सूर्य के पास चन्द्रमा आ बैठा हो। देखिए कवि ने पिता के इस अपार स्नेह और आह्लाद का कितना सुन्दर चित्रण किया है —

अदभुत सुन्दर देख छब स्री सतिगुर सुखमान ।
देख प्रताप लगाइ हीअ अति प्रिइ खान समान । १६ ।
तप तेज अमित अपारे । बालक सरूप धारे ।
आतम समान पिआरे । सतिगुर हीअ लगाए । १७
सुभ करम धरम भूम । मस्तक दिआल चूम ।
हीअ बिगस हरख रोम । निज गोद ले बिठाए । १८
जिम दसरथ गोद रघुबस, मन मोहन सोभा सार ।
तिम सतगुर श्री गोबिंद, प्रभ सोभा अमित अपार ।२१
जिम जोगी गोद होत अनद । रवि ऊपरि लै राखे चद ।
गिआन भान गुर परमानन्द । सोहत गोद सिख गुर गोबिन्द ।-

बाल मुकंद सोभा अधिक आभा छबि गुन गार ।

निरख मगन सतिगुर भए तिसा घरी मझार । २९ (पत्र २६३)

गुरु तेगबहादुर की शहादत तथा गोविन्दसिंह की रणवीरता के वर्णन द्वारा कवि ने हिन्दुओं और सिक्खों की सांस्कृतिक अभिलाषाओं का आभास भी प्रकट किया है।

इस प्रकार इस ग्रंथ में वात्सल्य के रूप, बाल क्रीड़ा, माता पिता के स्नेह, माहात्म्य, हर्ष आदि का सजीव चित्रण हुआ है। दाम्पत्य की क्रीड़ाओं का इसमें अभाव है।

शान्त रस

इस ग्रंथ में प्रधानता शान्त रस की है क्योंकि सभी गुरु सांसारिक मायाजाल से मुक्ति एवं सत्संगति से तथा अहंकार-त्याग तथा भगवत भक्ति पर बल देते हैं। भक्ति भावना से सम्बन्धित और स्थल भी हैं जहाँ भक्ति की उत्कटता और अनन्यता का वर्णन किया गया है एक माई गुरु जी को भेंट करने के लिए बहुत समय से निरन्तर यत्न कर रही थी। उसकी भक्ति भावना को जानकर जब गुरु जी उसके घर पधारते हैं तो उस समय अपने इष्टदेव को अपने पास आया देखकर उसकी भक्ति भावना का प्रबल प्रवाह उमड़ पड़ता है। देखिये कवि ने उसके मनोवेगों का चित्रण किस प्रकार किया है।

गुरु देख दरस गद गद होइ गई। सुध न रही चरनन पर पई ।३२।
जिन नयनों प्रीत सतिगुर सो ठानी। तिन पाइया प्रीतम जग यश बखानी।
धन सुख सभ र सतिगुर मुख देखा। धन्य भाग अपना कर लेखा।
मैं वारी वारी सद बलहारी। होइ गद गद मुख करे उचारी। ३३।
(पत्र ३०२)

ऐसे मार्मिक उदाहरणों को देखकर यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि इस रचना में काव्य-सौन्दर्य अथवा भाव व्यंजना का सर्वथा अभाव है अथवा यह नीरस और बेजान रचना है। प्रत्युत इसमें सरस स्थल भी हैं और यह प्राणवान रचना भी है। भले ही ऐसे स्थल कथात्मक स्थलों की अपेक्षा कम हैं।

वस्तु वर्णन

कथा के प्रबन्ध-सौष्ठव को बनाए रखने के लिये कवि ने वस्तु वर्णन से भी काम लिया है। नगर, प्रकृति आदि के वर्णन के अतिरिक्त होली इत्यादि पर्वों का भी सुन्दर एवं सजीव चित्रण किया गया है। घटा उमडने एवं आँधी चलने का एक चित्र देखिए संक्षिप्त होते हुए भी कितना सजीव है —

उमडी घटा बन माह। चली पवन आँधी ताह।
अँधेर धुन्ध धार। सूझे न हाथ पसार ।७५। पत्र २६६।

होली का वर्णन तो इतना सजीव बन पड़ा है कि गुलाल, अबीर आदि के ... मे ... होकर होली खेलने से होली का एक

मादक एवं स्वच्छन्द वातावरण निर्मित हो जाता है। उदाहरण के लिए देखिये निम्न पद —

होली खेलि सतिगुर दिआल । सगति बसनि पहिर तन लाल ।
बाधे फेट गुलाल अबीर । सजन भजा की होइ भीर । २ ।
उडति अबीर केसर पिचकारी । प्रिथम सगत सतगुर पर डारी ।
खेलत चले सतगुर नद तीर । सतिरद्र भए लाल गभीर । ५ ।
लाखन हाथ ते उडत गुलाल । लाख पिचकारी चलत बिसाल ।
लाग मुखनि होइ सबद अनद । होली खेलत आनद छन्द ।
उडत गुलाल भइआ लाल अकास । भए बादल लाल घटा प्रगास ।
सीतल मद सुगध विआर । सगत सपरस होत सुख सार ।
सगति मो सोहत गुर भाइ । जिउ उडगन मो चन्द सुहाइ ।
इन्द्र सभा सगत गुर बनी । गिआन इन्द्र सोहत गुर धनी ।
गुरमुख सिख प्रभ सभी बुलाए । निज हाथा प्रभ रगु लगाए ।
नन्द लाल जी लीए बुलाइ । कीए रगीन प्रेम के भाइ । ६ ।
होली बिलास सतिगुर कीआ सभ सगति लाल गुलाल ।
माना केसू बन फुला देखति सतगुर दिआल । १२ ।
सुथरे आइ दिखाइआ ढग । कजली सा काने कीए अग ।
नख सिख लौ काला तनि करा । सभ सगति के गिरदे फिरा ।१३
देख प्रभू हसे तिह काला । लीआ बुलाई निकटि भए दिआला ।
तै काहे कीना यह ढगु । काला कीआ आपना रगु । १४
कर जोर सुथरे कीनी अरदास । सगति लाल सोहत तुम पास ।
अवन लोको की नजर है बुरी । मन सगत को लागे नजर की छुरी ।१५
दो० सगत मो सोहत गुरु रग सु लाल गुलाल ।
देखहु अवती लोक सभि होइ बुरी ततकाल । १६
चौ० नवाघर कोउ कर तियारु । काली हाडी धरे दुआर ।
मैं हाडी सगत की भइआ । नजर बुरी अपने पर लइआ ।२१६।१८
(पत्र० ४११)

भाई सतोखसिंह न गुरु प्रताप सूरज म गुरु गोविन्दसिंह के होली खलने का जो वणन किया है, उस पर इस वणन का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। शुद्ध सास्कृतिक दृष्टि से लिखे गय होली के एसे वणना का शृगार प्रधान रीतिकालीन कविता मे प्राय अभाव है। 'महिमा प्रकाश' म एक स्थान पर युद्ध का वणन भी होली के रूप म किया गया है। यथा

तीर तुफग सूर तन खच । मानो फाग खेल तहा मचे ।
चले रुधर धार मानो पिचकारी । भई लाल रग धरतीरव सारी।१५२।३३

यहा युग की वीर भावना का स्वर ही मुखरित हुआ है। 'दशम् ग्रन्थ', गुरु बिलास तथा नानक प्रकाश म भी एस उदाहरण मिलत है।

शली

सरुपदास न यह ग्रन्थ सरल, सुबोध शली म लिखा है। चमत्कारपूण शली का तो सवथा अभाव है, परन्तु एसा भी नही है कि अलकार सौष्ठव से यह रचना सवथा हीन हो। भाव-व्यजना को तीव्रता प्रदान करने के लिए, उसके सास्कृतिक पहलू को पुष्ट करन के लिये तथा वस्तु-वणन म सजीवता और सौष्ठव लाने क लिय कवि ने बहुधा साम्यमूलक अलकारो का प्रयोग किया है। इन अलकारा म उपमा रूपक उत्प्रेक्षा, दृष्टात आदि की प्रधानता है। ऐसे कुछ उदाहरण वीर रस के चित्रण म दिय जा चुके है। होली वणन म भी ऐसे कुछ अलकार आए हैं, एक उदाहरण यहाँ और उद्धृत है

गुर समत्र दिव पुन परमान। धर खडग रूप सोहत गिआन।
तेज रूप धर धनख तीर। गुर गिआन सरूप ढाल सत धीर।

यहाँ गुरु को ज्ञान रूप उनकी खडग को विज्ञान रूप धनुष तीर को तेज रूप तथा ढाल को सत्य धीर रूप बताकर कवि ने न केवल गुरु के चरित्र की उदात्तता को ही प्रकट किया है, वरन नवीन उपमान योजना पर अपनी अधिकृति का भी परिचय दिया है। इसी प्रकार अर्थान्तरन्यास का एक उदाहरण देखिय —

जब काहू का आव काल। तब मत बुध ताकी हाइ बिहाल।
जब चीटी का पर होई आव। तब व तुरत मौत को पाव।

उत्प्रेक्षा का यह उदाहरण भी दृष्टव्य है —

होली बिलास सतिगुर किआ सभ सगनि लाल गुलाल।
मानो कसर बन फूना दरसति सतगुर दिआल।।१२। पत्र सख्या ४११

प्रतिवस्तूपमा का यह उदाहरण भी कितना सुन्दर बना है —

सगनि मो साहत गुर भाइ। जिउ उडगन मा चन्द सुहाई।

डा० हरिभजन सिंह क इस कथन स कि "छन्द एव अलकार की दृष्टि से यह रचना किसी उल्लखनीय नपुण्य का परिचय नहा दती तथा अलकारो का प्रयोग विरलातिविरल है हम सहमत नही हैं। क्या चमत्कारपूण अलकारा की भरती को ही व उल्लखनीय नपुण्य समझते हैं ? इसम तो काई सन्देह नही कि इस रचना म अलकारा का विरल प्रयोग हुआ है। परन्तु जहाँ कही भी कवि न अलकारा का प्रयाग किया है व उस की कला-नपुण्य क परिचायक हैं और भाव बोध को सम्प्रषित करन मनोवेगा को उत्तेजित करन या वस्तु-वणन को सजीवता प्रदान करन म व पूण समथ हैं। यही अलकार प्रयाग का सौष्ठव होता है।

छन्द

जहाँ तक छन्द प्रयाग का सम्बन्ध है कवि न दोहा चौपई सारठा तामर नराज, त्रिभगी मधुभार नगज कज रसावल अडिल्ल आदि विविध छन्दा का

प्रयोग किया है और विविध छन्दो से पूर्ण चरित-काव्य परम्परा को आगे बढाने का काय किया है, यद्यपि मात्रा आदि की सख्या की दृष्टि से बहुत से छद सदोष भी ह। छन्द प्रयोग की दृष्टि स अव्यवस्था यहा भी है। कवि ने काफी स्वतन्त्रता से काम लिया है। इनके एक ही छन्द के विभिन्न चरणो की मात्राओ मे भी असमानता है और मात्राओ की घटा-बढी भी है फिर भी इतना जरूर है कि कवि न रसानुकूल छन्दो का प्रयोग किया है। युद्ध वणन मे उन्होने अधिक छन्द वविध्य से काम लिया है और उसकी तीव्रता को प्रकट करने के लिये मधुभार रसावल, नराज, त्रिभगी जस क्षिप्र गति छन्दो का प्रयोग अधिक किया है। भाषा की दृष्टि से इस रचना का विशेष महत्व है। यह ग्रन्थ सरल खडी बोली मिश्रित ब्रज भाषा मे लिखा गया है। परन्तु प्रधानता खडी बोली की है। भारतेन्दु कालीन खडी बोली की कविता के साथ जब हम इस की तुलना करते हैं, तो ज्ञात होता है कि उससे कोई ७०वष पूव रचित इस ग्रन्थ की भाषा उससे अधिक साफ, परिमार्जित और सशक्त है। खडी बोली के इतिहास म यह एक नई कडी है। इस ग्रन्थ में खडी बोली गद्य का जो रूप है, उसका भी एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है ताकि उसके साथ हिन्दी भाषी प्रदेशो में प्रयुक्त खडी बोली गद्य की तुलना की जा सके।

कमान को आपने खीचा उसी बखत टाके सभ उखड गये
एते मो सतिगुर दीन दिग्राल जाती सरूप वेपरवाह वचन
कीग्रा जो मैं जाता जोल समावता हो सिख सभ
आवे इह बात सुनि कै सिख सभ आन हाजर हाए। (पत्र० ८५२)

वस्तुत इस ग्रन्थ की भाषा पजाब म पल्लवित खडी बोली गद्य एव पद्य की ४०० ५०० वष पुरानी समृद्ध परम्परा की ओर सकेत करती है और इस दृष्टि से भी हिन्दी साहित्य के इतिहास मे इस रचना का कम महत्त्व नही है।

●

११

गुरु विलास (सुक्खासिंह) प्रवन्ध-काव्य—वनाम वीरकाव्य

विलास काव्यो को चरित रूपक प्रकाश, रासो आदि की भांति 'चरित काव्य' ही समझा जाता है। गुरु विलास म यद्यपि एक स्थान पर विलास के कौतुक (लीला) अर्थ का भी सकेत मिलता है,[1] लेकिन इसकी विषय-वस्तु स यह स्पष्ट है कि यह एक चरित-काव्य ही है। 'गुरु विलास १०वी पातसाही' सुक्खासिंह द्वारा रचित एक ऐसा चरित-काव्य है जिसम गुरु गोबिन्दसिंह के जन्म से लेकर परलोक गमन तक की सम्पूर्ण जीवन घटनाओ का विशद वणन हुआ है। इससे पूर्व विचित्र-नाटक (अपनी कथा), 'गुर शोभा (सेनापति), जगनामा गुरु गोविन्दसिंह (अणीराय) एव महिमा प्रकाश (सरूपदास भल्ला) आदि कुछ अन्य रचनाओ म उनके जीवन से सम्बधित कुछ घटनाओ का चित्रण हुआ था लेकिन गुर विलास जितनी सर्वांगीणता व्यापकता और विशदता उनम से किसी म भी नही है।

अपभ्रश एव हिन्दी म 'चरित काव्यो' की एक दीर्घ परम्परा मिलती है। इनम दो प्रकार की रचनाएँ प्रमुख हैं। एक तो ऐसी जिन म किसी धार्मिक महापुरुष, अवतार या महात्मा आदि का चरित्र वर्णित है और दूसरे सामन्तीय आश्रय मे रचित चरित-काव्य हैं जिनम आश्रयदाता राजा के शौय, पराक्रम, वभव एव गुणो आदि का अत्युक्तिपूर्ण वणन होता है। प्रथम प्रकार के चरित काव्यो म धार्मिक प्रवृत्ति की ही प्रधानता होती है क्योंकि नायक के चरित्र वणन द्वारा भी कवि किसी मत अथवा सम्प्रदाय के धार्मिक विचारो का ही प्रतिपादन करत हैं। सामन्तीय चरित-काव्यो की घटनाओ म काय कारण सम्बन्ध प्राय नही होता। उनम एक काय भी निश्चित नही होता जिसकी ओर घटनाएँ अग्रसर होती दिखाई गई हो। घटनाएँ चरित-नायक के साथ सम्बद्ध होती हैं यही उनका सम्बन्ध-सूत्र होता है। इसके विपरीत धम प्रधान

---

१ (अ) कतक बरत किनक मामा। श्री सतिगुर सिह करे बिलासा।३।१३४।
(ब) दसम रूप गुरुदेव जू जिव कौतक जग कीन।
तासो कहुत प्रसग अबि बरनो अधिक नवीन।१।५८।

चरित-काव्यों में सभी घटनाएँ कार्य कारण शृंखला में बँधी होती हैं और वे सभी एक निश्चित कार्य की प्राप्ति के लिये सुनियोजित होती हैं। 'गुरु विलास' भी इसी श्रेणी का चरित-काव्य है जिसकी प्राय सभी घटनाएँ एक कार्य (असुर संहार खल विनाश, सत-उद्धार) की प्राप्ति के लिए संगठित हैं। सुक्खासिंह के अनुसार यह गुरुकथा कामधेनु के समान सुखदायी और सब फलों को देने वाली है। इसका पाठ करने से ही सब दुखों का नाश होता है और परम तत्त्व की उपलब्धि होती है (१३।२, २६।२)। इसके कथानक में कवि ने बड़े ही सुंदर रूपक की योजना की है।

इस ग्रंथ की रचना केशगढ़ में कुआर बदी पंचमी दिन रविवार संवत १८५४ में हुई।[1] ग्रंथ का नाम 'गुरु विलास' है, इसका भी कवि ने स्वयं उल्लेख किया है (३०।१००, १।४७, १।५१)।

सुक्खासिंह के जीवन के सम्बन्ध में अभी तक बहुत कम ज्ञात है। जो विवरण कवि ने ग्रंथ के आरम्भ में आत्म परिचय देते हुए दिया है अभी हम उसी से सन्तोष करना पड़ता है। उस के अनुसार इन की बाल्यावस्था में ही इनके माता पिता की मृत्यु हो गई थी। इसलिए उनके बड़े भाई ने ही स्नेहपूर्वक उनका पालन-पोषण किया और शिक्षा आदि का प्रबंध किया। एक बार उनके साथ इन्होंने पटने एवं नानकमत आदि स्थानों की यात्रा की। इसी यात्रा में नानकमत में उनके भाई की मृत्यु हो गई। मरते समय उन्होंने संसार के सभी अस्थिर और नाशवान सम्बन्धों को त्याग कर इन्हें गुरु-शरण में जाने का आदेश दिया था, उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए वह पटने में गुरु दरबार के दर्शन करने के लिए आया। गुरु चरणों के दर्शन कर वह आनन्दित हो गया और वहीं गुरु-संगत के साथ रहने लगा। इक्कीस महीने तक वहाँ रहकर उसने 'गुरु-ग्रंथ साहब' का पाठ किया। वहीं उसे स्वप्न में गुरु जी के दर्शन हुए और उन से उसने 'शस्त्रनाममाला' का ज्ञान वरदान रूप में प्राप्त किया और उसे कंठ कर लिया (१।२७ ३७)। यहाँ कवि ने अपने सम्बन्ध में इतना कुछ ही लिखा है। अन्त में इतना उल्लेख और मिलता है कि इस ग्रंथ की रचना आनन्दपुर के निकट केशगढ़ में हुई (३०।९८ १००)। जहाँ सम्भवत कवि ग्रंथी के रूप में कार्य कर रहा था। ग्रंथ के अध्ययन से यह भी पता चलता है

---

१ (अ) पग पंकज गढ़ केस के बड चौकी सुजान।
तिन महि किंकर-जत इह सुक्खासिह पहचान। ९९।
गुरू विलास को इह कथा बरनी हित चित लाइ।
भूल भेद लहि सुमति चित छिमा करो अधिकाई। १००।
(ब) संमत सहस पुरान कहत तव। अरध सहस पुन चार गनत सब।
कुआर बदी पंचम रविवारा। गुरू बिलास लीनो अवतारा।१।४७

कि यह बडा ही विनयशील (१।५०, ३०।६६) एव निष्ठावान गुरु भक्त था और सिक्ख मत म उसकी दृढ आस्था थी। खालसा की महिमा का भी उसने श्रद्धापूवक वणन किया है यद्यपि उसका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार एव समन्वय वादी था। इस ग्रन्थ की रचना भी उसने धन अथवा यश प्राप्ति के लिए नही की, वरन अपनी भक्ति भावना को प्रकट करने के लिए ही गुरु जी की पावन कथा का वणन किया है।[1]

भाई काहसिह के अनुसार सुखासिह का जन्म सवत १८२५ (सन् १७६८ ई०) मे हुआ था और मृत्यु सवत १८६५ म हुई थी। (गुरु शब्द रत्नाकर पृ० ६२)। इस सम्बन्ध मे कोई भी अन्य लिखित प्रमाण अभी तक उपलब्ध नही हो सका।

स्रोत एव प्रभाव

गुरु विलास मे गुरुजी के पूव जन्म की कथा, अवतारा आदि के विवरण तत्कालीन धार्मिक अवस्था आदि का जसा वणन हुआ है उससे स्पष्ट है कि बचित्र नाटक' अकाल उस्तुति आदि रचनाएँ कवि के सम्मुख थी। 'सस्त्र नाम माला का ता उसने उल्लेख किया भी है। 'जब जब होत अरिस्ट अपारा तथा आरत तरे नहिम्राना' जसी कुछ उक्तिया तो दशमग्रन्थ' तथा गुरु विलास मे लगभग ज्यो की त्यो मिलती है। गुरु दरबार के कविया की गुरु शोभा जगनामा गुरु गोबिन्दसिह एव अन्य स्फुट रचनाओ तथा महिमा प्रकाश आदि के प्रभाव के सकेत भी यत्र-तत्र मिलते है। जिमि कथत ग्रन्थ पोथी प्रवीन' सनि पठे ग्रथ हजूर के सारथ गौद बनाई (३०।१०१) आदि उक्तियो से पूव वर्ती ग्रथो के प्रभाव को ग्रहण करने की पुष्टि होती है। हम डॉ० हरिभजन सिंह के इस कथन से भी सहमत है कि गुरु गोबिन्दसिह के महा निर्वाण के बीच गुरु गोबिन्दसिह के सम्बन्ध मे [illegible] समृद्ध कल्पनात्मक धारणा का विकास

परियाला नेशनल लाइब्रेरी,कलकत्ता एव गुरुद्वारा आनन्दपुर साहब आदि स्थानो पर सुरक्षित हैं। डा० गडासिंह तथा प्रो० प्रीतमसिंह के पास निजी प्रतिया भी हैं। लेकिन इनम से पजाब आरकाइवज,[1] की एक प्रति को छोड कर अन्य सभी प्रतियो मे ३१ अध्याय हैं। लाहौर से १६६६ वि० म गुरमुखी लिपि म मुद्रित जिस पुस्तक का उल्लेख डॉ० साहब ने किया है उसमे भी ३१ अध्याय है और छदो की सख्या ५८०३ है। नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता की प्रति म कुल ५४५१ छन्द हैं। इन प्रतियो म यत्र तत्र कुछ छदो का अन्तर तो है लेकिन इतना नही जितना डा० हरिभजन सिंह न लिखा है।

छदो की भाषा भाव शैली मे एसी समानता है कि यह निणय करना बडा कठिन है कि कौन सी प्रति अधिक प्रामाणिक है। इनम स प्रो० प्रीतमसिंह (१८८१) और भाषा विभाग (१८८३) की प्रतिया सब से प्राचीन हैं। मूल प्रति अभी तक प्राप्त नही हुई। डा० हरिभजनसिंह न पाठ की इस समस्या की ओर तनिक भी ध्यान नही दिया और मालूम नही पडता कि किस आधार पर उन्होंने छद सख्या ८६५१ निश्चित कर दी है। एसी कथानक रूढिया का निर्वाह भी इसम नही मिलता जिनको आधार बनाकर आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'पृथ्वीराज रासो के प्रामाणिकअश को निश्चित करने का प्रयत्न किया है। इसमे शुक शुकी का स्वर कही सुनाई ही नही पडता। प्रबन्ध-काव्यो के अतगत जिन कथानक रूढिया का उल्लेख द्विवेदी जी न हिन्दी साहित्य के आदिकाल के सन्दभ म किया है वे प्राय प्रेम-काव्या से सम्बधित हैं और 'गुरु विलास म उनका सवथा अभाव है।

ग्रथ का आरम्भ भी विभिन्न प्रतियो म विविध प्रकार स हुआ है। कही १ ओकार सतिगुर प्रसादि' और 'अथ गुरु विलास लिख्यते' हैं तो कही १ ओकार सी वाहिगुरु जी की फतह। भाषा विभाग की प्रति म श्री नानक साहिब जी निरकार जोती सरुप श्री गुरु अगद साहिब '(इसी तरह ग्रथ गुरुओ के नाम और फिर) 'श्री वाहिगुर जी की फते, श्री अकाल जी सहाई श्री भगउती जी सहाई। अथ गुरु विलास लिख्यते' भी लिखा मिलता है। कुइरसिंह के नाम से एक 'गुरु विलास और मिलता है जिसके साथ सुक्खासिंह के 'गुरविलास' की बडी समानता है। इन ग्रथा म कौन सा पुराना और प्रामाणिक है इसका निणय भी अभी तक नही हो पाया। इन सब प्रश्नो का उचित समाधान किसी पुरातन मूल प्रति के उपलब्ध होने पर ही सम्भव हो सकेगा।

गुरु विलास' के आरम्भ म कवि न अपने इष्टदेव गुरनानक एव गुरु गोविद सिंह की वदना की है। तदनन्तर ब्रह्म के स्वरुप, उसकी प्राप्ति के साधन,

१ इस प्रति के भी बीच म छन्दो की गडबड है—और कुल मिलाकर वे ३१ अध्याय ही बनते हैं।

कि वह बडा ही विनयशील (११५०, ३०।९६) एव निष्ठावान गुर भक्त था और सिक्ख मत म उसकी दृढ आस्था थी। खालसा की महिमा का भी उसने श्रद्धापूवक वणन किया है, यद्यपि उसका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार एव समन्वय वादी था। इस ग्रन्थ की रचना भी उसन धन अथवा यश प्राप्ति के लिए नही की, वरन अपनी भक्ति भावना को प्रकट करने के लिए ही गुरु जी की पावन कथा का वणन किया है।[1]

भाई कान्हसिंह के अनुसार सुक्खासिंह का जन्म स वत १८२५ (सन् १७६८ ई०) म हुआ था और मृत्यु स वत १८९५ म हुई थी। (गुरु शब्द रत्नाकर पृ० ६२)। इस सम्बन्ध म कोई भी अन्य लिखित प्रमाण अभी तक उपलब्ध नही हो सका।

स्रोत एव प्रभाव

'गुर विलास मे गुरुजी के पूव जन्म की कथा, अवतारा आदि के विवरण तत्कालीन धार्मिक अवस्था आदि का जसा वणन हुआ है उससे स्पष्ट है कि 'बचित्र नाटक', अकाल उस्तुति आदि रचनाए कवि के सम्मुख थी। शस्त्र नाम माला का तो उसने उल्लेख किया भी है। जब जब होत अरिस्ट अपारा तथा आस तरे नहिआना' जसी कुछ उक्तिया तो दशमग्रन्थ' तथा गुर विलास' म लगभग ज्यो की त्यो मिलती हैं। गुरु दरबार के कवियो की गुर सोभा', जगनामा गुरु गोबिन्दसिंह एव अन्य स्फुट रचनाओ तथा महिमा प्रकाश' आदि के प्रभाव के सकेत भी यत्र-तत्र मिलते हैं। जिमि कथल ग्रन्थ पोथी प्रचीन' सनि पढे ग्र थ हजूर के सारथ गोद बनाई (३०।१०१) आदि उक्तिया से पूव वर्ती ग्र था के प्रभाव को ग्रहण करन की पुष्टि होती है। हम डॉ० हरिभजन सिंह के इस कथन से भी सहमत हैं कि 'गुरु गोबिन्दसिंह के महा निर्वाण के बीच गुरु गोबिन्दसिंह के सम्बन्ध म एव समृद्ध कल्पनात्मक धारणा का विकास हुआ जो उनके विद्रोही अनुयायियो के अवचेतन का स्थायी और सहज अग बन चुका था।[2] उनके सम्बन्ध म एसी अनेक अतिमानवीय घटनाओ का प्रचलन हो गया था जिनसे उनकी दिव्य एव अलौकिक शक्ति की स्थापना होती थी। ऐसी लोक प्रचलित कथाओ का कवि ने समुचित उपयोग किया है। यथा सुनत' शब्द इस तथ्य का निर्देशक है।

आकार एव रचना विधान

डा० हरिभजन सिंह के अनुसार इस ग्रथ म ३० अध्याय एव ४६५१ छन्द हैं। 'गुरु विलास की हस्तलिखित प्रतिया भाषा विभाग पटियाला सिक्ख रफरेंस लाइब्रेरी अमृतसर मोती बाग पुस्तकालय पटियाला पजाब आरकाइवज

१ प्रेमरथा के कारने बरनत है इह कीट। ११५० ॥'गुरु विलास'

२ (गुरमुखी लिपि म हिन्दी काव्य पृ० २६५ के आधार पेर।)

परियाला नेशनल लाइब्रेरी,कलकत्ता एव गुरद्वारा आनन्दपुर साहब आदि स्थानो पर सुरक्षित हैं। डा० गडासिंह तथा प्रो० प्रीतमसिंह के पास निजी प्रतिया भी हैं। लेकिन इनमें से पजाब आरकाइवज,[1] की एक प्रति को छोड कर अन्य सभी प्रतियो म ३१ अध्याय है। लाहौर स १९६६ वि० म गुरमुखी लिपि म मुद्रित *जिस पुस्तक का उल्लेख डा० साहब ने किया है उसम भी ३१ अध्याय हैं* और छदो की सख्या ५४०३ है। नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता की प्रति म कुल ५४५१ छन्द हैं। इन प्रतियो म यत्र तत्र कुछ छदो का अन्तर तो है लेकिन इतना नही जितना डा० हरिभजन सिंह न लिखा है।

छन्दो की भाषा भाव, शैली म एसी समानता है कि यह निणय करना बडा कठिन है कि कौन सी प्रति अधिक प्रामाणिक है। इनम स प्रो० प्रीतमसिंह (१८६१) और भाषा विभाग (१८६३) की प्रतिया सब स प्राचीन ह। मूल प्रति अभी तक प्राप्त नही हुई। डॉ० हरिभजनसिंह ने पाठ की इस समस्या की ओर तनिक भी ध्यान नही दिया और मालूम नहीं पडता कि किस आधार पर उन्होंने छद सख्या ८६५१ निश्चित कर दी है। ऐसी कथानक रूढिया का निर्वाह भी इसम नही मिलता जिनका आधार बनाकर आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी ने *'पृथ्वीराज रासा के प्रामाणिकअश को निश्चित करने का प्रयत्न किया* है। इसम 'शुक शुकी का स्वर कही सुनाई ही नही पडता। प्रबन्ध काव्या के अतगत जिन कथानक रूढियो का उल्लेख द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य के आदिकाल के सदभ म किया है वे प्राय प्रेम-काव्या से सम्बधित ह और 'गुरु विलास म उनका सवथा अभाव है।

ग्रन्थ का आरम्भ भी विभिन्न प्रतियो म विविध प्रकार स हुआ है। कही १ ओंकार सतिगुर प्रसादि' और 'अथ गुरु विलास लिख्यते' हैं तो कहीं १ ओंकार स्री वाहिगुरु जी की फतह। भाषा विभाग की प्रति म श्री नानक साहिब जी निरकार जोती सरूप श्री गुर अगद साहिब '(इसी तरह अन्य गुरुओ के नाम और फिर) 'श्री वाहिगुर जी की फते, श्री अकाल जी सहाई श्री भगउती जी सहाई। अथ गुरु विलास लिख्यते' भी लिखा मिलता है। कुइरसिंह के नाम से एक 'गुरु विलास और मिलता है जिसके साथ सुक्खासिंह के 'गुरविलास' की बडी समानता है। इन ग्रन्था म कौन सा पुराना और प्रामाणिक है, इसका निणय भी अभी तक नही हो पाया। इन सब प्रश्ना का उचित समाधान किसी पुरातन मूल प्रति के उपलब्ध होने पर ही सम्भव हा सकेगा।

'गुर विलास' के आरम्भ म कवि न अपने इष्टदेव गुरनानक एव गुरु गोबिद सिंह की वदना की है। तदनन्तर ब्रह्म के स्वरूप उसकी प्राप्ति के साधन

१ इस प्रति के भी बीच म छदो की गडबड है—और कुल मिलाकर वे ३१ अध्याय ही बनते है।

नि वह बडा ही विनयशील (१।५०, ३०।६६) एव निष्ठावान गुरु भक्त था और सिक्ख मत म उसकी दृढ आस्था थी। खालसा की महिमा का भी उसने श्रद्धापूर्वक वर्णन किया है, यद्यपि उसका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार एव समन्वय वादी था। इस ग्रन्थ की रचना भी उसने धन अथवा मान प्राप्ति के लिए नही की वरन अपना भक्ति भावना को प्रकट करने के लिए ही गुरु जी की पावन कथा का वर्णन किया है।[1]

भाई कान्हसिंह के अनुसार सुक्खासिंह का जन्म सवत १८२५ (सन् १७६८ ई०) म हुआ था और मृत्यु सवत १८६५ म हुई थी। (गुरु शब्द रत्नाकर पृ० ६२)। इस सम्बन्ध म कोई भी अन्य लिखित प्रमाण अभी तक उपलब्ध नही हो सका।

स्रोत एव प्रभाव

गुर विलास' मे गुरुजी के पूर्व जन्म की कथा, अवतारो आदि क विवरण, तत्कालीन धार्मिक अवस्था आदि का जैसा वर्णन हुआ है, उससे स्पष्ट है कि बचित्र नाटक', 'अकाल उस्तुति आदि रचनाए कवि के सम्मुख थी। 'शस्त्र नाम माला का तो उसने उल्लेख किया भी है। जब जब होत अरिस्ट अपारा' तथा आस तरे नहिग्राना' जसी कुछ उक्तिया तो दशमग्रन्थ' तथा गुर विलास म लगभग ज्यो की त्यो मिलती है। गुरु दरबार के कवियो की गुरु शोभा, जगनामा गुरु गोविन्दसिंह' एव अन्य स्फुट रचनाओ तथा महिमा प्रकाश आदि के प्रभाव के सकेत भी यत्र-तत्र मिलते है। जिमि कथत ग्रन्थ पोथी प्रबीन' सनि पठे ग्रथ हजूर के सारथ गोद बनाई (३०।१०१) आदि उक्तियो स पूर्व वर्ती ग्रथो के प्रभाव को ग्रहण करने की पुष्टि होती है। हम डा० हरिभजन सिंह के इस कथन स भी सहमत है कि गुरु गोविन्दसिंह के महा निर्वाण के बीच गुरु गोविन्दसिंह के सम्बन्ध म एक समृद्ध कल्पनात्मक धारणा का विकास हुआ, जो उनके विद्रोही अनुयायियो के अवचेतन का स्थायी और सहज अग बन चुका था।[2] उनके सम्बन्ध म एसी अनेक अतिमानवीय घटनाओ का प्रचलन हो गया था जिनसे उनकी दिव्य एव अलौकिक शक्ति की स्थापना होती थी। ऐसी लोक प्रचलित कथाओ का कवि ने समुचित उपयोग किया है। यथा सुनत शब्द इस तथ्य का निर्देशक है।

आकार एव रचना विधान

डा० हरिभजन सिंह के अनुसार इस ग्रथ मे ३० अध्याय एव ४६५१ छन्द है। गुरु विलास की हस्तलिखित प्रतिया भाषा विभाग, पटियाला, सिक्ख रेफरेंस लाइब्रेरी अमृतसर मोती बाग पुस्तकालय, पटियाला, पजाब आरकाइवज

१ प्रेमकथा के कारने बरनत है इह कोट। १।५०॥ गुरु विलास
२ (गुरमुखी लिपि म हिन्दी काव्य पृ० २६८ के आधार पर।)

परियाला नेशनल लाइब्रेरी,कलकत्ता एव गुरद्वारा ग्रानन्दपुर साहब ग्रादि स्थानो पर सुरक्षित हैं। डा० गडासिंह तथा प्रो० प्रीतमसिंह के पास निजी प्रतिया भी हैं। लेकिन इनमे से पजाब ग्रारकाइवज,[1] की एक प्रति को छोड कर ग्रय सभी प्रतियो म ३१ ग्रध्याय हैं। लाहौर से १९६९ वि० म गुरुमुखी लिपि म मुद्रित जिस पुस्तक का उल्लेख डॉ० साहब ने किया है, उसम भी ३१ ग्रध्याय है ग्रौर छदा की सख्या ५४०३ है। नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता की प्रति म कुल ५४५१ छन्द हैं। इन प्रतिया म यत्र तत्र कुछ छदो का ग्रन्तर तो है लेकिन इतना नही जितना डा० हरिभजन सिंह ने लिखा है।

छदा की भाषा भाव, शली म एसी समानता है कि यह निणय करना बडा कठिन है कि कौन सी प्रति ग्रधिक प्रामाणिक है। इनम से प्रो० प्रीतमसिंह (१८९१) ग्रौर भाषा विभाग (१८९३) की प्रतिया सब स प्राचीन है। मूल प्रति ग्रभी तक प्राप्त नही हुई। डॉ० हरिभजनसिंह न पाठ की इस समस्या की ग्रोर तनिक भी ध्यान नहीं दिया ग्रौर मालूम नही पडता कि किस ग्राधार पर उन्होने छद सख्या ४९७१ निश्चित कर दी है। ऐसी कथानक रूढिया का निर्वाह भी इसम नही मिलता जिनको ग्राधार बनाकर ग्राचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी न 'पृथ्वीराज रासो' के प्रामाणिकग्रश को निश्चित करने का प्रयत्न किया है। इसमे शुक गुकी का स्वर कही सुनाई ही नहा पडता। प्रबन्ध-काव्या के ग्रतगत जिन कथानक रूढियो का उल्लेख द्विवेदी जी न हिन्दी साहित्य के *ग्रादिकाल के सदभ म किया है व प्राय प्रेम-काव्या स सम्बन्धित* हैं ग्रौर 'गुरु विलास' म उनका सवथा ग्रभाव है।

ग्रथ का ग्रारम्भ भी विभिन्न प्रतियो म विविध प्रकार से हुग्रा है। कही १ *'ग्राकार सतिगुरु प्रसादि'* ग्रौर *ग्रथ गुरु विलास लिख्यते'* हैं ता कही १ ग्राकार सी वाहिगुरु जी की फतह।' भाषा विभाग की प्रति म 'श्री नानक साहिब जी निरकार जोती सरूप श्री गुरु ग्रगद साहिब (इसी तरह ग्रय गुरुग्रा क नाम ग्रौर फिर) 'श्री वाहिगुरु जी की फते श्री ग्रकाल जी सहाई श्री भगउती जी सहाइ। ग्रथ गुरु विलास लिख्यते' भी लिखा मिलता है। कुइरसिंह के नाम से एक 'गुरु विलास ग्रौर मिलता है जिसके साथ सुक्खासिंह के 'गुरविलास' की बडी समानता है। इन ग्रथा म कौन सा पुराना ग्रौर प्रामाणिक है, इसका निणय भी ग्रभी तक नही हो पाया। इन सब प्रश्नो का उचित समाधान किसी पुरातन मूल प्रति के उपलब्ध होने पर ही सम्भव हो सकेगा।

'गुर विलास के ग्रारम्भ म कवि न ग्रपने इष्टदेव गुरुनानक एव गुरु गाबिद सिंह की वदना की है। तदनन्तर ब्रह्म के स्वरूप उनकी प्राप्ति क साधन,

१ इस प्रति के भी बीच म छदा की गडबड है—ग्रौर कुल मिलाकर वे ३१ ग्रध्याय ही बनते हैं।

खालसा पंथ प्रकाशन, गुरु महिमा, खड्ग की महत्ता, खड्ग एवं खड्गकेतु (ब्रह्म) की एकरूपता, खड्ग 'वन्दना' खालसा की महिमा, आत्मपरिचय, आनन्द पुर की शोभा एवं महिमा, ग्रंथ का रचनाकाल पंथ रूपक, आत्म दैन्य, ग्रंथ का नामकरण, गुरु गोबिन्दसिंह के चरित्र की महिमा, कथा महिमा, गुरु वंश परम्परा गुरु नानक व ब्रह्म रूपत्व, सभी गुरुओं की एकरूपता आदि का निरूपण किया है। चरितकाव्यों की पद्धति पर लिखे गये इस प्रकार के मंगला चरण के पश्चात गुरु हरिकृष्ण द्वारा अगले गुरु के बकाले में प्रकट होने का संकेत तथा गुरु तेग बहादुर का गुरु रूप में प्रतिष्ठित होना भी प्रथम अध्याय में ही वर्णित है। गुरु की खोज के इस प्रसंग का तिब्बती-दलाई लामाओं की खोज और स्थापना के साथ अद्भुत साम्य है।

यह अध्याय कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें रचना का प्रतिपाद्य, स्वरूप एवं उद्देश्य (१।५०-५१) ही स्पष्ट नहीं हो जाता, वरन् कवि की धार्मिक प्रवृत्ति (१।१५६) वीर भावना का स्वरूप (१।१२०-१२१) राष्ट्रीयता (१।८२, १।१२६), सास्कृतिक चेतना एवं तुरक विरोधी स्वर (१।१५) भी प्रकट हो जाता है। किस प्रकार संत रक्षा पृथ्वी के उद्धार और हिन्दू धर्म को बचाने के लिये गुरु गोबिन्दसिंह अवतरित हुए और उन्होंने अत्याचारी यवनों का नाश करके भारतवर्ष का रसातल में जाने से बचाया इसका पूर्ण संकेत इस अध्याय में मिल जाता है। साथ ही यहाँ इस ओर भी निर्देश किया गया है कि जीवन का अन्तिम लक्ष्य युद्ध नहीं मोक्ष है। यह भावना महाभारत से अद्भुत साम्य रखती है। गुरुविलास में गुरु गोबिन्दसिंह के अवतार के सम्बन्ध में वैसी ही कथाओं की परिकल्पना की गई है जैसी अन्य अवतारों के सम्बन्ध में पुराणों में उपलब्ध है। कवि का कथन है कि जब पृथ्वी म्लेच्छों की अनीति से बेहद दुखी हो गई, 'छत्रियों के सब गुण एवं दान यज्ञ आदि लुप्त हो गये गो वध घर घर होने लगा तब उसने भगवान के दरबार में पुकार की और तब भगवान ने उसके दुखों का नाश करने के लिये दशमगुरु को यहाँ भेजा (अध्याय २।३-७)। दशमग्रन्थ (बचित्रनाटक) में गुरु जी के अवतार की ठीक ऐसी ही कथा वर्णित है अन्तर केवल इतना है कि वहाँ असुरों या 'दुष्ट दोखयनि' को पकड़ कर पछाड़ने का आदेश है[1] जब कि 'गुरु विलास में स्पष्ट रूप से यवनों म्लेच्छों के उन्मूलन का (२२।८२-२१।१६०)। जिस प्रकार 'जगनामा गुरु गोबिन्दसिंह में स्पष्ट रूप से औरंगजेब की अनीति और धार्मिक अत्याचार के विनाशार्थ दशमगुरु के अवतरित होने का उल्लेख है (जगनामा गुरु गोबिन्द

---

१ हम इह काज जगत मो आए, धरम हेतु गुरदेव पठाए।
जहाँ तहाँ तुम धरम बिथारो, दुष्ट दोखयनि पकरी पछारो।

(अपनी कथा)

सिंह ६ ६) उसी प्रकार 'गुरु विलास' में भी कहा गया है कि 'जिसने देवालयों को गिराया, बांग का प्रचलन किया, उनका नाश करने का संकल्प लेकर गुरु जी आये हैं (३ ३८ ४०)। अर्थात् जहां 'दशमग्रंथ में केवल, धर्म स्थापन' और 'असुर संहार' का आदेश है वहां 'गुरु विलास' में स्पष्ट रूप से हिंदू धर्म की रक्षा और यवनों के विध्वंस का निरूपण है। 'दशमग्रंथ' में हिंदू धर्म के बाह्याचारों और पाखण्डों का ही खण्डन किया गया है जब कि 'गुरु विलास' में इस्लामी साधना पद्धति और उनके धर्म प्रचार का भी विरोध किया गया है।

निस्संदेह यहां तुरक विरोधी स्वर कहीं अधिक स्पष्ट और प्रबल है। 'गुरु विलास' में यह तुरक विरोधी स्वर आद्यांत प्रसारित है। इसकी अभिव्यक्ति अनेक कथा प्रसंगों में विभिन्न पात्रों के माध्यम से विविध रूपों में हुई है। तुरक, मलेछ आदि शब्द यहाँ बार-बार आए हैं, जिनके प्रति कवि ने घृणा, विरोध एवं विद्रोह का भाव प्रकट किया है, तुरक और असुर भी यहां पर्यायवाची हैं।[1] गुरु जी की तुरक विरोधी प्रवृत्ति का प्रदर्शन उनकी बाल्यावस्था की क्रीडाओं में ही हो जाता है, जब वे कुएं पर जल भरने आई एक तुर्क स्त्री के घड़े और मस्तक को अपनी गुलेल का निशाना बनाते हैं (३।१२२-१३०)। गुरु जी ने मलेच्छ विनाश के अपने उद्देश्य का भी बार बार उल्लेख किया है (११२ ८२) देवी-स्तुति प्रसंग में भी वे मलेछों को मारने का वर मांगते दिखाए गए हैं (६ ७२)। पंथ रचना भी तुरकों के संहारार्थ हुई बताई गई है(८ ६६)। देवी के प्रकट होने का कारण भी यही है कि 'जिस प्रकार उसने महिषासुर एवं मधुकैटभ आदि दैत्यों का संहार किया था, उसी प्रकार वह मलेच्छों का भक्षण करने को प्रकट हुई है(१० १८)। वह गुरु जी को वर भी यही देती दिखाई गई है कि वे सर्वत्र विजय प्राप्त करेंगे और मलेच्छों और तुरकों का सर्वनाश हो जाएगा।[2] गुरु जी को स्वयं इस बात का विश्वास है कि उनकी विजय होगी और असुर मलेच्छों का वे नाश करेंगे।[3] इसीलिये वे नहीं चाहते कि उनका कोई सिक्ख उनसे मेल करे। उनका तो शस्त्र लेकर सामना करना ही उचित है।[4] उनकी छाया लेनी भी वे पाप समझते हैं।[5]

वे यह भी नहीं चाहते कि मलेच्छों पर किसी तरह का विश्वास किया जाए (२१।६० ६२)। वे न तो उनके माथे लगना चाहते हैं और न उन्हें दर्शन देना

१ असुर मलेछ मारि कर ढेरी (गुरु वि० १०।१४२)

२ बिज होइ तुमरी जग माही। आदि अगाधि गुर वर पाही।
तुरक मलेछ होइ सभ छारा। जह तह तुमरे बजै नगारा।

३ जिस दिन बिज होई जग मेरी। असुरी मलेछ मारि कर ढेरी। १०।१४२

४ तुरक मलेछ मा नही मिलना। ले हथिआर सामुहे पिलना।

५ कनि वहै प्रभु जग साई। छुवै मलेछ भूल नही छाइ। ३२६।३२

चाहते हैं।[1] इस ग्रथ म तुरका क विरुद्ध (तुरका से यहा अभिप्राय सभी जातियो के यवनो से है) इतनी कटुता क्या है जब कि 'बचित्रनाटक' म उनके विरुद्ध स्पष्ट रूप से बहुत कम कहा गया है ? हम समझते हैं कि इसका एक कारण गुरु जी के परलोक-गमन क पश्चात हिन्दुओ और यवनो का निरन्तर बढ रहा विरोध और सघष है। बदा बहादुर के अभियानो से लेकर गुरुविलास की रचना तक का समय, हिन्दुओ पर यवनो के अमानुषिक अत्याचारो दमन और नृशसतापूण व्यवहार की क्रूर कहानी प्रस्तुत करता है यह सिक्खो क लिये घोर सकट का समय था। इतिहासकारो का कथन है कि बहादुरशाह फरुख सियर खान बहादुर आदि न समय समय पर सिक्खो के कत्लेआम का आदेश दिया। सिक्खो के वध के लिये भारी पुरस्कार दिये जाते थे और कोई भी व्यक्ति उन्हे अपने पास आश्रय नही दे सकता था। यवन सेना सवत्र उनका पीछा करती थी।[2] गुरु विलास' म भी उनके ऐसे अत्याचारो का निरूपण हुआ है। वस्तुत, कवि का यह तुरक विरोधी स्वर उसकी राष्ट्रीय भावना का परिचायक है। तुरक उस समय आक्रमणकारी और आक्राता ही थे और उनका विनाश अथवा उनके अत्याचारो से मुक्ति देश की स्वतत्रता का परिचायक था। इस दृष्टि से सुक्खासिंह एक सशक्त राष्ट्रीय कवि के पद का अधिकारी है।

यहा स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि जब गुरु जी का तुरको (यवनो) के साथ इतना कटु विरोध था तो उन्होने बहादुरशाह की सहायता क्यो की, जिसका गुरु विलास' मे भी विस्तृत वणन हुआ है। कवि इस शका के प्रति सजग है और उसने स्वय यह प्रश्न एक सिक्ख द्वारा गुरु जी के सम्मुख उठवाया है (२६ ३८)। इसका समाधान करते हुए गुरु जी कहते है कि वह साधु हैं और जो सत है चाहे वह तुरक हो या हिन्दू, उस पर उनकी कृपा है। वे उसके पूर्व जन्म की कथा भी सिक्खो को सुनाते है जिसम यह दिखाया गया है कि वह बडा भारी सत था (२६।४० ७५)। वे कहना यही चाहते हैं कि वे नृशसता, अनाचार अत्याचार और दूसरो के धम पर प्रहार करने वालो के ही विरोधी हैं, न कि किसी जाति या धम के और औरगजेब क्योकि यह सब कुछ कर रहा था इसीलिए उन्होने उसका विरोध किया। हालाकि उनका प्रण था कि वे औरगजेब का विनाश करेंगे (२६ ६२)। लेकिन वे उसे क्षमा करने को भी तयार हैं यदि वह अपने कुकम को त्याग दे (२६।४० ७५)। यहा बहादुर शाह को स्वय यह स्वीकार करते हुए भी दिखाया गया है कि उसके पिता ने अकारण उन पर अत्याचार किए थे (२५।७८ ८३ २५।११५)। वह उनका

---

१ स्री मुख वचन कहे इस भाइ। हम नही मसतक लगना जाइ।
ना मलेछ को दरसन देना। आप जाइ ताको नही लेना। (१।७५)

2 History of the Sikhs page 9 10 vol I by Dr H R Gupta

प्रायश्चित करता है और इसीलिए गुरु जी उसकी सहायता करते हैं। 'गुर-विलास' मे भी अच्छे धम परायण तुरकों की गुरु जी ने प्रशसा की है। चमकौर युद्ध की सकटापन्न स्थिति से गुजर कर माछीवाडे से जाते समय नबीखा और गनीखा ने उनकी सहायता की। क्योंकि उनमे धम ईमान पूरा था, जिसका परिचय उन्होने एक सकट ग्रस्त व्यक्ति की सहायता करके दिया इसीलिये गुरु जी ने अपने सिक्खो को उनका आदर और सत्कार करने का आदेश दिया (२२। ५६, २२।३० ४०)। अस्तु 'गुरु विलास' मे भी गुरु जी को इस्लाम का विरोधी नही दिखाया गया वे निरकुश तुरक शासको के अत्याचारो के ही विरोधी है। कवि ने जिस तीखेपन से यह विरोध प्रकट किया है वह उसकी निजी राष्ट्रीय भावना का द्योतक है और उसके लिये उत्तरदायी है बीच की वे सकटकालीन परिस्थितिया, जिनसे सिक्खो को गुजरना पडा था।

प्रबन्ध काव्य बनाम वीर काव्य

कथा वस्तु

'गुरु विलास' दशमगुरु के सारे जीवन को लेकर लिखा गया प्रबन्ध-काव्य है। गुरु शोभा और बचित्र-नाटक' (अपनी कथा) आदि मे जिन प्रसगो का वणन हुआ है वे सभी यहाँ भी है, उन्हे यहा और भी विस्तार दिया गया है। पृष्ठभूमि रूप मे गुरु तेगबहादुर के बकाले मे गुरु रूप म प्रतिष्ठित होने और उनकी पूव की यात्रा का सक्षिप्त विवरण है। उसके पश्चात पटने मे दशम गुरु के जन्म तथा उनकी कुछ बाल-लीलाओ का वणन किया गया है। उनके जन्म से सम्बन्धित विवरण यहा बहुत सक्षिप्त हैं पूरा विवरण बहुत बाद मे उनकी दक्षिण यात्रा (बुरहानपुर निवास) के अन्तगत एक सत के मुख से सुनवाया गया है, जो उनके जन्म के समय नव गुरु के साथ था, और उनके आदेश से ही दक्षिण म आया था। वह सारा विवरण एक प्रत्यक्ष दर्शी के रूप म देता है, जिससे कथानक म यथाथता और कलात्मकता आ गई है।

उपयुक्त दोनो काव्य-ग्रन्थो की भाति उनके पूव जन्म की कथा इसमे भी है लेकिन यहा वह ५वें अध्याय म उनके आनन्दपुर आजाने के बाद कही गई है पिता जी की आज्ञा से पटना छोड कर वे काशी अयोध्या हरिद्वार तननौर आदि तीर्थों का भ्रमण करते हैं। उनके माखोवाल पहुचने, आनन्दपुर म पिता *जी से भेंट, वहा कश्मीरी ब्राह्मणो का आगमन, औरगजेब द्वारा सवा मन* जनेऊ प्रतिदिन उतरवाने और हिन्दुओ को मुसलमान बनाने का तथा उनकी रक्षा के लिए नवम गुरु के बलिदान और दशमगुरु द्वारा नगारा बजाकर शासन के प्रति विरोध प्रकट करने आदि की घटनाओ (५।२३०-२३१) का वणन विशदता से किया गया है जबकि पूववर्ती काव्य ग्रन्थो म इनका सकेत मात्र मिलता है। उदाहरण के लिए गुरु शोभा' मे केवल इतना ही उल्लिखित है कि जनऊ और तिलक की रक्षा के लिए गुरु तेगबहादुर ने अपना बलिदान दिया था।

चाहते हैं।[1] इस ग्रथ मे तुरको के विरुद्ध (तुरको से यहा अभिप्राय सभी जातियो के यवनो से है) इतनी कटुता क्यो है जब कि 'बचित्रनाटक' म उनके विरुद्ध स्पष्ट रूप से बहुत कम कहा गया है ? हम समझते हैं कि इसका एक कारण गुरु जी के परलोक गमन के पश्चात हिन्दुओ और यवनो का निरन्तर बढ रहा विरोध और सघर्ष है। बदा बहादुर के अभियाना से लेकर 'गुरविलास' की रचना तक का समय हिन्दुओ पर यवनो के अमानुषिक अत्याचारो, दमन और नृशसतापूर्ण व्यवहार की क्रूर कहानी प्रस्तुत करता है यह सिक्खो के लिये घोर सकट का समय था। इतिहासकारो का कथन है कि बहादुरशाह फर्रुख सियर यान बहादुर आदि ने समय समय पर सिक्खो के कत्लेआम का आदेश दिया। सिक्खो के केशो के लिये भारी पुरस्कार दिये जाते थे और कोई भी व्यक्ति उन्हें अपने पास आश्रय नही दे सकता था। यवन सेना सवत्र उनका पीछा करती थी।[2] 'गुरु विलास' म भी उनके ऐसे अत्याचारो का निरूपण हुआ है। वस्तुत, कवि का यह तुरक विरोधी स्वर उसकी राष्ट्रीय भावना का परिचायक है। तुरक उस समय आक्रमणकारी और आक्रान्ता ही थे और उनका विनाश अथवा उनके अत्याचारो से मुक्ति देश की स्वतन्त्रता का परिचायक था। इस दृष्टि से सुक्खासिह एक सशक्त राष्ट्रीय कवि के पद का अधिकारी है।

यहा स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि जब गुरु जी का तुरको (यवनो) के साथ इतना कटु विरोध था तो उन्होने बहादुरशाह की सहायता क्यो की, जिसका गुरु विलास मे भी विस्तृत वर्णन हुआ है। कवि इस शका के प्रति सजग है और उसने स्वय यह प्रश्न एक सिक्ख द्वारा गुरु जी के सम्मुख उठवाया है (२६ ३८)। इसका समाधान करते हुए गुरु जी कहते है कि वह साधु हैं और जो सत है चाहे वह तुरक हो या हिन्दू उस पर उनकी कृपा है। वे उसके पूर्व जन्म की कथा भी सिक्खो को सुनाते हैं जिसम यह दिखाया गया है कि यह बडा भारी सत था (२६।४० ७५)। वे कहना यही चाहते हैं कि वे नृशसता अनाचार अत्याचार और दूसरो के धर्म पर प्रहार करने वालो के ही विरोधी हैं न कि किसी जाति या धर्म के और औरगजेब क्योकि यह सब कुछ कर रहा था इसीलिये उन्होने उसका विरोध किया। हालाकि उनका प्रण था कि वे औरगजेब का विनाश करेंगे (२६ ६२)। लेकिन वे उसे क्षमा करने को भी तयार हैं यदि वह अपने कुकर्म को त्याग दे (२६।८० ८५)। यहा बहादुर शाह को स्वय यह स्वीकार करते हुए भी दिखाया गया है कि उसके पिता ने अकारण उन पर अत्याचार किए थे (२५।७८ ८३, २५।११५)। वह उनका

१ ऐसो सुनि बचन कहे इस भाइ। हम नहीं ममनक लगना जाइ।
ना मरद को दरसन दना। आप जाइ ताको नहा लना। (१।७५)

2 History of the Sikhs page 9 10 vol I by Dr H R Gupta

प्रायश्चित करता है और इसीलिए गुरु जी उसकी सहायता करते हैं। 'गुर-विलास' में भी अच्छे धर्म परायण तुर्कों की गुरु जी ने प्रशंसा की है। चमकौर युद्ध की सकटापन्न स्थिति से गुजर कर माछीवाड़े से जाते समय नबीखां और गनीखां ने उनकी सहायता की। क्योंकि उनमें धर्म ईमान पूरा था, जिसका परिचय उन्होंने एक संकट ग्रस्त व्यक्ति की सहायता करके दिया,इसीलिये गुरु जी ने अपने सिक्खों को उनका आदर और सत्कार करने का आदेश दिया (२२। ५६, २२।३०४०)। अस्तु 'गुरु विलास' में भी गुरु जी को इस्लाम का विरोधी नहीं दिखाया गया वे निरंकुश तुर्क शासकों के अत्याचारों के ही विरोधी हैं। कवि ने जिस तीखेपन से यह विरोध प्रकट किया है वह उसकी निजी राष्ट्रीय भावना का द्योतक है और उसके लिये उत्तरदायी हैं बीच की वे संकटकालीन परिस्थितियां, जिनसे सिक्खों को गुजरना पड़ा था।

प्रबन्ध काव्य बनाम वीर काव्य

कथा वस्तु

'गुरु विलास' दशमगुरु के सारे जीवन को लेकर लिखा गया प्रबन्ध-काव्य है। 'गुर शोभा और बचित्र-नाटक' (अपनी कथा) आदि में जिन प्रसंगों का वर्णन हुआ है, वे सभी यहां भी हैं, उन्हें यहां और भी विस्तार दिया गया है। पृष्ठभूमि रूप में गुरु तेगबहादुर के बकाले में गुरु रूप में प्रतिष्ठित होने और उनकी पूर्व की यात्रा का संक्षिप्त विवरण है। उसके पश्चात पटने में दशम गुरु के जन्म तथा उनकी कुछ बाल-लीलाओं का वर्णन किया गया है। उनके जन्म से सम्बन्धित विवरण यहां बहुत संक्षिप्त हैं, पूरा विवरण बहुत बाद में उनकी दक्षिण यात्रा (बुरहानपुर निवास) के अन्तर्गत एक संत के मुख से सुनवाया गया है जो उनके जन्म के समय नवम गुरु के साथ था और उनके आदेश से ही दक्षिण में आया था। वह सारा विवरण एक प्रत्यक्ष दर्शी के रूप में देता है, जिससे कथानक में यथार्थता और कलात्मकता आ गई है।

उपर्युक्त दोनों काव्य-ग्रन्थों की भांति उनके पूर्व जन्म की कथा इसमें भी है लेकिन यहां वह ५वें अध्याय में उनके आनन्दपुर आजाने के बाद कही गई है पिता जी की आज्ञा से पटना छोड़ कर वे काशी, अयोध्या, हरिद्वार, तननौर आदि तीर्थों का भ्रमण करते हैं। उनके माखोवाल पहुंचने आनन्दपुर में पिता जी से भेंट, वहां काश्मीरी ब्राह्मणों का आगमन, औरंगजेब द्वारा सवा मन जनेऊ प्रतिदिन उतरवाने और हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का तथा उनकी रक्षा के लिए नवम गुरु का बलिदान और दशमगुरु द्वारा नगारा बजाकर शासन के प्रति विरोध प्रकट करने आदि की घटनाओं (५।२३०-२३१) का वर्णन विशदता से किया गया है जबकि पूर्ववर्ती काव्य-ग्रन्थों में इनका संकेत मात्र मिलता है। उदाहरण के लिए गुरु शोभा' में केवल इतना ही उल्लिखित है कि जनेऊ और तिलक की रक्षा के लिए गुरु तेगबहादुर ने अपना बलिदान दिया था।

भगानी युद्ध, नादौन युद्ध, खालसा रचना, आनन्दपुर युद्ध, चमकौर युद्ध, माछीवाड़े से होकर मुक्तसर होत हुए दमदमा साहब पहुचने, औरगजेब को जफरनामा भेजने उसकी मृत्यु पर बहादुरशाह की सहायता करने, उसके साथ राजस्थान स होकर दक्षिण यात्रा पर जाने तथा नादेड म पठान द्वारा उनकी हत्या आदि के प्रसग लगभग उसी प्रकार वर्णित है जसे 'गुरु शोभा एव महिमा प्रकाश आदि मे हैं। अन्तर केवल इतना है कि यहा उन्हें अधिक विस्तार दिया गया है और बीच बीच म और भी अनेक प्रसग आ गये हैं जिनका वहा प्राय अभाव है।

२ गुरु विलास के कथानिरूपण म भी इतिवृत्तात्मकता अधिक है सरसता और काव्यत्व कम। कथानक मे 'साखी' पद्धति का भी निर्वाह हुआ है (१७।५४,१७।१६६ १७। अन्त २२।८५)। इसमे ऐसे सम्बोधनात्मक शब्द भी आए हैं जिससे स्पष्ट है कि यह कथा सुनाने के लिए लिखी गई है। इसलिए श्रोताओ को दृष्टि म रखकर कथानक को सहज सरल रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

कथानक म प्रवाह और सम्बद्धता है। बीच बीच म वस्तु निरूपण भी हुआ है पौराणिक प्रसग भी आए है, धार्मिक आख्यान भी हैं कुछ अवतार कथाए भी आई हैं, लेकिन उनका मुख्य कथानक से गहरा सम्बन्ध हैं। उन्ह उतना ही विस्तार दिया गया है जितना अपेक्षित है। कथानक म इसलिय सतुलन रहा है। यह कथा काव्य धार्मिक दृष्टिकोण से लिखा गया है और धार्मिक वातावरण कथानक म सवत्र विद्यमान हैं। ऐसी स्थिति म यह आशका बनी रहती है कि कथाकार अपने धार्मिक विचारो के प्रतिपादन म पड कर प्राय कथा का सतुलन खो बठता है। लेकिन 'गुर विलास' का कवि बडा ही सचेत रहा है। उसमे न तो कोई प्रसग अधूरा छूटने पाया है और न ही किसी को अनावश्यक तूल दिया गया है। पौराणिक प्रसगो का नियोजन हुआ है लेकिन बडी सक्षिप्तता और कुशलता से। धार्मिक सिद्धान्तो का निरूपण हुआ है लेकिन अनेक प्रसगो म थोडा-थोडा करके कथाओं के माध्यम से। गुरु शोभा म जसे कई अध्याय सिद्धात निरूपण म ही लगा दिए गए हैं वसा यहाँ नही हुआ। दर्शन की शुष्कता, गम्भीरता और जटिलता इसम कही भी दिखाई नही पडती। पीरो और काजियो आदि से वार्तालाप करत समय भी गुरु जी ५ ६ छन्दो म ही बन्दगी, गुरु सेवा नाम-स्मरण, चरित्र की शुद्धता और पवित्रता आदि क महत्त्व को बडी सहजता से समझा देते हैं (२६।१५१ ६१)। ग्रन्थ क अन्त मे भी गुरु जी केवल १० ११ छन्दो म ही सिक्खो को पच मल पच-त्याग शस्त्र-पूजा नाम-स्मरण आदि का आदेश देत दिखाए गए हैं। य प्रसग कथा के अभिन्न अग से दीख पडते हैं ऊपर से लादे हुए नही। 'गुरु शोभा म वस्तु निरूपण बिल्कुल नहा हुआ जब कि 'गुरु विलास' म वन, उपवन, बाग, तडाग, नदी,

पवत, रात, दिन एव अनेक पर्वो, तीर्थों विवाह, मारवग, नगरो आदि का सुन्दर वणन हुआ है, लेकिन कवि न उन्हें भी यथाचित विस्तार ही दिया है जिससे वे कथानक की श्रीवृद्धि करते हैं, उसम अवरोध उत्पन्न नहीं करते। उदाहरण के लिए पावटे आगमन कवि वहाँ के पवत क निकट की सुन्दर रम्य स्थली का वणन करता है, लेकिन सयमित होकर, क्योंकि उपर युद्ध की तयारी चल रही है। युद्ध के उस वातावरण म प्रकृति वणन म अधिक उलझ जाना उचित नहीं होता।

कथानक म रोचकता बनाए रखने के लिए कवि कहीं-कहीं पूव प्रसग के अन्त और नव प्रसगा की सूचना भी दे देता है (१६।१८ १६, १६।१११)। इसी तरह कुछ महत्त्वपूण प्रसगा को थोडा-थोडा करके अनेक स्थलो पर रखता है। गुरु जी के पूव जन्म एव पटन म जन्म की कथा का नियोजन इसी प्रकार हुआ है। औरगजेब की मृत्यु का प्रसग भी दो स्थानो पर आया है। एक स्थान पर उसका उल्लेखमात्र करके छोड दिया गया है लेकिन जब एक सिक्ख गुरु जी को इसकी सूचना देता है तो उनके पूछने पर सारा विवरण सुनाया जाता है (२४।१०६ १६)।

मुख्य कथा गुरु जी की जीवन गाथा है। लेकिन बीच म यदि कोई और प्रसग आ गया जसे जफरनामा लेकर दयासिंह के जाने का प्रसग, या औरगजेब की मृत्यु पर उसके पुत्रो का सघष, तो इस प्रकार की कथा का पूरा विवरण देने क पश्चात्, उसे निश्चित विश्राम देकर कवि 'गुर कथ दीन बध अब पावन (१५।१६२), सुन अब कथा दयाल की बरनो प्रेम लगाई (२२।२००) आदि उक्तियो के द्वारा उस मुख्य कथा से जोड देता है। और इस प्रकार कथानक म बही दरारें नहीं रहने देता।

४—मोटे तौर पर कथानक की रूपरेखा एक एव सी होते हुए भी 'गुर सोभा' और 'अपनी कथा' म इसम कई विशिष्टताएँ हैं। इन दोनो रचनाओ म यथार्थता का आग्रह अधिक था और इसीलिए कई प्रसगो के यथाचित कारणो क अभाव म गुरु चरित्र की कुछ क्षति सी होती दिखाई देती है। विशेष रूप से उनके युद्धो क प्रसग म। 'गुर बिलास' म ऐसा कोई अभाव नहीं रहने पाया है। यहा प्रत्येक घटना के पीछे क समुचित कारणो का उल्लेख हुआ है। जसे नवें गुरु के बलिदान की पूरी कहानी देकर दशमगुरु क सघष का औचित्य स्थापित कर दिया गया है। व औरगजेब को लिखे अपने पत्र म भी यह स्पष्ट कर देते हैं कि वे तो एक पहाडी पर आराम से रह रहे थे, उसने अकारण पहाडी राजाओ के बहकावे म आकर उनपर आक्रमण किये (२२।१८)। इसी तरह भगानी युद्ध के भी पूरे कारणो पर प्रकाश डाला गया है। फलस्वरूप कलमाट आदि की लूट क जो प्रसग 'गुर सोभा' म खटकते हैं यहा उनका भी समुचित कारण दिया गया है। गुरु जी ने उन्हीं लोगों की लूट का आदेश दिया था, जो माग मे आनी सगता को लूटते या तग

(१८।६३ ६४, १३।६-१०७, १४।४ १०) मसदा को इतना दण्ड क्या दिया गया, इसके भी यहा पूरे कारण दिए गए हैं (११।१ १२) । यवनो के विरुद्ध वे क्यो थे, उसके लिए उनके अत्याचारो का विशद निरूपण किया गया है। पहाडी राजा जिस प्रकार औरगजेब को उकसाकर गुरु जी के विरुद्ध उत्तेजित करते हैं ऐसे प्रसगो से कथानक म स्वाभाविकता और पूर्णता आ गई है। इसी तरह खालसा की रचना के कारण, लक्ष्य एव स्वरूप, गुरु पुत्रो के बलि दान, विशेष रूप से ब्राह्मण के कुचक्र से दो साहबजादो के सरहिंद म कत्ल का पूरा विवरण 'गुरुविलास' मे उपलब्ध है।

यह सारा वातावरण सगठित होकर गुरु जी के धार्मिक एव सनिक अनुष्ठानो की उपयोगिता और औचित्य को सिद्ध करता है और कथानक सार्थक हो जाता है।

५ इतिहास पुराण

'गुरु विलास' गुरु गोविन्दसिंह के जीवनकाल का काव्यमय इतिहास है पटने मे उनके जन्म आनन्दपुर आगमन, वहा उनके पिता के पास कश्मीरी ब्राह्मणो का आकर अपनी दुख-गाथा सुनाना और इनके द्वारा (नवम् गुरु को) अपना बलिदान देकर उनके धर्म की रक्षा करने के लिए प्रेरित करना, दिल्ली म उनकी हत्या के पश्चात इनका गुरु गद्दी पर बठना, विवाह भगानी युद्ध, नादौन युद्ध,खालसा रचना, मसदा का उन्मूलन, सरहिंद और लाहौर के नवाबो की सहायता से पहाडी राजाओ का आनन्दपुर को घेरना, अन्न जल के सकट के कारण आनन्दपुर त्यागना, चमकौर युद्ध चमकौर मे दो पुत्रो का बलिदान, अन्य दो का एक ब्राह्मण के कुचक्र स सरहिंद म वध, माछीवाडे होते हुए बागड पहुचना वहा से दयासिंह के हाथ औरजेब को पत्र (जफरनामा) भेजना खिदराना युद्ध, दमदमा निवास औरगजेब की मृत्यु तथा उसके पुत्रो का सघष गुरु जी द्वारा बहादुरशाह की सहायता करना उससे मिलने आगरे जाना और फिर उसके साथ राजस्थान होते हुए दक्षिण जाना वहा नान्देड के स्थान पर एक पठान द्वारा उनकी हत्या करने आदि की प्रमुख घटनाएँ, यहा भी प्राय उसी तरह वर्णित हैं जसे अन्य सिक्ख इतिहासकारो ने लिखी हैं। गुरु-जीवन म घटित होन वाली विशिष्ट घटनाओ की तिथिया भी यहा दी गई हैं जिनका एतिहासिक महत्व है। जसे गुरु-जन्म १७२३ म हुआ (३।४५) १७३३ म उन्होंने गुरु गद्दी प्राप्त की (५।२२०)। १० वष की अवस्था म १७३४ म विवाह हुआ आनन्दपुर का युद्ध १७६१ म हो रहा था (२१।१४) ('गुरुशोभा' म १७५८के आनन्दपुर युद्धका उल्लेख है—सम्भवत यह युद्ध तीन वष चलता रहा—इतिहासकारो द्वारा यह प्रश्न विचारणीय है) और मृत्यु स० १७६५ कार्तिक सुदी ५ दिन वीरवार का आधी रात ४ घडी बीतने पर हुई (३०।१५, ३०।६७-६८)।

'गुरु विलास' में कुछ ऐसे तथ्य भी उपलब्ध हैं जिनका सिक्ख इतिहास में निरन्तर महत्त्व स्वीकृत रहा है। उदाहरणार्थ 'खालसा रचना' की जो कथा सिक्ख परम्परा में विख्यात है उसका पूरा विवरण सर्वप्रथम यहीं उपलब्ध है। किस प्रकार युद्ध आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए गुरु जी ने यह निश्चय किया, युग की धार्मिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का विस्तृत विवेचन करके यहाँ इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। फिर उसकी रचना हुई, किन किन सिक्खों को किस प्रकार उनके दृढ़ विश्वास को परखकर, उन्हें अमृत पान करवाया गया और फिर स्वयं उनसे अमृत पान किया, खालसा की रहित मर्यादा, आज्ञा और लक्ष्य एवं महिमा क्या है इन सबका विशद वर्णन इस ग्रन्थ में हुआ है (१२।८० ११५)। 'मैं ग्रस पानप तन्ग कहाऊँ' । चिरीमन प नव बाज तुराऊ" नाम की उक्ति सिक्खों में बड़ी प्रसिद्ध है, इसका उपयोग भी सर्वप्रथम संभवतः यहीं हुआ है (१२।१५८)। इसी प्रकार आनन्दपुर छोड़ते समय शत्रुओं के इस वायदे को परखने के लिए कि यदि वे आनन्दपुर छोड़ कर जाना चाहें तो उन्हें कुछ नहीं कहा जाएगा ईंटों पत्थरों की गाड़ियाँ भरकर भेजना और शत्रुओं द्वारा उनका लूटा जाना— यह प्रसंग भी संभवतः सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ में विस्तार से आया है (२०।८० १०१)।

चमकौर युद्ध के पश्चात् माछीवाड़े से जाते समय नबी खाँ और गनी खाँ ने किस प्रकार उन्हें 'पीर' घोषित कर पीछा करती हुई शत्रु सेना से उनकी रक्षा की यह प्रसंग भी विस्तार से प्रथम बार यहीं आया लगता है (२२।३०-३३) गुरु पुत्रों के सरहिन्द में वध किये जाने के प्रसंग में माता जी सहित उनके गुरु जी से अलग हो जाने, ब्राह्मण गङ्गू द्वारा धन के लोभ से उन्हें शत्रु को सौंपने आदि का पूरा प्रसंग जिस रूप में सिक्ख इतिहास में प्रचलित है उसका विशेष निरूपण इसी ग्रन्थ में सबसे पहले हुआ है (२२।२३५ २५०)।

उन ४० सिक्खों को जो विदायगी लिखवा कर आनन्दपुर से उनका साथ छोड़ कर चले गये थे और जिन्होंने मुक्तसर में इनकी रक्षा के लिए लड़ते हुए अपने प्राण दिये थे उनसे उस विदायगी को वापिस लेकर 'मुक्ति' देने का प्रसंग सिक्ख इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना मानी जाती है (२२।२३७ ४४)। गुरु विलास' में ही शायद इसका सर्वांगीण चित्रण मिलता है। इसी प्रकार गुरु जी की मृत्यु के प्रसंग में भी घाव को सिये जाने और फिर कुछ समय पश्चात् धनुष की डोरी खींचने से उसके धागे टूटने पर मृत्यु होने का इतिवृत्त इस ग्रन्थ में विस्तार से आया है (२१।३६ ४६ ३०।१७ ४७)। 'गुरु शोभा' में धनुष की डोर खींचने से धागे टूटने आदि का प्रसंग बिल्कुल नहीं है। इसी प्रकार गुरु जी की दक्षिण यात्रा (२२।१ ५८) और दयासिंह का जफरनामा लेकर जाने का मार्ग भी (२२।१६१ ६०) इसमें दिया गया है जिसका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। गुरु जी के दो विवाहों का उल्लेख यहाँ हुआ है। एक

रोपड म, दूसरा दक्षिण यात्रा के समय (२४।८६ ८२)। कुछ सिक्ख लेखको ने इनके तीन विवाह माने हैं उस पर विचार करने के लिये 'गुर विलास' की उपेक्षा नही की जा सकती। गुरु शोभा' म भी इन्ही दो विवाहो का उल्लेख है। 'गुरु ग्रन्थ साहब' को गुरता देन का उल्लेख भी यहाँ स्पष्ट रूप म हुआ है (३०।२३ २५)। 'गुरुविलास मे कुछ ऐसे तथ्य भी हैं जिन पर इतिहासकारो द्वारा और अधिक खोज किए जाने की आवश्यकता है। उदाहरणाथ यहाँ पहाडी राजाओ को औरगजेब के पास जाकर शिकायत करते दिखाया गया है (१४।१८ ८८) जिसने गुरु जी के विरुद्ध पहले अपने पुत्र आजम को भेजा, जो नन्दलाल आदि के समझाने पर गुरु जी से न लडकर लाहौर की ओर चला गया (१५।१४६ १४७), फिर अहिन्दी को भेजा गया (१६।१७४)। देखना यह है कि क्या वाकई औरगजेब सीधे इस युद्ध म इस रूप म सलग्न था। चमकौर युद्ध म कवि ने शत्रु की १० लाख सेना का दिल्ली से आने का उल्लेख किया है (२१।४१ ६०), जो अत्युक्ति ही लगती है। गुर तेगबहादुर गुरुगोबिन्द सिह के जन्म के समय ढाका म थ (२८।१५ १६) और मानसिंह जब नेपाल को गाहता हुआ दिल्ली पहुचा तो वे पजाब आ गये थे और आनन्दपुर पहुच कर वहीं से उन्होंने गोबिन्दसिंह को बुलवाया था (२८।२६ २७)। यहा यह भी सकेत मिलता है कि गुरु जी दक्षिण म शाही सेना के साथ ही आए थे (२८। ५८)। उसके लौट जाने पर देश दखन के बहाने स्वय कुछ दिन वहा ठहर गये थे। 'गुरु शोभा' की भाति व स्वय ही यहा भी अपने हत्यारों को उकसाते दिखाए गए हैं। खुद ही कटार उसके हाथ म देते हैं (२६।१६ २३) जो उससे उन पर तीन बार वार करता है। पठानो को यहा पदे खा के पौत्र बताया गया है (२६।३६ ३८)। जो कि गुरु हरिगोबिन्द का प्रमुख सनिक था और बाद मे उनके विरुद्ध हो गया था। गुर प्रताप सूरज मे एक वाक्य ऐसा आया है जहाँ गुरु हरिगोबिन्द उसे कहते दिखाए गए हैं कि उसकी सतान उनसे उसके वध का बदला लेगी शायद वही बदला लेने के लिए गुरु जी उन पठानो को उकसाते हैं। य सभी प्रश्न इतिहासकारो द्वारा गवेषणा की अपेक्षा रखते हैं।

६—'गुरुविलास की एक यह भी विशेषता है कि यहा कवि ने गुरु जी के युग की राजनतिक धार्मिक एव सामाजिक परिस्थितियो का यथाथ चित्रण किया है और दिखाया है कि किस प्रकार पतित एव जजरित अवस्था म हिन्दुओ की रक्षाथ उन्ह खालसा की स्थापना करनी पडी और देश और धम की रक्षाथ युद्धो का सहारा लेना पडा। यवनो के अत्याचारो, हिन्दुओ की दुदशा एव असहाय अवस्था का कवि न यथाथ चित्रण किया है (५।१० १५, २२।४४ २२।२७) राजपूतो की हासोन्मुखी अवस्था पर भी यथार्थता से प्रकाश डाला गया है। उनका कथन है कि हिन्दुओ की दशा बडी दीन-हीन थी। असहाय, त्रस्त हिन्दू सिर न उठा सकते थे (२२।४४), डर और लोभ से

उन्हे चुप करा दिया जाता था (२२।२७, २५।७, १२।८५ ८८)। इसी प्रकार उस युग म प्रचलित हिन्दुओ की विविध साधना पद्धतियो—विशेष रूप से सिद्धो, नाथो, योगियो यतियो, मूर्ति-पूजको, सन्यासियो, देवी तथा अन्य अवतारो के उपासको और उनके बाह्याचारो, मिथ्याडम्बरो पाखडो एव अन्ध विश्वासो का ठीक वसा ही चित्रण किया गया है (२८।७० ८०, १२।१३३ ३४) जसा गुरु गोबिन्दसिंह ने 'अकाल उस्तुति' म किया है। मसदो के लोभ तथा पाखडो का भी यथाथ चित्रण हुआ है (११।२ ५, ७२, ११।४५ ६०) और इस्लामी सस्कृति के स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है (२२।१३३ ४८)। इन सबके बीच आनन्दपुर म जिस सास्कृतिक वातावरण का अभ्युदय हो रहा था, उसकी भी तथावत् झलक दिखाइ गई है। उस युग के दूषित वातावरण म कैसे गुरु जी सेवा, त्याग, मानव प्रेम, सतोष, दया, स्वाभिमान, स्वातत्र्य भाव एव नाम स्मरण आदि की उद्घोषणा कर रहे थे इसका विधिवत् प्रतिपादन इस ग्रन्थ म हुआ है।

ब्राह्मणो की जो पतित दशा थी वे कसे धन के लोभ से अपना 'दीन धम' को त्यागने म तयार रहते थे, यह एक भोज के आयोजन के माध्यम से प्रकट किया गया है, जहा वे धन के लोभ से मास मदिरा का आहार करते दिखाय गए हैं (८।१९ ३०)। निस्सदेह मुगलकालीन मध्ययुग के भारतीय समाज का चित्रण इस ग्रन्थ म सजीवता स हुआ है। कलिकाल के प्रभाव के अतगत कवि न इसे और भी स्पष्ट कर दिया है (२४।३६ ४०)।

यहा गुरु गोबिन्दसिंह का राजसी ठाठ बाट भी दिखाया गया है। जहाँ मत्री, दीवान चोबदार, राजतख्त आदि मौजूद हैं। इस प्रकार के वणना म जन मानस की भविष्याकाक्षा एव स्वातन्त्र्य भावना का आभास मिलता है।

७ एतिहासिकता का निर्वाह करते हुए भी कवि ने सवत्र गुरु गोबिन्दसिंह के गौरव की रक्षा की है। जहा कही युद्धो मे उनकी क्षति होनी दिखाई गई है, वहा भी कवि क्षति के साथ उनके शौय श्री, शक्ति आदि का महिमा-गान करता जाता है और कही-कही यहा तक कह देता है कि वे तो सब समथ हैं केवल नर लीला के लिए यह कर रहे हैं इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास की दृष्टि स इस रचना का विशिष्ट महत्त्व है लेकिन इस रचना के इतिवृत्त म उतनी यथाथता नही है जितनी 'अपनी कथा और गुर शोभा आदि म है। 'गुरु विलास' तक आते हुए गुरु गोबिन्दसिंह के अवतारत्व की स्थापना हो चुकी थी और उनके सम्बन्ध मे ऐसी अनेक अतिमानवीय घटनाओ का प्रचलन हो गया था जसा कि धार्मिक-पुरुषो के सम्बन्ध म प्राय होता है। यही कारण है कि गुरु विलास' के दशमगुरु इतिहास-पुरुष के साथ साथ अवतारी-पुरुष भी हैं। एक तो अनेक अतिमानवीय एव अलौकिक घटनाओ के समावेश से गुरुकथा को पौराणिक रूप देन का प्रयत्न किया गया है, दूसरे, रामायण तथा महाभारत के

अतिरिक्त विश्वामित्र (४।८१), समुद्र मथन (२२।६६), हरीश्चद्र (२।८१७६) एव कृष्ण लीला (२६।२-१०) आदि के पौराणिक प्रसग भी अवान्तर कथाओ के रूप म आए हैं और उनके माध्यम से कवि न युग की सास्कृतिक चेतना को दृढ किया है राष्ट्रीय भावना को उद्दीप्त किया है,गुरु कथा को उदात्तता प्रदान की है तथा हिन्दू सिक्खा की सास्कृतिक एकता का प्रतिपादन किया है। इन प्रसगो के सनिवेश से कथानक की सौष्ठव वृद्धि भी हुई है। दूसरे कवि ने किसी भी प्रसग को अनावश्यक विस्तार नही दिया। प्राय वे सक्षिप्त हैं और मुख्य कथा के साथ सुरुचि पूवक सम्बद्ध हैं। एक तरह से कथा के अग बन गए हैं। ये कथानक मे अवरोध उत्पन्न नही करत, वरन उसकी गति को गरिमामय बनाते हैं। इन पौराणिक प्रसगो म गुरु जी द्वारा देवी पूजा का एक एसा प्रसग है जा सिक्ख मत की मान्यताओ के प्रतिकूल है। 'गुर विलास' मे एक स्थान पर यह जरूर आया है कि गुर जी ने यह सब कौतुक दिखाने के लिए किया लकिन इसके साथ ही गुर जी की देवी आराधना,देवी के प्रकट होने, असुर सहार का वरदान पाने आदि का अत्यत विशद वणन इस ग्रन्थ मे हुआ है। सिक्ख मत म केवल 'अकाल पुरुष' की आराधना का विधान है,अन्य सभी देवी देवताओ या अवतारो की उपासना का निषेध है। गुर गोबिन्दसिंह ने स्वय 'अकाल उसतुति तथा अपनी अन्य रचनाओ म देवी देवताओ की आराधना का खण्डन किया है और इस प्रकार के देवी-देवताओ को ब्रह्म के चरणा का दास कहा है। गुरु गोबिन्दसिंह का एक पद जो देहि शिवा वर मोहि इहै'—से आरम्भ होता है, बडा प्रसिद्ध है। हमारा अनुमान है कि इस पद के आधार पर ही परवर्ती कवियो ने इस प्रसग की कल्पना कर ली है कि गुरु जी न देवी की आराधना की थी, और उसके प्रकट होन पर यह वर माँगा था। गुरु विलास तथा गुरु प्रताप सूरज' के रचयिताओ की यह कल्पना ज्ञान को पुराण का रूप देने वाली, भारतीय पौराणिक पद्धति का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है। देवी का यह प्रसग इन कविया की निजी समन्वय भावना का भी परिचायक हो सकता है।

८ गुरु विलास म गुरु जी के अवतारी रूप की स्थापना करने के लिए जहा कवि ने कथानक म पौराणिक प्रसगा का समावेश किया है वहा कई महत्त्वपूण एतिहासिक घटनाओ को भी पौराणिक रूप दिया गया है। यही नहा विभिन्न प्रसगा म विविध पात्रो के माध्यम से गुरु जी के अवतारत्व को भी स्वीकारा गया है तथा कवि स्वय भी इस तथ्य की घोषणा करता जाता है।

खालसा की रचना को पौराणिक रूप देते हुए कवि ने वह सम्पूण प्रसग उद्धृत किया है, जब गुरुजी सिक्खा को अपने पूव जन्म की सारी कथा सुनाते हैं कि किस प्रकार व हेमकूट पवत पर तपस्या कर रहे थे कि तुर्कों के अत्याचारा से दुखी पृथ्वी की पुकार पर 'अकाल पुरुष' ने उन्हें यहाँ भेजा और 'खालसा

रचने का आदेश दिया। वे यह भी कहते हैं कि मैं यहाँ वही कुछ कर रहा हूं जो कि मुझे 'अकाल पुरुष' ने करने का आदेश दिया और आगे भी वही करूँगा, जो 'उसकी' आज्ञा होगी। अर्थात् यह कार्य ब्रह्म आज्ञा का पालन करने के लिए किया जा रहा है इसलिए तुम पूरा विश्वास रखकर 'खालसा पंथ' को अंगीकार करो। पौराणिक रंग को और गहरा करते हुए कवि कहता है कि और कोई देव तो अपने भक्त को एक पदार्थ ही देता है—गुरुदेव ने खालसा को चारों पदार्थ देते देर नहीं की। पृथ्वी के शासन के सम्पूर्ण पौराणिक आख्यान का उल्लेख करते हुए वह लिखता है कि जिस पृथ्वी को हिरण्यकश्यप, परशुराम, बराह, बावन, रावण पाण्डवों एवं देवताओं ने अनेक प्रयत्नों के बाद प्राप्त किया, उसे खालसा को देते गुरु जी ने तनिक भी देर नहीं लगाई (१२।६०-६६)।

भंगानी युद्ध की ऐतिहासिक घटना को भी यहां पौराणिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है। भीमचन्द जब गुरु दर्शनों को आता है तो वह उनका भक्त हो जाता है। लेकिन गुरु जी स्वयं युद्ध के लिए उसका मन फेर देते हैं क्योंकि वे 'भूमि भार' उतारने के जिस उद्देश्य को पूरा करने के लिए आए हैं वह कभी पूरा न होता, यदि भीमचन्द से उनका संघर्ष आरम्भ न होता। अर्थात् उनकी स्वयं की इच्छा से ही वह युद्ध हुआ, जिसके मूल में उनकी उद्देश्य सिद्धि है—असुर-तुरक संहार, सत्य और धर्म की रक्षा, पृथ्वी का भार उतारना (५।२६० २८५)।

ब्राह्मण द्वारा गुरु पुत्रों को सरहिंद के नवाबों को सौंपने की घटना को भी धार्मिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है। ब्राह्मण ने यह कुकर्म धन के लोभ से किया था उसका वह धन भी नष्ट हो गया और तुर्कों ने उसका भी वध कर दिया (२१।२८१ २६१)। इसी तरह दुनीचन्द जब आनन्दपुर से उनका साथ छोड़ कर जाता है, तो पहले तो उसकी टाँग टूट जाती है फिर सर्प के डसने से उसका अन्त हो जाता है (१४।११७ १६७)। अर्थात् गुरुजी से विमुख होने पर यही दशा होनी है और नमक हरामी कभी सुखी नहीं रह सकता, यही कवि दर्शाना चाहता है।

औरंगजेब की मृत्यु को पौराणिक रूप में प्रस्तुत करते हुए कवि ने एक अनूठे प्रसंग की कल्पना की है। सिक्खों ने एक बार गुरु जी से कहा कि अब औरंगजेब का अन्त कीजिए—चाहे रण भूमि में खड्ग से चाहे कागज लिखकर (२२।११४ ११६) क्योंकि वह बड़ा दुष्ट है बली और छली भी है, जिसने वायदा करके दस लाख सेना को भेज दिया। औरंगजेब की मृत्यु का विवरण प्रस्तुत करते हुए कवि लिखता है कि ज्यों ही उसने दयासिंह से गुरु जी का पत्र लेकर पढ़ा उसके शरीर में ऐसा दुख व्याप्त हुआ कि उसी से उसकी मृत्यु हुई (२२।१६ ६६)। इसीलिए दयासिंह के वापिस लौटने को 'रण विजय' प्राप्त

करके लौटा कहा जाता है (२२।२००)। औरगजेब भी अपनी पुत्री जेबुन्निसा से कहता दिखाया गया है कि मुझे चारो ओर से खालसा मार रहा है (२४। १२ १४)।

गुरु जी बहादुरशाह की सहायता करते हैं और वह राज्य प्राप्त करता है। यहाँ कवि ने गुरु जी को राम समान और बहादुरशाह को विभीषण के समान कहा है। उसक शरण म आने से वे उसकी सहायता करते है (२५।६७ ६८)। यह भी कहा गया है कि उन दानो भाइयों का युद्ध पाडवा-कौरवो के युद्ध के समान था जिसम गुरु जी ने कृष्ण की भाति शाहबहादुर की सहायता की। ऐसी पौराणिक समानताएँ स्थापित करने से कथा का पौराणिक रग गहरा हो गया है।

गुरु जी जब पटन से काशी होकर पजाब आते हैं तो छोटी सी अवस्था म ही वे *वहा के ब्राह्मणा स वाद विवाद करक उन्हे प्रभावित करते हैं* और वे इनके सिक्ख बन जाते हैं (३।१६२ २००)।

बुरहानपुर म गुरुजी एक सत स मिलत हैं। वह सत उस घटना का स्मरण करता है जब गुरु तेगबहादुर ने उसे वर दिया था कि दशमगुरु उसे दर्शन म आकर दशन देंगे। चालीस वर्षों से वह प्रतीक्षा मे था। मानो पिताजी के वचनो का पालन करने क लिए ही गुरु जी वहाँ गए थे। उस सन्त के ये शब्द कि 'यह देश धन्य है आपने यहाँ प्रवेश किया' (२८।२८ ३३) तुलसी के राम के वन प्रवेश पर ऋषियो द्वारा कहे गए वचना की याद दिला देते हैं।

गुरु जी की मृत्यु का प्रसग भी पूरी तरह धार्मिक रग म रगा हुआ है। जिस प्रकार वे पठानो का हत्या के लिए उत्तेजित करते हैं और चालीस दिन तक दीवान लगाकर जिस प्रकार अपने प्राण त्यागते हैं—यह एक साधारण मानव की अपेक्षा अलौकिक पुरुष के लिए ही सम्भव हा सकता है। नन्देड म एक कबर थी, वे उसकी खुदवाई करवाते हैं और घोषणा करत ह कि 'सत, त्रेता द्वापर म *यह स्थान उनका था*। हाकिम के आदेश पर जब खुदवाई हुई *तो उनके* कथनानुसार नीचे स चौकी निकलती है और सूबेदार द्वारा उनके पक्ष म फैसला होता है। उनकी चिता म से न तो कोई अस्त्र शस्त्र मिलता है न अस्थिया हालाकि वे सभी आयुधा स सुसज्जित होकर चिता पर बठे थे। कवि के अनुसार वे पवन रूप होकर उड गए थ (१६।५६ अन्त, ३०।१ १०)।

कवि न गुरु जी की महत्ता भी स्थान स्थान पर स्थापित की है। गुरु महिमा का प्रतिपादन करते समय वह उन्हें 'अवतारी-पुरुष' कहता है (४।३३)। वह मनुष्य नहीं नाथ हैं (८।८७), अच्युत, अलख ब्रह्म हैं, (८।१०४, २२।६१, १०। १०२, १२।१२०, १२।६८) तथा कराडा ब्रह्माण्ड हैं उनके पाँव के नीचे (१२।७६ ८)। व पवन रूप हैं उनका कोई क्या बिगाड सकता है (१६। ८३), उनस विमुख की बडी दुर्दशा होती है (१५।१५६)। उनका शरीर पारस

रूप है। उनके सम्पर्क से सभी पारस रूप हो जाते हैं (२०।१४४ ४८) आदि।

इस तरह उनकी महिमा का कवि ने खूब गुणगान किया है, उनके अवतारी रूप का निरूपण भी किया है और उनकी अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन भी किया गया है।

'गुरु विलास' में आई हुई कुछ अलौकिक, अतिमानवीय एवं चमत्कारपूर्ण घटनाओं के संकेत यहां प्रस्तुत हैं—

१ बाल लीला में एक स्त्री को पुत्र का वरदान देते हैं और वह पूरा होता है (३।११८ २०)।

२ एक सिक्ख पारस लेकर आता है वे उसे जल प्रवाह में फेंक देते हैं उसके पश्चात वह सिक्ख जहां-जहाँ हाथ धोने जाता है उसे पारस, लाल, मूंगे, जवाहर ही नजर आते हैं (२०। १४४ ४५)।

३ मारे हुए पशुओं को जीवित कर देते हैं (८। ३५ ३६)।

४ गुरु जी के याद करने पर गंगा की सहस्रों धाराओं का आनन्दपुर में प्रवेश करना (२०। १४ १५)।

५ दोनों पुत्र सरहिन्द में शहीद होने के पश्चात माता जी के पास सूक्ष्म शरीर से उपस्थित होते हैं और उन्हें सावधान करते हैं (२१। १८० ८४)।

६ शरीर को भीम जैसा करना (२२।९८-१०१)।

७ एक शहीद आकर धर्मसिंह को अपना अद्भुत पराक्रम दिखाता है। उसके यह पूछने पर कि वह गुरु पुत्रों की शहीदी के समय क्यों नहीं आया, वह उत्तर देता है कि वह तो प्रार्थना करता रहा, गुरु जी ने आज्ञा ही नहीं दी (२८।१०० १०७)।

८- बठिण्डे से एक भूत को निकाला (२३ ९ ११)।

९ डल्ले के मांगने पर बपा करना (२३।५०-६४)।

१० दूत के सूचना देने पर कि तारा आजम ने शासन संभाल लिया है, गुरु जी कहते हैं कि वह तो हम पहले ही बहादुरशाह को दे चुके हैं (२४।८०) और वे बाद में ऐसा करते भी हैं।

११ बहादुरशाह की सहायतार्थ गुरुजी के सिंघ आते हैं और युद्धोपरांत गुरु सेना लुप्त हो जाती है। तारा आजम की जिस तौर से मृत्यु हुई वह गुरुजी का निकला। सभी को आश्चर्य था कि गुरु जी वहाँ कैसे आए। जब गुरुजी को यह प्रसंग सुनाया जाता है तो वे कहते हैं कि हम तो यहीं थे। कवि का कथन है कि गुरु जी ने दो रूप धारण करके यह चमत्कार किया (२५।१०३ १३५)।

१२ राजस्थान यात्रा में शहीद हुए पुत्रों से भेंट (२७।१० २०)।

१३ अपनी मृत्यु की पूर्व सूचना देना—'अगले महीने तमाम कूच कर जाएंगे (२८।१२४)।

१४ चिता म से कुछ न मिलना (१०।६६ ७१)।

इस प्रकार की अतिमानवीय घटनाओ का 'गुरु सोभा' तथा 'विचित्र नाटक' म सवथा अभाव है। इसका मुख्य कारण यह है कि 'गुरु विलास' म कवि का सत्य ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करना इतना नही है जितना गुरुमहिमा का वणन एव उसके माध्यम से धम प्रचार करना। यहाँ मुसलमान पीर भी गुरु जी की वदना करते हैं (४।३४ ४०) काशी के ब्राह्मण उनसे प्रभावित होकर सिक्ख हो जाते हैं (३।१६२ २०८) भीमचद दशन मात्र से उनका भक्त हो जाता है (५।२६० २८५), हडूरिया भी उन्ह राम कृष्ण समान कहता है (७।१८ १६)। सरहिद के नवाबो को उत्तर देते हुए उनके पुत्र भी कहते हैं कि व तो पवन रूप हैं उन्हें कौन मार सकता है। बहादुरशाह भी उनके पावो म पडकर कहता है कि यह तख्त आपने ही दिया है आपकी कृपा से ही मैं विजयी हुआ हू (२६।१०० १०३) काजी भी धन्य धन्य कहते हैं और स्वीकार करते हैं कि वे 'पूण' हैं। शाह भी यह मानता है कि वे तीनो लोको के स्वामी हैं (२६। १८४)। गुरु तेगबहादुर भी उनके जन्म पर यह घोषणा करते हैं कि "यह सत्य की पताका लेकर सच्चा पातशाह आया है (२८।२०)। वह असुरो का सहार करेगा पाखडो का खण्डन करेगा और सत्य का प्रचार करेगा (२८।२४ २५)।

६ इस प्रकार के धार्मिक वातावरण से क्या विन्यास म किसी प्रकार की विषमता या विशदता नही आई। आखिर यह एक काव्य ग्रन्थ है, इतिहास नही और कवि को अपनी इच्छा एव लक्ष्य सिद्धि के अनुसार ऐतिहासिक इति वृत्त का भी सशोधन, परिवतन परिवधन करने की पूरी स्वतन्त्रता होती है। उसकी निरूपण पद्धति और दिशायें इतिहासकार से सवथा भिन्न होती है। अस्तु ये पौराणिक प्रसग इतिहास को पौराणिक रूप देने का यह आग्रह, कथानक मे अतिमानवीय घटनाओ का समावेश और गुरु जी का महत्त्व स्थापन कवि की सास्कृतिक चेतना के स्वरूप को उजागर करते हैं और कथानक को उदात्त बनाते हैं। इससे 'गुरु विलास' का ऐतिहासिक महत्व कम नही होता, क्योकि गुरु-जीवन से सम्बन्धित जो घटनाए इसमे वर्णित है उनका ऐतिहासिक महत्व भी बहुत अधिक है और सिक्ख इतिहासकारो के लिये वह बहुत उपयोगी रहा भी है। सन्तोखसिंह ज्ञानसिंह एव अन्य परवर्ती सिक्ख कवियो ने भी इस ग्रन्थ म वर्णित घटनाओ को ही और अधिक विस्तृत, विशद एव काव्यमय रूप म प्रस्तुत किया है और इस दृष्टि से गुरु विलास उनके लिय उपजीव्य काव्य के रूप म उपयोगी रहा है।

१० यह स्वीकार करने म हम तनिक भी सकोच नही है कि धार्मिकता के आग्रह के कारण कथानक की मार्मिकता को क्षति अवश्य पहुची है। गुरु जी के ..ना त्यागने पर नगर निवासियो का वियोग, गुरु तेगबहादुर का बलिदान,

दशमगुरु का आनन्दपुर त्याग, गुरु-पुत्रो की हत्या तथा गुरु जी का परलोक-गमन सिक्ख इतिहास की कुछ ऐसी घटनाएँ हैं जिनका 'गुरु प्रताप-सूरज' मे अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है, लेकिन 'गुरुबिलास' मे इन प्रसगो को धार्मिक रग से इतना रग दिया गया है कि उनकी मार्मिकता नष्ट हो गई है। आनन्दपुर त्यागने की विकट स्थिति का जो वर्णन कवि ने किया है, उसमे भी मार्मिकता कम, इतिवृत्तात्मकता अधिक है। गुरु जी के चरित्र की रक्षा मे तथा उनके महत्व स्थापन के आग्रह मे परिस्थिति की करुणा उभर कर सामने नही आती। इसी तरह गुरु-पुत्रो की हत्या का समाचार सुन कर माता जी धैर्य से उस कष्ट को सहती हैं। उनकी शोकाकुल अवस्था का तनिक आभास भी नही मिलता। जब गुरु-पुत्र सूक्ष्म शरीर से उनके सम्मुख उपस्थित होते है तो वे भी अपने शरीर को त्यागने की इच्छा प्रकट करती हैं और गुरु पुत्रो के इस सकेत पर कि टोडरमल वाली अगूठी गुणकारी है वे इसके हीरे से अपने प्राण त्याग देती हैं (२१।२८०-८४)। 'गुरु प्रताप सूरज' के कवि ने इस प्रसग को अत्यन्त मार्मिक रूप मे प्रस्तुत किया है। वहा माता जी अत्यन्त दुखी होकर अपने बाल नोचती है और छाती पीटती हुई बेहाल हो जाती हैं (गु० प्र० सू० ६।५८।२६-३४), जिससे उनकी शोकाकुल अवस्था का सही अन्दाजा लग सकता है। काव्यत्व एव स्वाभाविकता का तो यही तकाजा था, मगर 'गुरु बिलास' का कवि यह सहन नही कर सकता कि उनके चरित्र नायक की पत्नी इस प्रकार की विह्वलता प्रदर्शित करे। इससे वह अपनी धर्म भावना की रक्षा भले ही कर पाया है, काव्यत्व की क्षति हो होनी है। इसी तरह गुरु जी जब पटने से पजाब की ओर प्रस्थान करते है तो उनके प्रेमी जनो की विरह दशा चित्रित करने के स्थान पर नानाजन से उन्हें शान्त कर दिया गया है (३।१६६-७५)। इस प्रसग के अन्तर्गत भी गुरु प्रताप-सूरज के कर्त्ता भाई सन्तोखसिह ने उनके बाल सखाओ और एक वृद्धा के मनोवेगो की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यञ्जना की है (गु० प्र० सू० १२।४२।३५)। 'गुरुविलास' मे विचित्रसिह की वीरता त्याग, दृढता, गुरु भक्ति, निर्भीकता एव आत्म समर्पण से ओतप्रोत कुछ प्रसग ऐसे जरूर हैं जिनसे कथानक की श्रीवृद्धि हुई है लेकिन माता जी के कहने पर गुरु जी का कुछ समय के लिए ही सही जनेऊ धारण कर लेना तथा माता जी द्वारा 'खालसा' रचना का पूर्व सकेत असगत ही नही गुरमत विरोधी भी हैं (५।१८२) और ऐतिहासिक दृष्टि से भी दोषपूर्ण हैं। यहाँ कवि की समन्वय भावना इतना जोर पकड जाती है कि वह इतिहास की सर्वथा उपेक्षा कर देता है और कथानक मे दरारें दिखाई देने लगती हैं।

गुरु-जीवन पर आधारित अन्य प्रबन्ध-काव्यो—'गुरु शोभा' (पूर्ववर्ती) और 'गुरु प्रताप सूरज' (परवर्ती) से यदि 'गुरु बिलास' की तुलना की जाए तो हम देखते हैं कि "'गुरु शोभा' की अपेक्षा 'गुरु बिलास' का वृत्त अधिक व्यापक

और विशद है। इसमें प्रबन्धात्मकता भी उससे अधिक है और युग परिस्थितियों का चित्रण भी अधिक विस्तार से हुआ है। लेकिन जितनी यथार्थता उसमें है उतनी इसमें नहीं। हाँ, सांस्कृतिक दृष्टि से इस रचना का उससे अधिक महत्त्व है, यद्यपि सिक्खमत के सिद्धान्तों का निरूपण उसमें भी कम नहीं हुआ। अन्तर इतना है कि उसमें सैद्धान्तिक कथन है इसमें कथा के माध्यम से उनका प्रतिपादन। गुर प्रताप सूरज में इन दोनों ग्रन्थों की विशेषताओं का समन्वय हुआ है। उसमें कथा सौष्ठव भी है यथार्थता भी है और सिद्धान्त निरूपण भी है। सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से भी उसका विशेष महत्त्व है। उसका युग चित्र इन दोनों से अधिक विशद एवं व्यापक और दृष्टिकोण अधिक सन्तुलित एवं पुष्ट है। काव्यत्व भी उसमें इन सब से अधिक है। वस्तुतः, गुर विलास इन ग्रन्थों के बीच की कड़ी का कार्य करता है।

वीर रस

'गुर विलास गुरु गोबिन्दसिंह के जीवन पर आधारित एक कथा प्रधान प्रबन्ध-काव्य है लेकिन प्रबन्ध काव्य होते हुए भी यह 'वीरकाव्य' के बहुत निकट है। इसका अंगी रस भी वीर ही है। ग्रन्थ का आरम्भ ही वीर रसात्मक वातावरण से होता है, जहाँ कवि अकाल पुरुष तथा गुर गोबिन्दसिंह के साथ खड्ग आदि अस्त्र शस्त्रों की भी वन्दना करता है जो जगत उधारन भ हरने हेतु' कृपासिंधु करतार की देह से प्रकट हुए।[1] दशमग्रन्थ की भाँति यहाँ भी कवि ने ब्रह्म का स्मरण खड्गकेतु, गसिभुज असिपाणि आदि नामों से किया है[2] और जिस प्रकार शस्त्रनाममाला' में ब्रह्म की विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों से एकरूपता का प्रतिपादन किया गया है[3] उसी प्रकार यहाँ भी खड्ग और खड्गकेतु (ब्रह्म) को एक रूप माना गया है।[4]गुर जी का अवतार भी भूमि भार उतारने (१।६२ १२०-१२१) तथा तुरका-मलेच्छों का नाश (८।६१) करने अथवा संतों एवं गो-ब्राह्मण (२।५ ७) की रक्षा करने के लिए हुआ कहा गया है। गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा खालसा की स्थापना भी इसी उद्देश्य की पूर्ति

---

१ जगत उधारन भ हरन क्रिपा सिंध करतार।
प्रगट तवन की देह ते भय सकल हथीआर। (१।२१)

२ खड्गादिक हथियार जो भये होहिंग अन।
इह सब की बसावली शस्त्र उरबसी धन। (१।२३)

३ तुमी गुरज तुम ही गदा तुम ही तीर तुफंग।
दास जान मोरी सदा रच्छ करो सरबंग। १३। (शस्त्रनाममाला)

४ खड्ग केत अर खड्ग महि तनिक भेद नही कोइ।
स्री आनन सो मुख कह्यो एक रूप करि दोई॥ (गु० वि० १।२२।)

के लिए की गई कही गई है (११।५०-७७)। खालसा का रूप भी वीर रसात्मक है (१२।८३-६०)। गुरु जी अपने पूर्व जन्म की कथा सुना कर भी इसी ओर संकेत करते हैं कि उन्हें 'अकाल पुरुष' ने 'युद्ध करने' और दुष्टों का नाश करने के लिए भेजा है[1] क्योंकि वे 'अकाल पुरुष' की इच्छा से ऐसा कर रहे हैं (६।३२५) और लोक-मंगल के लिए कर रहे हैं इसलिये इसे उन्होंने 'धर्मयुद्ध' की संज्ञा दी है और उनका कहना है कि इस धर्मयुद्ध के समान और कोई पुण्य कर्म नहीं है।[3]

१ जन्म काल से ही कवि ने उन्हें वीर वेश धारी दिखाया है (५।१७१, ३।६०-६२)। खड्ग से उन्हें इतना प्रेम है कि यही उनके लिए जनेऊ है (५।१८४-८५) जिसे स्वयं 'अकाल पुरुष' ने उन्हें दिया है (५।८६-८८), इसीलिये वे इसे ब्रह्मा विष्णु से भी बड़ी मानते हैं (५।१८४-८५)। अपने परलोक गमन के समय भी वे सभी अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर चिता पर बैठते हैं (३०।१८-१९) और खालसा को सदा खड्ग साथ रखने और उससे तुर्कों का सामना करने का आदेश देते हैं।[4]

वैसे भी गुरु जी को युद्ध धर्मी क्षत्रिय वंशी (सूर्यवंशी) बताया गया है और उनका विश्वास है कि पृथ्वी की प्राप्ति सिर दांव पर रखने से ही होती है (२५।४६-५०)। अत्याचारी की ईंट का जवाब वे पत्थर से देना ही उचित समझते हैं (२४।३३-३५)।

२ गुरु विलास में यद्यपि उनके सम्पूर्ण जीवन की कथा चित्रित है तथापि उसमें युद्धों की ही प्रधानता है और अधिक विस्तार भी युद्ध-कथा वर्णन को ही दिया गया है। इसका लगभग एक तिहाई भाग युद्ध कथाओं से आपूरित है। अन्यत्र भी उनके वीर आचरण एवं वीर रसात्मक रूप का आख्यान ही अधिक है। रचना का उद्देश्य एवं स्वरूप उस समय और भी स्पष्ट हो जाता है जब वे स्वयं युद्ध के लिए भीमचन्द का मन फेरते दिखाये जाते हैं (५।२६०-२८५) और 'गाफल गंज सत हितकारी" (५।१६७) आदि से उनका स्मरण किया जाता है।

३ इस विवेचन से स्पष्ट है कि गुरु जी वीर-पुरुष थे और गुरु विलास' की कथा एक सत्य वीर की गौरवमयी वीरगाथा है। सत्यवीर इसलिए कि उनके

१ जुद्ध करन जग मे हम आए। खड्ग केतु गुरदेव कहाए। ।५।४३५।
२ इन सब अवर बात न काइ। दीन सनाथ को जुद्ध सो भाइ ।१४।६३।
३ धर्म जुद्ध सम अवर न नाथा ।५।८०२।
४ शस्त्र से प्रेम करे नाम स्मरण करे—वह खालसा ।१२।१६४।
प्रगट खालसा पंथ भणीजै। जहाँ रहत जर सकल लहीजै।
समश्र असत्र संग करै प्यारा। निस दिन भजै नाथ निरंकारा।१२।१६३-६४

युद्ध धम युद्ध' थे जो उन्होने असत्य, अत्याचार और अधम के विरुद्ध सत्य, न्याय और धम की स्थापना के लिए लडे थे। जिनका आयोजन उन्होंने किसी व्यक्तिगत स्वाथ के लिए नही वरन भूमि के उद्धार सन्ता के सुख और गो-ब्राह्मण आदि की रक्षा के लिए किया था। यही कारण है कि उनके वीर आचरण म उदात्तता है। यहा हम यह नही भूलना चाहिए कि वे केवल युद्धजीवी व्यक्ति नही थे वरन एक आध्यात्मिक महापुरुष थे। इसलिए युद्ध के समय भी वे नाम स्मरण को विस्मृत नही करत थे। उनक खालसा का भी यही आदश है *कि हाथ म खड्ग, मुह म हरिनाम। भयकर युद्ध के समय भी वे हरि नाम* को विस्मृत नही करते थे। चारण पद्धति पर रचित सामन्तीय वीरकाव्यो से यह इस काव्य की विशिष्टता है।

४ गुरु विलास मे गुरु गोबिन्दसिह से सम्बन्धित उन सभी युद्धो का वणन हुआ है जिनका उल्लेख बिचित्र नाटक, गुरु शोभा अथवा जगनामा गुरु गोबिन्दसिंह' मे मिलता है। अन्तर केवल इतना है कि यहा युद्ध-कथाओ मे विशदता विस्तार और पूणता अपेक्षाकृत कही अधिक है। गुरु विलास म वर्णित प्रमुख युद्ध है—भगानी युद्ध नादौन युद्ध, आनन्दपुर युद्ध, स्याही टिब्बी, चमकौर युद्ध एव खदराना युद्ध। युद्ध-कथा विस्तार की प्रवृत्ति यहा इतनी प्रबल है कि बाधौर जसे छोटे से सघष को भी कवि ने महायुद्ध का रूप दे दिया है और औरगजेब के पुत्रो के युद्ध को महाभारत के समान कहा है।

५ 'दसमग्रन्थ तथा गुरु शोभा' मे युद्धा के प्रहार प्रतिप्रहार का चित्रण अधिक है। वहा युद्ध कथाओ की अपूणता कही कही खटक भी जाती है विशेष रूप से युद्ध के समुचित कारणो के अभाव म गुरु गोबिन्दसिह के सभी युद्धो का पूरा औचित्य स्थापित नही हो पाता। इसके विपरीत 'गुरु विलास मे युद्ध कथा का क्रमिक विकास पूरे ब्योरो के साथ दिखाया गया है। यहा प्रत्येक युद्ध का कारण भी मौजूद है और उसकी सभी घटनाओ का पूरा विवरण भी प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के रूप मे भगानी युद्ध का कथा यहा दी जा रही है जिससे यह स्पष्ट हो जाएगा।

६ आरम्भ मे कवि ने इस युद्ध की पृष्ठभूमि और सभी कारणो पर विस्तार स प्रकाश डाला है। यवनो के अत्याचारी शासन स अपना विरोध प्रकट करने के लिए गुरु जी ने अपना नगारा बजवाया। राजा भीमचन्द उसकी ध्वनि से भयभीत होकर गुरु जी क दशनाथ आया और उनक सफेद हाथी को देखकर उसका मन ललचा गया। इस हाथी को उसे न देना ही उनके सघष का मुख्य कारण बना। यहाँ कवि न गुरु जी के युद्ध का उदात्त रूप प्रदान करन के लिए कथानक म थोडा धार्मिक तत्त्व समाविष्ट कर दिया है और गुरु जी को स्वय भूमि भार उतारने के उद्देश्य से भीमचन्द को युद्ध के लिए प्रेरित करते दिखाया है (२।२६० ३००)। इसस ऐतिहासिक घटना

मे तो कोई परिवतन नही ग्राता, लेकिन रस के ग्रास्वादन मे यह परिकल्पना ग्रवश्य सहायक होती है ग्रौर उसे उदात्तता प्रदान करती है। यहा कवि ने भीमचन्द के राजपूती ग्रहकार का भी उल्लेख कर दिया है (५।३८०) जो रस निष्पत्ति मे उद्दीपन का काय करता है।

भीमचन्द ग्रपने पुत्र के विवाह के लिए गुरुजी से सफेद हाथी मागने ग्रपना दूत भेजता है (५।३१२ ३२२) जिसके सम्बन्ध म कवि ने लिखा है—इम बैन गाव महादूत दोखी, रिद पाप पूरमु खखोट चोखी (५।३१८) ग्रर्थात् उनके इस प्रस्ताव म निहित कुचक्र का सकेत पाकर गुरुजी वह सफेद हाथी देने से इन्कार कर देते हैं ग्रौर यही से गुरु जी के साथ भीमचन्द का सघष प्रत्यक्ष रूप से सामने ग्राने लगता है। यह नकारात्मक उत्तर पाकर भीमचन्द ने हरीचन्द हडूरिया सुकेत तथा मडी ग्रादि के ग्रन्य सहायक राजाग्रो को एकत्र किया ग्रौर गुरु जी को यह सन्देश भेजा —

किधौ नाग दीजै। नही जुद्ध कीजै।
ग्रस बाण गोली। करो जुद्ध होली (५।३८६)

सत-योद्धा गुरु गोविन्दसिंह ने इस चुनौती को तत्काल स्वीकार किया ग्रौर ग्रोजस्वी शब्दो मे युद्ध के लिए निमन्त्रण दे भेजा। धय, दृढता पौरुष ग्रौर शौय से ग्रोतप्रोत उनका यह उत्तर द्रष्टव्य है —

गुरु को सु धाम। इछा दैन काम।
तुम जैस गाई। हमू चीत भाई। ५।३८०।
कहा ग्रौर जाना। लरगे टिकाना।
डरे फील देना। ग्रस हाथ लेना। ५। ३८१।

इसके पश्चात् गुरुजी नाहन के राजा के निमन्त्रण पर ग्रधिक सुरक्षित स्थान पाऊटा मे ग्रा जाते हैं ग्रौर भीमचन्द के पुत्र की बरात जिस समय श्रीनगर जा रही थी तो ग्रपनी सीमाग्रो के ग्रतिक्रमण के कारण उनके पुत्र को पकड लेते हैं यद्यपि उसे तुरन्त ही छोड दिया जाता है (६।१७४ ६०) लेकिन विरोध ग्रौर भी बढ जाता है। नद चन्द ग्रौर दयाराम को तबोल देकर श्रीनगर भेजा जाता है (५।१४८) जिसकी ग्रस्वीकृति युद्ध को उत्तेजित करती है। वस्तुत, उन्हे वहा भेजना ही एक 'युद्ध नीति' थी क्योकि इस प्रकार गुरुजी शत्रु पक्ष की स्थिति का भेद जानना चाहते थे (६।१६६)। इसके पश्चात् कवि श्रीनगर मे पहाडी राजाग्रो की कूट मन्त्रणा, दोनो ग्रोर से युद्ध की तैयारी (६।१६५ ६७) पठाना द्वारा गुरुजी का साथ छोडकर चलेजाने (६।१७४ १६०), विभिन्न ग्रस्त्र शस्त्रा (५।३६४), रण वाद्यो (६।२४५), सनिका के व्यक्तित्व युद्धोत्साह ग्रादि का परिचय देता है। यहाँ विशेष रूप से कवि न स्वामीधम के महत्व का प्रतिपादन करते हुए (६।१८७ ८८), गुरु-पक्ष के सगोशाह, जीतमल, गुलाबसिंह गगाराम, मोहरीचन्द ग्रादि विशिष्ट योद्धाग्रो के शौय,

साहस, धैर्य एवं निर्भीकता आदि का चित्रण किया है (६।१४८)। गुरु जी का वीरता एवं उनके रणकौशल का चित्रण भी कर दिया जाता है (६।२३६ २४१ २८ ३०)। इससे दो लाभ होते हैं। एक तो पाठक को गुरु जी की अद्भुत अलौकिक सिद्धि का स्मरण रहता है दूसरे गुरु जी के शौर्य का प्रारम्भिक विवरण भी दृढ़ होता है। इस प्रकार युद्ध का पूरा वातावरण प्रस्तुत हो जाने पर रणजीत नगारे की ध्वनि (६।२४८) इस युद्ध भूमि में [illegible] गरजती है। इसके पश्चात् कवि युद्ध भूमि का सजीव चित्रण करके (६।२५०) युद्ध वर्णन, योद्धाओं के प्रहार प्रतिप्रहार, उनकी भिन्न भिन्न क्रियाओं के वर्णन में संलग्न हो जाता है (६।२६६ ६८ ३३३)। अन्त में योद्धा के समान युद्ध करते [illegible] द्वन्द्व युद्ध [illegible] चित्रण यहीं [illegible] हुआ यद्यपि युद्ध गाथा एवं 'बचित्रनाटक' की भांति इस वर्णन में विस्तार अधिक हो है। युद्ध भूमि के विकराल एवं भयावह दृश्य भी प्रस्तुत किये गये हैं और भूत प्रेत तथा योगिनि आदि का नाचना भी दिखाया गया है (६।२८२ ६८)।

युद्ध समाप्त होने पर कवि एक बार फिर गुरु जी का इस ओर संकेत करते दिखाता है कि ईश्वर इच्छा से ही यह युद्ध लड़ा गया है और उसकी कृपा से ही उन्हें सफलता प्राप्त हुई। वे यह भी कहते दिखाये गये हैं कि उन्हें मजबूर होकर यह युद्ध करना पड़ा क्योंकि विरोध पहले उनकी (राजाओं) ओर से प्रकट हुआ। पहले उन्होंने जोर जबरदस्ती हमारा हाथी लेना चाहा हम यह स्थान छोड़कर आ गए, तो यहाँ आकर संघर्ष ठान लिया' (७।२१ २३)।

इस प्रकार के वक्तव्य से युद्ध कर्म के औचित्य एवं लक्ष्य के महत् और मंगलकारी होने से तथा स्पृहणीय भावों के सन्निवेश से रस सृष्टि सहज हो जाती है और उसकी उदात्तता की पुष्टि होती है।

६ जिस प्रकार भंगाणी युद्धकथा में पूर्णता एवं सजीवता के दर्शन होते हैं उसी प्रकार की सजीवता, ओजस्विता एवं विशदता अन्य युद्धों के वर्णनों में भी देखी जा सकती है। आनन्दपुर तथा चमकौर आदि के युद्धों में युद्ध चित्रण के अतिरिक्त पहाड़ी राजाओं का औरंगजेब के पास शिकायत करना और कैसे वे मनोवैज्ञानिक ढंग से उसे गुरु जी के विरुद्ध उकसाते और उत्तेजित करते हैं (१४।१५।३४ ३६) उसका क्रुद्ध होकर अपने अमीरों को गुरु जी के विरुद्ध बीड़ा उठाने को पुकारना (१४।४१) उनके उन्मूलन के लिए अपने पुत्र को सेना देकर भेजना (१४ ४२ ४४) सेना प्रस्थान असंख्य सैनिकों के कारण मार्ग के नदी कूपों का सूखना (१४।४६) (जिससे उसकी विशालता का संकेत मिलता है), गुरु जी को संगतों द्वारा उसकी सेना प्रस्थान की सामयिक सूचना भेजने (१४।५० ५४) गुरु जी की तैयारी (२० २१), योद्धाओं की रण सज्जा (२०।२ २४) युद्धोत्साह (२०।२४ २५), घेरा डालना (२२।३२ ३८), मोरचे लगाना (२० २१ २५), घेरकर सैनिकों को मारना (२०।१६), युद्ध

भूमि की विकरालता (२०।३४), मन्त्रणा (२०।३५ ३७), कई महीने तक दुर्ग का घेरा पडे रहने के कारण भीतर के सैनिको की अन्न जल के अभाव म सकटापन्न स्थिति (२२।३७ ३८), रात को धावा बोलन और रात्रि के अध ार मे निकट के गावो से लूट कर अन्न लाने (२०।६१), फूल-पत्तो पर गुजारा करने (२०।६७), ईटो पत्थरो की गाडिया भेजकर शत्रु का विश्वास परखने (२०।२१), वेश बदलकर दुर्ग से निकलने (चमकौर) एव शकुन अपशकुन विचार (२१।१ १०) आदि का वणन किया गया है।

७ सुक्खासिंह ने युद्ध-कथा का इतिवृत्त मात्र ही नही दिया अपितु सेना क प्रस्थान, वीरो की वेशभूषा एव रण सज्जा, आक्रमण करने विभिन्न अस्त्र शस्त्रो से प्रहार प्रतिप्रहार, वीरो के व्यक्तित्व उनकी युद्ध कुशलता शस्त्र सधान निर्भीकता, साहस एव शौय, गर्वोक्तियो अनुभावो अमप एव आदश, युद्ध विधि, युद्ध की सकटापन्न स्थिति तथा युद्ध भूमि की विकरालता आदि के भी अनेक सजीव एव यथाथ चित्र अकित किय हैं।

८ मुगलो की विशाल एव शक्तिशाली सना का वणन कवि ने इस प्रकार किया है —

जो मलेछ क घर महि सना। सभ आई पकज पर नना।८०
धरनी गगन एक ह्वै गयो। हाथ पसार दिसट नह अयो।
उडी धूर छाई असमाना। जन भुम्र गगन सु कीओ पयाना।८१
कारे पीरे भूरे तुरक। सिहल सजोव सीस धर बुरक।
रूमी रूमी ह्वस पिशोरी। काबल गजनी जिह ग्रिह ठौरी।८२
बलख बखारा इरानी किते। हरेव कधारी मरवगी हुते।
ठट्टा और कसमीरी बदर। सब आए रन के जो अन्दर।८३
वाई धार राव अरु राने। गूजर रगड कौन बखाने।
घेरा परयो सभन को आई। सागर ज्यो दल चहु दिस धाई।८४
(२१।८० ८४)

रूमी रूमी, ह्वसी, पिशोरी काबल, गजनी बलख बखारा, ईरान कधार कश्मीर आदि की विभिन्न जातियो के काले पीले, भूरे रग के तुक गूजर रघड आदि सभी राव राणो को साथ लकर शस्त्र सनद्ध होकर जब कच्चे मार्गों पर विशाल सेना-समूह के चलने स धूर उड कर आकाश म छा गई, उस समय ऐसा लगता था मानो पृथ्वी और आकाश एक हो गया हो अथवा पृथ्वी उडकर आकाश की ओर चली जा रही हो। इस विशाल सेना-समूह को कवि ने सागर क समान कहा है। जब उसने चारो ओर से चमकौर का घेर लिया, उस दृश्य का वणन रूपक के माध्यम से इस प्रकार किया गया है —

मद्धि जहाज मनो चमकौर। प्रगट नीर ज्यो दल चहु ओर।
नामहि राजत गिर बड जान। याम दलपत गिरस पछान।८५।

वा म वारन दिपै विवान। याम अनगन है गजभान।
सागर घाप उतै घन घोरा। या म दुदभ बई सजारा।८६।
मच्छ कच्छ उत अधिक गनन। पदल सेना इत निग्रत।
वाक जल मे विरख तरग। या म वरछी चमक ग्रनग।८७।
निरख प्रभू चरि ऊच ग्रटारी। सीमुग सौ इम कहियो सुधारी।
अधिक सन कछु वार न पारा। दिसो मलेछ क्या जो कारा। (२६८।८)

हाथी घोडो पदलो से युक्त असख्य सेना का सागर के रूप म यह वणन उसकी विशालता का ग्रत्यन्त स्वाभाविक एव यथाय चित्र प्रस्तुत करता है। इसी तरह उसकी शक्ति एव ग्रातक का वणन भी बडी कुशलता से किया गया है उनकी सेना की सख्या की ग्रतिशयता को प्रकट करने के लिए कवि ने तारो और वर्षा की बूदो का उपमान रूप म प्रयोग किया है जो वडा ही साथक एव व्यजक है। गुरु जी की युद्ध की तयारी एव रण सज्जा का भी सजीव चित्रण किया गया है।

६ इसी तरह गुरजी तथा ग्र य शूरवीरो की वीर वेशभूषा एव शस्त्र सन्नद्ध होने का भी कवि ने चित्रात्मक वणन किया है।

१० अस्त्र शस्त्र, रण वाद्य आदि—गुर विलास म प्राय सफ, सरोह, पेटी खजर टोप ग्रस कटारी गोली, तुफग, तोप, वान निपग, भाले, साग धनुप त्रिशूल, जबूरे जमधार कृपाण खडग सिलीमुख, ढार वरछा, तबर, सूल नेजा तलवार, गदा चक्र, तेग ग्रादि विभिन्न ग्रस्त्र शस्त्रो (५। ३६४, ६।८६, ६।२४८ ८।५१ १४।६८ ६६ २२।१२१ २५।८६) क प्रहारो एव सुतरी, दुदभ, ढोल, सख घोष बम्ब नगारो आदि रणवाद्यो (२५।८७ ६।२४५) के वजने का वणन हुआ है। ये सभी ग्रस्त्र शस्त्र तथा वाद्य दशम ग्रथ' मे भी प्रयुक्त हुए हैं और उस युग के प्रचलित, प्रसिद्ध एव उपयोगी ग्रायुध हैं।

११ युद्ध चित्रण—सैन्य प्रस्थान, युद्ध की तयारी योद्धाओ की रण सज्जा तथा रण-वाद्यो का तुमुल नाद वीरो का उद्दीप्त ही करते हैं उनके उत्साह की वास्तविक व्यजना तो युद्ध के प्रहार प्रतिहार तथा भीषण मार काट म ही होती है जहा उनके शौय, साहस दृढता, धैय निर्भीकता ग्रादि की परख होती है। वीर रस की यथाय व्यजना भी युद्ध के इन्ही प्रसगो म होती है। गुर विलास' म युद्ध कथा की पूणता से प्रस्तुत करने की ओर ग्रधिक ध्यान दिया गया है और युद्धो की भिडन्त का निरुपण दशमग्रथ' की तुलना म ग्रपेक्षाकृत कम है, तथापि सनाओं की भिडन्त तथा योद्धाओ की युद्ध कुशलता एव शौय प्रदशन ग्रादि के ग्रनेक ग्रोजस्वी चित्र इसम उपलब्ध हैं। चमकौर युद्ध स एक उदाहरण दखिए —

इहै वन सार कृपासिध गाई। मचियो जुद्ध भारो परी या लराई।
निज सावधान सर्भै कौ कराई। दए शस्त्र ग्रसत्र जुमो जाग जाई।२१।१०१

नही। तोप बरछा, तीर, तुफग आदि के प्रहार के बडे ही ओजस्वी चित्र इसम देखे जा सकते है। तोप युद्ध का वणन करते हुए कवि लिखता है कि—'असख्य तोपो के छूटने स वहा ऐसा अधकार व्याप्त हुआ कि हाथ भर दूर की वस्तु दिखाई नही पडती थी। पृथ्वी और आकाश भी दिखाई नही देते थे। कभी नीचे और कभी आकाश की ओर तोपों का चलाया जा रहा था। यवना की तोपो के चलन पर गुरु जी ने भी अपनी जबरजग तोप मगवा ली जिसकी आवाज बिजली के कडकने के समान थी और जो भयकर ज्वाला उगलती थी। गुरुजी की आज्ञा से जब उसमे गोला डालकर दागा गया तो उसका भीषण नाद सुन कर सनिक चारो ओर भागने लगे। कोई ऊपर उड गया तो कोई नीचे की ओर छिप गया। शत्रुओ की जितनी भी तोप छूटी, सभी विफल गई। कुछ गरज कर आकाश की ओर चली जाती थी और कुछ पहाड पर जा गिरती थी। गुरुजी की तोप ने कितने ही शत्रुओ के सिर उडा दिये। क्या अश्व क्या हाथी जो भी उसके सामने आता था, ठहर नहीं पाता था।'[1] इसी प्रकार तीरो के चलने और उनसे योद्धाओ के अगो के क्षत विक्षत होकर गिरने के अनेक सजीव दृश्य प्रस्तुत किये गए हैं।[2]

अपने विशाल धनुष को धारण कर गुरु जी ने बाणा की ऐसी वर्षा की

१ 'गुर विलास १४।६४, १०२ ११३ १५। ४६—४८

२ (क) सुनत बचन महाराज जु धनख बान लीओ हाथ।
प्रकट ख च कर मारियो कछुक कोप के साथ। १६।
पुन और मारा। परी पक वारा।
रहे बिसमाई। मना मीच आइ। १७।
गया यौ सु तीजा। मनो गाज बीजा।
उठे भड भडाई। चने वेग धाइ। १८।१६ १८

(ख) यौ चरित्र करि दीन दयाला। धनु विसाल करि धरियो कराला।
बानन की बरखा कर डारी। बडो मेघ जिउ असव मभारी।
२१।१८५।

बिजु समान गरज मर भावत। बाज गाज पैदल रण धावत।
अग्न धरनि ह्व गी सभसारी। सहसानन सिर पर जोऊ धारी। १८६
जाको तनक वान छुह गयो। मछरी जयो तरफत वह भयो।
जो दिवाल ते बाहर निकसा। ताके ल प्रानन जमू बिगसा। १८४।

(ग) ऐसे अनुमान धन बान कर मैं लयो अधिक बर तान अर दन्त सहारे।
एक को मारि दूजान को छेद क बीस तीसान को बयौत डारे।
लुत्थ प लुत्थ यौ जुत्थ गिर रही तह तूल ज्या पेब खल दल बिदारे।
स्रोन का सिंघ जन भयो मह आठवो लुथ अम्बार लखीएकनारे।२१।२५०

मानो सावन का मेघ बरस रहा हो। जब उनके तीर बिजली के समान गरज कर आते तो शत्रु दल को बेंध कर उनकी लाशों का अम्बार लगा देते थे। एक भी बार तीर कई-कई योद्धाओं को चीरता हुआ निकल जाता। जिसे तनिक भी तीर छू जाता वह मछली की भांति तड़प कर गिर पड़ता। उनकी तीर-अन्दाजी को देखकर शत्रु भी चकित रह जाते थे।

इस प्रकार के पौरुषपूर्ण कृत्य म वीर रसात्मक 'अनुभाव' वीररस के वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार के प्रहारो से शत्रुओ की जो दुर्दशा हुई, उसका भी कवि ने भव्य चित्रण किया है जो कि रस के समुचित परिपाक मे सहायक होता है यथा —

लोटत है सु परे अरु पीड़त स्वास भरे इक धाइ भकारत।
मीजत है कर एक सु दातन तुंड कबंद फिरैं इक आरत।२१।२०७।

१२ विचित्रसिंह के युद्ध को इस ग्रन्थमे पर्याप्त विस्तार दिया गया है और उसके अन्तगत हाथी-युद्ध का कवि ने बडा ही यथार्थ चित्रण किया है। शत्रुओ के मस्त हाथी द्वारा दुर्ग-द्वार तोडने की योजना की बात सुन कर गुरु जी उस हाथी का सहार करने के लिए बचित्रसिंह नाम के एक साहसी योद्धा को तैयार करते हैं। स्वय अपने हाथ से उसकी रण-सज्जा करके अपना बरछा उसे देकर, और यह विश्वास देकर कि उसका कोई कुछ नही बिगाड सकता, युद्ध के लिए भेज देते हैं (१५। १७४ ७८)। कवि ने हाथी के भयकर डील-डौल उसके शरीर पर पहनाए आयुधो एव द्वार पर उसके टक्करें मारने आदि का भी बडा ही यथार्थ वर्णन किया है। बचित्रसिंह किस साहस निर्भीकता, दृढता और उत्साह से उस पर वार करता है इसका भी ओजस्वी चित्रण किया गया है। गुरु जी का आदेश पाकर बचित्रसिंह किस दृढता के साथ रणभूमि मे आकर खडा होता है इसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है —

सिंह पौर यौ आ दृढ भयौ सु जानिय।
हो सारदूल ज्यों गज बध हेन पठानियौ। (१५। १८६)

वह उस हाथी का मुकाबला करने के लिए सिंह के समान खडा हुआ था। शत्रु-सेना मस्त हाथी को आगे करके और घुडसेना और पैदल सेना को उसके पीछे करके चारो ओर के घेरा डालकर गढ द्वार पर हल्ला बोल देती हैं, जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है —

अगमपुर पर मोरच अधिक मारि बलु पाइ।
तिह धकाइ गड लोह प आए कोप बढाइ।१६६।
मस्त पील तिन आग कर अवर पाछ दल सार।
स्वार पियाद ग साज दल हल्ला करिओ अपार।१६७।
करे स्वार सारे मघ कुभ मीना।
धिरिओ ओर चार बडो जोर कीना।

तिसै भाल पे लोह मु पेटी वधाई।
वडी सफ तेग मध सु ड लाई। १६८।
वयो मत्त कफ धनियो द ममाला।
मनो यो बिराज ग्रह वाल काला।
सर साग पला सुहै कोट ग्रायो।
ग्रग सो वचित्र मृगीराज लखायो। १६६।
लख सिंह रूप फिरियो फेर विग्राला।
तिन कोप क क पुन फेर डाला।२००।

यहाँ वचित्रसिंह के लिए 'वचित्र मृगराज शब्द का प्रयोग भी बहुत सार्थक है विशेष रूप से गज वध के सन्दभ म। जिस समय शत्रु सेना विविध ग्रायुधा से सुसज्जित इस भयकर मस्त हाथी को साँग से पेल पर गढ द्वार की ग्रोर बढती है तो वहा सिंह समान बलशाली बचित्रसिंह को खडे पाती है। वचित्रसिंह ने जिस साहस ग्रौर दृढता से उस पर प्रहार किया इसका कवि ने बडा ही सजीव एव ग्रोजस्वी चित्रण किया है[1] ग्रौर उसके प्रहार स ग्राहत होकर वह मस्त हाथी किस प्रकार ग्रपनी ही सेना के लिए कराल काल सिद्ध हुग्रा यह दृश्य भी द्रष्टव्य है।[2]

यहा कवि ने शत्रु सेना क भयभीत होकर भागने ग्रौर गुरु दल के उत्साह ग्रौर विजयोल्लास की भव्य व्यजना की है।

१३ इस सारे युद्ध प्रसग मे वीर रस के सभी ग्रवयव विद्यमान ह। शत्रु सेना ग्रालम्बन है ग्रौर वचित्रसिंह ग्राश्रय। यहाँ हाथी को भी ग्रालम्बन माना जा सकता है। हाथी को ग्रनक ग्रायुधा स सुसज्जित करके हल्ला करने ग्राना ग्रौर उस मस्त हाथी का इधर-उधर घूमना उद्दीपन का काय करत ह। जब वचित्रसिंह साँग स पले जान पर हाथी को गढ द्वार की ग्रोर ग्राते देखता है तो वह उत्तेजित एव क्रोधित होकर उत्साह एव साहस के साथ उस पर बरछा

१ वही, १५।२०८ २११

२ जौन दिसा वह नाग सिधारत हात सवार ग्रग दलु जाई।
वारन बाज न राज विराजत पदल सैन गिरे बहु भाई।
काल समान सु क्राडत है गज कौन सकै तिह की छव गाई।
पौन समान फिर्यो तहि बारन ग्रभ्र किधौ ग्ररि सन पलाई।
इह विधि पर्यो ग्ररन म हाथी। मारे ग्रधिक तवन के साथी।
मर गमान ग्रार जिह जाइ। ग्रभ्रन जिउ ग्ररि सन सपाई। २१६।

३ धन राज मारे। कय कौन सारे।
गए भाज एम। हर रेण जस।
न धीर धराहीं। न पाछ फिराहीं।
प्रभ जीत पाई। जयगीत गाई। १५।२२५।

लेकर टूट पडता है। ये पौरुषपूर्ण कृत्य उसके 'अनुभाव' हैं। साथ ही कवि ने उसकी दृढता, धैर्य निडरता, श्रमप आदि की भी व्यजना की है जो सचारी का काम करते है। गुरु जी द्वारा स्वय उसे अपने पास बुलाकर और स्नेह से थापी देकर युद्ध के लिये भेजना तथा हाथी द्वारा अपनी ही सेना को कुचलते हुए त्रस्त होकर इधर उधर भागना भी उसके उत्साह की वृद्धि करते हैं। विजय के गीत गाने मे सिक्खों का उल्लास व्यञ्जित है। परिपुष्ट रसदशा के ऐसे स्थल इस ग्रन्थ मे वर्णित लगभग सभी युद्धों मे मिलेंगे। युद्ध प्रसग के अन्त मे उद्धृत निम्न वक्तव्य उसके वीरत्व की उदात्तता को प्रकट करता है—

बरछ मसत पठया तिन व्याला। सो फिर भयो तिनो का काला। १२१
बुरी बात जे कोउ बनाव। उलट पिनट तिसही के आव। १५।१२२
बाई धार तुरत जा आए। खडगकेत पल मद्धि खपाये। १२१।
निज भगतन को जसु बरताया। खल दल मारि पलक महि धाया।१२।१२८

बचित्रसिंह के युद्ध का यह प्रसग इतिहास की अत्यन्त गौरवपूर्ण एव प्रसिद्ध घटना है। पाउटे साहब गुरुद्वारे मे वह बरछा अभी भी मौजूद है। जिससे बचित्रसिंह ने उस हाथी पर प्रहार किया था और गुरुद्वारे के सेवक दर्शकों को वह बरछा दिखाते समय बडे उत्साह से यह सारा प्रसग इसी तरह सुनाते है। जहा तक सिक्ख साहित्य का सम्बन्ध है, भाई सन्तोखसिंह ने भी अपने बृहदाकार महाकाव्य 'गुर प्रताप सूरज' मे इस घटना का विस्तृत वर्णन किया है और उसका आधार 'गुर विलास' ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु विलास मे युद्ध के अनेक ओजस्वी एव सजीव चित्र मिलते हैं। एक स्थान पर कवि ने युद्ध का फाग के रूप मे भी वर्णन किया है।

१४ **युद्ध नीति युद्ध विधि एव युद्ध स्थिति**—गुरु विलास मे युद्ध की ऐसी अनेक विधियों एव स्थितियों का चित्रण किया गया है जिनमे मध्ययुगीन सग्राम, जिनमे हाथी, अश्व पदल युद्ध प्रमुख होते थे, यथार्थ रूप मे सामने आ जाते हैं। उस युग मे उपयोगी कोट रचना (२४।१२१), युद्ध-सामग्री एव खाद्य सामग्री को दुर्ग मे एकत्र करके रखने (२४।१२२), घेरा डालने (१८।६८, १८।७८), मारचा बाधने (१४।६६), दुर्ग के मार्गों जल प्रवाहों को रोककर भीतर के लोगों के लिये अन्न एव जल का सकट उपस्थित करने (२०।५० ७५) हाथी से दुर्ग तुडवाने (१८।१८२ ६५) हाथी को इस ढग से मारना कि वह अपनी ही सेना को रौंदता हुआ भाग (१५।२१० २२५) रात को दुर्ग से बाहर निकल कर निकट के गाव को लूटने और रात्रि के अन्धकार मे शत्रु पर अचानक धावा बोलने, उनके सैनिकों को मार कर गढी मे घुस जाने, ऊचाई से गोलाबारी करने (२२।११५ १२०), पराजय मे झण्डा लहराने (४।१२०),

वेश बदल कर दुर्ग से निकलो, दूत भेज कर शत्रु की शक्ति का सुराग लगाओ, ईंट पत्थर भरकर गाड़ियाँ भेजना, शत्रु के विश्वास को परखना। शत्रु के लिए भ्रम उत्पन्न करने के लिए अपने स्थान पर किसी और को बिठा देना (२१।१७८), युद्ध में धन की उपयोगिता (२०।१८८) साम, दाम, दण्ड, भेद नीति को अपनाना (२०।२०४), भागती सेना पर आक्रमण न करना, निहत्थे को न मारना (१५।२३२ ३३), स्वामी के लिए प्राण-त्याग आदि कुछ ऐसे तथ्य हैं, जिनसे मध्ययुगीन युद्धों का स्वरूप, युद्ध नीति, युद्ध विधि आदि का यथार्थ परिचय मिल जाता है। रणवाद्यों, आयुधों, योद्धाओं की साज-सज्जा आदि का स्वरूप भी इसी ग्रन्थ से मालूम है।

१५ कहीं-कहीं कवि ने युद्ध की तात्कालीन विकट परिस्थितियों का भी बड़ा ही यथार्थ चित्र अंकित किया है। बहुत दिनों तक दुर्ग में घिरे रहने पर जब भीतर का अन्न समाप्त हो गया तो एक रुपये सेर अनाज बिकने लगा। वह भी जब ढूँढे से नहीं मिलता था तो सिक्ख सैनिक भूख प्यास से व्याकुल हो गये। कुछ समय तक तो वे फूल पत्तों और घास से निर्वाह करते रहे (२०।१७३ ७७), लेकिन जब इससे भी काम न चला तो रात को चुपके से निकल निकट के गाँवों से अन्न लूट कर लाने लगे। इस स्थिति में भी उनकी दृढ़ता और साहस पूर्ववत् बने रहे। यहाँ अन्न लूट कर लाने का जैसा स्वाभाविक एवं यथार्थ चित्र कवि ने अंकित किया है, वह द्रष्टव्य है —

भूख पिआस सिर पर सहे तिन ठाढे निज थान।
जो कुछ मिलै हजूर ते वह वीर सभ खान।८३।
एक रुपये सेर सु जानहु। विक अनाज तबन ही थानहु।
सो भी ढूंडत हाथ न आवै। कहा धीर कित तन इहु पावै।८४।
मिल बीर कौतक इम कीना। निस मै दौड कहो मग लीना।
लूटियो गाउ दूण मे जाए। ताते रसत बहुत लै आए।८५।
केतक पोत लए सिर जाही। केतक असन बोझ लदाही।
केतक जुद्ध करत पच्छ आवै। अनिक भाति के ससत्र चलावै।८६।

कितनी यथार्थता लिए हुए है यह दृश्य कितने ही निकट के गाँवों को (२०।८४ ८६) लूट कर कुछ तो पोटली सिर पर रखे भाग रहे हैं और कुछ पीछे युद्ध करते हैं। आहार के अभाव में मनुष्यों, हाथियों एवं घोड़ों के शरीर भूख से सूख कर कैसे अस्थि पंजर मात्र रह गये हैं इसका भी सजीव वर्णन किया गया है (२०।११४ ११८, १७३ १८०)।

१६ युद्ध भूमि—रक्त के प्रवाह में लथपथ योद्धाओं, अश्वों, हाथियों आदि के क्षत विक्षत अंगों रुण्ड मुँडों, भुजाओं, टाँगों जंघाओं, शिरस्त्राण वस्त्रों, आयुधों, ध्वजा पताकाओं एवं शवों की लोथों आदि से भरी हुई रण भूमि

का भी अनेक स्थानों पर यथार्थ चित्रण किया गया है। उदाहरणार्थ आनंदपुर की युद्ध भूमि का यह दृश्य देखिये—

चली रक्त की नदी विराज। बतरनी तावो लख लाजे।
धुजा पताका तरे दभ जाही। कच्छप ढाल नाक ग्रस ग्राही।२१।१८७
पाग फेन से छत्र सुहाए। चौर हंस लखीए बहु भाए।
सीस पखान टाग कर मछरी। साधु सु धार सरता जन पसरी।१८८
सीस परे कित काट भटान के तुंड धरा कत मुंड सुहाए।
जाघ कर पग रुड बहू खग्ग कमान लखे जव पाए।
ताज परे कत बाज अनूपम पील किधो गिर डील रताए।
सोवत है रण की छित भीतर भूम मनो इह भूषण पाए।१८६।

रण भूमि में एकत्र योद्धाओं की क्या स्थिति है, इसके लिए यह उदाहरण द्रष्टव्य है—

वीर खरे इक गाल बजावत तीरन सो इक छेदन कीने।
एक दुरे निज ओट दिवालन स्वास भरे इक पीड़त सीने।
दूर खरे पछुताप करें इक क्यो हम आन इतै तन दीने।
तीर नही यह काल दसा जनु जीवत हो कछु नाम के लीने।२१।१६०

कुछ लोगों का कथन है कि युद्ध भूमि का भयावह दृश्य 'भयानक' अथवा वीभत्स रस की सृष्टि करता है जो सर्वथा भ्रमपूर्ण है। ऐसे दृश्यों से कायरों में भले ही त्रास उत्पन्न हो, वीरों में तो ये सदा उल्लास उत्पन्न करते हैं। शत्रु पक्ष के योद्धाओं को क्षत विक्षत होकर गिरे पड़े देखकर तो उनका उत्साह बढ़ता ही है, लेकिन क्या रण भूमि में युद्धबाकुरे नौजवान अपने साथी को अपनी आखों के सामने घायल होकर गिरते देख कर भी शत्रु का संहार करने के लिये उत्साह के साथ आगे बढ़ते दिखाई नहीं देते। निस्सन्देह इस प्रकार के दृश्यों को देखकर साहसी रणबाकुरे योद्धाओं का उत्साह दुगना हो जाता है।

युद्ध भूमि को और अधिक विकराल एवं भयावह रूप में प्रकट करने के लिए भूत प्रेतों, नारद एवं बवजा वीरों के नाचने, डाकनियों, योगनियों द्वारा रक्त पान करने तथा गिद्धों शृगालों काक-कंक आदि के मांस मज्झ नोचने आदि का वर्णन भी इस प्रबन्ध के युद्ध वर्णनों में खूब मिलता है।[1]

---

१ पर्यो मार मारा। कर्यो कौन सारा।
भये रुंड मुंडा। मनो जुद्ध चडा।७८।
नचे मास हारी। हसे भूत भारी।
लए रुद्र नाला। फिरी जोए ज्वाला।७६।

जोगन भूत पिसाच परी कल नारद आन तहीं सु नचिओ।
वीर दुऊ ज सु काकन डाकन गीधन यौ चित चाउ रचिओ।
रुंड सु मुंड बियार घने पिख्या कवि नागर भाव खचिओ।
मानहु काल प्रले जिन सियाम त्रिया सु तिमाग इतै सु नचओ।१४।८०

१७ योद्धाओ का व्यक्तित्व—वीररस के निरूपण म योद्धाओ के व्यक्तिगत शौय प्रदशन, साहस एव उत्साह का बडा महत्त्वपूण स्थान होता है क्याकि अन्तत सामाजिको का तादात्म्य तो इन शूरवीरो के पराक्रम म व्यजित 'उत्साह के साथ ही होना है। यही कारण है कि कवि प्राय उसी पक्ष के शूरवीरा के शौय का चित्रण करता है जिनके साथ पाठक का सद्भाव अपेक्षित होता है। परपक्षी योद्धाओ के शौय का वणन यदि किया भी जाता है तो केवल इसलिए कि उससे चरित्र-नायक की महत्ता स्थापित हो सक लेकिन उन्हे उस कवि की सहानुभूति प्राप्त नही होती। प्रबल पर पक्षी के ऊपर विजय प्राप्त करना स्व पक्ष की वीरता का प्रमाण है। ऐसा प्राय सभी कवियो की रचनाओ म मिलेगा। यदि शत्रु-पक्ष को कवि की सहानुभूति प्राप्त होगी तो रस परिपाक म बाधा उपस्थित होगी। अत गुरु विलास म भी गुरु जी तथा उनके साथी सिक्ख सनिका बचित्रसिंह अजीतसिंह, सतसिंह जोरावरसिंह आदि की वीरता का चित्रण ही अधिक सजीवता से हुआ है और कवि न उन्ही के शौय की अधिक प्रशसा की है। परपक्ष क किसी भी पात्र का विशिष्ट शूरवीरता का प्रदशन यहा नही हुआ। दूसरी बात यह है कि वीरो क वयक्तिक शौय की व्यजना द्वद्व युद्धो म उनकी ललकार प्रतिललकार प्रतिप्रहार उत्तर प्रत्युत्तर, गर्वोक्तियो आदि के माध्यम से अधिक सुगमता स हो सकती है। समूह युद्धो के माध्यम से उनके व्यक्तित्व बहुत उभर कर सामने नही आ पाते। गुरविलास म योद्धाओ के ऐसे द्वद्व युद्धा का निरूपण बहुत कम है। यही कारण है कि उनके वयक्तिक शौय शक्ति पौरुष साहस आदि का विशद चित्रण इसमे कम ही मिलता है। फिर भी कुछ पात्र एसे हैं जिनकी युद्ध कुशलता, दृढता त्याग रणोत्साह धय पराक्रम, साहस आदि की सुदर व्यजना की गई है।[1] बचित्रसिंह के पराक्रम का उल्लेख युद्धवणन प्रसग म किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त कवि का ध्यान मुख्यत गुरु जी पर ही केंद्रित रहा है। 'गुरु विलास वस्तुत उनकी लीला गाथा है इसलिये उनके चरित्र का वणन ही कवि का लक्ष्य है। यद्यपि यह उनके सम्पूण जीवन की कहानी है लेकिन कवि ने धम गुरु के अतिरिक्त उनके वीर-चरित्र का वणन ही अधिक किया है। उनके चरित्र के अन्य मानवीय गुणो अथवा सवदनाओ पर कम प्रकाश डाला गया है। जहा तक उनके वीर चरित्र का प्रश्न है कवि न उनके धय दृढता त्याग साहस निर्भीकता, युद्ध-कुशलता शौय पराक्रम, विनम्रता दानशीलता, औदाय आदि का बडा ही सजीव चित्रण किया है और साथ ही उनके सेनानायकत्व एव स्वामित्व के गुणा को भी प्रकट किया है। उनकी तीर अन्दाजी

१ उनकी वीरता का कुछ सकेत इन पक्तियो म मिल सकता है —
भख प्यास दह मैं न नक सो जनावही।
सनद्धबद्ध होई के निसग जग जावही (२०।१०८)

आदि के जो उदाहरण युद्ध प्रसग मे दिए गए हैं उनमे उनकी शक्ति और शौय का परिचय मिल सकता है। आनदपुर और चमकौर की विकट परिस्थितियो में वे कसे धीर और दृढ रहते हैं तथा युद्ध के समय भी धार्मिक दीवान लगा कर नाम स्मरण करते रहते हैं, (हाथ म खड्ग, मुह मे हरिनाम) इससे उनकी दृढता और धय का यथेष्ठ परिचय मिल जाता है। अपन पुत्रो को हसते-हसते न्योछावर कर देना उनके त्याग का प्रमाण है। १० लाख सना का भी कुछ ही सनिको के साथ डटकर मुकाबला करना उनके साहस और निडरता को प्रकट करता है (१५।१३० १८३) और मस्त हाथी का मुकाबला करने के लिए एक 'बहरूपिये' के पोते म इतना साहस और विश्वास पैदा कर दना उनके सेना-नायकत्व की पुष्टि करता है। व अपने अनुयायियो म अपन लिए इतना विश्वास पैदा कर सके कि वे इनके इशारे पर मृत्यु से भी जूझने का साहस रखते थे। उनके ये शब्द कि 'वे ब्रह्माज्ञा का पालन करने के लिए उसकी इच्छा पूर्ति के लिये यह युद्ध कर रहे हैं, उह महाकाल ने भेजा है काली का उहे कवच मिला है, इसलिए काल का भी उनको कुछ डर नहीं (१४।१००)' उनके अनुयायियो म उनके प्रति पूण विश्वास, आस्था और समपण का भाव पदा कर देते थे और वे आत्म विश्वास के साथ समरागन म कूद पडते थे। वे ऐसे विश्वासी योद्धा पदा करन म सफल हुए जो विवाह मडप म फेरे लेते समय गुरु का हुक्म पाकर एक भी कदम आग बढाये बिना उनकी सेवा म उपस्थित हो जाते थे (१७।१०० १०५)। व खुद उह अपने हाथो से सजाते थे पीठ पर थापी देकर अपना आशीर्वाद दत थे और खुद अपन अस्त्र शस्त्र देकर उनको विजय का पूरा विश्वास दिलाकर भेजत थे, स्वय उनक साथ रहकर लडते थे। एसे नायक को पाकर कोई भी सैनिक अपने को धय समझेगा। (२२।१७४ १७७) सिक्खा से कहे गये उनके इन शब्दा म कि जीतने पर यश और मरने पर स्वग मिलेगा (२१।१७४ १८७) गीता की 'प्राप्स्यसि स्वग जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम उक्ति की ही प्रतिध्वनि है। इतना पराक्रम और शौय होते हुए भी कवि ने उनकी विनम्रता और औदाय को नही भुलाया। वे अपनी जीत को अकाल पुरुष की ही कृपा का फल मानते हैं न कि अपने शौय का। उनके युद्ध के आदर्शो की ओर भी कवि ने सकेत किया है। उनका आदेश था कि भागते हुए और निहत्थे शत्रु पर आक्रमण न किया जाये (१५।१६४, १५।२०७ ३१)। अपन योद्धाओ का प्रेरणा दने वाले उनके ओजस्वी शब्द देखिए —

सभै को सुनाई। कृपा सिंध गाई।
गहो खग पानी। मडो जुद्ध धानी।८५।
प्रलोक सवारो। ममा सा निहारो।
नहीं चिंत कीजै। इहै जसु लीज।

सम धरम जुद्ध । नही लोक मद्ध ।
जम कोट जग्ग । प्रभ दान अग्ग ।
तस जान छत्री । जुझे धार अत्री ।
डुल नाही चित्त । लहै मोछ नित्त ।२१।६७

इस प्रकार कवि ने उनके बल पराक्रम आदि का विशद वर्णन किया है और उनकी कीर्ति का गंगा जल, चन्दन और घनसार के समान (१५।२३४) और दुखियो के दुख हरने वाले 'कल्पवृक्ष' के समान बताया है (१५।२३७)। उनके शौर्य एवं उत्साह का औदार्य प्रदान करते हुए कवि लिखता है —

कर गहु गहु धनख सर भारी । प्रगट उडीकत जुद्ध तयारी ।
सन्त की रच्छा के कारण । असुल पुहम को भार उतारना ।
(१५।३१ ३२)

उनके युद्धो का यह महत् उद्देश्य उनके युद्धो को सार्थकता प्रदान कर देता है। मध्ययुगीन चारण काव्यो के वीर चरित्र नायको मे जो अहंकार और प्रतिशोध का भाव दिखाई पडता है, उसकी तुलना मे गुरुजी का यह वीर चरित्र दर्शनीय है।

कवि सुक्खासिह तथा गुरु जी के अतिरिक्त अजीतसिंह जोरावरसिंह सन्तसिंह आदि योद्धाओ की शूरवीरता के भी कुछ सजीव चित्र 'गुरु विलास' मे मिलते हैं। अजीतसिंह की वीरता से सम्बन्धित ये उदाहरण दर्शनीय —

भइओ सवार ऐस कहि बना । तन छिन परिओ मद्ध अर सना ।
धन जिउ उमड तुरक दिस गारो । तडता जिउ फिर तवन मझारो ।१४२।
मार असवार असवार ते गिरत है सरन की चोट सहकें करारी ।
एक को मारि बिदार दुजान को चार औ तीन पच बिदारी ।
खट सातान आठान को चीर के नव दसान को कर प्रहारी ।
गिआर बारान तेरान को डार धर जात नाराच सूके अगारी ।१४३।
बिज्ज समान भरान मे फिरत है गिरत हैं दूत मनगन अपारी ।
मार रन बान तरवार बरछान सो छुर जमधार हन है अपारी ।
पूर सर भूर मुरु रुघर म गिरत है अट्टा मूनार अनगन हजारी ।
रक्त परवाहि तिह नदी ज्यो बह्यो है लोथ पर लोथ कीनी कनारी२१।१४४।

इस प्रकार के काव्य प्रवाह मे ही सहृदय वीर रस का पूर्ण आस्वादन करता है क्योंकि यहा रस के सभी अवयव किसी न किसी रूप मे विद्यमान हैं।

चमकौर मे गुरु पुत्रो एव मुक्तसर के युद्ध मे ४० सिक्खो का शत्रु के समस्त दलबल के साथ जूझ कर प्राणो का बलिदान देना सिक्ख इतिहास की अपूर्व घटनाएँ हैं जिनमे उनके त्याग, दृढ़ता साहस निर्भीकता, उत्साह एव विश्वास की अद्भुत व्यजना हुई है। वीरता के ऐसे अलौकिक उदाहरण बहुत कम रचनाओ मे देखने को मिलेंगे। इस प्रकार के चरित्राकन मे एक अभाव अवश्य खटकता

है, वह यह कि इन योद्धाओं का व्यक्तित्व बहुत स्वतंत्र नहीं है। वे अधिकतर गुरु जी पर आश्रित हैं। गुरु जी पर उनकी दृढ़ आस्था है। वे यह अनुभव करते हैं कि उनकी सम्पूर्ण शक्ति गुरु जी की ही दी हुई है। ठीक वैसे ही जैसे हनुमान जी अपनी शक्ति को राम कृपा का फल मानते थे। वे आज्ञाकारी सेवक मात्र हैं जिनका यह विश्वास है कि गुरु जी का कार्य है वे अपना कार्य आप ही करेंगे और जो गुरु जी से विमुख होगा, वह नरक में जाकर गिरेगा। इस प्रकार की स्वामि भक्ति इस युग के सभी काव्य ग्रंथों में देखी जा सकती है। चारण काव्यों में वह केवल स्वामि भक्ति है, यहाँ धार्मिक भावना से प्रेरित गुरु भक्ति भी।

दुनीचन्द के चरित्र में कवि उसकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया को अधिक स्वाभाविक और सजीव रूप में चित्रित कर पाया है। वह असंख्य शत्रु सेना को देख कर भयभीत हो जाता है और अपने प्राणों की रक्षार्थ भाग जाना चाहता है। वह अनेक व्यक्तियों के पास जाकर उन्हें भी भाग चलने को कहता है। वह यहां तक कहता पाया जाता है कि यह गुरु ही नहीं है यदि गुरु होता तो क्या इस प्रकार युद्ध लड़ता, वह बैठकर भगवान का भजन करता। इन्हें तो शाह पकड़ लेगा और हम तुम व्यर्थ मारे जायेंगे (१५।१४०-४६)।

उसकी मानसिक प्रतिक्रिया का जैसा चित्रण यहाँ हुआ है, वह तो स्वाभाविक है लेकिन इसके बाद कवि इस प्रसंग पर धार्मिक रंग चढ़ाता पाया जाता है और दूसरे सिक्ख कहते पाए जाते हैं कि यह मतिमन्द, मूढ़, जड़ गवार है गुरु महिमा को नहीं जानता। अपनी रक्षा हेतु कायर छल बल से काम ले रहा है। मगर गुरु से विमुख होकर यह बच कैसे सकता है और विमुख होकर भागने पर वह सचमुच बच भी नहीं पाया। निस्सन्देह इस प्रकार की धार्मिक भावना के आरोपण से वीरों का स्वतन्त्र व्यक्तित्व पूरी तरह प्रस्फुटित नहीं हो पाता। लेकिन यहां हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह मध्ययुगीन विश्वासों और आस्थाओं से पोषित पात्र हैं, न कि आधुनिक युग के अनास्थावादी व्यक्ति। यह आस्था और विश्वास उनके चरित्र का अभिन्न अंग है।

१८ उत्साहपूर्ण उक्तियाँ, अमर्ष, कायरों की मनोदशा एवं अन्य मनोभाव

वीरों के सक्रिय शौर्य प्रदर्शन के साथ साथ उनकी उत्साहपूर्ण गर्वोक्तियां भी उनके वीर चरित्र को पुष्ट करने में बड़ा योगदान देती हैं। ऐसी उक्तियों से उनके धैर्य, साहस, दृढ़ता एवं निर्भीकता आदि का पता चलता है। 'दशमग्रंथ', विशेष रूप से कृष्णावतार ऐसी उत्साहपूर्ण उक्तियों से भरा पड़ा है। 'गुरुविलास' में ऐसी उत्साहपूर्ण उक्तियाँ अथवा योद्धाओं की ललकार प्रतिललकार के उदाहरण कम ही मिलते हैं लेकिन जहाँ कहीं भी ऐसे प्रसंग आए हैं उनसे युद्ध वर्णन में बड़ी सजीवता आ गई है और वे वीर रस के परिपाक में भी बहुत सहायक हुए हैं। भगानी युद्ध के प्रसंग में भीमचन्द के दूत को कहे गये

गुरु जी के गाजपूण शब्द उनके धय साहम एव उत्साह के परिचायक हैं, इस पर भगानी युद्ध कथा के प्रसग मे प्रकाश डाला जा चुका है।[1]

'मै असपानज तदम कहाऊ । चिरीग्रन प जव बाज तुराऊ' (१२।१८५) एक ऐसी उत्साहपूण उक्ति है जिसमे गुरु जी का सम्पूण वीर व्यक्तित्व उभर कर सामन आ जाता है। इसी तरह खालसे के इन शब्दो म भी उनके उत्साह की भव्य व्यजना होती है —

रजाइ नाथ दीजिए। रण घमण्ड कीजीए।
कहा सु भाज जाहिगे। तुफग बान खाहिगे।
इनो न जीन छोर है। निसग तास तोर है।१८
कहा तु रन छा रहै। तउ इह बिदार है।७३

'चित्त चोप म उनके रणोत्साह की कोप बढाई मे अमष एव रक्त नेत्रक्र म क्रोध की व्यजना होनी है। एक दो स्थाना पर शत्रुओ के उत्साह की व्यजना भी उनकी गर्वोक्तियो के माध्यम से की गई है। पहाडी राजाओ का यह परिमवाद ऐमा ही है —

चतुर दिशा हल्ला दल क है। आन करी पर द्वार भुकै हैं।
पल म गढी फते जब कर है। बहुरो शहर ओर चित्त धरि है। १००
सामी जवरजग सव ल है। कोट चीज सग और किलें है।
मारिकूट तुमको जव दीजै। तो हम राजपूत जग जीज। १०१
कई बार हम गुरू भजायो। सारमौर लग फिर कर आयो।
तस दिख अव फेर भज है। तुम को जस का टीका द है ।१५।१०२

एक स्थान पर कवि न क्षत्रियत्व का आदश भी प्रस्तुत किया है यथा —

छत्री को दुरलभ इह आहि। जुद्ध समान अवर पुन नाहि।
जनक पग सनमुख ह्व लरही। ततक्ष बरख स्वरग फिर फिरही (१४।३४)

युद्ध क आ पडन पर वीरो और कायरो का क्या दशा होती है, इसका कवि न एक ही छन्द म देखिए कितना मार्मिक चित्रण किया है —

सुने एस बन भए बीर लाल।
जिने सूम माफी फिरे यो बिहाल।
गुना सोद एक दुन पाम जाई
कर कप छाती मना मीच आई। (१४।७१)

युद्ध क लिए तयार हानका आज्ञा सुनकर किस प्रकार वीरोका मुख उत्साह मय हो जाता है और कायर किहाल होकर कापने लगतेहैं इसका सजीव चित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है। दुना चन्द की मनोदशा का कवि न कसा मनो

[1] गुर वसुधाम। इच्छा दन काम। तुम ज म गाद। हम चीन माई (३।६०)
कहा मोर जाना। सरैम ठिकाना। टर फील देना। अस हाथ लना ५।

वैज्ञानिक चित्रण किया है इस पर पीछे प्रकाश डाला जा चुका है।

इस प्रकार हम देखते है कि गुरु विलास' मे युद्ध कथाओ का अत्यन्त विशद, पूर्ण एवं विस्तृत वर्णन हुआ है। इसके युद्ध वर्णनों में सजीवता एवं ओजस्विता है। उसमें वीर रस का पूर्ण परिपाक हुआ है और उसमे उदात्तता है। यद्यपि इसमें गुरु जी की सम्पूर्ण-कथा वर्णित है पर प्रधानता उनके वीर चरित को ही दी गई है और इस तरह यह काव्य ग्रन्थ 'वीर काव्य' के सभी लक्षणों से युक्त है। इस युग में हिन्दी मे जो चारण काव्य लिखे गये है, उनके वीर नायकों में स्वार्थ प्रतिशोध और अहंकार की प्रधानता है और वे प्रायः युद्ध भी इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर लडते है, उन वीर काव्यों को सामने रखकर यदि 'गुरु विलास' की तुलना की जाय तो यह एक विशेष महत्त्व की रचना सिद्ध होती है जिसका वीर नायक धर्म, सत्य और न्याय के लिए युद्ध लडता दिखाया गया है और औदार्य जिसके चरित्र का एक अभिन्न अंग है।

प्रकृति चित्रण

मध्ययुगीन साहित्य मे प्रकृति का प्रयोग प्रायः नायक नायिकाओ की काम भावनाओं को उद्दीप्त करने के लिए या उनके सौन्दर्य की अतिशयोक्तिपूर्ण अभिव्यंजना हेतु उपमान रूप में ही किया जाता था। इस युग के साहित्य में प्रकृति के स्वतन्त्र सश्लिष्ट मनोहर चित्र बहुत कम मिलेंगे। परन्तु 'गुरु विलास' की कथा यात्रा में अनेक प्राकृतिक स्थलों—वन उपवन नदी, पर्वत रात्रि, प्रभात एवं वर्षा ऋतु आदि के अनेक मनोहर चित्र अंकित किए गए है। हिंसक पशुओं से भरे भयानक वन का एक दृश्य देखिए —

महावन भयानक भर्यो पसु राजइ सिंह बारह की फिरत डारी।
रोभ के टोल जिह गोल कर फिरत है कूकती निरख सियालान नारी।
रीछ अरू भाल जिह एक मग चलत है कीस लांगूर की कमी नाही।
नाग गईद, मसलद इक सोबते अरन जिह गैंडे बोले सु आही।
भूत औ प्रेत पैइ साथ जिह विचरते वन जिह मानव लख ताही।
ऐस वन माहि जब गयो जगतेम ज केवल आप संग सस्त साही।
(२३। २ - ३)

सिंह वराह रोझ, रीछ भालू नाग गज सियाल आदि अनेक हिंसक पशुओ से भरे हुए वन के इस भयानक वातावरण के साथ ही कवि ने इसके विविध फलो, फूलों, वृक्षों-लताओ एवं पक्षियों आदि की शोभा का भी सजीव वर्णन किया है।[1]

---

१ रुख लता नाना विधि काछे। मेव फलन सो भरियो सु आछ।
पच्छ प्रसून पसुन सो भया विराजे। मदन सो जाका लवि लाजै।
२।४७-४९

वाटी, कूप, फुलवारी तथा श्रोर प्रकार के पुष्पों एव गायादि सम्पन्न का भी चित्रण कर रहे। वाटो उद्यानों की सुन्दरता का भी सुन्दर वर्णन किया गया है। यथा —

सुन्दर वाटिका बाग दल राजै। तन मन हरि सब मन लाजै।
वापी कूप तडाग फुलवारी। बहु प्रकार बनाइ भारी। १०२।
श्रीफल नाना जम्भ भमीर। निम्बी दारम श्रौर सरीरै।
ताल खजूर मनोहर सुपारी। ऐसा सारत सरब सुधारी। १०३।
पुहुप मालती सेवती करन चम्पा गाई।
नरगस पुम विधूप करो यदि सरन दिखाई। १००

उद्यान रचना में उसने वटवाटिका, वाटी-कूप सरोवर फुलवारी श्रौर श्रनेक बबीफल श्रीफल जामन निम्बी दाम ताल खजूर सरू मालती सेवती चम्पा, नरगस, विधूप आदि तरुओं एव पुष्पों आदि का उल्लेख तो उचित है लेकिन सुपारी श्रौर इलायची इस प्रदेश में नहीं मिलते। पांवटा नगर की तलहटी में यमुना तट पर स्थित एक भव्य स्थान है। उसके समीपवर्ती कपेगर के जगल श्राज भी शिकारियों के श्राकर्षण के केन्द्र हैं। इस वन का वर्णन कवि ने नाम परिगणन शैली में ही किया है श्रौर उसमें कुछ देश काल का दोष भी श्रा गया है क्योंकि यहाँ कवि ने शेर श्रौर गेंडा के मिलने का उल्लेख किया है जो ठीक नहीं है, लेकिन यमुना का वर्णन अत्यन्त मनोहर बन पड़ा है।[1] गगा यमुना श्रौर सरस्वती की पवित्र धाराओं के सगम प्रयाग (२ १६ १७) स्वच्छ स्वच्छ स भरी एव निमल जल वाली तापती नदी श्रौर उसके सुन्दर तटों (२७ ५१ ६०) एव गेंदा चमेली गुलाब, जुही विधूप श्रादि पुष्पों से सुगन्धित फुलवारी श्रादि का भी कवि ने मनोहारी वर्णन किया है तथापि उसे सबसे अधिक सफलता कीतरपुर तथा श्रानन्दपुर के रम्य प्राकृतिक प्रदेश के चित्रण में मिली है। यह स्थान उसके इष्ट देव गुरु गोबिन्दसिंह की लीलाभूमि है—उनकी सास्कृतिक

१—पवित्र स्याम नीरक सुता दिनेस जावई।
सुनक्र, बक्र वार के सुचक्र सोव पावई।
अनक ताहि नावका सु राज घाट जानिय।
मिलास आन पब्ब के इत उत सिधानिय ।२८
सार वार तूत श्राज नीम खेर जानियें।
जटी कनेर, पीपर खजूर सेव सानिए।
करी जवार कौस म ब्रिगीस ऐणा जोहीए।
ससे सियाल गोइन अजान कोल रीछन।
अरन श्रौर गडक भयो अरिन तीछन ६ २७ ३१

सकल निसा बीती सुख साथ । निज ग्रह सोए त्रियपति साथ ।
निरख निसापति हति प्रभताई । सकल आपदी असदि चुम्राई । १५३
सकल नन बीतत भई आनद सो तिह ठौर ।
खल दल सकल सहारि क चढयो इतें निप भौर । १५४ ।

प्रभात आगमन

पूरब पोयरानो अधकार ल सिधानो,
चोर कुलटा लजानो लख आभा दिननाथ की ।
तारका तजानी दीप कुमदी अमानी
उन चाई लगानी देख कन बान नाथ की ।
जलन गिराने छुटे मोर कज मिमाने
गय दुदभ पुराने तन नाम दान गाय की ।
पायन भया जहान चढ्यो उत नभ भान
लई छीन ठकुराई ससि जू के साथ की । २३।१८५

रात्रि के अधकार म प्रसान प्रमुप्ति होने वाले जीवा, वनस्पतियो पर प्रभात आगमन से कैसा प्रतिकूल प्रभाव पडा इसका भी कवि ने मार्मिक चित्रण किया है। रात्रि एव प्रभात के अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रभाव का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

जिम प्रताप लघु रवि उदियो दुरिया चाद गिर पीठ ।
जहां जहां बिगराट के परन गूरमा दीठ । ४७ ।
कमनी उडगन घरार गजान । तमरार कनग उलन पठान ।

वस्तु वर्णन

प्रकृति चित्रण के अतिरिक्त 'गुरु विलास' म गुरु गोविन्दसिंह की वेशभूषा (५।१११ १६, ८।५० ५१), उनकी शोभा (२३।१८७ ६८), देवी के रूप (१०।१३१ १४०), हाथी के सुडौल सुदर शरीर एव उसकी साज सज्जा (१४।१८८, १५।१६२, २१।३८, ११।४० ४१), आखेट (५।२०१, २६।१८५ २०८), विशेष रूप से सिंह के शिकार (६।४१ ४३, २६।२०५) सफेद और काल हाथी की सुन्दरता (१४।१७३ १८२), हाथियो की लडाई (२६।१२२), युद्ध म नात हाथी की शोभा (२७।३६ ४०), युद्ध भूमि (२१।१८१ ८८), घोडे के रूप (५।२८७), नौका विहार (३।१ ५) दाव यात्रा एव मृत्यु-संस्कार (५।२३६), होली (८।५३, १४।११), वसाखी (२३।६६), भोजन की सामग्री (८।८ १०), गुरु यज्ञ (१७।८, २१।२०८) तथा नगर आदि के भी वडे यथार्थ एव सजीव चित्र अकित किए गए हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

घोडो की सुन्दर आकृति, साज सज्जा, तीव्र गति एव आभूषणो आदि का वर्णन उत्प्रेक्षा उपमा आदि अलकारो के माध्यम से देखिये कितना भव्य बन पडा है—

दिपै यो विकानू। मनो काम जानू।
बधे गज गाहा। बनिग्रो वाज आहा। २६६।
रूप अनूप सिंगार धरे वर जीन जिगा कलगी सिर सोहै।
परम सटा गुरु सोभ अलौकिक अग उतग अनूप विमोहै।
कचा औ मुक्ता राच सुदर यो लग क कवि सोभसु जोहै।
गच्छत ह मन मारत की निम तुरा वाज रहो सम को है।
(५।२६१)

इसी तरह हाथी क रूप और उसके डीलडौल, साज-सज्जा शृगार आदि का भी सुदर वर्णन किया गया है।

शास्त्र मनन गुरु जी के मनोहर रूप एव वेशभूषा का एक चित्र देखिये—
रूप अनूप दिप जु सिहासन तापर पाव रिलोपल धारी।
शकर ब्रह्म जु सस नपे मुख नारद से जिह को रहि मारी।
अग सिंगार सु वस्त्र धरे वर आयुध चार वर हथियारी।
पेटी किधौ चिलता दिप सार वद छुट सु अगार पिठारी।
सफ सरासन अग्र धरे बहु चार निखग भरे सरनारी।
चौर करे बिब ओर सु सेवक हस मनो सर मान निहारी (६।५८)
पवित्र सीस ईस के जिगा कलग यो सज।
कर गु मारतड की वि जोत चद की लज।
दिपत मोत हीरक मन अनूप राजई।
ठरी कनक कुदन अस प्रभा विराजई।१५८।

सीस पै ताज ल सोन कलगी धरी लाल हीरे जरी जगमगाव ।
सवज पन्ना सचे गुलक सोभति सुचे झलक आनद की यो सुहाव ।
(२३।१६४)

उनकी वेशभूषा एव मध्ययुगीन वीर सम्राट के अनुरूप है । कवि ने उनकी अद्भुत शोभा का वणन व्यतिरेक उत्प्रेक्षा आदि के सहारे किया है ।

कवि ने आनन्दपुर, काशी (४।६-१०), बुरहानपुर (२७।६१ ६५), प्रयाग (२।२७ २६), आदि नगरो का भी विशद वणन किया है । आनन्दपुर वणन म नगर रचना, उसकी प्राकृतिक सुषमा, निकटवर्ती प्रदेश की शोभा और हा के सास्कृतिक वातावरण का सजीव चित्रण किया गया है । आनन्दपुर की रचना स्वय गुरु जी ने की थी इसीलिए उसकी रचना म मुगल शिल्प का कोई स्थान नही दिया गया । सहज प्राकृतिक सौन्दय ज्यो का त्यो बना हुआ है । केवल सुन्दर धाम बनाय गय हैं जिन पर पताकायें लहरा रही हैं । सुन्दर हाट बाजार भी है लकिन बाग, तडाग, कूप एव फुलवारी भी हैं सुन्दर झरने भी झर रह हैं और मोर, चकोर, कीर, कोकिल आदि पक्षी कलोल कर रहे हैं ।[1]

यह नगरी अयोध्या और द्वारावती के समान सुन्दर एव पवित्र है और सभी फला को देने वाली है । कवि ने उसके भवनो, हाट बाजारो, बाग-तडागो के अतिरिक्त वहाँ के सास्कृतिक वातावरण एव महत्त्व का भी अनूठा चित्रण किया है ।[2]

सिक्ख सगतो के आनन्दपुर आगमन पर वहाँ कसे आनन्दोल्लास का वाता वरण छाया रहता है इसका एक चित्र देखिय सक्षिप्त होते हुए भी कितना भावपूण है —

मेला अपार भयो दरबार सुमार न र किह् की मति भारी ।
लाल गुलाल उड अलता सु अबीरह छूटत है पिचकारी ।
रग भरे सभ के पढवा भट हाइ रहे सभ ही मतवारी ।
तीन दिना भरपूर इमी विध आनन्दपुर प्रतच्छ बिहारी ।

---

१ इह विध दयासिंघ अवतारी । फिर आए पुर अनद मझारी ।
वाधिआ अदभुत नगर सुधारी । धुजा पताका नगर बजारी ।
चार पतोली नीके धाम । बिसुकरमा जनु रचे तमाम ।
कोकिल कीर कपोत सिखी धुन चातक है गन टेर लगाए ।
नीर झर झरना चतुरोरह सुध पुर पुर आनद भाए ।
आन बसिओ करुनानिध साहिब चारि दिना सु अखेट मचाए ।
(१६।१ ३)

२ औधपुरी जिम राम बिराजित द्वारावती जदनाथ सवारी ।
शकर मद्धि बनारस गावत समर म कलका त्रिन सारी ।

क्रमश

गुलाल, अलता और अबीर से वहा का उल्लासपूर्ण एव मगलमय वातावरण सजीव हो जाता है।

इन वयक्तिक एव समूह चित्रो के अतिरिक्त युद्ध के गत्यात्मक दृश्यो का तथा युद्धभूमि के भयावह एव विकराल वातावरण का जैसा यथाथ एव सजीव चित्रण 'गुरु विलास' म हुआ है, उस पर वीर रस निरूपण के अन्तगत प्रकाश डाला जा चुका है। सिंह के शिकार का एक ओजस्वी एव गत्यात्मक चित्र देखिये —

एक कर मधि सिप्र धरियो वर दूसर हाथ दिपै सु क्रिपानी।
सामुहें आन निहार सु केहर तो जग रच्छक धीर धरानी।
हेरत है चलुरोर भट बहु केहर जुद्ध किधो सु कहानी।
नाथ कहियो जु पसेसर को अब होहु सुचेत हमू सग जानी।४५।

× × ×

टर घने जु सुने पसु नाइक तु ड पसार सु पु छ फिराई।
मौ सु फुलाइ सटा बर दीरघ प गरजियो घन घोर लगाई।

लौ सु लाहौर कुस जौ कसूर है आप वसियो रट है नर-नारी।
तिउ करनानिध को पुर आनन्द चार पदारथ दाइक भारी।
ऊपर नन जु देब बिराजति तीर महा सतगग सु भारी।५।
सात धुजा प्रेम जी जहि पूरन चार पदारथ दाइक सारी।
हाट बजार सु धाम अनूपम देव समान सभ नर नारी।
भूत भविक्ख भवान सदा जिह बीच बस दसवा अवतारी।६।
गिरदै दिपत पब्ब जिह भारी। बीच पुरी अदभुत उजियारी।
ऊपर माता भवन बिराजै। तर नदी गगा सुत राजे।
सात धुजा सु दर बर सोहै। सुर नर जच्छ भुजगम मोहै।
पोथी ग्रथ पठे बहु गुनी। सिक्ख सखा सुन है जन मुनी।
घटा घोख सख धुन नाद। ग्रह ग्रह कौतक कोर अनाद।
बगर बजार बीथका बनी। चित्रक करी चित्र जनु घनी।४१।
सिक्ख सखा पुर म जोऊ बस। निज सुख निरख सुरग कहै हसै।
झरना झरै नीर सुखदाई। मोर चकोर विविध भड लाई।
बाग तडाग कूप फुलवारी। सोभत बाइस ललल रु चारी।
अधम जीव दरसन जोउ आई। सीतल होत दरस कह पाई।
ग्यान छत्र उगवन तिह ऊरा। जो दरसत आनद चलि पूरा।
अप्रमान छबि इसे भनीज। याकी उपमा या कह दीज।
कोकिल कीर कपोत सिवख विचरत नागर गेर।
बिन आइस गुरदव की सकन न किस ही छेर॥१।५८।

[illegible] ।
[illegible] ।८७।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।१।८८

[illegible] है और इस प्रकार [illegible] है ।

आध्यात्मिक विचार

यद्यपि 'गुरु विलास' धार्मिक काव्य के सभी गुणों से युक्त है, तथापि इसका सांस्कृतिक महत्त्व भी कम नहीं है। सुक्खासिंह की शिक्षा [illegible] थी इसलिए उन्होंने ग्रन्थ में आध्यात्मिक विचारों का [illegible] निरूपण नहीं किया, परन्तु तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों, विभिन्न मत-मतान्तरों के मिथ्याचरण एवं पतित अवस्था पर विचार व्यक्त किए। इन विचारों की महत्ता एवं उत्कृष्टता का भी प्रतिपादन किया है। साथ ही हिन्दुओं एवं सिक्खों की सांस्कृतिक एकता एवं समन्वय का भी प्रयास किया है। सुक्खासिंह का दार्शनिक विवेचन [illegible] या संतोखसिंह जितना विशद अथवा गंभीर नहीं है। उनके आध्यात्मिक विचारों पर प्रमुख रूप से 'आदि ग्रन्थ' और 'दसमग्रन्थ' का ही प्रभाव परिलक्षित होता है। हमारा अनुमान है कि संतोखसिंह की भांति भारतीय दर्शन का विधिवत् अध्ययन सुक्खासिंह ने नहीं किया था। उसने तो महज अकाल उस्तुति एवं जाप साहिब को ही अपना आधार बनाया लगता है। दसमग्रन्थ में कुछ वाक्य एवं शब्द ज्यों के त्यों 'गुरु विलास' में आए हैं। 'आदिग्रन्थ' से भी कुछ वाणी उद्धृत है।

ब्रह्म

सुक्खासिंह के अनुसार ब्रह्म अच्युत, अनंत, अभेद, अभेद (१२।८१) अलख, अविनाशी (१।२), रूप रेख रहित (१२।८२), आदि पुरुष (७।२), है अर्थात् वह निर्गुण और निराकार है परन्तु वही चौदह लोकों का निर्माता (१२।८२) देव, दैत्य, किन्नर व मनुष्यों को उत्पन्न करने वाला (१२।८३ १।४), भूमि गगन, जल, थल में प्रकाशवान्, सकल सृष्टि में निवास करने वाला (१।३), करोड़ों सिद्धियों, रिद्धियों का स्वामी है (१२।५)। वह सब में समाया हुआ और सबसे अलग है (१।३)। शिव, ब्रह्मा भी उसका भेद नहीं पा सकते इसीलिए उसे नेति नेति कहते हैं (१२ ८१, १।५)। अनेक मुनि, जती, व्रतधारी करोड़ों कल्पों तक उसको ध्याते रहते हैं, फिर भी वह हाथ नहीं आता (१।५), लेकिन जब पृथ्वी पर अनाचार बढ़ता है तो वह

अवतार धारण करता है [१] और दुष्टो के विनाश द्वारा धर्म की स्थापना करके भक्तो को सुख देता है (१२।८४)। 'गुरुमुख' ध्यान करने से उसे पा भी सकता है (१।६७)। ब्रह्म के जिस स्वरूप का उल्लेख सुक्खासिंह ने किया है वह सर्वथा 'आदिग्रन्थ' एव 'दशमग्रन्थ' के ही अनुरूप है। 'दशमग्रन्थ' की ही भांति उसे 'असिपाणि' 'खड्गकेतु' असिकेतु 'खड्गपाणि' भी कहा गया है (१।२२, १२।८१, १२।१०२, १२।१३३)।

उपनिषदो मे ब्रह्म का एको ह बहुस्याम' के रूप म निरूपण हुआ है। इसी प्रकार सुक्खासिंह ने भी उसके लिये कहा है कि वह एक होकर भी अनेक है और सब घटो मे उसी का निवास है—

एक अनेक सगल घट माही। १२। ८३

एक अनेक सकल घट वासी। १२।

वस्तुत सिक्ख मत के एकेश्वरवाद स भी यही अभिप्राय है। सिक्ख मत की निगु ण आही, सरगुण भी आही, आपे निगु ण आप सरगुण' की भावना को भी सुक्खासिंह ने तथावत् स्वीकार किया है और जिस प्रकार 'दशम ग्रन्थ' म ब्रह्म के असुर सहारक, अघ विनाशक रूप का विवेचन है, उसी तरह यहाँ भी उसे दुष्टो का विनाशक और सतो का रक्षक माना गया है।

आत्मा

वेदान्तियो की भांति सुक्खासिंह ने आत्मा के स्वरूप का तात्विक विवेचन नही किया लेकिन जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध पर थोडा प्रकाश अवश्य डाला गया है। यथा—

साहिब जू यो कह परसगा। सागर जुदे न होहि तरगा।
ज्यो बदा तावो अर रब्ब। एक दुहू का निरखिओ ढब।
खालक अवर पिकम्बर जान। इकै सूरत बरनत ब्यान।
(२६।१४६ ४७)

जाति अबद्ध जरार सदा इह ताकह जीवन म्रित पछाने।
काट कलप्प भए तिह वतीत भूत भविक्ख सदा इक साने।
अच्चुत नाथ घटै घट पूरन ताहि म्रित वरु कौन बखान।

अर्थात ब्रह्म और जीव का वही सम्बन्ध है जो सागर और उसकी तरगो का। इन दोनो म कोई भी भेद नही है। गुरु गोबिन्दसिंह के परलोक गमन के अवसर पर भी कवि लिखता है कि यह जीव जन्म मरण से मुक्त है और सदा एक रस रहता है अर्थात् ब्रह्म रूप है।

नि सन्देह आत्मा के सम्बन्ध म भी सुक्खासिंह के विचार गुरु मत के अनुकूल ही हैं। वह आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता म विश्वास रखता है।

१ जब जब होत अरिशट अपारा। तब तब देह धरत अवतारा।
दुशट भरशिट सु प्रलै कराई। उन भगतन उर रहत समाइ(१२।८४)

माया

माया का तात्त्विक विवेचन गुरु मत म भी बहुत कम मिलता है। 'गुरु विलास' मे माया के स्वरूप पर बिल्कुल प्रकाश नही डाला गया। एक स्थान पर इतना भर कहा गया है कि 'माया के मद म फूल जो लोग हुकम को भूल जाते है वे प्रभु को नही पहचान सकते, उनको दिया गया उपदेश भी व्यथ है—

माइया के मद जो जड फूले। ऐडे फिरे हुकम ते भूले।
फीके कहै बन अति भारी। भ्रम की कला न सक निचारी।
माया यहाँ अविद्या के रूप मे ही आई है।

ससार तथा इसके सबन्ध

सुक्खासिह ने सिक्ख गुरुओ की भाँति ससार को भी धुएँ के समान मिथ्या और नाशवान कहा है। उसके मतानुसार 'जग का जीवन चार दिन का है' क्योकि मृत्यु सदा सिर पर मडराती रहती है। मिलना और बिछुडना ही इस ससार का विधान है। शरीर के सभी सम्बन्ध भी मिथ्या हैं। यह ससार आग का सागर है और सभी पदाथ अनित्य हैं दुख के मूल है।[1] क्या चीटी और क्या हाथी काल के दण्ड स कोई बच नही सकता (१।१०)। तैमूर, बाबर, हिमायूँ, अकबर, जहाँगीर सिकन्दर आदि कितने ही शाह पीर पैगम्बर यहाँ हुए लेकिन सभी को काल का ग्रास बनना पडा। यहा अमर वही रहता है जो सब जीवो को परमात्मा का रूप समझ कर ब्रह्म का भजन करता है—उसके नाम का आधार ग्रहण करता है।[2]

आवागमन मे विश्वास प्रकट करत हुए कवि कहता है कि सभी प्राणी जन्म और मरण के चक्कर म पडे हुए है। वह गधे, वल स्वान नाग, काग कीट पतग आदि की अनेक योनियो म भटकते रहते हैं। सन्तो की सगति स पवित्र होकर ही वह इस बन्धन से मुक्त हो सकता है (२८।३२)। गुरु-कथा को भी उसने इस बन्धन से मुक्ति देने वाली कहा है (२१।१३२)। गुर पुत्रो को सर हिन्द के नवाब को सौपने वाले दुष्ट ब्राह्मण के दुष्कर्मों का दुष्परिणाम दिखा

---

१ इह जग धअरो धउल भणीज। कौन मर्यो और कौन मरीज। १६।१६४
मिल बिछरन इह मद्ध ससारा। कीना बिधना कठन सु भारा।
मिथिआ यह दट सनबधा। चतुर न बाधत याके मधा। ३।१६३
दुख को मूल पदारथ जानी। है जु अनित न नित्त पछानी। २४।२५६
चार दिना जग को लख जीवन।
मौत लख सर ही सिर ऊपर १३।१२६
एक कहै जग आग को सागर।३०।४५।

२ गु० वि० २२।१४६।

कर कवि ने कम फल मे भी अपनी आस्था प्रकट की है (२१।१६३)। ये सभी विचार सवथा 'गुरु मत के अनुकूल हैं।

इस प्रकार 'गुरु विलास' म ब्रह्म, माया, जीव, जगत आदि का संक्षिप्त सा ही विवेचन मिलता है। वस्तुत, सिक्ख मत स्वत साधना प्रधान मत है। उसम भी दर्शन का इतना प्रौढ और गहन विवेचन नही मिलता। सुक्खासिंह ने भी साधना पक्ष के निरूपण पर ही अधिक बल दिया है। उसकी विशेषता यह है कि उसने उस युग म प्रचलित विविध धार्मिक-साधना-पद्धतिया पर विभिन्न प्रसगा के माध्यम से प्रकाश डाला है और उनके दोषो एव पाखण्डो को प्रकट करते हुए सिक्ख-मत की साधना-पद्धति की उत्कृष्टता की स्थापना की है।

गुरु

मध्ययुगीन धम साधना मे गुरु का अत्यधिक महत्त्व रहा है क्योंकि वह मानवीय मनोवृत्तिया का परिष्कार करके उसे आध्यात्मिक साधना मे प्रवृत्त करता है। यात्रिको के अनुसार गुरु पापा एव दोषो का विनाशक है। सन्ता ने तो गुरु को परमेश्वर के समकक्ष माना है। सिक्ख मत म भी गुरु को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। आदि-ग्रथ' म गुरु को 'ब्रह्म रूप' माना गया है[1] और सभी सिक्ख गुरुओ को एक ज्योति रूप कहा गया है। सिक्ख मत के अनुसार गुरु की कृपा स ही हउम का नाश होना है। वह ब्रह्म को मिलाने वाला है और जन्म मरण से मुक्त कर देता है।[2] गुरु विलास' का प्रतिपाद्य है दशम-गुरु की महिमा का वणन, इसलिये उसम गुरु के महत्त्व का विशदता से निरूपण हुआ है। यहा भी सिक्ख गुरुओ को ब्रह्म रूप कहा गया है और उसी रूप मे उनकी वदना भी की गइ है। 'गुर विलास' मे गुरु गोबिन्दसिंह के शब्दा मे सतिगुरु का लक्षण इस प्रकार है—

हरख सोग चिंता नही लोभ मोह त पाक।
ताको सतिगुरु जानिये अद्भुत जाके वाक। २२।८४।

सिक्ख गुरु ऐसे ही गुणो के स्वामी थे। कवि ने स्थान-स्थान पर नानक, गोबिन्दसिंह तथा अन्य गुरुओ का अच्युत, अलख, अभेद, आदि रूप, पारब्रह्म, पूण ब्रह्म, अनन्त पवन रूप, अछलेस, निर्विकार, निर्वैर, खड्गकेतु पृथ्वी,

---

१ गुरू मेरा पार ब्रह्म परमेसुर ताका हिरद धरि मन धिआतु।
(आदिग्रन्थ, बिलावल महला ५ पृ० ८२७)
गुरु परमेसरु एको जाणु (वही, गाड महला ८ पृ० ८६४)

२ गुरु प्रसादी हउम जाए (वही माझ महला ४ पृ० ११४)
कहु नानक गुरि ब्रहमु दिखाइआ। (वही, गउडी महला १, पृ० १३२)
एव मन ऐसा सतिगुर खोजि लहु जित सेविए जनम मरण दुख जाई।
(वही, वडहंस की ... ६१)

आकाश तथा घट घट म निवास करन वाल, सन्तो के रक्षक, दुष्टा के विनाशक आदि रूपो मे स्मरण किया है,[1] जिनका यश शेष महेश युगा से गा रहे हैं, जो कामधेनु के समान मन कामनाओ को पूर्ण करने वाले ऋद्धि सिद्धियो के दाता और गरीब निवाज है (१२।६१, ७।१६५)। उनके चरणो म करोडा तीर्थों का निवास है (२।४, १२।६८)। वे जन्म मरण से रहित ह परन्तु सन्तो की रक्षा हेतु स्वरूप धारण करते है।[2] जिनके रोम रोम म करोडा ब्रह्माण्ड विद्यमान है ऐसे आदि अनादि, अगाध ब्रह्म रूप (१२।१७६) गुरुओ की कवि ने इस प्रकार स्तुति की है—

> सेस सुरेस दिनेस प्रमेस्वर खोजत है जिह को अव तोरी।
> सिद्ध मुनी मुन नारद से जिह जाचत है कर कशट करोरी।
> किन्नर जच्छ भुजग धराधर सेवत हैं जिह को निस भोरी।
> सो करुणानिध रूप गुर सारासा अग्र खरे कर जोरी।६८
> छीर समुद किधो गुर पूरन नान रतन धरे जिह माही।
> अम्रित धेनु ससी सु धनतर तौन गन गनती कछु नाही।
> रिद्ध सु सिद्ध पदारथ कोटक बीच बस जिह की परछाही।
> सो गुर पूरन अम्रित मागन कौनक सत लख्यौ यहि आही। १२।६६

इस सदभ मे कवि ने उस मूर्ख औरगजेब की कडी भरसना की है जो उनके इस शक्तिशाली पूर्ण ब्रह्ममय रूप को न पहचान कर उनसे झगडा बढा

---

१ (क) अचुत अलख अभेद श्री नानक साहिब सबल।
आदि रूप गुरदेव, पार ब्रह्म पूरन ब्रह्म। १।५६

(ख) वह अचुत नाथ अलेख गुर। जिह को जसु गावत सेस सुर।१६

(ग) अचुत अलख अनन्त गुर पवन रूप अछलेस।
रोम रोम रच्छक जिस सकल काल जगतेस।२१।१६६।

(घ) अचुत अलख जु एक बखाने। कलप रूप चितामणि मान।
कामधेन पारस इक गावैं। मनसा पूर अधिक बिगसावैं। ५।१६५।

(ङ) दीनबन्धु साहिब अवतारी। गाफल गज सत हितकारी।
खडगपान खल दल बल गजन। भगत पाल दीनन दुख भजन।
५।१६७

निरविकार निरवैर सुआमी। सकल घटा के अन्तरजामी।
खडगकेत आतम के जाया। पुहमी न्याम सकल जग छाया।
८।१६८

२ सता की रच्छा हित काजा। धरे सरूप गरीब निवाजा (३०।६४)

रहा था।[1]

गुर वाणी

सिक्ख मत में गुरवाणी का भी गुरु के समान महत्त्व है। दशमगुरु ने अपने पश्चात् गुरुओं की वाणी के संकलन 'आदिग्रन्थ' को ही गुरु रूप में अधिष्ठित कर दिया था और आज भी सिक्खों में 'गुरु ग्रंथ साहब' को गुरु समान सम्मान प्राप्त है। 'गुरु विलास' में गुरु एवं गुरु वाणी' की एकरूपता तथा गुरवाणी की महिमा का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

वाणी गुर है गुर बाणी। जामें सतिगुरु बस निधानी। (१६।४३)
दस महलन की पढीए बानी। अच्चुत सुख पावहु निरबानी।
हम कहिं लखो न इन ते दूरी। हम तुमरे सद संग हजूरी।

एक प्रसंग के माध्यम से इस तथ्य का भी प्रतिपादन किया गया है कि जो सिक्ख गुरु वाणी को भली भांति समझ कर उस पर आचरण करेगा, वह जन्म मरण से मुक्त हो जाएगा और सब सुखों को प्राप्त करेगा, लेकिन जो गुरु वाणी की उपेक्षा करेगा वह कुम्हार के उस गधे के समान मूर्ख और भाग्यहीन है जो सिंह की खाल पहना दिए जाने पर भी गधा ही रहता है (६।६० १२६)। सुक्खासिंह के अनुसार गुरु पारस के समान है (२०।१४४ ४५ २०।१५६ ५६) और यदि कोई गुनहगार भी सद्भावना से उसके पास आता है तो वह उसे भी पवित्र कर देता है (२६।१४० ७२)। कवि का कथन है कि गुरु सेवा से व्यक्ति कोटि पदार्थों की सम्पदा और मुक्ति प्राप्त करता है (१२।१६६)। जिस प्रकार वैष्णव भक्ति में भक्त और भगवान के तादात्म्य को स्वीकारा गया है, उसी प्रकार 'गुरु विलास' में भी गुरु और सिक्ख में कोई भेद नहीं है, ये दोनों एक रूप हैं। स्वयं गुरु जी इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं—

मोर सिक्ख है मोर प्रमाणा। मैं तिनके निज हाथ बिकाना।११।६०
मो संगति सिक्ख तहा सु जानहु। मैं तिनते नही जुदे प्रमानहु। ३१।४५

कवि की गुरु' में दृढ आस्था है और उसने निष्ठापूर्वक उनके प्रति अपनी दृढ भक्ति भावना को प्रकट किया है (१७ ६)।

सत

सिक्ख साधना में सत्संगति एवं सत-सेवा का भी बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। गुरु मत के अनुसार सत्संगति तथा सत-सेवा से 'हउमै' का विनाश होता है, (आदिग्रन्थ राग सूही महला ५, पृ० ७७३) माया के बंधन शिथिल

१ जीवन मे जल मैं थल मैं पुनि राजत है जिह की वर सत्ता।
रूखन मैं सरि पूसन मैं नर जीव चराचर कीन सु कत्ता।
नानक अंगद फेरू तन हरिदास जानो तुम पूरन सत्ता।
नीच सु जंत अनाथ इहै रारि करै तुम सो चवगत्ता।५।१०।६।

पड जाते हैं (सारग, महला ५, पृ० १२१६), भक्ति प्राप्त होती है और सवत्र परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं (वही, गउडी, महला ५, प० १८६)। 'गुरु बिलास' म सन्तो को ब्रह्म रूप माना गया है। उसके अनुसार साहब' और सन्त एक रूप हैं।[1] गुरु जी भी सन्तो स अपने को पृथक नहीं मानते।[2] सुक्खा सिंह का कथन है कि सन्तो के हृदय म नित्य परमात्मा निवास करता है।[3] ऐसे सन्तो का काल भी कुछ बिगाड नहीं सकता (१।११)। इन सन्तो की सगति स काल का फन्दा कट जाता है जन्म मरण स मुक्ति हो जाती है और जीव श्वान, गधे, बल, हाथी, नाग, काग आदि पशु-योनियो की यातिया म नहीं पडता। सत्सगति से मनुष्य ससार के सभी प्रपचो को काट कर, मोह, माया, काम, क्रोध आदि से बच कर पवित्र हो जाता है और हरि भक्ति म अनुरक्त होकर अनहद नाद सुनने लगता है (२८।३२ ३३)। इसी कडिया के प्रसग म कवि ने सेवा के महत्व का भी निरूपण किया है (२०।३६ ५८)।

ज्ञान, भक्ति, योग, कम आदि की चर्चा इस ग्रन्थ म अधिक नहीं हुई लेकिन ग्रन्थ के अध्ययन से इसम सन्देह नहीं रह जाता कि कवि न भक्ति को ही अधिक महत्व दिया है और नाम को हरि प्राप्ति का मुख्य साधन माना है (१।१६)।

सत्रहवी अठारहवी शती म उत्तर भारत म विभिन्न धार्मिक मत-मतान्तरो, पन्थो एव सम्प्रदायो की विविध साधना पद्धतिया प्रचलित थी। इस युग के अधिकतर सम्प्रदायो मे मिथ्याचारो एव बाह्याडम्बरो का प्राधान्य था। यहाँ तक कि सन्त मत मे भी, जो मुख्यत इस प्रकार की मिथ्या साधनाओ और आडम्बरो के विरुद्ध खडा हुआ था अनेक प्रकार के बाह्याचारो को ग्रहण कर लिया गया था। राम और कृष्ण भक्ति धारा मे भी रसिकता एव कामुकता का प्रवेश होने लगा था।

सुक्खासिंह ने 'गुरु बिलास म उस युग की हिन्दुओ की धार्मिक अवस्था का बडा ही यथाथ चित्र प्रस्तुत किया है। ऐसे मूर्ति पूजको, यतियो, सिद्धो, नाथा-योगियो, सन्तो सन्यासियो (१२।३३ ३४) देवी-पूजको (१६।१२८ ३५), राम एव कृष्ण के भक्तो (२६।५० ६०) अन्य अनेक अवतारो की पूजा करने वाले वष्णवो (१२।१३३ ३४) गले म लिंग लटकाने वाले शवो (२८।१०), आदि का, जो प्राय बाह्याचारा म फसे हुए थे और ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप और उसकी भक्ति को विस्मृत किय हुए थे कवि ने विशद वणन किया है।

---

१ त्यो साहिब अरु ताके सन्त। एक सरूप सुजान बिग्रन्त। २६।१४८।

२ मैं अरु मो सतन के माही। तनक भेद अन्तर कछु नाही।
एक रूप बिचरत ससारा। म तिनके नही तनक निआरा।३।६

३ सतन के उर म तिन वासा। निस दिन करही ताहि प्रकासा। १।१०

कवि का कथन है कि इस कलिकाल मे सच्चा साधु तो कहीं कोई एक दो ही मिल सकता है (२६।३६)। गुरु गोविन्दसिंह ने 'अकाल-उस्तुति' मे ऐसे साधकों का उल्लेख किया था और उनकी अहंकार-युक्त मिथ्या साधनाओं का खण्डन करके प्रेमा भक्ति का प्रतिपादन भी किया था। 'गुरु विलास' में भी ऐसे प्रसंग हैं जहाँ कवि ने इस प्रकार के साधकों की पतित दशा का निरूपण किया है और गुरु जी का उनकी भर्त्सना करते दिखाया गया है। यही नहीं, इन साधकों को अन्त म गुरु जी द्वारा निर्दिष्ट साधना मार्ग के महत्व को स्वीकारते हुए भी दिखाया गया है। बठिंडा म सिद्धों के साथ (२३।७३ ७४) दक्षिण म पीरों एव काजियों के साथ गोष्ठी मे (२६।१४० १५१) उनकी मान्यताओं को मिथ्या सिद्ध करके गुरु जी अपने मत का प्रतिपादन करते है और काजी भी धन्य धन्य कह उठते हैं (२६।१७७)। किस प्रकार पाखंडी ब्राह्मण धन के लोभ से अपना धर्म ईमान तक बेचने को तैयार हैं और रुपये के लालच म मांस-मदिरा तक का सेवन कर लेते है (८।७ ३०) ऐसे एक प्रसंग मे कवि ने गुरु जी को ब्राह्मणों के मिथ्याभिमान को खंडित करते हुए दिखाया है। ये लोग अपने पाखण्डों से लोगों को लूटते रहते हैं। गुरुजी उनकी कड़ी भर्त्सना और अपमान करते हैं लेकिन जो ब्राह्मण अपने धर्म पर स्थिर रहते हैं, उनका वे पूरा सम्मान करते हैं। वस्तुत, गुरु जी हिन्दुओं म यह भाव पैदा करना चाहते थे कि व किसी भय, आतंक अथवा लोभ से अपने धर्म से विचलित न हों। शाक्त लोग जिस प्रकार देवी की प्रसन्नता के लिए भैंसों की बलि देते हैं,उसका निषेध करके उन्होंने 'शस्त्र' को ही जो कि ब्रह्म की देह से उत्पन्न हैं (१।२० २५)' उसका वास्तविक रूप घोषित किया (२३।७७)। शाक्तों को उन्होंने पत्थर के समान कहा है (१६।८६ ६५)। ऐसे अन्य अवतार जो स्वयं अपनी पूजा करवाने लगे थे, उनकी पूजा का भी उन्होंने निषेध किया (१२।६०)। पूर्व के सिक्ख गुरुओं द्वारा संस्थापित मसंदों की पतित दशा का भी इस ग्रंथ म निरूपण हुआ है और जिस प्रकार इन लोभी, पाखंडी, अहंकारी मसंदों को, जिनमे धर्म नाम मात्र को ही रह गया था (११।२ ५, ४५ ६०), कठोर यातनाएं देकर (तवे पर जलाकर—११।६८) विनष्ट किया गया, उसका भी यहाँ वर्णन किया गया है।

कवि ने मुसलमानों के आतंक एवं इस्लामी संस्कृति के स्वरूप पर भी कुछ प्रकाश डाला है। उनमें भी सूफी, काजी, पीर, मुफ्ती, शेख मुलान, सयद मुगल, पठान आदि अनेक सम्प्रदाय, वर्ग एवं जातियाँ थी (२७।७४)। किसी को इस बात का अभिमान था कि वह नित्य कुरान (कतेब) (२२।१२७ ३१) पढ़ता है, किसी को यह वहम था कि उसे बंदगी करने से या रवायतें पढ़ने से परमात्मा क्षमा कर देगा (२२।१३३ ४४), किसी को हिन्दुओं की देव-मूर्तियाँ तोड़ने का भी गर्व था, परन्तु गुरु जी इनके इस मिथ्या-विश्वास का खण्डन

करते हुए कहते हैं कि जब तक मन साफ नहीं होता—अर्थात् शुद्धाचरण नहीं होता, तब तक कुरान पढ़ना या बन्दगी करना सब व्यर्थ है (२२।२३३ २३४)। उनके अत्याचारों की भर्त्सना करते हुए वे कहते हैं कि इस ससार म तैमूर, बाबर, हुमायू, अकबर, जहांगीर जैसे कितने ही विजेता आये, लेकिन काल ने सभी को विनष्ट कर दिया। ससार म वास्तविक विजय तो उसी की है जिसकी कीर्ति ससार म शोभित हो और जो सब जीवों म परमात्मा के दर्शन करता है।[1]

'गुर विलास' मे जिन अन्य मर्यादाओं आचरणों एव कर्मकाण्डों का निषेध किया गया है तथा जिन आचरणों म आस्था प्रकट की गई है वे इस प्रकार है—

१ 'गुर ग्रन्थ' साहिब म जनेऊ धारण करने का निषेध किया गया है। यहा गुरु गोबिन्दसिंह यद्यपि एक बार माता के आग्रह म जनेउ धारण कर लेते हैं लेकिन अन्तत इस ग्रन्थ म इसका निषेध ही किया गया है। दया की कपास के जनेऊ को ही वास्तविक जनेऊ माना गया है (१२।१५६ ५।१८५ ५।१६०)।

२ श्राद्ध एव मुण्डन का त्याग।

३ सिर सिद्दक का निषेध पर दान का समर्थन।

४ क्षात्र धर्म के महत्व को स्वीकारते हुए भी 'गुरु विलास' म वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध किया गया है और मानवीय समता एव एकता मे विश्वास प्रकट किया गया है (१२।१२६ १४०)। क्षात्रधर्म पर कवि ने इसलिए बल दिया है कि वह हिन्दुओं की शक्ति को जगाए रखना चाहता है।

५ लोक मर्यादा को न मानकर सभी वर्णों के भोजन की एक जगह लगर मे व्यवस्था करना (१२।१३६)।

६ साधु सन्त की प्राप्ति ही वास्तविक बदगी है।

७ झूठ को त्याग कर स्वय शुद्ध होकर सन्त-सेवा करना तथा पवित्रता ही असली बदगी है। यही धर्म है भक्ति भी यही है यही आत्म ज्ञान एव आत्म शुद्धि यही प्रभु प्रेम है (२६।१५१)।

८ गुनाहों का त्याग एव गुर वाणी म आस्था (२२।१२७ ३७)।

९ हठयोग की अनहद नाद (१।१३) दसमगृह सचखड (१।१८) आदि शब्दावली का कवि ने कई स्थानों पर ग्रहण किया है। यह भी स्वीकार किया है कि जीव को सिद्ध बनना चाहिए परन्तु ऐसा कि उसने तन मन की शुद्धता हो। 'शुद्धि बुद्ध रखै तन न्यारो' (१६।४२ ४६ ३।१४)।

---

१ जीवते ओइ जिह सोह जगत मैं कीरत जसु जिह घरन छाए।
नाम अधार निन बदगी आसरे सरब रूहान खालक लखाए।
२२।१४६

१० अन्तिम इसाफ मे आस्था (२२।११७ ३७)।
जीव की साधना की स्थितियो का कवि ने इस प्रकार निर्देश किया है —
एक जिज्ञासा।
दो ईश्वर कृपा से सदगुरु की प्राप्ति।
तीन उसकी सगति से कलमल का नाश होना।
चार ईश कृपा, गुरु प्राप्ति, गुरु-सेवा, एव नाम स्मरण।
तब शरीर पाक-पवित्र हो जाता है।

गुरु गुनहगार को भी पवित्र कर देना है (२६।१४० १७२) तन की पवित्रता से मन की पवित्रता होती है और वही साधना की उत्तम स्थिति है (२६।१६३)। सिक्ख मत की आदर्श मर्यादा को उसने इस सूत्र म प्रस्तुत किया है 'पच सु मेल पच सु त्यागी' (३०।२८)। 'पच मेल से जपुजी की पच परमेसुर पच परधान' की ओर सकेत है और पच-त्याग से अभिप्राय काम, क्रोध, मोह, मद एव मत्सर आदि से है।

खालसा

'गुरविलास' के कवि ने सिक्खमत के सद्धातिक पक्ष का अधिक निरूपण नही किया, उसकी साधना-पद्धति का भी उतनी विशदता से प्रतिपादन नही किया जितना 'दशमग्रन्थ' या 'गुरु प्रताप सूरज' म हुआ है लेकिन खालसा के जन्म उसकी स्थापना के कारणो, उसकी मर्यादा (१२।८३ ८६) एव स्वरूप (१२।६१, १२।८३ ८६), रचना-उद्देश्य (१२।८३ ८६) एव महत्व आदि का कवि ने अत्यन्त विस्तार से वणन किया है। खालसा का कवि ने गुरु रूप माना है (१२।३२), वे (गुरु गोविन्दसिंह) स्वय उसके सम्मुख हाथ जोड कर खडे होते हैं (१२।६८ १०७) तथा उससे अमृत पान कर उसके महत्व का प्रतिष्ठित करते हैं। 'खालसा पथ' को कवि ने विशिष्ट महत्त्व दिया है (१२।१८४) और शस्त्र प्रेम तथा हरिनाम-स्मरण करना, यही उसका आदर्श माना है (१२।१६४), कवि की खालसा म अपूव श्रद्धा है और वह निष्ठापूवक उसके स्वरूप एव महत्व का वणन करता है।

समन्वय भावना

सुक्खासिंह ने मध्ययुगीन भारतीय समाज और सस्कृति का यथाथ चित्रण किया है। उसने खालसा पथ को विशिष्ट महत्व अवश्य दिया है, पर उसका धार्मिक दृष्टिकोण बहुत उदार है। यवन विरोधी स्वर गुरु विलास म प्रखरता से मुखरित है। हिन्दू धम की विकृतियो मिथ्याचारो का विरोध भी खुल कर किया गया है लेकिन उसमे कही भी हिन्दू धम से अलगाव की भावना दिखाई नही पडती। बल्कि लगता ऐसा है कि कवि की प्राचीन भारतीय सस्कृति एव धम साधना मे पूण आस्था है। सिक्ख गुरुओं की समस्त धर्म साधना भी मूलत भारतीय धम साधना का ही एक सहज एव परिष्कृत रूप है और

भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान का ही एक सशक्त आन्दोलन चलाया था और सुक्खासिंह ने इन्हीं गुरुओं की गौरव गाथा, उनकी धर्म साधना रहित मर्यादा एवं महिमा का वर्णन 'गुर विलास' में किया है। अतः 'गुरविलास' का सांस्कृतिक स्वर वही है जो 'आदि ग्रन्थ' और 'दशमग्रन्थ' का है। जिस प्रकार 'दशमग्रन्थ' में पौराणिक आख्यानों, पुरुषा प्रसंगों एवं उद्धरणों के माध्यम से एक विशिष्ट सांस्कृतिक चेतना जागृत करने का प्रयत्न किया गया है उसी प्रकार 'गुरु विलास' में भी अनेक पौराणिक प्रसंगों के माध्यम से इस जीवन्त सांस्कृतिक परम्परा का महत्त्व स्थापित किया गया है। इस युग में हिन्दू धर्म की दो धर्म-साधनाएँ प्रमुख थीं—एक वैष्णव दूसरे शैव एवं शाक्त। 'गुरु विलास' में इन दोनों वर्गों के प्रभाव को स्वीकार किया गया है।

इस कवि की सचेतन समन्वय भावना का परिणाम भी कहा जा सकता है। कहीं-कहीं तो इस प्रभाव को ग्रहण करने का आग्रह इतना अधिक है कि वह सिक्ख मत के प्रतिकूल पड़ता दिखाई देता है। लेकिन वह हिन्दू और सिक्खों के सांस्कृतिक एवं धार्मिक समन्वय के लिए इतना सचेष्ट है कि उसने इस सैद्धांतिक विरोध की तनिक भी चिन्ता नहीं की।

हिन्दुओं के पुराणवाद का 'गुरु विलास' पर अत्यधिक प्रभाव है। हरिश्चन्द्र के राज्य की स्थिति एवं उसके सत्यपालन (२१४०, २१७६, २१५७) हीराघाट गोदावरी आदि की पौराणिक कथाओं (४।८७) तथा काशी प्रयाग हरिद्वार आदि हिन्दू तीर्थों की महिमा आदि के वर्णन द्वारा (२८।१०० १०८) कवि ने प्राचीन हिन्दू संस्कृति में अपनी निष्ठा प्रकट की है। इस गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण करके एक ओर तो वह हिन्दुओं के आत्म विश्वास एवं स्वाभिमान को जगाता है और साथ ही हिन्दू सिक्खों की सांस्कृतिक अभिन्नता एवं एकता की भी व्यंजना करता है।

'गुर विलास' में अवान्तर कथाओं, प्रासंगिक घटनाओं उद्धरणों अथवा अलंकरण के रूप में अनेक पौराणिक आख्यानों का प्रयोग हुआ है। ये कथाएँ किन-किन पुराणों से ली गई हैं यह खोजना या जानना बहुत महत्त्व नहीं रखता। वैसे भी मैं नहीं समझता कि प्रत्येक कवि जिन पौराणिक प्रसंगों का प्रयोग अपने काव्य में करता है वह किसी पुराण को पढ़कर ही ग्रहण करता है। वस्तुतः कवियों की पहुँच इन पुराणों तक प्रायः नहीं होती। सुक्खासिंह ने भी शायद ही पुराणों का अध्ययन किया हो। पुराणों के कितने ही प्रसंग भारतीय लोक-जीवन के अभिन्न अंग बन गए हुए हैं और एक अनपढ़ हिन्दू भी इनकी अनेक कथाओं से परिचित है। सुक्खासिंह ने भी सम्भवतः इन कथाओं को लोक-जीवन से सुनकर अपने काव्य में प्रयुक्त किया है। इसलिए कवि के पौराणिक ज्ञान की परीक्षा करके उसे पण्डित घोषित करना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी यह दृष्टि जिससे कवि ने इन प्रसंगों का प्रयोग किया है। जब कवि

किसी सिक्ख गुरु उनके किसी आचरण, उपदेश घटना अथवा महिमा आदि का वर्णन किसी पौराणिक व्यक्ति या पौराणिक आख्यान से साम्य स्थापित करके करता है तो उससे हिन्दू सिक्खों की सांस्कृतिक एकता, अभिन्नता एवं समन्वय की जो भावना विकसित होती है, वह अधिक महत्त्व रखती है। इस प्रवृत्ति के दर्शन हमें इस युग के सभी सिक्ख कवियों में मिलते हैं चाहे वह सुक्खासिंह हो या 'गुरु प्रताप सूरज' का रचयिता संतोखसिंह आज जब सिक्ख संस्कृति, सिक्ख नेशनलिज्म अथवा सिक्ख मत के हिन्दुत्व से अलगाव की भावना पनपने लगी है उसके उन्मूलन के लिये मध्ययुगीन इन सिक्ख काव्य ग्रन्थों की यह समन्वय भावना विशेष राष्ट्रीय महत्त्व रखती है। दरअसल सिक्ख नेशनलिज्म जैसी विघटनकारी प्रवृत्तियों का प्रचार कुछ अंग्रेज विद्वानों ने अपने निहित उद्देश्यों से ही किया था। 'गुरु विलास' में ऐसे प्रसंग मिलेंगे जहाँ सिक्ख-गुरुओं की हिन्दू अवतारों के साथ एकरूपता का निरूपण किया गया है। कहीं उन्हें रावण, कुम्भकरण आदि का वध करने वाले राम तथा कहीं कंस जरासंध आदि का संहार करने वाले कृष्ण एवं शुम्भ निशुम्भ का विनाश करने वाली काली कहा गया है[1] तो कहीं देवा अनेकों को बनाने वाले कहा है। कवि का कथन है कि मुष्ट, चण्डूर भूमासुर आदि को मारने वाले ही अब शत्रु को नष्ट करके विजय दुदम्भि बजाकर शहनशाह (गोविन्द सिंह) बना बैठा है।[2] कवि की मान्यता है कि वेद पुराण, स्मृतियां, किन्नर, यक्ष देव, दैत्य एवं ब्रह्मा जिसे ध्यात हैं और शेषनाग जिसे नेति नेति कहता है सो वह यही गुरु है (१५।१३६ १३७)। कवि ने एक स्थान पर यह भी लिखा है कि गुरु गोविन्दसिंह ने गोकुल, वृन्दावन, मथुरा की यात्रा में उन सभी स्थानों को देखा जहाँ उन्होंने अनेक लीलाएँ की थी। धाय वध काली-दमन, गज-वध, एवं कंस वध के स्थान भी देखे (२६।१ १२)।

---

१ यो मुन कर्त्री मुख को बाचा। बोल्यो सत गुमन वर पाचा।
अस जोया तो सम वर वाही। चौन्ह भवन प्रगट कोऊ नाही। २३६।
काम क्रोध दुष्टन अवतारी। जिन कीनी राम सरूप सुधारी।
महा धनख धर प्रति बर बना। जिनु जीते खल दल धर कला। २३७।
रावणादि जिह प्रगटि संहारे। कुम्भकरण अर्धकंट प्रहार।
शुम्भ निशुम्भ कीन खल ध्वंसा। जरासंध दुरजोधन कंसा। २३८।
बडे-बडे मोनी अवतारी। बरन विरच सूर ससि भारी।
सुर नर नाग जान अस रीता। जिन को दण्ड सरब के सीसा। (६।३६)।

२ देव अनेक करे इनके तुम ही जग म सब थ्योन बनाई।
रावन से रिपु कोट हने पुन कोट तनीस की बंद छुडाई।
मुस्ट चडूर, मु कंस किया हरि भू गुन की निम अग लगाई।
सो अब शाहनशाह भयो अरि चूर कै जीत की धम्ब बजाई। १५।२३६।

भारतीय सस्कृति के पुनरुत्थान का ही एक सशक्त आन्दोलन चलाया था और सुक्खासिंह ने उन्ही गुरुओ की गौरव गाथा, उनकी धर्म साधना सहित मर्यादा एव महिमा का वर्णन 'गुर विलास' म किया है। अत गुरविलास' का सांस्कृतिक स्वर वही है जो आदि ग्रन्थ और 'दशमग्रन्थ' का है। जिस प्रकार 'दशमग्रन्थ' म पौराणिक आख्यानो, पुरुषो प्रसगो एव उद्धरणो के माध्यम से एक विशिष्ट सास्कृतिक चेतना जागृत करने का प्रयत्न किया गया है उसी प्रकार गुरु विलास' म भी अनेक पौराणिक प्रसगो के माध्यम से इस जीवन्त सास्कृतिक परम्परा का महत्त्व स्थापित किया गया है। इस युग मे हिंदू धर्म की दो धर्म-साधनाएँ प्रमुख थी—एक वैष्णव दूसरे शैव एव शाक्त। 'गुरु विलास' म इन दोनो वर्गों के प्रभाव को स्वीकार किया गया है।

इसे कवि की सचेतन समन्वय भावना का परिणाम भी कहा जा सकता है। कहीं-कहीं तो इस प्रभाव को ग्रहण करने का आग्रह इतना अधिक है कि वह सिक्ख मत के प्रतिकूल पडता दिखाई देता है। लेकिन वह हिंदू और सिक्खो के सास्कृतिक एव धार्मिक समन्वय के लिए इतना सचेष्ट है कि उसने इस सद्धातिक विरोध की तनिक भी चिन्ता नही की।

हिंदुओ के पुराणवाद का 'गुरु विलास पर अत्यधिक प्रभाव है। हरिश्चन्द्र के राज्य की स्थिति एव उसके सत्यपालन (२।४० २।७६, २।५७) हीराघाट गोदावरी आदि की पौराणिक कथाओ (४।८७) तथा काशी प्रयाग, हरिद्वार आदि हिंदू तीर्थों की महिमा आदि के वर्णन द्वारा (२८।१०० १०८) कवि ने प्राचीन हिंदू सस्कृति म अपनी निष्ठा प्रकट की है। इस गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण करके एक ओर तो वह हिंदुओ के आत्म विश्वास एव स्वाभिमान को जगाता है और साथ ही हिंदू सिक्खो की सास्कृतिक अभिन्नता एव एकता की भी व्यजना करता है।

'गुर विलास म अवान्तर कथाओ, प्रासगिक घटनाओ उद्धरणो अथवा अल करण के रूप म अनेक पौराणिक आख्यानों का प्रयोग हुआ है। य कथाएँ किन किन पुराणो से ली गई हैं यह खोजना या जानना बहुत महत्त्व नही रखता। वैसे भी मैं नहीं समझता कि प्रत्येक कवि जिन पौराणिक प्रसगो का प्रयोग अपने काव्य म करता है वह किसी पुराण को पढ़ कर ही ऐसा करता है। वस्तुत म कवियो की पहुँच इन पुराणो तक प्राय नहीं होती। सुक्खासिंह ने भी शायद ही पुराणों का अध्ययन किया हो। पुराणो के कितने ही प्रसग भारतीय लोक जीवन के अभिन्न अग बन गए हुए हैं और एक अनपढ़ हिंदू भी ऐसी अनेक कथाओ से परिचित है। सुक्खासिंह ने भी सम्भवत इन कथाओ को लोक जीवन स सुनकर अपने काव्य म प्रयुक्त किया है। इसलिए कवि के पौराणिक ज्ञान की परीक्षा करना उस पद्धति घोषित करना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी यह दृष्टि जिसस कवि ने इन प्रसगो का प्रयोग किया है। जब कवि

'गुरु विलास म सिक्ख गुरुग्रो से सम्बन्धित घटनाग्रो की हिन्दू अवतारो की पौराणिक घटनाग्रो स समता भी प्रदर्शित की गई है। उदाहरणाथ जिस प्रकार पूव अवतारो ने धरा का दैत्यो से छीन कर अपने भक्तो को दिया था, उसी प्रकार गुरु जी न भी इसे म्लेच्छो से छीन कर 'खालसा' को प्रदान किया। गुरु गोबिन्दसिंह की माता जी को कौशल्या समान (३।७४ ८५), गुरु जी को राम, कृष्ण, शिव के समान (८।४, ६।११४ २२, ६।२१४) तथा साढी वश को सूय वश (८।५) एव गुरु जी के पटन स प्रस्थान को राम के वन गमन के समान बताया गया है (३।१६६ ७५)।

इस पौराणिक प्रवृत्ति के अतिरिक्त सुक्खासिंह न अनेक प्रसगो म हिन्दू सस्कृति के प्रमुख चरित्रो, अवतारो ऋषि मुनियो आदि का उल्लेख भी किया है। राम कृष्ण विभीषण रावण, पाडव, कौरव वराह, बली, बावन हिरण्यकश्यप, परशुराम देवी हरिश्चन्द्र, विश्वामित्र नारद अगस्त इन्द्र, दिलीप, नल पारथ आदि ऐसे पात्र हैं जो 'गुरु विलास म आय हैं और जो कि हिन्दू धम, सस्कृति और इतिहास से सम्बन्धित है। इस्लामी इतिहास के किसी भी एसे पात्र का उल्लेख 'गुरुविलास म नही मिलता। यवनो को तो उन्होंने असुर ही कहा है और उनकी भरसना की है। खालसा पथ की स्थापना के प्रसग म भी अगस्त परशुराम, राम गनेश धनेश गधव किन्नरो की ही कथाओ का उल्लेख हुआ है (१२।११४ ११५ १२।६८, १४।१८२ १८३, १५।७, १८।३४)। कवि की काव्य चेतना पर यह भावना इतनी गहराई से छाई हुई है कि वह इस समृद्ध पौराणिक परम्परा से अनेक प्रसगो का उपमानो के रूप म भी चयन करता है (१७।१६३ २०।३१)। खालसा-पथ की रूपक-योजना भी वह क्षीर सागर के माध्यम से करता है (१२।१६३)। इस मिथकीकरण के अतिरिक्त कवि ने हिन्दुओ के प्रसिद्ध तीथ स्थानो मथुरा (२।१ ३), गोकुल गोदावरी आदि की पवित्रता एव महिमा (२६।१ १० २८।७१ २८, १०० १०८) आदि का निष्ठापूवक वणन किया है। गुरु तेगबहादुर अथवा गुरु गोबिन्दसिंह इन तीथ स्थानो पर हिन्दू भक्तो की तरह से विचरते दिखाये गये हैं। व याचको को दान भी देते हैं और ब्राह्मणो का आदर भी करते हैं। ब्राह्मण गुरु जन्म के समय लगन भी देखते ह और दाह-सस्कार के समय भी उपस्थित हैं। 'गुरु विलास म एक ब्राह्मण द्वारा गुरु जी को उपवीत पहनाने का उल्लेख भी है। वस्तुत गो, ब्राह्मण की रक्षा को तो गुरु जी का एक विशेष लक्ष्य माना गया है। इस तरह गो ब्राह्मण वेद पुराण एव तीर्थों मे आस्था प्रकट करके कवि ने वष्णवो के प्रभाव को ग्रहण किया है धूप, दीप नवेद्य आदि की पूजा विधि का भी यहा स्वीकार किया गया है। यही नही सिक्खो के तीथ स्थानो को भी अनेक पौराणिक प्रसगो स जोड कर उनका महत्व स्थापित किया गया है। सतयुग की पौराणिक कथा इसका प्रमाण है (४।६२ ७०)। पटने को भी

हरिराद्र की पौराणिक कथा से जोडा गया है। वैष्णवो और सिक्खो की सास्कृतिक एकता को और दृढ करने के लिए कवि ने वष्णवो के अनेक धार्मिक पर्वों-होली, वसाखी, दीपावली विजयदशमी[आदि का भी वणन किया है, जिन्हें स्वय गुरु जी मानते दिखाए गए हैं (१४।१ १३।६६, १७।३)। वहा कहीं भी इद बकरीद आदि का वणन नही है। शैवो एव शाक्तो के प्रभाव को तो इससे भी अधिक मजबूती से ग्रहण किया गया है। 'गुरुमत मे अकाल पुरुष को छोडकर अन्य सभी देवी देवताओ, अवतारो की पूजा का निषेध है। स्वय गुरु गोबिन्द सिंह ने भी 'दसमग्रंथ' मे इनकी आराधना का विरोध किया है। लेकिन गुरु बिलास मे गुरु गोबिन्दसिंह को एक निष्ठावान देवी भक्त के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। वे एक श्रद्धालु भक्त की तरह से अविचल बैठकर माता चडी की आराधना करते हैं, स्तोत्र, कवचादि का पाठ निर्विघ्न अखड चलता है और अग्नि होत्र भी होता है। उनकी निष्ठायुक्त साधना से प्रसन्न होकर देवी के प्रकट होने और गुरु जी को म्लेच्छ विनाश आदि का वरदान देने का भी विस्तृत वणन हुआ है। देवी के प्रकट होने से पहले भूत पिशाच गन नृत्य करते दिखाई देते हैं फिर कापुंज की विकराल ध्वनि सुनाई देती है। पवन प्रचण्ड गति से चलने लगता है। घनघोर घटा छा जाती है। समुद्र, पवन धरती, आकाश, थर्राने लगते हैं और फिर देवी के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं (१०।१ ४६)। गुरु जी उसके दाहिने हाथ की कृपाण और म्लेच्छो के विनाश का वर मागते हैं।

गुरु विलास' म स्थान-स्थान पर भगवती काली का गुरु गोबिन्दसिंह की सहायता करते भी दिखाया गया है। कभी वह तोप के रूप म शत्रु सेना का नाश करती है कभी शत्रुओं द्वारा प्रेरित मस्त गज का महिषासुर के समान मदन करती है और कभी धमयुद्ध से भागे हुए भगोडो को दण्डित करती है। यही नही यहाँ गुरु जी को धूप, दीप, नैवेद्य लेकर देवी की पूजा करते हुए और उसका चरणामृत ग्रहण करते हुए भी दिखाया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि खालसा की विशिष्टता का प्रतिपादन करते हुए भी (१०।१३७ १२।१८४) सुक्खासिंह ने हिन्दू सस्कृति तथा हिन्दू पुराण याद म अपनी आस्था प्रकट की है तथा वष्णवो एव शाक्तो के प्रभाव को उदारता से आत्मसात किया है। सिक्ख मत को उसने वहृद हिन्दू-सस्कृति के एक अभिन्न अग के रूप म स्वीकारा है। यही कारण है कि हिन्दू धम के कुछ ऐसे तत्वों को भी उसने स्वीकार कर लिया है, जिनका सिक्खमत म स्पष्ट निषेध किया गया है। हिन्दुओ की अनेक ऐसी साधना पद्धतिया, पूजा विधिया सस्कारो में उसने विश्वास प्रकट किया है जिनका सिक्ख गुरुओ ने खुला विरोध किया था। देवी-पूजा के प्रसग को पथ-स्थापना के साथ जोडना इस समन्वय भावना का ही परिचायक है (८।२७)। यह आवश्यक नहीं कि इस प्रसग को इस तथ्य के प्रमाण रूप म स्वीकार कर लिया जाए कि गुरु जी ने वास्तई देवी

की आराधना की थी। इन प्रसगों से गुरु जी का चरित्र भी दूषित नही होता, वरन यहा कवि की निजी समन्वय भावना का ही प्रसार है और ऐसा कवि ने युग परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए किया है।

अभिव्यक्ति पक्ष

भाषा— गुरु विलास गुरु चरित पर आधारित एक ऐसा काव्य ग्रथ है जिसम इतिहास का 'मिथकीकरण हुआ है। इसमे कथा तत्त्व अधिक है और काव्यत्व कम। भावो की मार्मिक व्यञ्जना की अपेक्षा इसका सास्कृतिक महत्त्व अधिक है। यही कारण है कि कवि ने काव्य के कलात्मक-पक्ष पर अधिक ध्यान नही दिया। उसने सहज, व्यावहारिक एव सुबोध भाषा का प्रयोग किया है और उसमे अनेक असाहित्यिक तथा स्थानीय शब्द आ गये हैं—तुरहै तोरी (चलाई) काइ (कोई) उथ(२३।१०४, २४।२५ २७ २८।५३ २५।८५) जसे पजाबी शब्द अदल, सुलतान करामत, अदालती, इसाफ खुआर, भिस्त कासद जसे फारसी एव भिराइ जसे मुल्तानी शब्दो सूक्ष्म के स्थान पर 'मूछ और यश के लिए 'जासु' का भी प्रयोग हुआ है। वस्तुत 'गुरुविलास' की भाषा न तो अपन स पूववर्ती रचना दशमग्रन्थ की भाँति प्रौढ है और न ही परवर्ती ग्रथ गुर प्रताप सूरज की भाँति परिमार्जित। इसकी भाषा व्रज है पर उस पर स्थानीय बोलियो एव खडी बोली का भी प्रभाव है। उसम ग्रामीण व्रज का सा सहज रग है। जसे व्रज भाषा के अवधी भाषी कवियो पर अवधी का रग है उसी तरह 'गुरु विलास मे पजाबी का रग गहराया हुआ है। पजाब मे मुसलमानी प्रभाव अधिक स्थायी था इसलिए इसम अरबी फारसी एव तुर्की के शब्दो की भी बहुतायत है। मस्तक लगना सर छार डालना (धूल डालना), धूण हरामी कारा मुख करना जसी करनी-तैस पग पेहै आख तरे नहि आनो मू ड मु डायो एव तिन पर बीतत ते नर जानै अवर न जत को कहा पछानै जसे मुहावरा एव बुरी बात जो कोऊ बनावै उलटी पेस तिसू के आव जसी सूक्तियो के प्रयोग से भाषा म व्यावहारिकता आ गई है।

अलकार

जसा कि ऊपर कहा गया है, गुरु विलास' मे भाषा क सहज स्वाभाविक और व्यावहारिक रूप को अपनाया गया है। कही भी उसम चमत्कार प्रदर्शन का प्रयत्न नही किया गया। दशमग्रन्थ और गुरु प्रताप-सूरज' की भी शैली यद्यपि स्वाभाविक है फिर भी उनम अलकारा की छटा दर्शनीय है। इन ग्रन्थो म अलकारा का रमात्मक के हेतु बडा ही कुशल प्रयोग हुआ है। 'गुरु विलास' म कहा भी अलकारो के उस प्रकार क चमत्कारिक प्रयोग के दशन नही होते। दशमग्रन्थ जसा अलकारो का वभव भी इसम नही है। अलकारा के सायास प्रयाग स काव्यत्व की श्रीवृद्धि की चेष्टा कवि ने यहाँ नही की। कुछ स्थानो पर अनायास ही उत्प्रेक्षा (३।७ ८५) उदाहरण (१६।१३१ १३५) अनन्वय

(३।६७), उपमा (३।६८, १५।६४, २५।७५), रूपक (५।२०६, २१।२६१, १२।१६५, १७।३२, १३।३३ ४८, २१।८३ ८७), व्यतिरेक (५।२०६) उत्प्रेक्षा (१७।३२, २५।५ ६, ४५।१३, १४।८२) आदि सादृश्यमूलक अलकार आ गये हैं जो वस्तु, क्रिया, गुण स्वभाव आदि की सौन्दय वृद्धि के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। ऐसे स्थाना पर कवि ने सेना के लिए टिड्डी दल, उसके घिराव के लिए सागर अथवा घन घटा, यश के लिये क्षीर या गगा, तेजस्विता के लिये सूय आदि प्राकृतिक तथा परम्पराभुक्त उपमाना का ही प्रयोग किया है। पौराणिक उपमानो का प्रयोग भी कई स्थाना पर हुआ है। अनुप्रास भी कही कही आये हैं (२८।१, १२।१६५) लेकिन यमक या श्लेष के चमत्कार क इसम कही दशन नही होत। कुल मिलाकर इसम अलकारा का भावा क सप्रेषण मे सहायता के लिए स्वाभाविक रूप म ही प्रयोग हुआ है चमत्कार प्रदशन हेतु नही।

छद

पजाब मे रचित अन्य प्रबन्धा की भाँति इसकी मुख्य छन्द पद्धति दोहा चौपई ही है। कही कही दोहा रसावल, दोहा निराज, दोहा भुजगप्रयात दोहा-पाधडी, दोहा अडिल, दोहा सवया जसी कुछ अन्य पद्धतियो का भी अस्थिर रूप म प्रयोग हुआ है। इसम दोहा चौपई के अतिरिक्त सोरठा, अडिल, झूलना, सवया, रूआल भुजग प्रयात, रसावल, पाधडी, सखनारी, मधुभार, बिज स्री मनोहर, निराज तोटक, भुजग, कवित्त तिलका आदि कोई अठारह छन्दा का प्रयोग हुआ है। दशमग्रन्थ की ऐतिहासिक प्रबन्ध रचनाओ म तथा 'गुरु प्रताप-सूरज मे भी प्राय इन्ही छन्दा का प्रयोग हुआ है। इन्ही ग्रथो की भाति 'गुरु विलास' के भी युद्ध वणनो मे छन्द वविध्य अधिक है। वहाँ तीव्रगामी रसावल, भुजग प्रयात, निसानी मधुभार पद्धरि, अडिल, नराज आदि छन्दो का प्रयोग अधिक हुआ है। छन्दा का प्रयोग भाव और रस के अनुकूल है जो रसोत्कप मे सहायक हुआ है। इसम मात्रिक छन्द ही अधिक हैं।

वस्तुत 'गुरु विलास' वीररस प्रधान एक ऐसा कथात्मक प्रबन्धकाव्य है जिसका ऐतिहासिक एव सास्कृतिक महत्त्व तो है ही यह एक श्रेष्ठ काव्य-कृति भी है। रीतिकालीन शृङ्गारिकता एव अलकारिकता के सदभ मे युग चेतना से युक्त इस प्रकार की रचनाएँ विशेष महत्त्व रखती हैं और इसस हमे उस युग की काव्य प्रवत्तियो का पुनमूल्याकन करने म सहायता मिलती है।

१२

'गुरु नानक प्रकाश' (सतोखसिंह)

'नानक प्रकाश भाई सतोखसिंह द्वारा रचित एक उत्कृष्ट महाकाव्य है, जिस की रचना उन्होंने ब्रज भाषा साहित्य के ढलते हुए यौवन काल मे बूडिया (जिला अम्बाला) निवास के समय की और यह कार्तिक पूर्णिमा १८८० वि० को समाप्त हुआ।[1] उनका नाम कोश' स० १८७८ के अन्त म समाप्त हुआ था यह ग्रन्थ उसके समाप्त होने के पश्चात ही आरम्भ हुआ होगा जिससे विदित होता है कि इस ग्रन्थ की रचना उन्होंने लगभग ढाई वर्ष के समय म की।

इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता म कोई सदेह नहीं हो सकता। कवि ने स्वय 'गुरु प्रताप सूरज ग्रथ म इसका उल्लेख किया है।[2] इस रचना के अन्त म भी अपने पिता के नाम के साथ इनका नाम आया है।[3] यह ग्रथ गुरमुखी लिपि म खालसा समाचार अमृतसर द्वारा मुद्रित भी हो चुका है। इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ भी प्राप्त हैं जिनका इस मुद्रित ग्रथ से कोई अन्तर नहीं है।[4]

यह ग्रथ १३० अध्याया का एक वृहदाकार ग्रन्थ है जो दो भागो म विभाजित है। पूर्वार्ध मे ७३ अध्याय हैं और उत्तराध म ५७। छन्दो की सख्या ६१०० है। यह एक लोकप्रिय ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसकी कथा तो लोगा को गुरुद्वारा मे आनन्द विभोर करती रही है पर हिन्दी साहित्य अभी तक इसके

---

१ एक अक अर अशट कर बहुरि अशट पर शून,
कार्तिक पूर्णिमा बिखे भयो ग्रन्थ बिन ऊन।

२ गुरु प्रताप सूरज राशि १ ५ ६ १८।

३ देवासिह पितु ते जन्म, कवि सतोखसिंह नाम ११०-उत्तराद्ध अ० ५१।

४ हस्तलिखित प्रतिया इन स्थाना पर उपलब्ध हैं—
(क) मोती बाग पुस्तकालय, पटियाला न० २५।
(ख) मोती बाग पुस्तकालय, पटियाला न०२।
(ग) कान्हसिंह नाभा का पुस्तकालय।
(घ) भाषा विभाग, पटियाला न० १७८
(इन सब प्रतिया म रचना काल १८८० वि० ही दिया है)

नाम से भी परिचित नही है।[1]

इस ग्रंथ म गुरु नानक के जीवन का अनेक घटनाएँ, उनकी साधना, व्यक्तित्व, उपदेश तथा दार्शनिक विचार विस्तार के साथ वर्णित हैं। उनके जीवन स सम्बन्धित घटनाओं को कवि न अमृतसर, बटाला आदि अनेक स्थानों स एकत्रित किया। कुछ सामग्री पूर्ववर्ती ग्रंथो म प्राप्त की और कुछ लोक प्रचलित वार्ताओं से। इन सब म से उन्होंने जो घटनाए उपयोगी एव उचित समझी उन्हे बीन बीन कर ही ग्रहण किया।[2] इस ग्रंथ की रचना म उन्होंने 'आदि ग्रंथ' वार भाई गुरुदास जन्मसाखी' (बाला) 'महिमा प्रकाश' 'सौ साखी, पच सौ साखी' आदि ग्रंथो से भी पर्याप्त सहायता ली है। साथ ही गुरु नानक के चरित्र को दिव्य रूप प्रदान करने क लिए उनके चरित्र के साथ बहुत सी अलौकिक एव अतिमानवीय घटनाओ का भी समावेश कर लिया गया है और उसे पौराणिक रूप देने का प्रयत्न किया है। इससे एक ओर जहाँ गुरु नानक का अवतारत्व स्थापित होता है वहाँ उनके जीवन सम्बन्धी बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं का रूप भी परिवर्तित हो गया है। फिर भी यह ग्रंथ बाद के सिख इतिहास लेखको एव काव्यकारो के लिए अमूल्य निधि सिद्ध हुआ है।

कथा म आरम्भ से अन्त तक एक सा सतुलन तथा प्रवाह है। बीच बीच म पुराण, रामायण, महाभारत क अनेक प्रसग आए हैं, पर सक्षेप म, उतने ही, जिनस कथा प्रवाह मे व्यवधान नहीं पडता और वे कथानक को महिमा मडित करने म सहायक होते हैं। कथा मे अवान्तर कथाएँ भी हैं और योगियो, नाथो सिद्धो आदि के साथ दार्शनिक वाद विवाद के प्रसग भी हैं, पर वह दार्शनिक चर्चा सरल, बोधगम्य एव सक्षिप्त है, जिसस कथा प्रवाह को कोई क्षति नही पहुचती। कथानक की गति म क्षिप्रता बनाए रखने क लिए सागर, पर्वत आदि का भी चलता सा वर्णन करके कवि कथा क साथ आगे बढ जाता है। कथा म सहजता, स्पष्टता तथा रोचकता का भी पूर्ण ध्यान रखा गया है। उसम कही भी जटिलता, दुरूहता नही है। कही कही इतिवृत्तात्मकता अवश्य है जो इस प्रकार के कथा-काव्यो मे आ जाती स्वाभाविक है। फिर भी कथानक ऐतिहासिक इतिवृत्त मात्र प्रस्तुत नही करता, स्थान-स्थान पर कवि का हृदय वर्णन म रमता दिखाई देता है। एक चित्रकार की भाति कल्पना की कूची से अतीत

---

१ भाई सन्तोखसिंह के विस्तृत जीवन वृत्त के लिए देखिए हमारा शोध प्रबन्ध गुरु प्रताप सूरज के काव्यपक्ष का अध्ययन'

२ आदि सुधासर जे इसथाना खोजि खोजि नीके विधि नाना,
लिखी पेखि केती बहु थाई, केती सुणी जुमन महि भाई १०८।
बीन बीन गुर महिमा आछी, माखन जिउ लीनी तजि छाछी,
कविता ताकी रुचिर बनाई। सतिगुर सिखन के मन भाई। १०९।

की घटनाओं को सजीव रूप मे प्रस्तुत किया गया है। मार्मिक स्थलो के निरूपण मे कवि की प्रतिभा का कौशल देखा जा सकता है। सम्बद्धता की ओर भी पूरा ध्यान रहा है। यद्यपि घटनाओ म कार्य-कारण सम्बन्ध नही है तथापि सभी घटनाए गुरु नानक के चरित्र से सम्बन्धित होने के कारण एक सूत्र म बधी हैं बीच बीच म प्रश्न उठा कर कथा वाचक शैली म श्रोताओ की शकाओ का समाधान करते हुए और विविध प्रसगो के सूत्रो को मिलाते हुए कथा सश्लिष्ट होकर आगे बढती है। सम्वाद कथानक को रोचक गरिमा युक्त एव विदग्ध बनाते हैं। तृप्ता और कालू के साथ श्री नानक के सार गर्भित स्नेहपूर्ण एव मार्मिक सवाद कथा म रोचकता एव सजीवता उत्पन्न करते हैं और रस सृष्टि म सहायक हुए हैं। सिद्धो के साथ उनकी गोष्ठी उनकी चिंतनधारा को स्पष्ट करती है और कथानक को महिमा मडित करती है। अन्य लोगो से उनका वार्तालाप भी उनके आचारपक्ष और विचार धारा को स्पष्ट करने मे सहायक हुआ है।

कही कही कथानक मे ऐसी अतिमानवीय घटनाएँ भी आई हैं, जिन पर आज का यथार्थवादी पाठक अविश्वास प्रकट कर सकता है। गुरु नानक का गोरख तथा विभीषण से वार्तालाप करना तथा सागर पर से चलना अथवा क्षण भर म कई लाख योजन लाघ जाना ऐसी ही घटनाएँ है। परन्तु आस्थावान सिक्ख उनके दिव्य चरित्र मे वैसे ही विश्वास रखते हैं जैसे हिन्दू अवतार-कथाओ पर।„इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस ग्रथ के कथा नक म उपदेशात्मकता और कथात्मकता अधिक है, नाटकीयता और चमत्कार कम। कथानक की दृष्टि से यह रचना धर्म भावना से युक्त कथा प्रधान अपभ्रश-कालीन चरित्र काव्यों के अधिक निकट है और 'महिमा प्रकाश से आगे का कदम है।

ग्रथ के प्रारम्भ मे तथा प्रत्येक अध्याय के आरम्भ म ब्रह्म, गुरु, सरस्वती, दुर्गा किसी अन्य देवी-देवता अथवा सतो आदि की स्तुति एव वदना की गई है तथा बीच-बीच म सत असत महिमा, कलियुग प्रभाव, नगर, उपवन, वन, पर्वत प्रभात सध्या सागर एव ऋतुओ का भी वर्णन किया गया है। सस्कृत काव्यशास्त्र म इन्हें महाकाव्य के आवश्यक तत्त्व माना गया है।

इस ग्रथ के नायक गुरु नानक देव सदगुण सम्पन्न, उदात्त चरित्र वाले व्यक्ति हैं तथा मानवता को भक्ति करुणा भूत दया क्षमा सेवा, त्याग, परोप कार सत्-सगति सत्य विषय-त्याग आदि सदगुणो एव उदात्त पवित्र तथा सात्त्विक जीवन का सदेश देत दिखाए गए हैं। वह पूर्णमानव हैं और मानवता के उपासक हैं। वर्ग एव वर्ण भेद की विषमता का खडन करते हुए मानव मात्र की एकता म विश्वास रखते हैं। जाति-पाँति पाखड, आडम्बर अहकार के कट्टर विरोधी एव सहज सयत जीवन के प्रचारक हैं। उनका महान चरित्र किसी भी महाकाव्य का विषय बन सकता है। कवि उनके दिव्य

चरित्र का अकन प्रभावशाली ढग से करने मे पूर्ण सफल रहा है।

यह एक भक्ति ग्रंथ है। यद्यपि इसमे हठयोग, भक्ति योग, कर्म, ज्ञान[1] का तथा पाच तत्त्व, प्रकृतियो, १० पवन, षटचक्र[2] आदि का सविस्तार वर्णन हुआ है तथापि महत्त्व सिक्ख मत का ही स्थापित किया गया है। इसमे भक्ति को मुख्य माना गया है तथा नाम का महत्त्व निरूपित किया गया है। गुरु महिमा ब्रह्म, जीव, जगत[3] माया सम्बन्धी विचार सिक्ख मतानुसार हैं। ब्रह्म को कवि ने निराकार, अगम, अगोचर, अलख, अरूप आदि नामो से अभिहित करते हुए लिखा है—

> अगम अगोचर अलख अनन्ता,
> अच्युत अवय श्री भगवन्ता।४२।
> सत्ति अरूप अनूप अलेखा,
> नित्य अछूत अभेत अभेखा।
> अकरम अभरम अद्वैत अनाशा,
> अभ अनादी सुतें प्रकाशा।४३।
> रख न रग न मोह न माया,
> अज अजनमा अजर अजाया।
> सभि तैं दूर सभिन अति पासा,
> सदा अलेप सरब महिं बासा।४४।
> नेति नेति निय अपर अपारा,
> सहस्र नाम अस बदन उचारा।४५।

(वही, उत्त० अ० २६)

उसकी सर्वव्यापकता सर्वशक्तिमत्ता एव सर्वज्ञता तथा आत्मा एव ब्रह्म की एकता और अभिन्नता पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं—

> आपे पट्टी कलम सु आपे, लिखणहार सा दुती न जापे।
> सभि महि विग्रो एक खुदाइ, झूठी कह न तिस बिन थाइ।

(वही, उत्त० अ० ३३)

> दूजा देख्यो सुयो न कोई। जपहि जि एक तरहि सब सोई।७।

ये विचार अद्वैतवादियो के ही अनुरूप है। इनके ब्रह्म भी विष्णु, ब्रह्मा शिव तीनो से ऊपर मायापति हैं। सिक्ख मतानुकूल नाम का महत्त्व उन्होने

---

१ वही पूर्वार्ध अध्याय ४८, ४९

२ वही पूर्वार्ध अध्याय ६०

३ जग झूठो ऐसो दिढ जाना, म्रिग त्रिशणा के नीर समाना।

(वही उत्त० ३७, अक १६)

इस प्रकार बताया है—

नामहि ते सभि कुछ बन्यो सड ब्रहमड सरीर।
सो त्रिउ नाम विसरिग्रो ? नित समारि मति धीर।
(न० पृ० ११८४)

कई स्थानो पर विनय के पद भी ग्राए हैं सेवा का महत्त्व भी कई स्थानो पर बताया गया है, तथा गुरु ग्रथ साहब की महिमा पर भी प्रकाश डाला गया है।[1] बीच बीच म गुरु वाणी भी ग्राई है जिसकी विविध प्रसगो म व्याख्या की गई है। इन सबसे उनका सिक्ख मतावलम्वी होना तो सिद्ध होता है पर उन्होंने स्थान स्थान पर हिंदुग्रो के ग्रवतारो देवी-देवताग्रो की भी वदना की है तथा उनके बहुत से प्रसगो को इस ग्रथ म स्थान दिया है। राम को भी वह ब्रह्म रूप ही मानते ह जसा कि ऊपर के उदाहरणो से विदित होता है। वस्तुत मे वह मानव मात्र की मौलिक एकता का प्रतिपादन करना चाहते थे। उनकी दृष्टि म हिंदू मुसलमान ग्रौर सिक्ख म कोई भेद नहीं है। मानव प्रेम एव मानव एकता की यह भावना भारतीय सस्कृति ग्रौर सिक्ख मत की एक विशिष्टता है। स्थान-स्थान पर भौतिक वभव जगत एव जीवन की निस्सारता मिथ्यात्व एव क्षण भगुरता पर प्रकाश डालते हुए नाम जाप का महत्त्व बताया गया है। यथा—

जगत जानिय सुपन समाना
सत्ति ग्रातमा एक पछाना,
सेवा सतन की चित दीज
नगन छुधित पर करना कीज।७१।

१ त्रिशनादरव नदी बड धार बह्यो जाति हौं पाइ न पारा
तुम केवट मम करिक दाया गहहु दे हाथ पार लघाया (वही उत्त० ग्र० १६त ग्र० ५५ ५६)

२ सेवा मूल सभिनि की मानहु (उत्त० ग्र० ३३ ग्रक ५२)
सवा ते है नदरि ग्रभवा। स्त्रियौं नम्र ते होव सवा(उ० ग्र० ३३,ग्रक ८०)

३ सुधा की तरगनी सी रोग भ्रम भगनी है
महा स्वेत रगनी महान मन मानी है।
स्त्रियौं यहि हसनी सी मानस वितसनी है
गुनीन प्रससनी सरव जग जानी है।
स्त्रियौं चद चान्नी सी मोह धाम मदनी है
रिप की ग्रनन्दनी सजीव सुखन्दानी है।
प्रम पटरनी स्याना गयान की जननि जानी गुनी मनी बानी ताकी गुरु गुरबानी है (वही पृ० २५।१)

सतिनाम जपीए लिवलाई,
सुनीए हरि कीरति गुन गाई (उत्तराध अ० ३ अंक ७१ ७२)

इसी प्रकार विषय वासना, लोभ तथा मोह से मुक्त होने का सदेश देते हुए वह कहते हैं—

तात सुत मात हितु सोदर सहोदरी सा,
मोह म क्रियादरी सो गाढो लपटायो है।
मत्त जे मतग जवी चचल तुरग ब्रिंद
अनी चतुरगनी मा रिदा हुलसायो है।
आथ निज हाथ चाहैं जनम अकाथ खात।
अत को न साथ मन जा सों उरझायो है।
कूड है र कूड मन मूढ लग नाम रुड,
साचो को बनायो ताते साचा सा सुहायो है।

इस प्रकार य विरक्ति एव भक्ति पूर्ण अनेक उदाहरण इस ग्रथ म मिलेंगे। वस्तुत कवि इस रचना म तुलसी की भांति 'विरक्ति विवेक सयुत भक्ति' की स्थापना करता दिखाई देता है। इस प्रकार इस ग्रथ का मुख्य रस शान्त ही है। यद्यपि वात्सल्य शृगार, वीर, रौद्र भयानक अदभुत, बीभत्स आदि से सम्बन्धित अन्य मनोवेगो की भी इस ग्रथ म भव्य व्यजना हुई है परन्तु व प्राय शान्त के अग होकर ही आए हैं।

गुरु नानक देव के शशव तथा बाल्यावस्था के चित्रण म वात्सल्य की सुन्दर झाँकी मिलती है। उनकी शशव अवस्था का एक चित्र देखिए कितना सजाव एव मार्मिक बन पडा है।

लोचन अमल कमल दल जसे नासा तिल प्रसून नहिं वसे।३।
सुन्दर अलकार धरिवाए, बिन दूखन कै भूखन पाए।
बनी बाजनी किंकनि चारी। कट महि पाई अति छबि वारी।४।
कर महि कट पद नूपर सोहैं। जो देखे तिसको मन मोहैं।
दुइ दुइ दसन अधर दुति होती। स पुट बिद्रुम जिऊ जुग मोती।५।
भ्रमण महि रिंगण गतिकारी। चरणाबुज खचति बलहारी।
हसति हसति हुमावति औरी। किलकत मुख ते माधुर ठौरी।६।
बोल बचन तोतरे मीठ। सुनहि नारि नर लागहि ईठे।
हेरहि मात तात अनुरागहि। फिरति भूमिका अतिवा लागहि।
लगी धूर तन धूसर होए। अब लय अवा मग धोइ।८।
मलि करि मुख मज्जन करिवायो। पौछ सरीर अक बसायो।९।
(वही पू० अ० ५)

यहाँ नानक देव के सुन्दर नेत्र, नासिका, किंकनी, नूपुर, दसन अंजन,

तीसरे कवि एवं सुरि पूनरिन तन का जसा मनोरम चित्र अंकित किया गया है, वह सूर के कृष्ण से किसी भी भांति कम नहीं, पर ऐसे वर्णन प्रसग यहाँ कम ही आए हैं। दूसरे इनका वात्सल्य केवल शैशव एव बाल्यावस्था के रूप चित्रण तक ही सीमित रहा है उनमें बालक की स्वभावगत मनोवैज्ञानिक चचल क्रीडाओ एव मनोवेगो का निरूपण अधिक नहीं हुआ।

नानकदेव के पाठशाला जाने एवं गो महिषी चारण का चित्र भी अत्यन्त स्वाभाविक एव मनोहर है। हाथो मे कगन पहने सुरि हाथ मे पकड़ कटि मे किंकणी कानो मे कुडल तथा सिर पर पगडी पहन कोमल चरणो से सुन्दर नेत्रो वाले नानक बार-बार सखाओ को पुकारते हुए पाठशाला की ओर जा रहे हैं—

जलजात से है पद जाति चले,
गहि तात करा सुरि हाथ ऊँचाई।
कर कंकन सो कट किंकनि है
कल कुडल लोल कपोलन भाई।
दल लोचन कज बिसाल भले
सिर पै उसनी कहि नीक बनाई।
चटसार जहाँ अति चारु बनी
बहु बारिक बारहि बार अलाई। (ना० प्र० पृ० ६ ६)

प्रात काल ही अपने हाथो से गो महिषी को खोल कर हाथ मे लाठी लेकर उनकी टोली को हाकते हुए वे उन्हे चराने के लिए जा रहे हैं। यथा—

श्री नानक अरुणोन्य जागे
गो महिखी चारन अनुरागे।१३।
निज हाथन दामन ते खोली
हाकति चले इकत करि टोली,
लए लगटका देति हयूरा
चारति हरित त्रिणन सुख पूरा।१४।
मनहु गुपाल जु पाछल नामा
प्रगट करति हैं जनु सुख धामा।
मद मद सुभ सुरभी पाछे
सभि बासुर चारण त्रिण आछे।१५।
भई सभ पुरि दिस को मोरी,
आई अघाई सबली गोरी।
सोमहि सभि सुरभी तन पीना
छीर देहि बहु बड आपीना।
दिन प्रति माखन होति सवाया
काम्रू हेरि हेरि हरखाया। ८० (नानक प्र० पू० म० १०)

जब नानक गृह त्याग कर चले जाते हैं और बहुत समय के पश्चात् उनके माता पिता उन्हें देखते हैं तो चिरकाल के विरह के पश्चात् इस पुनर्मिलन से जो वात्सल्य के भाव प्रकट होते हैं तथा पुत्र को मिलने के लिए उत्कंठित एव आतुर माता पिता की जो दशा हुई उनकी भी कवि ने मार्मिक व्यजना की है। माता की पुत्र के विरह म जो दशा हुई उसका चित्र देखिए—

सुनि माता उर बहु अकुलाई,
जनु विण पावे पावक लाई।
चाल न आव बिकलु तन होई
जनु सुत बिहु मैं परिक सोई।
इक तौ बिद्ध हीन बल देही,
पुन न पाइ सुध तात सनेही।
जिउ सु खतग मरम दे भेदा
परी बिवरण होइ अति खेदा।
कितिक बार माह पुन सुध आई,
लोचन त आसुन जल जाई।

कुछ समय के लिय तो माता तृप्ता सुध-बुध खो कर मूर्च्छित पडी रहती है जब उसे कुछ होश आता है ता तुरन्त पुत्र को मिलने के लिये भागती है। पुत्र से भेंट करने पर तो उसकी ममता स्नेह एव विरह जनित वेदना का स्रोत बाध तोडकर वह निकलता है। अश्रुओ से वस्त्र भीग जाते हैं बार बार पुत्र का मुख देखती है माथा चूमती है, स्नेह से सिर पर हाथ फेरती है और उन्हें आलिंगन से नही छोडती। देखिये—

बहिर चल्यो उठि तूरण जहिवा,
होइ आतमज मेरो तहिवा।
बहु दिन बिते आयो घर माही
बासुर रह्यो एक भी नाही।
इस विधि जननी मन गुनति,
मधुर असन ले मोल।
तूरन गवनी धाइ करि,
लीने रुचिर निचोल (वही, उत्त० १५ १५)
कौरी भरि नानक को जननी
रोदन करति न जाई गननी।
चल्यो बिलोचन ते बहु नीर,
सुत बिरहानल जनु करि सीर।२०।
अश्रु पाति सो बसत्र भिगोए,
जो देखति सो गद गद होए।

मोरी त सुत न । नहिं तासे
यदपि निरहु त मिलनि न रजई ।२१।
दनव विचारति गू यदि माथा,
मरति नहु गिर पेरति हाथा ।
हुती व्रिद्ध बत त ता हीना,
पुन रामीप बसौ गुर सीना । (वही, ऊ० अ० ५ २२)

पुत्र के माने का समाचार सुनकर पिता मालू भी तत्क्षण उन्हें मिलने को दौड़ता है तथा उन्हें हृदय से लगाकर इतने प्रसन्न होता है मानो बहुत दिनों के भूखे को भोजन तथा प्यासे मरते को जल मिल गया हो, नेत्रों से अश्रुधार प्रवाहित होने लगी कंठ गदगद हो गया । यथा—

जब मालू न सुध दउ पाई
बस्यो बहिर तात मम भाई ।
ततछिन जीन तुरगनि पावा,
ह्वै अरूढ तूरण तब आवा ।२३।
जन बहु भूखे मिल्यो अहारा,
मरत्यो प्यासे पायो नारा ।
नीर विमोचति लोचन दर ते
गद गद बोल्यो जाइ न गर ते ।(वही ऊ० ५।२३ २५)

इस प्रकार कवि ने उनके पिता की उत्कंठा, आतुरता व्याकुलता विह्वलता उत्सुकता आदि का भावपूर्ण चित्रण किया है । पर वात्सल्य के ऐसे भाव व्यजक स्थल इस ग्रंथ में अधिक नहीं हैं ।

'नानक प्रकाश' का शृंगार चित्रण भी सीमित एवं मर्यादित है । उसमें न तो रीतिकालीन कामुकता एवं रसिकता है और न ही सूर की भांति तल्लीनता मनोवैज्ञानिकता माधुर्य तथा गहराई है । वह अधिकतर रूप चित्रण तक ही सीमित रहा है । नानक के यौवनागम का चित्रण भव्य बन पड़ा है[1] इसी प्रकार एक प्रासंगिक कथा में द्रौपदी का रूप चित्रण दर्शनीय है—

नागन सम लटकी लट जाकी । मदन धनुप भ्रिकुटी सुठ बाँकी ।
कुंद रदन बदन ससि राका । उदर सत्रिवलि मनोहर जाका ।१४।
रति रतीक ह्वै जिह दुति देली । तीछन बान कटाछ विसेसी ।
दीप सिखा सी काकल बनी । गज गामनि म्रिग शावक नैनी ।
जमन भ्रमरी नाभि गम्भीरा । नखन बिलोकति लाजति हीरा ।१६।

---

1 ना० प्र०—पूर्वार्ध अ० ५ १६

बहुर ग्रीव की रुचिरता मनहु उताई भाइ।
चिबुक श्यामता राहु जन दुर्यो ससी मैं ग्राइ। १७।
(वही, उत्त० अ० २४)

यहाँ अनेक परम्परित उपमानो द्वारा उसकी वेणी,[1] त्रिकुटी, नेत्र, दंत, मुख उदर, रोमावलि, कटाक्ष, मुख कान्ति, गति आदि का वर्णन रूढ़िगत ढग से ही हुआ है, फिर भी यह द्रौपदी के सौंदर्य का एक सजीव चित्र प्रस्तुत करने मे समर्थ है, जिसे देखकर कीचक का मन पतग की भांति चचल हो उठता है।

उससे रात को मिलने का वचन लेकर सकेत स्थल पर कीचक की अभिसार की तैयारी का वर्णन कवि ने अत्यन्त भावमय एव मनोवैज्ञानिक ढग से किया है। उसकी प्रतीक्षा करते हुए, सुगध से शरीर को सजाना, आलिगन के लिये आतुर होना, झुक झुककर उसकी राह देखना सुदर शय्या बिछाना, पुष्प माला पहनना तथा देह को चमकाने आदि में उसकी हृदयगत उत्कठा आतुरता, उल्लास तथा व्याकुलता आदि की मार्मिक अभिव्यजना हुई है।[1] पर इस प्रकार के प्रसग इस ग्रन्थ म बहुत कम हैं। सयोग एव वियोग की विभिन्न माधुर्यपूर्ण अनुभूतियो का वर्णन कतिपय स्थानो पर चलता सा ही हुआ है। एक प्रसग म एक स्थान पर लिंग पिशुन जसे शब्दो का प्रयोग बहुत खटकता है। दूसरी बात यह है कि इस रस की परिणति भी शान्त मे ही होती है क्योकि श्री नानक अन्त में इस प्रकार के विषय भोग के दुष्परिणामों पर प्रकाश डालते हुए भगवत भक्ति का उपदेश देते हुए दिखाये गये हैं।

इस रचना म वीर रस के धर्मवीर तथा दयावीर रूप की ही अभिव्यक्ति अधिक हुई है। गुरु नानक धर्म नेता तथा सन्त थे। किसी से युद्ध का तो उनके साथ प्रश्न ही नही उठता, इसलिए युद्ध-वीरता का वर्णन केवल प्रास गिक कथाओ म ही हुआ है। एक स्थान पर नानकदेव के धर्म विजयार्थ प्रस्थान का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

दिग विजै हेत साजि बेदी कुल केत दल
चले दभ दलिवे कउ दलनि बिदारिया।
भगति की केत पर प्रेम के समेत कर,
कीरति निशानो घहिरानो घन भारिया।
यान को खडग धरि, जुगत कमान करि,
नाना द्रिशाहातलीन सिली मुख धारिया।
जहाँ दिढ कोट तहाँ करामात तोप सग,
ढाहिके मदान कीन मिले अरि हारिया। २।

---

१ वही पूर्व० अ० २४४५ ४६

नाम को भजन नीको पहिर सनाह ता,
कोटिक तरक तरवार न करति है।
नीको मन रासन सिपर गहि हाथ विखे,
क्रोध रूप बान जाको छुई न सकति है।
धीरज सतोख सति दान इशनान मति,
दया उपकार मति सुधा जी छकति है।

यहाँ ज्ञान की खड्ग युक्ति की कमान, एव दृष्टान्तो के वाण आदि युद्ध के सभी अस्त्र शस्त्र, शत्रु दल के दृढ किलो को करामाता की तोपा से धूलि धूसरित कर देना और नानक की युद्ध कुशलता आदि वीर रस के सभी उपकरण विद्यमान हैं। काका कालेलकर के अनुसार वीर रस मानव द्वेषी नही होता। वह परम कल्याणकारी समाज हितैषी और धर्म परायण आर्य वृत्ति का द्योतक है[1]। नि सदेह इस ग्रथ म वर्णित धर्म-वीरता का यह इस रूप कसौटी पर पूरा उतरता है। अनेक स्थानो पर गुरु नानकदेव द्वारा दीन हीनो पर दया के प्रसगों मे उनके दया प्रधान उदात्त वीर रसात्मक रूप का ही चित्रण हुआ है। युद्ध वीर का निरूपण एक दो स्थलो पर प्रसगवश ही हुआ है। बाबर के ऐमनाबाद के युद्ध वर्णन म फाग के रूपक द्वारा कवि ने सेना प्रस्थान आक्रमण, युद्धभूमि तथा युद्ध का बडा ही सजीव चित्रण किया है। इस वर्णन मे वीर रस के विभिन्न विभाव, अनुभाव, उद्दीपन, सचारी आदि सभी उपकरण विद्यमान हैं[2]।

इसी युद्ध के प्रसग मे लाशो लोथा, रक्तधारा आदि का वर्णन भी परम्परित रूप मे हुआ है, पर उसको अधिक विस्तार नही दिया गया। ऐसे वर्णनो को आचार्यों ने वीभत्स के ही अन्तर्गत माना है। परन्तु सतोखसिंह ने यहाँ वीर

---

१ रस समीक्षा—काका कालेलकर।

२ जोद्धा सनध बद्ध ह्वै सभिही। लीन तुफगै कसि करि तबही। ५७।
दिवस चडे मडयो रण भारी। छुटत तुफग मनहु पिचकारी। ६०।
साँग प्रहारि हे मूठ गुलाला। ढाल बनी मनहु डफ माला।
भक भक घाउ शबद तिन केरा। निकसी मीभ अबीर गेरा। ६१।
श्रोणत बसत्र रग भए लाला। मानहु रग पतगी डाला।
कर महि चमक रही करवार। छुटी मनहु फूलन की धारै।
भए निसग वीर इक बेरा। बज्यो सार सो सार घनेरा। ६३।
खचा खची कीनी तलवारन। धड ते सिर किय जुद उतारन।
मोढन ते बाहैं कटि डारी। लोथ बिथरी धरा मझारी।६६।
मुगलन दल जनु घटा घमडी। तरवार सम बिज्जु प्रचडी।
बजहि दमाम जस घन घोरी। गुलका बरख रही बहु ओरी। ७१।
(नानक प्रकाश उत्त० २७)

और वीभत्स की परिणति भी शान्त में ही की है, क्योंकि गुरु नानक इस प्रकार के क्रूर विध्वंसक युद्धों की व्यर्थता का निर्देश करते हुए मानव प्रेम एवं नाम महिमा का प्रतिपादन करते हैं। घृणा के भाव को यदि व्यापक रूप में ग्रहण किया जाय तो उसके तो कथानक में अनेक उदाहरण मिल जायेंगे। एक स्थान पर नानक द्वारा भरत देश के नृपति को उपदेश देते समय शरीर की व्यर्थता का वर्णन करके उसके प्रति जो घृणा उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है, उसमें भी 'वीभत्स के ही दर्शन होते हैं जिसका उद्देश्य जगत भोग के प्रति विरक्ति उत्पन्न करना है'। यहाँ यह वीभत्स शान्त का ही अंग हाकर आया है। इसी प्रकार मिथ्याचारों, पाखंडपूर्ण कर्मों, अंधविश्वासों अनाचार और अत्याचार की जहाँ कहीं भी उन्होंने भर्त्सना की है वहाँ घृणा भाव उत्पन्न करके चित्त वृत्तियों के उन्मेष का ही एक प्रयत्न है और उसे उदात्तता से युक्त वीभत्स का ही विषय समझना चाहिए। उपर्युक्त ऐमनाबाद के युद्ध प्रसंग में एक स्थल ऐसा भी है जिसमें करुण रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। यथा—

दारुन रूप बिरूप भा, देखति है नर नारि,
करति चिनारी अपन की दफन धरनि मंझार। ७२।
× + +
रोवहिं बहुरि पर्यो बड रौरा। पीटति नारि मिलि निंह ठौरा। ७३।
हाइ हाइ उहु उहु करई। प्रिनु भए गुन तिनहिं उचरिई।
मिल इक थल बहु रोवहिं नारी। बार उखारि देहिं धर डारी। ७४।
तन को करहिं ताडना भारी। ऊची बाहैं करहिं पुकारी।
वड रौरा सुन क तहियाना। बहुरो श्री प्रभु शबद बखाना। ७५।
(वही आ० अ० २८, अंक १३ ७५)

---

१ भा निप ! तिय मैं को वपु नीकी। जिस अविलोकि प्रीति ह्वै जीकी। ३२।
जे लोचन कहिं कमलसमाना। गीड बहिति जिह पिखति गिलाना।
फोरि विलोकहि जे तिन माही। मिज्झ नीर बिन और सु माही। ३३।
अपर अंग तिन रीति मुनीजे। चन्द सरस को वदन कहीजे।
चरबी रक्त लपेटयो चामा। गौर रंग पिखियति अभिरामा। ३४।
इन वसतुन बिन होइ न आना। जिनहिं विलोके आइ गिलाना।
पुन निदान कहिं कली समाने। मास बिना लिहु हाड पछाने। ३५।
मुख ते टूट जाहिं जे सोऊ। चाहति हाथ न छवाइओ कोऊ।
इसी प्रकार देहि लखि सारी। हाड मास हैं रक्त मझारी। ३६।
बिशटा मूत्र मुकनि दुर गने। किह को पिखि लुभाइ मति अवे।
मुख मैं थूक सीढ बहु नासा। ऊपर चरम बाल है रासा। ३७।
है निप ! इम प्रकार उर धारहु। वसतु कौनसी भली विचारहु।
महा दुरगन्ध मन्नी सोऊ। अहै नारि की प्रीतहि जोऊ। ३८।
(ना० प्र० उ० अ० १३)

नाम को भजन नीको पहिर सनाह तन,
कोटिक तरक तरवार न करति है।
नीको मन राखन सिपर गहि हाथ विखै,
क्रोध रूप बान जाको छुई न सकति है।
धीरज सतोख सति दान इसनान मति,
दया उपकार प्रति[1]प्रथा जो छकति है।

यहाँ ज्ञान की खडग, युक्ति की कमान, एव दृष्टातो के वाण आदि युद्ध के सभी अस्त्र शस्त्र, शत्रु दल के दृढ किलो को करामातो की तोपो से धूलि धूसरित कर देना और नानक की युद्ध कुशलता आदि वीर रस के सभी उपकरण विद्यमान हैं। काका कालेलकर के अनुसार वीर रस मानव द्वेषी नही होता। वह परम कल्याणकारी समाज हितैषी और धम परायण भाय वृत्ति का द्योतक है[1]। नि सदेह इस ग्रथ म वर्णित धम-वीरता का यह इस रूप कसौटी पर पूरा उतरता है। अनेक स्थानो पर गुरु नानकदेव द्वारा दीन हीनो पर दया के प्रसगो म उनके दया प्रधान उदात्त वीर रसात्मक रूप का ही चित्रण हुआ है। युद्ध वीर का निरूपण एक दो स्थलो पर प्रसगवश ही हुआ है। बाबर के ऐमनाबाद के युद्ध वणन मे फाग के रूपक द्वारा कवि ने सेना प्रस्थान आक्रमण युद्धभूमि तथा युद्ध का बडा ही सजीव चित्रण किया है। इस वणन मे वीर रस के विभिन्न विभाव, अनुभाव उद्दीपन सचारी आदि सभी उपकरण विद्यमान है[2]।

इसी युद्ध के प्रसग मे लाशो लोथो, रक्तधारा आदि का वणन भी परम्परित रूप म हुआ है पर उसको अधिक विस्तार नही दिया गया। ऐसे वणनो को आचार्यों ने वीभत्स के ही अन्तगत माना है। परन्तु सतोखसिह ने यहाँ वीर

---

१ रस समीक्षा—काका कालेलकर।

२ जोद्धा सनध बद्ध ह्वै सभिही। लीन तुफग कसि करि तबही। ५७।
दिवस चडे मडयो रण भारी। छुटत तुफग मनहु पिचकारी। ६०।
सॉग प्रहरि हे मूठ गुलाला। ढालैं बनो मनुहु डफ माला।
भक भक घाउ शबद तिन केरा। निकसी मीभ अबीर गेरा। ६१।
श्रोणत बसन रग भए लाला। मानहु रग पतगी डाला।
कर महि चमक रही करवार। छुटी मनहु फूलन की धार।
भए निसग वीर इक बेरा। बज्यो सार सो सार घनेरा। ६३।
खचा खची कीनी तलवारन। धड ते सिर किय जुदे उतारन।
मोढन ते बाहैं कटि डारी। लोथ बिथरी धरा मझारी।६६।
मुगलन दल जनु घटा घमडी। तरवार सम बिज्जु प्रचडी।
बर्जहि दमाम जस घन घोरी। गुलका बरख रही बहु ओरी। ७१।
(नानक प्रकाश उत्त० २७)

और वीभत्स की परिणति भी शान्त में ही की है, क्योंकि गुरु नानक इस प्रकार के क्रूर, विध्वंसक युद्धों की व्यर्थता का निर्देश करते हुए मानव प्रेम एवं नाम महिमा का प्रतिपादन करते हैं। घृणा के भाव को यदि व्यापक रूप में ग्रहण किया जाय तो उसके तो कथानक में अनेक उदाहरण मिल जायेंगे। एक स्थान पर नानक द्वारा भरत देश के नृपति को उपदेश देते समय शरीर की व्यर्थता का वर्णन करके उसके प्रति जो घृणा उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है, उसमें भी 'वीभत्स' के ही दर्शन होते हैं, जिसका उद्देश्य जगत भोग के प्रति विरक्ति उत्पन्न करना है[1]। यहाँ यह वीभत्स शान्त का ही अंग होकर आया है। इसी प्रकार मिथ्याचारों, पाखण्डपूर्ण कर्मों, अन्धविश्वासों, अनाचार और अत्याचार की जहाँ कहीं भी उन्होंने भर्त्सना की है वहाँ 'घृणा भाव' उत्पन्न करके चित्त वृत्तियों के उन्मेष का ही एक प्रयत्न है और उसे उदात्तता से युक्त वीभत्स का ही विषय समझना चाहिए। उपर्युक्त ऐमनाबाद के युद्ध प्रसंग में एक स्थल ऐसा भी है जिसमें करुण रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। यथा—

> दारुन रूप बिरूप भा, देखति है नर नारि,
> करति चिनारी अपन की दफन धरनि मझार। ७२।
> × + +
> रोवहिं बहुरि पर्यो बड रौरा। पीटति नारि मिलि तिह ठौरा।७३।
> हाइ हाइ उहु उहु करई। म्रितु भए गुन तिनहिं उचरई।
> मिल इक थल बहु रोवहि नारी। बार उखारि देहिं धर डारी।७४।
> तन को करहिं ताड़ना भारी। ऊची बाहैं करहिं पुकारी।
> बड रौरा सुन क तहियाना। बहुरो श्री प्रभु शबद बखाना।७५।
> (वही आ० अ० २८, अंक १३ ७५)

---

१ भा निप! तिय मे को वपु नीकी। जिस अविलोकि प्रीति ह्वै जीकी।३२।
जे लोचन कहिं कमलसमाना। गीड बहिति जिह पिखति गिलाना।
फोरि निलोकहिं जे तिन माही। मिज्झ नीर बिन और सु माही।३३।
अपर अंग तिन रीनि सुनीजे। चन्द सरस को बदन कहीजे।
चरबी रकत लपेटयो चामा। गौर रंग पिखियति अभिरामा। ३४।
इन वसतुन बिन होइ न आना। जिनहिं बिलोके आइ गिलाना।
पुन जि दात कहिं कली समाने। मास बिना तिहु हाड पछाने। ३५।
मुख तें टूट जाहिं ज सोऊ। चाहति हाथ न छवाइओ कोऊ।
इसी प्रकार दहिं लखि सारी। हाड मास हैं रक्त मझारी। ३६।
बिशटा मूत्र युक्ति दुर गन्धे। किहि को पिखि लुभाइ मति अंधे।
मुख मैं थूक, सीड बहु नासा। ऊपर चरम बाल है रासा। ३७।
है निप! इस प्रकार उर धारहु। वसतु कौनसी भली बिचारहु।
महा दुरगन्ध मदनी सोऊ। अहै नारि की प्रीतहिं जोऊ।३८।
(ना० प्र० उ० अ० १३)

करुण रस के लिए जिन विभावो, अनुभावो एव सचारियो की आवश्यकता होती है वे इस उदाहरण मे पर्याप्त परिमाण म विद्यमान है परन्तु यहा भी करुण की परिणति शात म होती दिखाइ गई है।

कीचक द्रौपदी के जिस प्रसग का उल्लेख ऊपर हुआ है वहाँ कीचक के दुराचरण के प्रति भीम मे जो क्रोध उत्पन्न होता दिखाया गया है और जिस प्रकार से उसने कीचक का वध किया उससे रौद्र रस की पूर्ण पुष्टि हो जाती है[1]। इसी प्रकार परशुराम तथा सहस्रबाहु प्रसग म परशुराम द्वारा अपने कुठार से उसकी सहस्र भुजाओ के काटने का जो वर्णन किया गया है उसमे भी रौद्र रस ही मानना उचित होगा[2]। रौद्र का एक और उत्कृष्ट उदाहरण शाहु और कुष्टि फकीर के प्रसग म दिखाई देता है, जहा जनमेजय के क्रोध की व्यजना इस प्रकार की गई है—

> बिप्र ब्रिंद के नीच पहूचा, भयो पौन त तिय पट ऊचा।
> तिह छिन बिखै बिलोके अगा सरबदिजन किय हास उतगा।
> देखि भूप क्राध्यो उर भारा, उचित अनुचित कछू न बिचारा।
> पकरे निपति बहुन बिप जारे, इक छिन बिखे सरब हनि डारे।
>
> (वही, उत्त० अ० २५, अक ३५ ३६)

गुरु नानक देव द्वारा समुद्र के ऊपर से चलने, लाखो योजन क्षण भर म लाघ जाना, मृतक को जीवित कर देने आदि की अनेक करामातो के प्रसगो मे अद्भुत रस के दर्शन होते हैं। हाथ देश के प्रसग म एक स्थान पर दैत्य से भयभीत हुए लोगो के चित्रण द्वारा भयानक रस की भी सृष्टि होती है यथा—

> नर तब बसे राकस हेरे। अगनि नैन किय क्रोध घनरे।
> डर मम त्याग रहे इह थाई। तनु न अब इन लेऊँ चबाई। २०।
> दारुण दीरघ दात करे। ओगट चाटति जोह।
> हाथ बिखे ज्वलती अगनि। नर दुख दानी दीह। २१।
> डरे लोक जाना म्रितु आई। पीत भए मुख थूक सुकाई।
> कुरच तन कम्पन बिन चना। देखि न सकहि मूद लिय नना। २२।
> कहहि परसपर अब भा मरना, जावहि किह चरनन की शरना।
> भाग घर जलन की चिन्ता। अब जानी भा प्रानन अता। २३।
>
> (वही, उत्त० अ० १२)

हास्य रस का कोइ विशेष प्रसग इस ग्रन्थ म नही आया, साधारण ढग के

1 वही, उ० अ० २४, अक ४७-५०।
2 वही, उ० अ० २२, अक ६० ६३।

कुछ प्रसग ऐसे अवश्य आए ह, जिनसे कुछ हसी आती है, पर इसके सभी अवयवो का अभाव है। मरदाने का गुरु नानक के साथ समुद्र पर चलते समय यह सोचना कि मैं ही वाहिगुरु का नाम क्यो लू, और उसी समय डूबने लगना, ऐसा ही प्रसग है जो केवल भक्ति का महत्व स्थापित करता ह स्वतन्त्र हास्य रस की निष्पत्ति नही कर पाता।

इस प्रकार हम देखते है कि इस ग्रथ का रस निरूपण चाहे रस सिद्धात के शास्त्रीय पक्ष को ध्यान मे रखकर नही हुआ फिर भी प्राय सभी रसो का उनके सब अवयवो सहित पूर्ण परिपाक हुआ है। उनकी निष्पत्ति प्रयत्न साध्य नही, बल्कि प्रसगवश स्वाभाविक ढग से हुई है। इस ग्रथ म भावो की यह विशदता दर्शनीय है।

वस्तु वर्णन

इस ग्रथ मे बहुत से स्थानो पर नगर, उपवन समुद्र, प्रभात नदी तथा ऋतुओ आदि का वर्णन हुआ अवश्य है पर कवि का मन इन वर्णनो म बहुत नही रमा। कवि काश्मीर तथा समुद्र जसे स्थानो का उल्लेख मात्र करके, अथवा एक दो पक्ति म उनका वर्णन करके गुरु नानक की कथा के साथ आगे बढ गया है जो उसका मुख्य विषय है। फिर भी कुछ वर्णन ऐसे सजीव स्वाभाविक तथा मार्मिक बन पडे हैं जिनसे उनकी बिम्ब विधायिनी कल्पना शक्ति का परिचय मिलता है। नानक के विवाह के समय बाजो की ध्वनि को सुन कर नगर वधुएँ उन्ह देखने के लिए इतनी आतुरता से भागी कि कृष्ण से रास लीलार्थ जाती हुई नन्दग्राम की गोपियो की भाँति उन्ह अपने अगो म वस्त्राभूषणो की व्यवस्था का भी ध्यान नही रहा। हार तो कटि मे किंकनी का गले म, नूपुर हाथ म, पहुची परो म डाले हुए तथा अजन को कपोलो पर ही लगाकर वे भागी जाती ह। उनके विभ्रम का कवि ने बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है। इसी प्रकार तलवडी नगर का वर्णन भी बडा ही चित्रात्मक तथा सजीव है।

प्रकृति के आलम्बन रूप मे यथातथ्य एव सश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करने म तो कवि को बहुत ही अधिक सफलता मिली है। इन वर्णनो म चित्रात्मकता भी है तथा उसके प्रभाव को भी व्यजित किया गया है। प्रभात का चित्र देखिए कितना मनोहर है—

भयो अरुणोदय अरुणचूड बोले रव,
खिर अरबिंद पर सारग सु डालही।
प्राची पियरानी चारु चटिका चुचानी बानी,
चक्रवाक मिले बोल-बोलि क कलोल ही।
भागी दूति चार पुरि गामनि को छारि छोरि
भानु कर धौरी तन सब मुखि बोलही।
उडगन सन भयो निमर निघन घन,
ग्यान जसे मोह सन इन भकझोलिही।
(वही पू० अ० २२ अ०

इस ग्रंथ में षटऋतु वर्णन भी मिलता है, और परम्परित रूप में वियोग संयोगात्मक न होकर स्वतन्त्र रूप में प्राकृतिक सुषमा को प्रकट करता है और लोगों पर पड़ने वाले ऋतुओं के प्रभाव को दर्शाता है। ग्रीष्म तथा वसन्त ऋतु के उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं —

पुनि ग्रीखम रितु कीनो जोरा। तपति भई अतिश चहु ओरा।
तपहि रिदा जिव मतसर धारी। तिउँ तप गई भूमका सारी। ४३।
बरिति जोर सो तपतु समीरा। जो तापहि नर नारि सरीरा।
जिउ खल उचरहि बचन बुढाली। रिदा तपाइ देति रिस नाली। ४४।
मारतड की चड मरीचा। दुखी जीव लघु तालन बीचा।
जिऊ जग भगति हीन है प्रानी। जनम मरन महि नित दुखखानी।४५।
सूके जल करदम बिहरानी। जनु प्रेमी उर सीख सिखानी।
सहित धूर बहु भ्रमत बघूरे। जिउ मति भ्रमति बिना गुर पूरे। ४६।
म्रिग त्रिसना को हेरहिं नीरा। दौरति म्रिग नहिं पावहिं धीरा।
जिउ मन बिशय सुखन हितधाई। निपति न होति न थिरता पाई।४७।
पसु पछी हरहि तर छाया। बसहिं तपतहि ते सुख पाया।
बहुत जगत दुख ते जगयासी। जिउ मिल सति संगत सुखरासी। ४८।
भावहिं बहु सीतलता पानी। भाग जगे जिऊ गुर की बानी।
असं ग्रीषम महि स्रीजग साई बिचरत लीला करति सुहाई। ४९।

(वही पृ० अ० ११)

निसन्देह कवि ने यहाँ ग्रीष्म ऋतु का वातावरण भी प्रस्तुत किया है और साथ ही उसके माध्यम से अनेक तथ्यों का विवेचन भी किया है। तुलसीदास की भाँति यहाँ प्रकृति चित्रण में कुछ ऐसी उपदेशात्मकता आ गई है जहाँ कवि प्रकृति वर्णन के माध्यम से अपनी विद्वत्ता को प्रकट करता है। एक सशक्त राजा के रूप में बसन्त का वर्णन उसने इस प्रकार किया है —

गुन्दर ब्रिछन सन्दल तरु राजी। बरन बरन बर उपमा छाजी।
जनु बसन्त निज सैन सिगारी। जीतन जे बिरहा नर नारी। ३।
गभि पलास ते पाति निपाती। फूल फूल लाल भलि भाती।
मनहु सुभट पट रगन राग। चढ जुद्ध करि आरन बाग। ४।
आब मौर दिसि आनन्द जासू। कूकति कोकिल कनरव तासू।
जनु बसन्त को नैन दुहाई। मानिनि दसा जि मान कराई। ५।
पुहपन की मकरन्द निहारी। तिह पर मधुकर करनि गुंजारी।
जनु बसन्त निज आगे बाना। गाइ बजावहि गुनी प्रबीना। ६।
ललित बिहग बोलनी बाना। जनु बन्दीजन कीरति गानी।
सीतल मन्द सुगन्ध समीरा। मानिनि बिरहनि करनि अधीरा। १।

सेतश्याम स्रोणत पुन पीता। बिगसे कुसम नवीनी रीता।
तरु शाखा पर मजरी सोही। मनहु धरी कलगी मन मोही। ८।
(वही, पू० अ० ११)

यह ऋतु वणन उनके सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण का परिचायक है। ग्रीष्म वणन उनके गम्भीर तत्व चिंतन एव दाशनिकता का तथा बसन्त वणन उनकी वीर भावना का भी व्यंजक है। पावस[1], शरद[2] हिम[3], शिशिर[4] के वणन भी इसी प्रकार सजीव एव स्वाभाविक है। इन वणनो म अनेक दृष्टान्तो द्वारा ऋतुओ के स्वरूप तथा प्रकारो को स्पष्ट किया गया है। ऋतुओ का वातावरण सजीव रूप म प्रस्तुत करने म तथा उनम रूपको का पूण निर्वाह करने म कवि ने अपनी काव्य प्रतिभा एव कल्पना शक्ति का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त इन्होने प्रकृति का उद्दीपन, आलकारिक तथा उपदेशात्मक रूप म भी सफल प्रयोग किया है।

यह ग्रथ सरल, सरस, बोध गम्य, शुद्ध तथा परिमार्जित ब्रजभाषा म लिखा गया है। भाषा कथा के अनुरूप व्यावहारिक तथा प्रवाहयुक्त है। उसम उर्दू, फारसी अरबी पजाबी, लहदी, पहाडी के साथ-साथ बहुत से ग्रामीण शब्दो का भी प्रयोग हुआ है। कवि ने भाषा का पात्र, प्रसग, विषय और भाव के अनुकूल प्रयोग किया है। कही उसमे व्यावहारिकता अधिक है और ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग किया गया है और कही वह परिमार्जित तथा तत्सम प्रधान है। लोकोक्तियो तथा सूक्तियो के प्रयोग स भाषा की शक्ति बढी है। अलकारो का प्रयोग भी स्वाभाविक ढग से ही किया गया है जिससे भावो की तीव्रता तथा प्रभाव की वद्धि होती है। उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक, अतिशयोक्ति इत्यादि अर्थालकारो का प्रयोग उन्होने खुलकर किया है, जिनम उपमान प्राय परम्परित ही है। लम्बे-लम्बे रूपक बाधने म वह बडे सिद्धहस्त हैं और अत तक उनका निर्वाह भी करते हैं। शब्दालकारो का प्रयोग भी कम नही हुआ पर स्वाभाविक कलात्मक और रस के उत्कषक रूप म ही। कतिपय स्थानो पर शब्द चमत्कार के दशन अवश्य होते हैं जिस से कई बार ग्रथ मे दुरूहता भी आ जाती है। ऐसा कवि ने रीतिकालीन प्रवृत्ति पर अधिकृत दिखान के लिए प्राय मगलाचरण म ही किया है। अन्यथा अलकार रस के उपकारक होकर ही आए है। कवि का शब्द भण्डार अथाह है तथा भाषा पर पूण अधिकार है। यदि उनके नामकोश का पढ लिया जाए तो कदाचित ही

१ वही पूव० अ० १२ अक २ ६।
२ वही, पूव० अ० १३ अक २ ६।
३ वही, पूव० अ०१४ अक ७ १२।
४ वही, पूव अ० १६ अक १० १२।

इस ग्रंथ में कहीं क्लिष्टता का अनुभव हो। शैली सरस, सरल तथा रोचक है। आरम्भ से अंत तक शैली प्रवाहपूर्ण है उसमें गरिमा और उदात्तता है।

इस ग्रंथ की मुख्य छंद पद्धति दोहा चौपाई ही है पर बीच बीच में भावों के अनुरूप, तोटक, नराज, भुजंगप्रयात, सवैया, कवित्त, छप्पय, रसावल, कुण्डली, पाधड़ी आदि अन्य छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। छन्द-वैविध्य की दृष्टि से यह रचना 'बचित्र नाटक', 'गुर बिलास', 'महिमा प्रकाश' एवं 'गुर शोभा' के ही अधिक निकट है।

इस ग्रंथ से कवि भाई संतोखसिंह के हिंदी साहित्य के विस्तृत अध्ययन का भी परिचय मिलता है। वस्तु से प्रसंगों में तथा भाव, भाषा, शैली आदि पर हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों सूर, तुलसी, केशव, भूषण, सेनापति, बिहारी, नन्ददास आदि का प्रभाव भी लक्षित होता है। परन्तु इनकी एक विशिष्टता भी है। इन्होंने रीतिकालीन शृंगार और चमत्कार प्रधान युग में सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना से युक्त ऐसे उत्कृष्ट महाकाव्य की रचना करके एक युग प्रवर्तक कवि का काम किया। संतोखसिंह को इस युग का राष्ट्रीय कवि घोषित किया जा सकता है। उनके व्यक्तित्व और कला का पूर्ण विकास और प्रकाश 'गुर प्रताप सूरज' में देखा जा सकता है।

भाई संतोखसिंह का जीवन-वृत्त

भाई संतोखसिंह के पिता का नाम देवासिंह था और माता का रजादा अथवा राजदेवी। ये जाति के छिम्ब थे और उनका गोत्र था करीर। उनका परिवार नूरदी, (जिला अमृतसर) तरनतारन से ३ मील दक्षिण-पश्चिम की ओर का रहने वाला था। उनका जन्म भी यहीं हुआ या बूड़िया में यह निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता वैसे सम्भावना अधिक यही है कि उनका जन्म नूरदी में ही हुआ था। उनकी जन्म तिथि भी निश्चित नहीं है। हमारा अनुमान है कि उनका जन्म संवत् १८४४ वि० की ७ आश्विन को हुआ था।

भाई संतोखसिंह के पिता विद्वान् व्यक्ति थे, गुरबाणी में उनकी दृढ़ आस्था थी और निर्मल साधुओं से भी उनका काफी सम्पर्क था। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि उनका पुत्र पढ़ लिख कर अच्छा विद्वान् बने। इसलिए उन्होंने प्रयत्न करके उनकी शिक्षा का प्रबन्ध उस युग के प्रख्यात ज्ञानी अमृतसर निवासी भाई संतसिंह के पास किया। संतसिंह संत स्वभाव के भगवत् भक्ति में लीन रहा करते थे, व्यास के समान विद्वान तथा गुरु बाणी के प्रकाण्ड पण्डित थे। भाई संतोखसिंह ने उनकी प्रशंसा एवं वन्दना इस प्रकार की है

> जिन्ह की मन्द रत नाम कीना निशि दिन,
> संतन मो जिन मनि संतसिंह नाम है।
> सुमन सिंगार धार, परम उदार चित,
> लोग वेद बात हू ते भला सो काम है।

जांके चरणोदक की बूंद मैं बदन पाई,
सुमति सदन भयो कदन विराम है।
ताके अरविंद पद सुन्दर मुकन्द दुंद,
बन्द कर बंदना सदा मैं सुख धाम है (ना० प्र० पू० १३३)

भारतीय निगम आगम का भी उन्हे विशद ज्ञान प्राप्त था और उन्होंने रामचरित मानस' का गद्य म अनुवाद भी किया था। उनके आश्रय मे सतोखसिंह ने भाषा (संस्कृत, हिन्दी पजाबी), काव्य, काव्य शास्त्र, वेदान्त एव गुरुवाणी आदि का गम्भीर अध्ययन किया। सतोखसिंह मे एक लोक नायक की विनय एव प्रतिभा थी, एसे तेजस्वी गुरु को पाकर वे धन्य हो गये, जिन्होंने उनकी प्रतिभा को विकसित करन म महत्त्वपूण योगदान दिया।

लगभग १५ वर्षो तक उनके पास विद्याध्ययन करन के पश्चात् वे बूडिया (अम्बाला जिले म जगाधरी से तीन मील उत्तर पूर्व की ओर) चले गये जहा वे स्वतन्त्र रूप स काव्य रचना करने लगे। लगभग सवत् १८७० से १८८० तक वे वही रहे। वही जगाधरी म म्हीले गात्र की एक लडकी रामकौर से उनका विवाह हुआ। बूडिया म सतोखसिंह के नाम से दो कवित्त बडे प्रसिद्ध है जिनसे पता चलता ह कि वहाँ उनकी आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी नही थी। उनम से एक कवित्त यहा उदधत किया जा रहा है—

छूट्यो है प्रास्रम औ बिसारियो है नम ध्रम,
औ खोई हयाउ श्रम अनि दुख पाइयति है।
घर के हसाने, सम आपने भए बिरान,
नारी देत तान सुन मिर न्याईयति है।
मित्र हू छुपाने नैन सूधे हू न बोलें बन,
मन म न धर, जाके, ढिग जाईयति है।
द्वारे प करजदार ठढे, मुख देति गार,
बिना रोजगार रोगार खाईयति है।

एक तो यह आर्थिक सकट सामने था, दूसरे वे सभी गुरुओ के जीवन के सम्ब ध मे सामग्री एकत्रित करना चाहते थ, इसलिए, लगभग सवत् १८८० मे उन्होन बूडिया छोड दिया और लगभग ४ वष तक वे करतारपुर, स्याला वारने, हडयाया, वणी बदरपुर, मुकन्दपुर, रानी का रायपुर चिहका, ठसका, आदि स्थाना पर घूमते रहे। इस बीच मे कुछ समय के लिए पटियाला मे भी रहे। १८८४ वि० म उनकी प्रसिद्धि सुनकर कथल नरेश भाई उन्दयसिंह ने उन्हें अपन पास बुला लिया और फिर जीवन के अन्तिम दिना तक वे वही सुखपूवक रहते रहे। कार्तिक वदी एकादशी सवत १९०० म वही उनका देहावसान हुआ। उनके कुछ वशज अभी भी वहाँ रहते हैं कुछ पटियाला म है।

१३

'बावन हजार छन्दों का महाकाव्य : गुरु प्रताप सूरज' (भाई सतोखसिंह)

'गुरु प्रताप सूरज' अपभ्रंश की रासो, रासक, रूपक, प्रकाश, विलास आदि चरित काव्यों की परम्परा में रचित एक कथा प्रधान ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य है। इसमें गुरु नानक के अतिरिक्त अन्य नौ गुरुओं एव बन्दा बैरागी का जीवन चरित्र अत्यन्त विस्तृत रूप में वर्णित है। पजाब में ऐसे चरित-काव्य लिखने की परम्परा का आरम्भ दशमग्रथ की अपनी कथा से होता है और 'गुरु शोभा', 'महिमा प्रकाश', गुरुविलास आदि के माध्यम से उसका विकास हुआ है। सिक्ख गुरुओं का अधिकाश इतिहास इन्हीं ग्रथों में उपलब्ध है। इन सभी ग्रथों में गुरुओं के चरित्र को अलौकिक शक्ति सम्पन्न अवतारी पुरुषों के रूप में अत्यधिक महत्व देकर चित्रित किया गया है। भाई सतोखसिंह ने भी अपनी कथा का आधार मुख्यत इन्हीं ग्रन्थों को बनाया है, यद्यपि कुछ अन्य स्रोतों से भी उन्होंने कुछ सामग्री एकत्रित की है। सभी गुरुओं के सम्बन्ध में जो भी सामग्री इधर उधर बिखरी हुई थी, उस सारी को एकत्रित एव सुनियोजित करके सम्बद्ध रूप में एक स्थान पर प्रस्तुत करने का श्रेय भाई सतोखसिंह को ही है। इससे पहले या बाद में कोई भी ऐसा ग्रथ नही लिखा गया, जिसमें सभी गुरुओं का चरित्र इतने विस्तार से वर्णित हो।

धर्म प्रचार का जितना सरल, सरस एव सशक्त साधन कथात्मक काव्य है, उतना शक्तिशाली साधन अन्य शायद ही कोई होगा। जातक कथाओं अथवा पौराणिक उपाख्यानों के माध्यम से धर्म प्रचार को जो सफलता प्राप्त हुई वह इसका ज्वलन्त प्रमाण है। अपभ्रंश काल में भी जैन कवियों ने अपने धार्मिक आदर्शों एव नैतिक आचरणों के प्रतिपादन का मुख्य साधन कथा-काव्यों को ही बनाया और उन्हें इसमें सफलता भी मिली। इसी प्रकार रामभक्ति का जितना प्रचार रामचरितमानस की मार्मिक कथा के द्वारा हुआ उतना किसी अन्य प्रकार से नही। सिक्ख-कवियों एव धर्म प्रचारकों ने भी सिक्ख मत के सिद्धान्तों की सरल एव प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए कथा-काव्यों का आश्रय लिया। ऊपर जिन ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों का उल्लेख हुआ है उन सभी में गुरुओं के

परिचायक के माध्यम से 'गुरु मत' का ही प्रतिपादन किया गया है। 'महिमा प्रकाश' एव नानक प्रकाश' जसे कुछ ग्रन्थो मे तो 'गुरुवाणी' भी आई है, जिसकी विशेष प्रसगा म व्याख्या और महत्ता प्रतिपादित है। 'गुरु प्रताप सूरज म भी कवि का लक्ष्य गुरु मत' का प्रतिपादन करना है। गुरुओ के उपदेशो के माध्यम से कवि ने उनके धार्मिक विचारो, नतिक, आदर्शों एव सामाजिक आचरणा का प्रतिपादन करते हुए भारतीय सस्कृति के सभी प्रमुख तत्वो को प्रस्तुत किया है और उनकी महिमा एव महत्ता पर प्रकाश डाला है। जहाँ गुरुओ की चरित्र कथा का वणन करना उसके लिए ध्येय है उसकी उपासना का एक अग है वहाँ कवि का लक्ष्य 'गुरु मत' का प्रतिपादन एव प्रचार भी है और इस लक्ष्य म कवि को असाधारण सफलता मिली है अनेक साखियो का आधार लेकर कवि ने 'महिमा प्रकाश की शली म 'गुरु वाणी' की विविध प्रसगा म व्याख्या भी की है और अनेक परिसवादो के माध्यम से उसका विद्वत्तापूण स्पष्टीकरण भी किया है। इस दृष्टि से यह रचना एक विशिष्ट सास्कृतिक महत्त्व रखती है। इसके आधार पर उस युग का सास्कृतिक इतिहास ही निर्मित करने म सहायता नही मिलती वरन कवि की भारतीय सस्कृति के प्रति निष्ठा एव उसके पुनरुत्थान की उत्कट अभिलाषा भी प्रकट होती है। गुरुओ ने सास्कृतिक पुनर्जागरण का जो महत् उपक्रम किया था, उसका वास्तविक एव यथार्थ रूप इस ग्रथ के द्वारा हमारे सामने आ जाता है। यह ठीक है कि इस ग्रथ म कुछ ऐसे सास्कृतिक तत्त्व भी विद्यमान हैं जो गुरुओ की मान्यताओ स मेल नही खाते। अवतारी भावना, पुजारी प्रवृत्ति, देवी देवताओ की वदना आदि कुछ ऐसे ही प्रसग हैं। ये तत्व कवि के अपने युग के प्रभाव के परिणाम कह जा सकते हैं। कुछ सीमा तक इनम समन्वय की प्रवृत्ति भी काय करती प्रतीत होती है। इस निमले सता की सगति का परिणाम भी कहा जा सकता है। इस वग मे भी ऐसी उदारता और समन्वय भावना दृष्टिगत होती है।

नामकरण एव स्वरूप

'गुरु प्रताप सूरज' का बाह्य रचना विधान शास्त्रीय आधार पर हुआ है। इसमे कुल मिला कर २० अध्याय ११५१ अशु तथा ५१८२६ छन्द हैं। सम्पूण कथानक सूय की गति के आधार पर १२ राशियां, ६ ऋतुओ एव २ अयनो म विभक्त हैं। व पुन अशुओ (किरणो) म विभाजित हैं। रचना के नामकरण म भी एक सुन्दर रूपक की कल्पना की गई है। इसकी प्रेरणा सम्भवत कवि को सस्कृत के 'कथासरितसागर' अथवा 'राजतरगनी' आदि ग्रन्थो से मिली है, यद्यपि गुरु प्रताप सूरज' नाम का सीधा सम्पक भाई गुरदास की 'सूरज प्रकाश, नास उडगन अगणित ज्यो' ४८६। तथा सतगुरु नानक प्रगटिआ मिटि धुध जग चानन होइआ' आदि पक्तियो से है। कवि के अनुसार गुरु प्रताप एव गुरु ज्ञान रूपी सूय की किरणें किसी भी युग के साम्प्रदायिक मत

भेद, अथ विश्वास सकीर्णता भ्रम, पाखड, अज्ञान, अन्याय, अन्याय आदि के अधकार को विनीण करके ज्ञान एव सत्य का प्रकाश फैलाती हुई गरुजी की वमत कृपा को विकसित एव उल्लसित करती है।

मगलाचरण

ग्रथ के प्रारम्भ म सभी गुरुओ की वन्दना सम्बन्धी मगलाचरण है, जिनमे उनके चरित्र की विशिष्टता एव महत्ता का स्तुति गान करते हुए उनके चरण कमलो की वन्दना की गई है। इसके अतिरिक्त सभी राशियो तथा ऋतुओ आदि के आरम्भ मे भी एक मगलाचरण पाये हैं। अकाल पुरुष तथा गुरु ही कवि के इष्टदेव हैं इसलिए अधिक मगलाचरण उन्ही से सम्बन्धित हैं तथापि कवि ने सरस्वती भगवती राम कृष्ण इन्द्र तथा अन्य देवी-देवताओ की भी वदना की है जो कि उनकी उदार दृष्टि का परिचायक है। ये सभी मगलाचरण प्राय आलकारिक शैली मे लिखे गये हैं जिनमे कवि के पाडित्य एव रचना विधान कौशल का भी परिचय मिलता है। इन छन्दो मे यमक एव श्लेष का चमत्कार दर्शनीय है। श्री गुरु नानक देव की वन्दना कवि ने इस प्रकार की है —

सवया करितारनि से शुभ बाक बिलास बिहग बिनासन को करितारनि।
करतार नही मन जानहि जे तिनके हित को सिखनी करि तारन॥
करि तारिनि पाप उतारन को गन दभ छपे सविता करितारन।
करतार निहार गुरव्वर नानक दास उधारा जिउ करितारनि।१।८

इन मगलाचरणो मे ब्रह्म, जीव आदि के सम्बन्ध मे उनके आध्यात्मिक विचारो का भी परिचय मिलता है। अकाल पुरुष' का जो मगलाचरण उद्धृत दिया है उससे ब्रह्म के स्वरूप पर भी प्रकाश पडता है। यथा—

तीनो काल सु अचल रहि अलब सकल जगालि।
जाल काल लखि मुचति जिसि करता पुरष अकाल। १।१।
छोनी, सूरज अगनि जम, बायु त्रास, जिस पाइ।
निज सुभाव महि थिति रहति, अस ब्रह्म रिद बिदताइ।१। २।
भरम न जायो जाइ जिसि भरम मिटे मिलि जाइ।
करम धरम अरु भगति फल अस अभेद को पाइ। ३।

अर्थात 'जो तीनो कालो मे एक रस रहता है जो समस्त जगत के प्रसार का आश्रय है जिसे जान लेने से काल के फन्दे टूट जाते हैं, जिसके भय से पृथ्वी, सूर्य अग्नि यम तथा वायु अपने अपने स्वभाव मे दृढ रहते है जिसका रहस्य जाना नही जा सकता, जिसके मिलने से भ्रम मिट जाते है, ऐसा अकाल पुरुष मेरे हृदय मे प्रकट हो जिसे कर्म, भक्ति एव धर्म आदि के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।'

कवि ने गुरुओ की इस पावन कथा का भी मगलाचरण लिखा है, जो कि चित्त को स्थिर करने वाली, नित्य धन (नाम) को देने वाली, श्रवण से 'हउमै'

(अहंकार) को विनाशक, हृदय को शुद्ध करने वाली, तीनों तापों को नष्ट करने वाली, सब सुखों की खान, गुरु चरणों में चित्त को लगाने वाली तथा सब तत्वों की सार है। ग्रंथ की पूर्णता हेतु कवि ने उन गुरुओं से प्रार्थना भी की है जिन्होंने मनुष्यों के उद्धार के लिए जगत में सिक्खी को प्रकट किया और 'तुरकों' के राज्य रूपी वन को दावाग्नि की भांति जला कर क्षार कर दिया।' खालसे को कवि ने कल्पवृक्ष के समान सभी कामनाओं को पूरा करने वाला कहा है जिसका तेज सिंह की तेजस्विता से युक्त है। 'खालसा पंथ की श्रेष्ठता एवं पवित्रता का वर्णन उन्होंने इस प्रकार कि

> सरब शिरोमणि खालसा रच्यो पंथ सुखदाइ।
> इक बिन गंदे धूम ते जग मैं अधिक सुहाइ। १।४३।
> श्री सतिगुर को रूप जगहि जोति जाहर जगत।
> पुंज सु पंथ अनूप करि बदन रचिब लगति। ४४।

उनके अनुसार खालसा स्वयं गुरुरूप है। इसकी उत्तम ज्योति जगत जगमगा रही है, इसीलिये यह वंदनीय है।

प्रबन्धात्मकता -

गुरु प्रताप सूरज' एक सफल प्रबन्ध-काव्य है स्थानक में सम्बद्धता संतुलन रोचकता, प्रवाह उदात्तता एवं संगठन है। मुख्य कथानक गुरुओं के जीवन से सम्बन्धित है उनमें भी गुरु हरिगोबिन्द तथा गोविन्दसिंह के चरित्र को अधिक विस्तार दिया गया है। (गुरु गोबिन्दसिंह की चरित्र कथा को तो एक स्वतन्त्र वीरकाव्य माना जा सकता है)। कथानक के बीच बीच में बहुत सी ऐतिहासिक पौराणिक अथवा कल्पित प्रासंगिक एवं अवान्तर कथाओं का भी समावेश किया गया है, तथापि वे सभी कथा की गति एवं गरिमा में सहायक हुई हैं और उनके द्वारा गुरुओं का महत्त्व ही स्थापित होता है। कवि ने उन्हें अनावश्यक विस्तार नहीं दिया। बहुत से ऐसे प्रसंग भी आये हैं जिनमें विभिन्न वर्गों सम्प्रदायों, श्रेणियों के पात्रों का गुरुओं से सम्पर्क होता है और उनके साथ परिसंवाद में गुरुजी उस युग में प्रचलित हिन्दुओं के विभिन्न मत मतान्तरों के मिथ्याचारों, धार्मिक-पाखंडों सामाजिक अंधविश्वासों, साम्प्रदायिक-बाह्य डम्बरों का खंडन करते हुए सरल एवं सुगम गुरु मत का प्रतिपादन करते हैं। ऐसे प्रसंगों में कवि की समन्वय भावना के भी दर्शन होते हैं। इन्हीं प्रसंगों में कृष्ण, राम आदि के साथ गुरुओं की अभिन्नता स्थापित की गई है। रहस्यवादी सिद्धों चमत्कार दिखाने वाले नाथों योगियों अभिमानी ब्राह्मणों अहंकारी पीरों गद्दीधारी महन्तों के मिथ्याचारों आडम्बरों एवं ढोंगों का विरोध किया गया है और जाति पाँति वर्णाश्रम, मूर्तिपूजा आदि की व्यर्थता सिद्ध की गई है। कवि ने विभिन्न भारतीय साधना पद्धतियों के समन्वय का प्रयास किया है और भारतीय संस्कृति के महान तत्वों का प्रतिपादन किया है।

वस्तुत, गुर-कथा तो एक माध्यम है, उसके माध्यम से कवि ने भारतीय सस्कृति के पुनरुत्थान एव सामाजिक जागरण का महत कार्य किया है एव अन्याय, अमान्य अधर्म अनीति का विरोध तथा न्याय, सत्य, धर्म एव नीति की स्थापना द्वारा मानव मात्र की मगल कामना का सदेश देकर एक महान लोकनायक का उत्तरदायित्व निभाया हैं ।

ऐतिहासिकता

इस रचना म गुरुओ के जीवन के सम्बन्ध म बहुत सी ऐसी घटनाएँ मिलेंगी बहुत स एस पात्र भी मिलेंगे जो इतिहास सम्मत नहा है परन्तु हम यह नही भूलना चाहिए कि यह एक ऐतिहासिक काव्य है इतिहास ग्रथ नही। इतिहास म तिथियो एव घटनाओ की यथार्थता एव सत्यता का उल्लेख किया जाता है जब कि ऐतिहासिक काव्यो म इसके अतिरिक्त एक विशिष्ट चेतना भी होती है। व एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति क लिए लिख जात हैं। उनम ऐसे तथ्यो का प्रतिपादन होता है जो नव चेतना जागरित करते हैं। कवि अतीत की मिट्टी प्राँसू बहाने के लिए नहीं खोदता वरन उसक आधार म नव निर्माण का काय करता है अतीत के अस्थि पिंजर म अपनी नव-चेतना क रस सचार द्वारा उसे प्राणवान बनाता है। सतोखसिंह न इसी प्रकार की सास्कृतिक चेतना एव

कहा जा सकता। परन्तु उनके सम्बन्धमें ऐसा प्राचीन वैज्ञानिक इतिहास मिलता ही कहा है। क्या मुसलमान लेखकों द्वारा लिखे गये 'तुजके जहांगीरी' 'दबिस्तान', 'आइने अकबरी' 'अकबर-नामा, शाहजहा नामा इकबालनामए जहाँगीरी' आदि ऐतिहासिक ग्रथों को वैज्ञानिक इतिहास कहा जा सकता है? कदापि नहीं। ये ग्रथ भी पक्षपातपूर्ण दृष्टि से लिखे गये हैं। इनके विवरण भी एक पक्षीय होने के कारण सत्य से बहुत दूर हैं। वस्तुतः सिक्ख इतिहास निर्मित करते समय हम इन दोनों प्रकार के ग्रथों का आधार ग्रहण करना पड़ेगा। मकालिफ कनिघम, गोकुल चद नारग इन्दुभूषण बैनर्जी गडासिंह आदि इतिहासकारों ने ऐसा किया भी है। यद्यपि उनका दृष्टिकोण सर्वथा वैज्ञानिक एवं पूर्ण नहीं है। यहां इनकी न्यूनताओं पर विचार करना हमारा उद्देश्य नहीं है हम तो इतना ही कहना चाहते हैं सिक्ख गुरुओं के इतिहास ग्रंथों में 'गुरु प्रताप सूरज' का महत्वपूर्ण स्थान है। यहां हम एक बात और कहना चाहते हैं वह यह कि तथाकथित वैज्ञानिक इतिहासकारों की यह एक बड़ी भारी कमजोरी रही है कि वे विभिन्न शासकों के उत्थान पतन से सम्बन्धित घटनाओं का ही इतिहास देते हैं व जन-जीवन की युग चेतना और युग बोध पर विशेष प्रकाश नहीं डालते। वे उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक एवं मानसिक अवस्था का उनकी अभिलाषाओं और आकांक्षाओं का सजीव चित्र अंकित करने में प्रायः असफल ही रहे हैं। क्या किसी भी देश अथवा जाति का इतिहास उसके जन जीवन की अवस्था उपलब्धियों आशा, निराशा, आकांक्षा अभिलाषा आदि के अभाव में पूर्ण कहा जा सकता है। अणुशक्ति एवं वैज्ञानिक प्रगति की विनाशपूर्ण विभीषिका के भय से झुलस रहे आधुनिक विश्वमानव की द्वन्द्वात्मक विघटन कारी, अवसादपूर्ण अवस्था, उसकी दमित कुण्ठाओं, निराशापूर्ण, हताश दशा की अभिव्यक्ति के अभाव में वियतनाम या भारत-पाक सघर्षों अथवा जानसन या डीगाल की राजनतिक विजय के विवरण मात्र से कोई भी इतिहास वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण नहीं कहा जा सकता। कहने का अभिप्राय यही है कि गुरुओं के समय के पंजाब के हरियाणा जन-जीवन की सांस्कृतिक राजनतिक, सामाजिक चेतना उनकी स्वातन्त्र्य भावना, यवनों के प्रति विरोध एवं विद्रोह का स्वर सही रूप में यदि कहा सुनाई पड़ता है तो वे हैं पंजाब के सिक्ख प्रबन्ध-काव्य जिनमें 'गुरु प्रताप सूरज' का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। मुसलमान लेखकों के एतिहासिक विवरणों में तो उसकी झलक भी नहीं मिल सकती। वस्तुतः पंजाब के तत्कालीन सांस्कृतिक राजनतिक सामाजिक एवं नैतिक इतिहास का यथार्थ एवं सजीव चित्र हम इसी ग्रंथ में मिल सकता है। भारत में ऐसे ही सांस्कृतिक इतिहास लिखने की परम्परा रही है। 'गुरप्रताप सूरज' गुरुओं के आध्यात्मिक एवं सामाजिक सिद्धान्तों और आदर्शों का ही प्रतिपादन नहीं करता, न केवल उनके गार्हस्थ्य एवं पारिवारिक जीवन की कहानी सुनाता है, वह उनके जन्मोत्सवों, विवाहों,

पर्वों मृतु सस्कार आदि का ही विवरण प्रस्तुत नहीं करता वरन् उसमे पारिवारिक द्वेष डाह आदि को भी यथाय रूप म प्रकट करता है और साथ ही जन साधारण की आर्थिक दशा जीवन स्तर, भयभीतावस्था आदि पर भी प्रकाश डालता है और यत्र तत्र मुगलो के पारिवारिक और राजनतिक सघर्षों को भी उद्घाटित करता है। स्व म बड़ी बात तो यह है कि य चित्र एक सामान्य द्रष्टा द्वारा प्रस्तुत नही किय गय वरन् एक युग द्रष्टा एव युग स्रष्टा कलाकार की जादूभरी लेखनी द्वारा प्रसूत हैं। उनम एक लोकनायक की शक्ति एव प्रतिभा का प्रकाश है। उसम सेवा त्याग परोपकार, दया, सयम एव सदाचार का प्रतिपादन किया गया है जो लोक मगलकारी भावनाए हैं।

पौराणिक तत्त्व एव समन्वय-भावना

'दशमगुरु के पूव क गुरुओ का देश की राजनीति से थोडा बहुत सम्पक भले ही रहा हो उन्होंने धम को राजनीति स पृथक रखा और राजनीति म विशेष भाग नही लिया। वे अपने धम प्रसार के काय म ही लगे रह। परन्तु गुरु गोविन्दसिंह के समय म राजनीति धम से अलग नही रह गई थी। उधर औरगजेब ने राजनतिक सत्ता को इस्लाम के प्रसार एव हिन्दुत्व के विनाश का साधन बना लिया था तो गुरु गोविन्दसिंह को हिन्दुत्व की रक्षाथ राजनतिक क्षेत्र मे भी उसका मुकाबला करना आवश्यक जान पडा। इस उभय पक्षीय आन्दोलन को सुचारु रूप से चलाने के लिए उन्ह पुराणो की दुष्टदमनकारी अवतारी भावना का आधार लेना पडा,[1] यद्यपि अवतारी भावना गुरु मत के अनुकूल नही है। गुरु नानक ने स्पष्ट रूप से उसका खण्डन किया,[2] परन्तु दशम गुरु ने निष्ठा एव श्रद्धाभाव से २४ अवतारो की कथा का वणन किया। यहाँ उन्होने अवतारवादी भावना के मूल म जो एक दुष्परिणाम रहता है कि भक्त जन अवतारो को ही भगवान मानकर उनकी पूजा करने लगते है उसकी ओर स्पष्ट रूप म सकेत करते हुए अपने अनुयायियो को आदेश दिया, कि उन्ह अकाल पुरुष ने अन्याय, असत्य अधम, अनाचार की प्रतीक आसुरी शक्तियो के विनाश के लिए ही भेजा है परन्तु वे अकाल पुरुष के दास है उन्हे ही भगवान मानने वाला घोर नरक म गिरेगा।[3] गोस्वामी तुलसीदास ने भी

---

१ दशमग्रन्थ म अवतारो के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए उन्होने कहा है—
जब जब होत अरिसटि अपारा। तब तब देह धरत अवतारा।
काल सबन का पेखतमासा। अन्तह काल करत है नासा।२।
(चौबीस अवतार)

२ नानक निभउ निरकार होरि केते राम खाल (आसा १—पृ० ४६४)।

३ इह कारन प्रभु मोहि पठायो, तब मैं जगत जनमु धरि आयो।
जिम तिन कही इन तिम करिहो, अउर किसू त बर न गहिहो।
जे हम को परमसुर उचरिहै ते सभ नरक कुण्ड महि परिहै।
मोको दासु तवन को जानो, यामे भेदु न रच पछानो (दशमग्रन्थ)

अपने युग की आसुरी शक्तियों के विनाश के लिए दुष्ट दमनकारी भगवान राम के अवतारी रूप का सहारा लिया था, परन्तु उनका प्रयास केवल सांस्कृतिक क्षेत्र में रहा किसी सैनिक अथवा राजनैतिक विद्रोह का संचालन वे नहीं कर पाये। गुरु गोबिन्दसिंह ने ये दोनों कार्य किये। उन्होंने पुराणों की अवतार-कथाओं का वर्णन भक्ति भावना उत्पन्न करने के लिए नहीं किया, वरन वे पौराणिक आधार लेकर भारतीयों की वीर भावना को जागृत करके उन्हें आसुरी शक्तियों (यवनों) के विनाश के लिए प्रेरित और उत्साहित करना चाहते थे। (यहां मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मुसलमानों से गुरुओं का कभी कोई विरोध नहीं रहा, दशमगुरु के भी बहुत से मुसलमान सहायक और सेवक थे, उनका विरोध अधर्म, अनीति अन्याय और अत्याचार था और उस युग की यवन शक्ति यही सब कर रही थी, इसीलिये उन्हें उस सत्ता से लोहा लेना पड़ा)। उनके 'रामावतार' को ही लीजिये, यह प्रबन्ध प्रसिद्ध रामकथा पर ही आधारित है परन्तु न तो यह बाल्मीकि-काव्य की भांति करुण प्रधान है, न तुलसी रामायण की भांति भक्ति प्रधान। 'मानस' की भांति उसमें निगम आगम' का सार और 'श्रुति सम्मत हरि भगति पथ' का भी प्रतिपादन नहीं किया गया। मैं इसे 'वीरकाव्य' की कोटि में रखता हूं। कथा के सभी मार्मिक प्रसंगों को तीव्रगामी वायुयान की भांति तेजी से लांघता हुआ कवि रामकथा के उन प्रसंगों पर पहुंचता है, जहां उनका दुष्टदमनकारी रूप उदघाटित होता है। राम रावण युद्ध और राम की विजय का वर्णन वह जमकर करता है। इसी प्रकार हिन्दी में सम्भवतः पहली बार कृष्ण के दुष्ट दमनकारी युद्धवीर रूप का वर्णन गुरु गोविन्दसिंह ने 'कृष्णावतार' काव्य में किया है। 'कल्कि अवतार', 'रुद्रावतार' आदि भी इसी वीर भावना से ओतप्रोत काव्य है। 'चण्डी चरित्र' तो साक्षात असुर संहार के लिये भारतीय वीर शक्ति का आह्वान करने वाला शक्ति-काव्य' है। इसमें देवी द्वारा अनेक दैत्यों के संहार की कथा सुनाकर उन्होंने देवी से प्रार्थना की है कि जिस प्रकार तुमने क्रोधित होकर शुंभ का संहार किया उसी प्रकार सन्तों के सभी शत्रुओं को विकराल रूप धारण करके खा जाओ। यथा—

जिम सुंभासुर को हना अधिक कोप कै काल।

त्यो साधन के सत्र सभ चाबत जाहु कराल। ६३।२१६ (चण्डी चरित)

इन सभी पुराण-कथाओं के मूल में जो भावना कार्य कर रही है वह वास्तव में उनकी अपनी कथा की पृष्ठभूमि मात्र है। इसी पृष्ठभूमि में वे यह थीसिस खड़ा करते हैं कि जिस प्रकार अन्य युगों में अधर्म के विनाश एवं धर्म की स्थापना के लिये इन अवतारों ने रूप ग्रहण किया, उसी प्रकार कलि काल में यवनों द्वारा प्रसारित अधर्म और अन्याय को विनष्ट करने के लिये

य युद्ध लड़ रहे हैं, इसलिये उनके ये युद्ध किसी व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित न होकर जन हिताय हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये लड़े जाने के कारण धर्म युद्ध हैं। देवी से भी वे युद्ध का ही वर मांगते हैं।[1] उनकी इसी भावना से प्रेरित होकर उनके अनुयायियों ने प्राणों की चिन्ता न करते हुए हँस हँस कर उनका साथ दिया। गुरु गोविन्दसिंह ने धर्म प्रधान वीरता की जो ज्योति प्रज्वलित की थी वह निरन्तर प्रकाशवान होती गई।

'दशमगुरु के लिये जहा राम, कृष्ण, रुद्र आदि पौराणिक-पुरुष अधर्म के विनाश के लिये अवतरित अवतारी पुरुष थे, वहा उनके अनुयायी सिक्खों के लिये स्वयं 'दशम गुरु' युग की आसुरी शक्तियों के विनाश के लिये अवतरित दिव्य पुरुष थे। यही कारण है कि दशम ग्रन्थ की अवतार-कथाओं का स्थान अब गुरुओं की अवतार कथाओं ने ले लिया। तदनन्तर पंजाब में पौराणिक काव्य अधिक नहीं लिखे गये, वरन् गुरुओं को ही पौराणिक रूप देकर ऐतिहासिक प्रबन्ध लिखे जाने लगे। महिमा प्रकाश' 'गुरुविलास, 'गुरुनानक विजय' 'नानक प्रकाश' साखी नानक साह की 'गुरु विलास पातसाही ६, गुरु प्रताप सूरज' आदि ऐसे ही ग्रन्थ हैं। 'गुरु प्रताप सूरज इन सब में विस्तृत विशद एवं उत्कृष्ट रचना है। यहा इस पृष्ठभूमि का उल्लेख इसीलिये किया गया है कि इस महाकाव्य का अध्ययन इस परिप्रेक्ष्य में करने से ही उसका सही मूल्यांकन हो सकेगा। गुरुओं के अवतारी रूप का सतोखसिंह ने कई स्थानों पर वर्णन किया है। भाई सन्तोखसिंह ने गुरु चरित्र के साथ अनेक अतिमानवीय अतिप्राकृतिक घटनाओं का समावेश किया है जिनसे उनकी अलौकिक, दिव्य शक्ति प्रकट होती है। हिन्दी के रासो काव्य एवं रीतिकालीन ग्रन्थ वीर काव्यों में भी अपने चरित्र नायक के साथ बहुत सी अतिमानवीय घटनाओं का समावेश किया गया है परन्तु उनमें उस सांस्कृतिक चेतना और धर्म भावना का अभाव है जो 'गुरु प्रताप सूरज की प्राण शक्ति है। इस ग्रन्थ में गुरुओं को भव भार उतारने' तथा तुरकान को तेज निवारने (रा० ३ ८ २७) के हेतु जगत में अलौकिक शक्ति सम्पन्न दिव्य पुरुषों के रूप में अवतरित कहा गया है और उन्हें हिन्दूपति, हिन्दुओं के रक्षक, हिन्दू धर्म के रक्षक कहकर सम्बोधित किया है। गुरुओं को दिव्य स्वरूप प्रदान करने के लिये उनके चरित्र के साथ तो बहुत सी चमत्कारपूर्ण घटनाओं का समावेश किया ही गया है जैसे श्री रामराई ब्राह्मण के मृत पुत्र को जीवित कर देते है (रा० १० १७) गुरु तेग बहादुर बंदीगृह से बिना द्वार खोले एक सिक्ख के घर पहुंच

१ देहु शिवा वर मोहि इहै शुभ कमन ते कबहू न टरौं।
न डरौं अरि सौं जब जाई लरौं निशचै करि आपुनी जीत करौं।
अरु सिख हौ आपने ही मन को इह लालच हौ गुन तौ उचरौं।
जब आव की औध निदान बनै अति ही रण में तब जूझि मरौं।
(दशम ग्रन्थ)

जाते है तथा एक ही समय मे वे दो स्थानो पर दिखाई पडते हैं (१२ ४६), श्री हरिगोविन्द जिस सर्प का उद्धार करते हैं वह मनुष्य देह धारण करके अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाने लगता है। गुरु अमरदास सिक्खो का अन्यत्र दिया हुआ समस्त आहार अपने मुख मे दिखा देते हैं। एक वृद्धा के नदी मे डूबे हुए पुत्र को कई दिनो बाद जीवित करके निकाल देते हैं— इत्यादि। दूसरे, वे गुरुओ के चरित्र की पौराणिक घटनाओ अथवा पात्रो से समानता भी चित्रित करते हैं, यथा दातू ने क्रोधित हो कर गुरु अमरदास को सभा मे ऐसे लात मारी जैसे भृगु ने लक्ष्मीपति को मारी थी, अथवा गुरु अमरदास के खडूर छोडने पर सिक्खो की वही दशा हुई जो कृष्ण के अन्तर्धान होने पर गोपियो की हुई थी, इत्यादि। तीसरे कवि ने गुरुओ की पूर्वावतारो से अभिन्नता दिखाते हुए उनके विष्णु कृष्ण आदि के रूप मे दर्शन कराये हैं। गुरु तेग बहादुर ने तीनो युगो मे विभिन्न अवतार धारण किये, कवि उन सभी अवतारो के रूप मे उनका वर्णन करता है (रा० ६ ४६ २०-२८), तथा इस बात का भी उल्लेख करता है कि जिस समय गुरु गोबिन्दसिंह मथुरा, वृन्दावन आदि गये, तो उन्होने वे सभी स्थान देखे जहा उन्होने कृष्ण रूप मे अनेक लीलाएँ की थी (रि० १ ३८)। ऐसे स्थलो पर कवि एक तो गुरुओ के पौराणिक रूप की स्थापना करता है दूसरे वैष्णवो के साथ उनके विरोध को दूर करके समन्वय भावना को प्रश्रय देता है। तुलसी ने जिस प्रकार काशी के वैष्णवो एव शैवो का समन्वय किया, उसी प्रकार सतोखसिंह ने पजाब के गुरु भक्त सिक्खो एव राम अथवा कृष्ण भक्त वैष्णवो का समन्वय अथवा मिलाप कराने का स्तुत्य प्रयत्न किया। कैथल मे जहा इस ग्रथ की रचना हुई वह वैष्णवो का एक महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थान है उसी के निकट पेहोवा तथा कुरुक्षेत्र जैसे प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यहाँ वैष्णव ब्राह्मणो का जोर रहना स्वाभाविक ही है। कवि के आश्रयदाता भाई उदयसिंह निष्ठावान गुरुभक्त सिक्ख थे। पेहोवा भी उनके राज्य मे था। वे थे भी समन्वय एव उदार बुद्धि के धनी। इसीलिये तो उन्होने 'बाल्मीकि रामायण' एव जपुजी' दोनो का अनुवाद कवि से करवाया था। सम्भवत उदयसिंह किसी प्रकार के वैष्णव सिक्ख विरोध मे पडना नही चाहते थे। या वहाँ ऐसा विरोध था ही नही और या वे इसे दूर करके दोनो का समन्वय स्थापित करना चाहते थे। यही प्रयास हम 'गुरु प्रताप सूरज' मे दिखाई देता है। इस ग्रथ मे वैष्णवो एव सिक्खो के किसी प्रकार के सघर्ष के दर्शन नही होते वरन् सर्वत्र समन्वय के ही दर्शन होते हैं। उन्होने वैष्णव पूजा विधि एव सस्कारो मे पुजारी भावना का भी वर्णन किया है। हिन्दुओ को सगठित एव सशक्त करने का यह समन्वयवादी प्रयत्न सर्वथा सराहनीय है और आज भी हिन्दुओ और सिक्खो की भावात्मक एकता के लिये यह बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। भाई सतोखसिंह द्वारा वर्णित गुरु गोबिन्दसिंह

द्वारा देवी आराधना और देवी के प्रकट होने का प्रसग उनकी हिन्दुओ और सिक्खो की इस समन्वय भावना का एक और महत्त्वपूण प्रमाण प्रस्तुत करता है। सिक्खमत म अकाल पुरुष को छोडकर अन्य किसी भी अवतार, देवी, देवता की उपासना का कडा विरोध किया गया है। गुरु गोबिन्दसिंह ने भी यद्यपि 'चण्डी चरित' आदि म देवी की कथा का विशद वणन किया, परन्तु उन्होने कही भी किसी देहधारी देवी की उपासना नही की। देवी अकाल पुरुष की आदि अनन्त अद्वत शक्ति है जो अकाल पुरुष से किसी भी भाति भिन्न नही है, वह उससे अभेद स्वरूपा है। गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा लिखित 'अपनी कथा' अथवा अन्यत्र भी उनके साहित्य मे कही ऐसा उल्लेख नही मिलता कि गुरु जी ने देवी की इस तरह की उपासना की थी और न ही उनके समकालीन अन्य कवियो की रचनाओ म कही इस तथ्य का उल्लेख हुआ है। इस प्रसग का आविष्कार सम्भवत देहि शिवा बर मोहि इहै गुरु गोबिन्दसिंह के इस पद से प्रेरणा प्राप्त कर सुक्खासिंह तथा सतोखसिंह आदि कवियो ने ही किया है और इसके मूल म निसदेह इनकी समन्वय भावना काय कर रही है। भाई सतोखसिंह न गुरु जी द्वारा देवी पूजा और देवी के प्रसन्न होकर प्रकट होने का वणन जिस रूप म किया है, वह स्पष्ट रूप से उनकी हिन्दू सिक्ख समन्वय भावना का ही परिचायक है। कवि ने ज्ञान कम भक्ति एव योग आदि का भी समन्वय किया है जिस पर आगे प्रकाश डाला जायेगा। समन्वय का यह प्रयास कोइ महान लोकनायक ही करता है। कबीर और तुलसी, ने यही काम किया और सतोखसिंह इस दृष्टि से उनसे पीछे नही हैं। जो काय कबीर तथा तुलसी न काशी म बठ कर किया, वही काय सतोखसिंह ने कैथल म बठ कर यहाँ की परिस्थितिया के अनुकूल किया। वे सच्चे अर्थों मे एक समन्वयवादी एव लोकनायक कवि थे। कबीर से तुलसी का जो दृष्टि भेद था वही सतोखसिंह का भी था। कबीर ने राम रहीम हिन्दू-तुरक के समन्वय पर भी जोर दिया, परन्तु तुलसी दास एव भाई सतोखसिंह ने कही भी इस प्रकार के समन्वय का उल्लेख नही किया। हाँ, मुसलमाना का विरोध भी उन्होंने कही नहीं किया। परन्तु यहाँ उन्ह किसी सकुचित मनोवृत्ति या साम्प्रदायिकता के प्रचारक नही मान लेना चाहिए। उन्होने सत्य न्याय सदाचार, धम, सेवा, त्याग, दया, करुणा, परोपकार आदि सदवृत्तिया की स्थापना द्वारा मानव धम का प्रचार किया है, लोक-मगल की कामना की है इसीलिए व लोकनायक की पदवी के अधिकारी हैं। इस दृष्टि स सतोखसिंह का हिन्दी के गिने चुने प्रतिष्ठित कवियो म उच्च स्थान है।

आध्यात्मिक विचार

भाई सतोखसिंह न 'गुरु प्रताप सूरज' म सिक्खमत के सिद्धान्तों का ही

विशद प्रतिपादन किया है। ब्रह्म, जीव, माया जगत आदि के सम्बन्ध मे उनके विचार बहुत कुछ अद्वैतवादी ही हैं। जितना कुछ अन्तर सिक्खमत म है वह सतोखसिंह म भी है। सतोखसिंह ने ब्रह्म को 'अकाल पुरष' शब्द से अभिहित किया है। उनके अनुसार वह ब्रह्म निरकार निगुण, स्वयभू कर्त्ता पुरप अनन्त, सत्यरूप, अविनाशी, निभय, जगतेश्वर, सवव्यापक, अच्युत है वह समस्त जगत मे प्रकाशवान है, उसका कोई रूप रग नही है परन्तु वह दीनबन्धु परम कृपालु सुखदाता, स्वामी गुणवान एव दाता भी है। वह निराकार होते हुए भी सवव्यापक एव सवज्ञ है। निगुण होते हुए भी सव गुण सम्पन्न, कर्त्ता पुरप है, वह नाना रूपो म प्रकट होता है वही जगत का कर्त्ता और कारण है। पृथ्वी, सूय, आकाश, अग्नि, पवन आदि सभी उसके भय से अपने अपने स्वभाव म स्थित हैं। अत जिस प्रकार गुर ग्रथ साहिब' म उसे 'निरगुनु आपि सरगुन भी ओही' कहा गया है उसी प्रकार सतोखसिंह ने भी उसके निगुण एव सगुण दोनो रूपो को स्वीकार किया है। वह सवव्यापक, सवज्ञ, कृपालु दयालु कर्त्ता पुरष है। यही उसके गुण हैं। अन्यथा वह सगुण साकार नही है, वह निगुण निराकार ही है।

आत्मा को सतोखसिंह ने सत्त चित्त आनन्द स्वरूप माना है। उनका दृष्टिकोण बहुत कुछ 'गीता' के अनुकूल है। उनका कथन है कि आत्मा अमर है, वह मारे से मर नही सकता अग्नि उसे जला नही सकती जल डुबा नही सकता पवन उडा नही सकता, शस्त्र काट नही सकते। जिस प्रकार मनुष्य जीण वस्त्र उतार कर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है उसी प्रकार आत्मा जीण शरीर को त्यागकर नवीन शरीर को धारण कर लेता है। वह शरीर के साथ नष्ट नही होता। आत्मा का परमात्मा से वही सम्बन्ध है जो बूँद और सागर कुडल एव कचन तथा स्फुलिंग तथा अग्नि का है। शरीर नाशवान, जड एव असत्य है। जीव जल म पडे हुए जल युक्त उस घडे के समान है जिसके टूटने पर अन्दर का जल (आत्मा) बाहर के जल समूह (परमात्मा) म मिल जाता है। जीव का आवागमन जल के बुदबुदे के समान है। विषय लिप्त रहने के कारण जीव अल्पज्ञ है। जब जीव अहकार (हउमैं) का नाश करके ब्रह्मज्ञान के अभ्यास से भगवत् भक्ति द्वारा ब्रह्मरूप हो जाता है तो वह आवागमन के चक्कर स छूट जाता है। जीव अद्वैतता को प्राप्त कर लेता है और ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान नामी, नाम जापक आदि का भेद मिट जाता है।

उनके अनुसार सृष्टि का कर्त्ता और कारण ब्रह्म ही है। उसी के 'हुकम' से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। ब्रह्म के हुकम से माया की उत्पत्ति होती है जो समस्त ससार को भ्रम म डाले हुए हैं। जो भी दिखाई देता ह वह बाजीगर के तमाशे की भाति माया के ही कारण दिखाई देता है। इन्द्रिय-दमन, अन्त वृत्तियो के सयमन एव नाम-जाप से यह भ्रम मिटाया जा सकता है। उस

द्वारा देवी आराधना और दवी के प्रकट होने का प्रसग उनकी हिन्दुआ और सिक्खो की इस समन्वय भावना का एक और महत्त्वपूण प्रमाण प्रस्तुत करता है। सिक्खमत म अकाल पुरुष को छोडकर अय किसी भी अवतार, देवी, देवता की उपासना का कडा विरोध किया गया है। गुरु गोबिन्दसिंह ने भी यद्यपि चण्डी चरित' आदि म देवी की कथा का विशद वणन किया परन्तु उन्होने कही भी किसी देहधारी देवी की उपासना नही की। देवी अकाल पुरुष की आदि, अनन्त अद्वत शक्ति है, जो अकाल पुरुष से किसी भी भाति भिन्न नही है, वह उससे अभेद स्वरूपा है। गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा लिखित 'अपनी कथा अथवा अयत्र भी उनके साहित्य मे कही ऐसा उल्लेख नही मिलता कि गुरु जी ने देवी की इस तरह की उपासना की थी और न ही उनके समकालीन अय कवियो की रचनाओ म कही इस तथ्य का उल्लेख हुआ है। इस प्रसग का आविष्कार सम्भवत देहि शिवा बर मोहि इहै गुरु गोविन्दसिंह के इस पद से प्रेरणा प्राप्त कर सुक्खासिंह तथा सतोखसिंह आदि कवियो ने ही किया है और इसके मूल मे नि सदेह इनकी समन्वय भावना काय कर रही है। भाई सतोखसिंह न गुरु जी द्वारा देवी-पूजा और देवी के प्रसन्न होकर प्रकट होने का वणन जिस रूप म किया है वह स्पष्ट रूप से उनकी हिन्दू सिक्ख समन्वय भावना का ही परिचायक है। कवि ने ज्ञान कम, भक्ति एव योग आदि का भी समन्वय किया है जिस पर आगे प्रकाश डाला जायेगा। समन्वय का यह प्रयास कोइ महान लोकनायक ही करता है। कबीर और तुलसी, ने यही काम किया और सतोखसिंह इस दृष्टि से उनसे पीछे नहीं हैं। जो काय कबीर तथा तुलसी ने काशी म बठ कर किया, वही काय सतोखसिंह ने कथल म बठ कर यहाँ की परिस्थितियो के अनुकूल किया। वे सच्चे अर्थों म एक समन्वयवादी एव लोकनायक कवि थे। कबीर से तुलसी का जो दृष्टि-भेद था वही सतोखसिंह का भी था। कबीर ने राम रहीम, हिन्दू-तुरक के समन्वय पर भी जोर दिया परन्तु तुलसी दास एव भाई सतोखसिंह ने कही भी इस प्रकार क समन्वय का उल्लेख नही किया। हाँ, मुसलमानो का विरोध भी उन्होने कही नही किया। परन्तु यहाँ उन्हे किसी सकुचित मनोवृत्ति या साम्प्रदायिकता के प्रचारक नही मान लेना चाहिए। उन्होने सत्य न्याय सदाचार, धम, सेवा, त्याग, दया, करुणा, परोपकार आदि सदवृत्तियो की स्थापना द्वारा मानव धम का प्रचार किया है, लोक मगल की कामना की है इसीलिए वे लोकनायक की पदवी के अधिकारी हैं। इस दृष्टि से सतोखसिंह का हिन्दी के गिने चुने प्रतिष्ठित कवियो म उच्च स्थान है।

आध्यात्मिक विचार

भाई सतोखसिंह ने 'गुरु प्रताप सूरज' म सिक्खमत के सिद्धान्तो का ही

विशद प्रतिपादन किया है। ब्रह्म जीव, माया जगत आदि के सम्बन्ध म उनके विचार बहुत कुछ अद्वैतवादी ही हैं। जितना कुछ अन्तर सिक्खमत म है वह सतोखसिंह म भी है। सतोखसिंह ने ब्रह्म को अकाल पुरुष' शब्द स अभिहित किया है। उनके अनुसार वह ब्रह्म निरकार, निगुण, स्वयभू कर्त्ता पुरुष अनन्त, सत्यरूप, अविनाशी निभय, जगतेश्वर, सवव्यापक अच्युत है वह समस्त जगत म प्रकाशवान है, उसका कोई रूप रग नही है, परन्तु वह दीनबन्धु, परम कृपालु सुखदाता स्वामी, गुणवान एव दाता भी है। वह निराकार होते हुए भी सवव्यापक एव सवन है। निगुण होते हुए भी सब गुण सम्पन्न, कर्त्ता पुरुष है, वह नाना रूपों म प्रकट होता है वही जगत का कर्त्ता और कारण है। पृथ्वी, सूय आकाश अग्नि, पवन आदि सभी उसके भय स अपने अपने स्वभाव म स्थित हैं। अत जिस प्रकार गुरु ग्रथ साहिब' म उसे निरगुनु आपि सरगुन भी ओही कहा गया है उसी प्रकार सतोखसिंह ने भी उसके निगुण एव सगुण दोनो रूपा को स्वीकार किया है। वह सवव्यापक, सवन, कृपालु दयालु कर्त्ता पुरुष है। यही उसक गुण हैं। अन्यथा वह सगुण साकार नही है, वह निगु ण निराकार ही है।

आत्मा को सतोखसिंह ने सत्त चित्त आनन्द स्वरूप माना है। उनका दृष्टिकोण बहुत कुछ गीता के अनुकूल है। उनका कथन है कि आत्मा अमर है वह मारे से मर नही सकता अग्नि उसे जला नही सकती जल डुबा नही सकता, पवन उडा नही सकता शस्त्र काट नहीं सकत। जिस प्रकार मनुष्य जीण वस्त्र उतार कर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है उसी प्रकार आत्मा जीण शरीर को त्यागकर नवीन शरीर को धारण कर लेता है। वह शरीर क साथ नष्ट नही होता। आत्मा का परमात्मा से वही सम्बन्ध है जो बूँद और सागर कु डल एव कचन तथा स्फुलिंग तथा अग्नि का है। शरीर नाशवान, जड एव असत्य है। जीव जल म पडे हुए जल युक्त उस घडे के समान है जिसके टूटने पर अन्दर का जल (आत्मा) बाहर क जल समूह (परमात्मा) म मिल जाता है। जीव का आवागमन जल के बुदबुदे के समान है। विषय लिप्त रहने के कारण जीव अल्पज्ञ है। जब जीव अहकार (हउमै) का नाश करक ब्रह्मज्ञान के अभ्यास से भगवद् भक्ति द्वारा ब्रह्मरूप हो जाता है तो वह आवा गमन के चक्कर से छूट जाता है। जीव अद्वैतता को प्राप्त कर लेता है और ज्ञाता ज्ञेय और ज्ञान, नामी, नाम जापक आदि का भेद मिट जाता है।

उनके अनुसार सृष्टि का कर्त्ता और कारण ब्रह्म ही है। उसी क हुक्म' से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। ब्रह्म के हुक्म स माया की उत्पत्ति होती है जो समस्त ससार को भ्रम म डाले हुए हैं। जो भी दिखाई देता है वह बाजीगर के तमाशे की भाति माया के ही कारण दिखाई देता है। इन्द्रिय-दमन अन्त वृत्तियो के सयमन एव नाम-जाप स यह भ्रम मिटाया जा सकता है। उस

स्थिति में सर्वत्र ब्रह्म ही दिखाई देने लगता है। सतोखसिंह के अनुसार यह जगत भी भ्रान्ति मात्र से सत्ता पा रहा है, परन्तु है वह असत्य, मिथ्या ही। यह स्वप्न समान अनित्य, जड़ तथा नाशवान है। यह परिवर्तनशील एवं अवास्तविक है एक रस तथा स्थिर नहीं। यहाँ के सम्बन्ध भी अस्थिर और क्षणिक हैं।

माया के सम्बन्ध में कवि का कथन है कि यह ब्रह्म द्वारा उत्पन्न एवं उसके अधीन है। उसी के हुक्म से वह जगत को नचाती है। इस नटनी ने छल बल से सारे संसार को भ्रम में डाला हुआ है। यह अनिर्वचनीय शक्तिवान एवं अनन्त है। वह त्रिगुणात्मा है और उसके दो रूप हैं। एक ब्रह्म के स्वरूप को आच्छादित करने वाला तथा दूसरी से यह सारा नानात्व प्रतीत होता है। भाई सतोखसिंह ने उससे पार पाने का मुख्य साधन भक्ति को माना है। ज्ञान विराग, योग आदि तो पुरुष रूप हैं, वे उस पर मोहित हो सकते हैं परन्तु भक्ति तो पतिव्रता स्त्री स्वरूपा है, उस पर मोह ग्रस्त नहीं कर सकती। गुरु कृपा तथा 'गुरु वाणी' से भी उसके मोह से बचा जा सकता है।

साधना मार्ग

सिक्खमत के अनुसार सतोखसिंह ने ज्ञान, कर्म योग, भक्ति आदि सभी साधना मार्गों को मान्यता दी है। गुरमत की ही भाँति इन साधना-पद्धतियों के बाह्याचारों मिथ्याडम्बरों आदि का खंडन भी किया है। ज्ञान कर्म योग आदि का महत्त्व उन्होंने स्वीकार तो अवश्य किया है परन्तु प्रधानता भक्ति को ही दी है। इसी प्रकार ज्ञान के सम्बन्ध में उनका कथन है कि भक्ति के बिना ज्ञान भी शोभा नहीं देता। जैसे केवल घी पीने मात्र से मनुष्य की छाती भारी हो जाती है, शरीर ढीला हो जाता है खाना पीना छूट जाता है, खाँसी हो जाती है मनुष्य के शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, परन्तु यदि उसी घी को मिश्री में मिलाकर खाया जाय तो शरीर को बड़ा लाभ होता है। इसी प्रकार केवल ज्ञान से व्यवहार बिगड़ जाता है मनुष्य भ्रष्टाचारी हो जाता है अपने को ही बड़ा समझने लगता है, सत्संगति भी नहीं करता और नरक में गिरता है, मगर भक्ति साथ मिल जाने से ज्ञान सभी का कल्याण करता है। उनके मतानुसार इन सभी साधना मार्गों की सार्थकता भक्ति से ही है। ज्ञान द्वारा ही ब्रह्म, जीव, जगत आदि का वास्तविक रूप जाना जा सकता है इसलिए इसका भी महत्त्व है। सतोखसिंह ने ज्ञान के साधन रूप विरक्ति श्रद्धा, श्रवण, मनन, अहंकार, त्याग तथा गुरु कृपा आदि का भी विशद विवेचन किया है। परन्तु शुष्क ज्ञान की उन्होंने अवहेलना की है और भक्ति युक्त ब्रह्म ज्ञान को ही कल्याणकारी माना है इसी प्रकार बाह्याडम्बर युक्त कर्मकाण्ड का भी उन्होंने बलपूर्वक निषेध किया है। उनका कथन है कि सकाम श्रेष्ठ कर्मों से मनुष्य को गंधर्व लोक की प्राप्ति होती है

और निष्काम कर्मों से ब्रह्म के साथ एकरूपता हो जाती है। इसलिए वे निष्काम कर्म को ही श्रेष्ठ मानते हैं। परन्तु कर्म भी भक्ति से ही सक्षम होते हैं। उनके मतानुसार कर्म वही श्रेष्ठ हैं जिसमें 'नाम स्मरण' किया जाय, उसके अभाव में सभी कर्म शून्य के समान हैं। योग का भी सन्तोखसिंह ने विशद विवेचन किया है, परन्तु श्रेष्ठ योग उसे ही माना है जिसमें मन की वासनाओं को रोक लिया जाता है, जीव और ब्रह्म की एकता को समझ लिया जाता है और साधक आत्मवृत्ति में लीन रहना सीख लेता है। वे योग की उस अचल समाधि को श्रेष्ठ मानते हैं जिसमें सवत्र ब्रह्म ही दिखाई दे, ब्रह्म ही सुनाई पड़े। सोते-जागते उठते बैठते, चलते फिरते सवत्र ब्रह्म के ही दर्शन हों। सन्तोखसिंह के अनुसार योग भी वही श्रेष्ठ है जिसमें 'सतिनाम' का स्मरण किया जाय। हठयोग की कष्ट पूर्ण शुष्क साधना का उन्होंने विरोध किया है। इसी प्रकार विरक्ति की उस सीमा तक तो वे सहमत हैं जो सांसारिक विषय वासनाओं में लिप्त होने से बचाये, मनुष्य को कमलवत् संसार में जीवन व्यतीत करने को प्रेरित करे परन्तु संसार त्याग कर निष्क्रिय बनाने वाली विरक्ति को वे मान्यता नहीं देते। विषय वासनाओं से विरक्त होकर जब जीव परमात्मा की भक्ति करता है तभी वह परम गति को प्राप्त करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्तोखसिंह ने ज्ञान, कर्म, विरक्ति आदि के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी मुख्य भक्ति को ही माना है। वस्तुत, जिस प्रकार तुलसीदास ने ज्ञान, कर्म, योग आदि की विभिन्न साधना पद्धतियों के संघर्ष को दूर करके उन्हें श्रुति सम्मत हरि भगति पथ संजुत बिरति विवेक' द्वारा भक्ति का अनुगामी बना कर समन्वय का प्रयत्न किया है उसी प्रकार पंजाब हरियाणा में लोकनायक सन्तोखसिंह ने इस क्षेत्र में 'भगति ज्ञान गुण सानी' कहकर इन विभिन्न साधना पद्धतियों का समन्वय स्थापित किया और भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन किया। भाई सन्तोखसिंह के अनुसार ज्ञान, वैराग्य, योग एवं कर्म हरिमंदिर के चारों द्वारों के समान हैं, जिनके द्वारा हरिमंदिर के भीतर पहुंचा तो जा सकता है परन्तु वहां जाकर भी ब्रह्म प्राप्ति तो 'नाम जाप' (भक्ति) द्वारा ही हो सकती है। अत ये चारों सतिनाम' के ही आश्रित हैं।

'नाम जाप' को उन्होंने साधना का सर्वश्रेष्ठ तत्त्व माना है। उनका कथन है कि 'नाम' के बिना जीव का छुटकारा नहीं हो सकता 'नाम' ही ऐसा महामन्त्र है, जिसके जाप से जीव रोग ताप कष्ट आदि से मुक्त हो जाता है भव बंधन से मुक्त हो सकता है। क्योंकि---

'बिना नाम के नहिं छुटकारा' (रा० ५ ४६ ६)

इस साधना मार्ग के अतिरिक्त सन्तोखसिंह ने भगवद् प्राप्ति के लिये स्नान दान, परोपकार, सेवा त्याग, सदाचार संयम आदि के महत्त्व का भी विशदता से प्रतिपादन किया है। गुरुमुखों' की आदर्श मर्यादा का निरूपण

करते हुए उन्होने सिक्खो को इस प्रकार के नैतिक एव शुद्धाचरण का महत्त्व दर्शाया है। एसा 'गुरमुख ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। विलासी, दुराचारी, दुष्कर्मी व्यक्ति को उन्होने 'मनमुख' का नाम दिया है जो कभी भगवान को प्राप्त नही कर सकता। सन्तोखसिह ने हउमैं-त्याग, सत्सगति सन्त सेवा के महत्त्व का भी प्रतिपादन किया है तथा 'हउमैं' (ग्रहकार) के स्वरूप, परिणाम एव उसके विनाश के उपायो का सम्यक विवेचन भी किया है। उनके मतानुसार हउम' के कारण मनुष्य अनेक क्लेश उठाता है जन्म मरण का कष्ट भोगता है उसे न ज्ञान प्राप्त होता है न मुक्ति मिलती है, परन्तु उसका नाश हो जाने से मनुष्य वासना रहित हो जाता है वह कमफल से मुक्त हो जाता है और आवागमन से बच जाता है। 'हउम का नाश, गुरु उपदेश गुरु-कृपा एव नाम-स्मरण से होता है। सत्सगति एव सन्तसेवा का महत्त्व बताते हुए वे लिखते है कि इनसे नाम जाप म मन लगता है और जीव आवागमन से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। सन्त सेवा महाफल दायक है। सत्सगति के बिना शम दम योग, यत आदि सब विफल है। सन्त सेवा मे तप से भी दस गुणाफल हैं। सन्त सेवा से मनुष्य भव सागर को पार करके परमगति को प्राप्त करता है।

इस आध्यात्मिक साधना की सफलता के लिये सन्तोखसिह ने 'गुरु' के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। गुरु को वे परब्रह्म परमेश्वर स्वरूप मानते हैं

'पारब्रह्म गुर रूप पछाना (रा० २ २ ४५)।

उनका कथन है कि गुरु कृपा से अविद्या नष्ट हो जाती है उसके उपदेश से हउम' का नाश होता है और उसकी कृपा से ही भक्ति प्राप्त होती है। गुरु सेवा के समान कुछ भी नही है, गुरु के बिना जीवन सवथा निरथक है। वे लोग भाग्यशाली हैं जिन्हे मुक्ति दाता सदगुरु प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाई सन्तोखसिह ने गुरु प्रताप सूरज' म आध्यात्मिक विचारो का बडी गम्भीरता से निरूपण किया है। हमने अपने शोध प्रबन्ध (गुरु प्रताप सूरज के काव्य पक्ष का अध्ययन) मे उनके आध्यात्मिक विचारो पर विस्तार से प्रकाश डाला है और 'गुरमत से उनकी तुलना भी की है। यहाँ सक्षेप म ही इनकी चर्चा की गई है। हम यहाँ इस ओर सकेत अवश्य कर देना चाहते हैं कि इस प्रकार भारतीय परम्परा म दार्शनिक विचारो का गम्भीर प्रतिपादन एव विवेचन करके जो सास्कृतिक वातावरण सन्तोखसिह ने अपने इस काव्य ग्रन्थ म प्रस्तुत किया है, हिन्दी के उस युग के समस्त साहित्य म इसका सवथा अभाव है। पजाब मे भी सांस्कृतिक चेतना से युक्त जो साहित्य लिखा गया, उस म भी इस विषय पर इतनी गम्भीरता से और इतने विस्तार से किसी ने प्रकाश नही डाला। भाई सन्तोखसिह को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था कि उन्होने भारतीय दर्शन एव गुरु वाणी का गम्भीर अध्ययन किया था। इसलिए उन्होंने स्वमत का प्रतिपादन ही नही किया भारतीय धम

साधना म प्रचलित अय विचारधाराओं को भी प्रस्तुत किया है और गुरुओ के परिसवादो के माध्यम से विरोधी विचारो का खडन करके स्वमत प्रतिपादन किया गया है। इस दृष्टि स भी यह एक महत्त्वपूण रचना है। इसका दाशनिक पक्ष अत्यन्त पुष्ट एव सम्पन्न है जिससे यह ग्रथ एक बौद्धिक गरिमा से मडित हो गया है।

अनुभूति तत्त्व

गुरु प्रताप सूरज' एक धम प्रधान ऐतिहासिक रचना ही नही है, काव्यत्व की दृष्टि से भी यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट कलाकृति है। मानवीय भावो अथवा मनोवेगो की भी इसमे सफल एव विशद अभियजना हुई है। इसका भाव क्षेत्र बहुत विस्तृत और व्यापक है और सभी रसो का इसमे पूण परिपाक हुआ है। मुख्य रस शान्त है, उसके पश्चात् वीररस का स्थान है। अदमुत, करुण, वात्सल्य, रौद्र, वीभत्स भयानक आदि अय रसो का चित्रण भी बहुत सजीव रूप म हुआ है।

निर्वेद एव भक्ति भावना सम्बधी उदाहरण गुरु प्रताप सूरज' म बहुत बडी सख्या मे मिलेंगे। भक्ति के अन्तगत कवि न भक्तो की दीनता, विनय, अनुताप पश्चाताप, आत्मग्लानि आदि मनोवगो के साथ उनकी भगवान के प्रति निष्ठा, श्रद्धा, आत्म समपण आदि का भी सजीव चित्रण किया है। सतोखसिंह के आत्म दन्य, ग्लानि, अनुताप एव पश्चाताप का एक उदाहरण देखिये

सीर न सुसग मैं कुसग म सतोखसिंह
रम्यो नित पापनि सो, मिल्यो कवि धीर ना।
धीर ना धरति काम लपट कठोर क्रूर
बोरियो मैं बिकारन मैं भयो मन तीर ना।
तीर ना पछायो तुम दूर करि जायो प्रभु,
आपने उधार की बिचारी ततबीर ना।
बीर ना भगत, भेख धारी हित नारी,
जिम राखी पज मेरी हेरो तकसीर ना (रि०२ ५ ४४)।

इसी प्रकार अनेक गुरु सिक्खो की गुरुओ के प्रति भक्ति भावना के अन्तगत उनकी व्याकुलता, उमाद, आत्म निन्दा, ग्लानि, स्मृति, अधीरता, दीनता, चपलता, उत्सुकता, विश्वास, गुरु की हित भावना हष, उल्लास आदि मनोवेगो एव अश्रु स्वरभग स्तम्भ, रोमाच आदि सात्त्विका की सुदर व्यजना की गई है।

वीररस गुरुप्रताप सूरज' का एक मुख्य रस है। उसमे वीरता के विविध रूप चित्रित हैं। मुख्य है युद्धवीर रूप। इस रचना म कोई २३ युद्धो का वणन हुआ है। वीर रस से सम्बधित कुल छद-सख्या आठ दस हजार होगी। इन युद्ध वणनो की युद्ध कथा म पूणता, सजीवता एव ओजस्विता है। कवि ने

करते हुए उन्होने सिखो को इस प्रकार के नैतिक एव शुद्धाचरण का महत्त्व दर्शाया है। एसा गुरुमुख' ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। विलासी, दुराचारी दुष्कर्मी व्यक्ति को उन्होने 'मनमुख' का नाम दिया है जो कभी भगवान को प्राप्त नही कर सकता। सन्तोखसिह ने हउमै-त्याग सत्सगति, सन्त सेवा के महत्त्व का भी प्रतिपादन किया है तथा 'हउम' (अहकार) के स्वरूप, परिणाम एव उसके विनाश के उपायो का सम्यक विवेचन भी किया है। उनके मतानुसार हउम के कारण मनुष्य अनेक क्लेश उठाता है जन्म मरण का कष्ट भोगता है उसे न ज्ञान प्राप्त होता है न मुक्ति मिलती है परन्तु उसका नाश हो जाने से मनुष्य वासना रहित हो जाता है वह कर्मफल से मुक्त हो जाता है और आवागमन से बच जाता है। 'हउमै का नाश, गुरु उपदेश गुरु कृपा एव नाम-स्मरण से होता है। सत्सगति एव सन्तसेवा का महत्त्व बताते हुए वे लिखते हैं कि इनसे नाम जाप म मन लगता है और जीव आवागमन से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। सन्त सेवा महाफल दायक है। सत्सगति के बिना शम दम, योग यज्ञ आदि सब विफल है। सन्त सेवा मे तप से भी दस गुणाफल है। सन्त सेवा से मनुष्य भव सागर को पार करके परमगति को प्राप्त करता है।

इस आध्यात्मिक साधना की सफलता के लिये सन्तोखसिह ने 'गुरु' के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। गुरु को वे परब्रह्म परमेश्वर स्वरूप मानते हैं

'पारब्रह्म गुर रूप पछाना (रा० २ २४५)।

उनका कथन है कि गुरु कृपा से अविद्या नष्ट हो जाती है, उसके उपदेश से हउम' का नाश होता है और उसकी कृपा से ही भक्ति प्राप्त होती है। गुरु-सेवा के समान कुछ भी नही है गुरु के बिना जीवन सर्वथा निरर्थक है। वे लोग भाग्यशाली हैं जिन्हे मुक्ति दाता सदगुरु प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाई सन्तोखसिह ने गुरु प्रताप सूरज म आध्यात्मिक विचारो का बडी गम्भीरता से निरूपण किया है। हमने अपने शोध प्रबन्ध (गुरु प्रताप सूरज के काव्य पक्ष का अध्ययन) म उनके आध्यात्मिक विचारो पर विस्तार से प्रकाश डाला है और 'गुरमत से उनकी तुलना भी की है। यहाँ सक्षेप में ही इनकी चर्चा की गई है। हम यहाँ इस ओर सकेत अवश्य कर देना चाहते हैं कि इस प्रकार भारतीय परम्परा म दार्शनिक विचारो का गम्भीर प्रतिपादन एव विवेचन करके जो सास्कृतिक वातावरण सन्तोखसिह ने अपने इस काव्य ग्रन्थ म प्रस्तुत किया है, हिन्दी के उस युग के समस्त साहित्य म इसका सर्वथा अभाव है। पजाब म भी सांस्कृतिक चेतना से युक्त जो साहित्य लिखा गया उस म भी इस विषय पर इतनी गम्भीरता से और इतने विस्तार से किसी ने प्रकाश नही डाला। भाई सन्तोखसिह को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था कि उन्होंने भारतीय दर्शन एव गुरु वाणी का गम्भीर अध्ययन किया था। इसलिए उन्होने स्वमत का प्रतिपादन ही नहा किया, भारतीय धम

साधना मे प्रचलित अन्य विचारधाराओ को भी प्रस्तुत किया है और गुरुओ के परिसवादो के माध्यम से विरोधी विचारो का खडन करके स्वमत प्रतिपादन किया गया है। इस दृष्टि से भी यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसका दार्श निक पक्ष अत्यन्त पुष्ट एव सम्पन्न है जिससे यह ग्रथ एक बौद्धिक गरिमा से मडित हो गया है।

अनुभूति तत्त्व

'गुरु प्रताप सूरज' एक धर्म प्रधान ऐतिहासिक रचना ही नही है, काव्यत्व की दृष्टि से भी यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट कलाकृति है। मानवीय भावो अथवा मनोवेगो की भी इसमे सफल एव विशद अभिव्यजना हुई है। इसका भाव क्षेत्र बहुत विस्तृत और व्यापक है और सभी रसो का इसमे पूर्ण परिपाक हुआ है। मुख्य रस शान्त है, उसके पश्चात् वीररस का स्थान है। अद्भुत, करुण, वात्सल्य रौद्र, बीभत्स भयानक आदि अन्य रसो का चित्रण भी बहुत सजीव रूप मे हुआ है।

निर्वेद एव भक्ति भावना सम्बन्धी उदाहरण 'गुरु प्रताप सूरज' मे बहुत बडी सख्या मे मिलेंगे। भक्ति के अन्तगत कवि ने भक्तो की दीनता, विनय, अनुताप, पश्चाताप, आत्मग्लानि आदि मनोवेगो के साथ उनकी भगवान के प्रति निष्ठा श्रद्धा, आत्म समर्पण आदि का भी सजीव चित्रण किया है। सतोखसिंह के आत्म दैन्य, ग्लानि, अनुताप एव पश्चाताप का एक उदाहरण देखिये

सीर न सुसग मैं कुसग मे सतोखसिंह,
रम्यो नित पापनि सों, मिल्यो कवि धीर ना।
धीर ना धरति काम लपट कठोर कूर,
बोरियो मैं बिकारन मैं भयो मन तीर ना।
तीर ना पछायो तुम दूर करि जायो प्रभु,
आपने उधार की बिचारी ततबीर ना।
बीर ना भगत, भेख धारी हित नारी
जिम राखी पज मेरी हेरो तकसीर ना (रि०२ ५ ४४)।

इसी प्रकार अनेक गुरु सिक्खो की गुरुओ के प्रति भक्ति भावना के अन्तगत उनकी व्याकुलता, उन्माद, आत्म निन्दा, ग्लानि, स्मृति, अधीरता, दीनता, चपलता उत्सुकता, विश्वास, गुरु की हित भावना हर्ष, उल्लास आदि मनोवेगो एव अश्रु, स्वरभग, स्तम्भ रोमाच आदि सात्विको की सुन्दर व्यजना की गई है।

वीररस गुरुप्रताप सूरज' का एक मुख्य रस है। उसमे वीरता के विविध रूप चित्रित हैं। मुख्य है युद्धवीर रूप। इस रचना मे कोई २३ युद्धो का वर्णन हुआ है। वीर रस से सम्बन्धित कुल छद सख्या आठ दस हजार होगी। इन युद्ध वर्णनो की युद्ध कथा मे पूर्णता, सजीवता एव ओजस्विता है। कवि ने

लोहगढ भगानी, भाण्पुर, चमकौर आदि युद्धा का बहुत ही विस्तृत एव विशद चित्रण किया है। वीरो के उत्साह साहस, रणोल्लास, धर्म ज्योतिया आदि के साथ सेना की तयारी, सेना प्रस्थान, रणवाद्या की भयानक ध्वनि योद्धामा की साज सज्जा, घोड़ा की घुबार, गहनो भाला की चमक दमक, तोपा व बद्रूको की दनादन तडातड ग्रावाजो की हुकार, हाथिया की चिंघाड, वीरा क ग्रोजपूर्ण अनुभावो, पौरुषपूर्ण कार्यों, युद्ध कुशलता विजय पर हर्ष ध्वनि, भागती हुई सेना की दुदशा, रक्तरजित शवो से ग्रापूरित गिद्धा शृगाला से भरी हुई युद्धभूमि आदि का सजीव चित्रण करने म कवि का असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। योद्धामा क प्रहार प्रतिप्रहार द्वन्द्व युद्ध ग्रादि क भीषण प्रचड एव ग्रोजपूर्ण चित्र तो बहुत ही श्रेष्ठ हैं। युद्ध कौशल, युद्ध नीति एव युद्ध विद्या स सम्बधित ग्रनेक स्थल इसम है ग्रौर साथ ही सनिका क मनाविज्ञान का भी सुदर चित्रण किया गया है। पात्रा के वीरतापूर्ण, साहस युक्त युद्धोल्लास स भरे हुए चरित्र खूब उभर है ग्रौर कवि न दोना पक्षा के वीरा की वीरता धीरता, निर्भीकता, साहस उल्लास उत्साह दृढता युद्ध कुशलता आदि का सजीव चित्रण किया है। पैदे खा ग्रौर गुरु हरिगोविन्द के द्वन्द्व युद्ध इस दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यहाँ दोना ही वीरा का ग्रोजस्वी चरित्र खूब उभर कर सामने ग्राता है। गुरु पक्ष क वीरो की वीरता म उदात्तता है। योद्धाग्रो की वीरता का ग्रादश सवत्र बनाये रखा गया है।

इस ग्रथ म युद्धो का वणन पजाब की सिक्ख वीर काव्य परम्परा के ग्रनुकरण पर सास्कृतिक एव सामूहिक राष्ट्रीय चेतना से पूर्ण है जिन्ह धमयुद्ध का नाम दिया गया है। हिन्दी म इस युग मे तथा इससे पूर्व कितने ही वीर काव्य लिखे गये, परन्तु उनम इस प्रकार की वृहत्तर युग चेतना का ग्रभाव है। पजाब म सिक्ख गुरुग्रो के जीवन पर ग्राधारित जो वीर काव्य लिखे गय उनमे ग्रत्याचार ग्रनीति ग्रन्याय, ग्रधम ग्रथवा ग्रसत्य के विरुद्ध लडे गये धमयुद्धो का चित्रण हुग्रा है। इस दृष्टि से 'गुरु प्रताप सूरज' का भी एक विशिष्ट महत्व है। सतोखसिंह नि सदेह एक श्रेष्ठ वीर कवि हैं।

शृगार का चित्रण 'गुरु प्रताप सूरज' म बहुत सीमित एव मर्यादित है। सौन्दय चित्रण हरिपुर की सुन्दर स्त्रिया ग्रथवा जमल-कन्या सम्बन्धी प्रासगिक कथाग्रा के ग्रन्तगत परम्परा भुक्त उपमाना की सहायता से रीतिकालीन पद्धति पर ही हुग्रा है। उसम कही कही ऊहात्मकता के भी दशन होते है। परन्तु कवि ने कही भी रीतिकालीन शृगार परम्परा के ग्रनुकरण पर विलासिता, कामुकता, रसिकता ग्रश्लीलता, कामोत्तजक चेष्टाग्रो हावो, ग्रनुभावो ग्रादि का चित्रण नही किया। कही कही प्रासगिक रूप म प्रेम की पवित्रता, शुद्धता एव उच्चता के दशन ग्रवश्य हो जाते हैं। विरह के ग्रन्तगत भी रीति कालीन नायिका की भाति ग्राकाश पाताल को एक कर दिखाने वाले चमत्कार

पूर्ण चित्र कहीं दिखाई नहीं देते। कहीं-कहीं गुरु पत्नियों की चिन्ता, आशंका, आकुलता, अधीरता दर्शनाभिलाषा आदि मनोवेगों एवं अश्रु, वैवर्ण, स्वरभंग, क्षीणता स्तम्भ आदि सात्विकों के अत्यन्त मर्यादित, संयत एवं अनुभूतिपूर्ण चित्र अवश्य मिलते हैं। वस्तुत, शृंगार के क्षेत्र में कवि ने आदर्श से काम लिया है और कहीं भी भौंडी कुत्सित वृत्तियों को उत्तेजित करने का प्रयत्न नहीं किया। यही एक युग प्रवर्तक लोकनायक का कर्तव्य होता है कि वह उदात्त एवं उच्च मानवीय वृत्तियों को उत्तेजित करता है, गर्हित, कुत्सित अनैतिक भावनाओं को प्रश्रय नहीं देता।

गुरु हरिगोविन्द तथा गोविन्दसिंह के बाल-जीवन के प्रसंगों में कवि ने उनके मनमोहक रूप सौन्दर्य, सुन्दर वेशभूषा, मनोहारी शिशु-कौतुक एवं चपल बाल क्रीडाओं आदि के साथ माता पिता के हृदय उल्लास, आशंका चिंता, अभिलाषा उत्सुकता आकुलता, उत्कंठा, अधीरता आदि मनोवेगों का अत्यन्त मार्मिक एवं सजीव चित्रण किया है। अपने शोध प्रबन्ध में हमने इस पर विस्तार से प्रकाश डाला है। पंजाब के सिक्ख प्रबन्ध-काव्यों की ही यह एक विशेषता है कि उनमें वात्सल्य का इतना विशद चित्रण हुआ है जितना हिन्दी के किसी भी अन्य प्रबन्ध काव्य में नहीं हुआ। मार्मिकता, रसात्मकता, तीव्रानुभूति एवं काव्य कुशलता की दृष्टि से 'गुरु प्रताप सूरज' का चित्रण उन सबमें उत्तम है।

इसी प्रकार इस काव्य कृति में शोक सम्बन्धी व्याकुलता, विह्वलता, गुण स्मरण, उद्वेग, अनुताप प्रलय, अश्रु, वैवर्ण्य दुख, व्यथा, विषाद स्तम्भ वैपथु, उन्माद, मूर्च्छा प्रलाप, रोमांच अधीरता, भूमि पतन, केश उखाडना, नि श्वास अपस्मार व्याधि, जडता आदि मनोवेगों सात्विकों एवं संचारी भावों की मार्मिक व्यंजना हुई है। अद्भुत रस से सम्बन्धित बहुत सी चमत्कारपूर्ण, विस्मयजनक, अलौकिक घटनाओं का वर्णन किया है और विस्मय विमुग्ध लोगों के अनुभावों का भी सजीव चित्रण हुआ है। इसी प्रकार अन्य विविध भावों अनुभावों मनोवेगों आदि का भी अनुभूतिपूर्ण एवं मार्मिक चित्रण करने में कवि पूर्णतया सफल रहा है इन वर्णनों में कवि की भावानुभूति की विशदता, गहराई तीव्रता एवं मनोवैज्ञानिकता का रूप स्पष्ट हो जाता है। नि संदेह महाकवि सन्तोखसिंह मानवीय भावों के सच्चे पारखी और कुशल चितेरे थे और एक लोकनायक कवि की भांति उन्होंने मानवीय सद्वृत्तियों को उभारने एवं उनमें उदात्तता लाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। उनकी भावाभिव्यक्ति में चाहे वह प्रेम से सम्बन्धित हो या घृणा से चाहे साहस एवं उत्साह से प्रेरित हो या शोक से, सर्वत्र उदात्तता के दर्शन होते हैं।

प्राकृतिक सुषमा

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में प्रकृति का चित्रण शृंगारिक भावनाओं के उद्दीपन हेतु अथवा आलंकारिक रूप में ही हुआ है। परन्तु भाई सन्तोखसिंह ने उसके स्वाभाविक, अकृत्रिम सौंदर्य का भी, स्वतन्त्र संश्लिष्ट यथार्थ एवं सजीव चित्रण किया है। विभिन्न ऋतुओं, पर्वतों, वनों, उपवनों, नदियों सरोवरों निर्झरों, वृक्षों, पुष्प लताओं प्रभात आदि की सुषमा का जितना मार्मिक एवं चित्रात्मक वर्णन सतोखसिंह ने किया है इस युग के साहित्य में ढूँढने से भी नहीं मिलेगा। हेमकूट पर्वत एवं पाऊंटा के सघन वनों के विस्तृत और संश्लिष्ट चित्र उनकी अद्भुत बिम्ब विधायिनी कल्पना शक्ति सूक्ष्म निरीक्षण एवं चित्रात्मक अभिव्यक्ति कौशल के परिचायक हैं। अपने शोध प्रबन्ध में हमने उनके प्राकृतिक चित्रण सम्बन्धी वैशिष्ट्य पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

वस्तु सौन्दर्य

प्रकृति के अतिरिक्त कवि ने अन्य वस्तुओं, नगरों ग्रामों घोड़ों पशु-पक्षियों तबुओं, स्त्री-पुरुषों की वेश भूषा आभूषणों व्यजनों, सभा मडपों आदि का भी बहुत विशद एवं सजीव चित्रण किया है। विवाह, आखेट, युद्ध, होली आदि का वर्णन तो बहुत ही मार्मिक बन पड़ा है गुरु हरिगोविन्द तथा गोविंदसिंह के विवाहों का बड़ा ही पूर्ण चित्र कवि ने उपस्थित किया है। सगाई से लेकर बरात के चढ़ने एवं वधूपक्ष के घर पहुंचने, विदाई एवं वधू को लेकर वापिस आने तक के सारे संस्कारों, विधियों आदि के साथ दोनों पक्षों के हर्षोल्लास उत्साह आदि का अत्यन्त विशद एवं सरस चित्रण किया गया है। इसी प्रकार जन्मोत्सवों की भी मधुर एवं उल्लासपूर्ण चित्र अंकित किये गये हैं। कवि में विभिन्न अवसरों, स्थितियों, पर्वों उत्सवों, स्थानों के सामूहिक चित्र उपस्थित करने की अद्भुत क्षमता है और उनका यथातथ्य बिम्ब चित्रित करने में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। आखेट का चित्रण भी बड़ा रोमांचक, साहसपूर्ण उत्साहवर्धक, सजीव, ओज पूर्ण एवं यथार्थ है। होली वर्णन में शुद्ध सांस्कृतिक दृष्टि से उसके हास परिहास पूर्ण आमोद प्रमोद युक्त रंग गुलाल से भरे हुए चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। इन वर्णनों में युग चेतना, वीर भावना एवं सांस्कृतिक दृष्टि भी उभर आई है। वस्तुतः वस्तु-वर्णन में विभिन्न सामूहिक चित्र प्रस्तुत करने में जितनी सफलता सतोखसिंह को मिली है उतनी उस युग के किसी भी अन्य कवि को नहीं मिली है। अन्य किसी भी कवि ने इतने स्वाभाविक, यथातथ्य सजीव चित्र अंकित ही नहीं किये। यह कवि केवल धर्म का प्रचार करने वाला, दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने वाला, समाज का नैतिक उन्नयन करने वाला, राष्ट्रीय वीर भावना को जागृत करने वाला विशृंखलताओं में समन्वय स्थापित करने वाला लोक नायक कवि ही नहीं था, वरन प्रकृति की सुषमा से मोहित होने वाला, मानवीय मनोवेगों एवं अनुभूतियों से प्रभावित होने वाला और विविध वस्तुओं के सजीव

तथा मोहक चित्र उपस्थित करने वाला एवं यशस्वी सशक्त एवं सक्षम कलाकार भी था।

अभिव्यक्ति शिल्प

भाषा

उनके काव्य म भावपक्ष एव कलापक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है। उसम अनुभूति की तीव्रता है, कल्पना की उडान है बुद्धि की गम्भीरता है और अभिव्यक्ति की स्पष्टता सक्षमता है। भाषा पर उनका अदभुत अधिकार था। उनका शब्द भण्डार अपरिमित था। संस्कृत, हिन्दी पजाबी, फारसी का उन्हे विशद ज्ञान प्राप्त था। उन्होंने अपने काव्य म परिमार्जित परिनिष्ठित ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। यद्यपि बीच बीच म सस्कृत फारसी, अरबी, पजाबी, लहदी, पहाडी आदि भाषाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा म आए है। उनकी भाषा मे सरसता, तरलता, मादव, ओज, प्रवाह एव शक्ति है। शैली मे सजीवता सामथ्य एव प्रेषणीयता है। उसम माधुय, प्रसाद एव ओज गुणो का समावेश किया गया है। कथा म सरल स्वाभाविक, परन्तु सक्षम शली का प्रयोग किया गया है और मगलाचरण की शली चमत्कारपूण एव अलकृत है। भाषा की शक्ति बढाने के लिये तथा उसम व्यावहारिकता लाने के लिये बहुत से मुहावरा, लोकोक्तिया, सूक्तिया का भी प्रयोग किया गया है। वास्तव मे वे एक सिद्धहस्त कवि हैं और भाषा एक कुशल खिलाडी की भाँति उनके सकेतो पर नाचती है, भावो को सजीव रूप मे लाकर उनके सामने खडा कर देती है। भाषा की यह शक्ति अभिव्यक्ति की यह कुशलता, शली की यह क्षमता उनके काव्य कौशल को प्रकट करती है। उनकी भाषा शली मे गरिमा, सौष्ठव परिमाजन प्रवाह, सक्षमता विशदता, व्यापकता और उदात्तता है। वह लोकोपयोगी एव धर्माश्रित काव्य के लिये उपयुक्त तो है ही, काव्य ममज्ञो एव रसज्ञो के लिय भी उसम प्रचुर प्रकाश है।

अलकार सौष्ठव

भाई सतोखसिंह रसवादी कवि एव आचाय थे। वे उन्ही अलकारो को श्रेष्ठ मानते हैं जो रस का उत्कष करते हैं। यही कारण है कि उनके समस्त काव्य म अलकार गुरु जी के चरित्र की महत्ता स्थापित करने के लिये काय व्यापार म तीव्रता लाने के लिये घटना चित्रण म सजीवता लाने के लिये तथा दाशनिक एव नैतिक तथ्यो की स्पष्टता के लिय सहायक हो कर ही आय है। मगलाचरण म उन्होने रीतिकालीन अलकरण प्रवृत्ति का अनुकरण करते हुए तथा अपनी अलकरण शक्ति का परिचय देने के लिये अलकारो का, विशेष रूप से यमक, अनुप्रास श्लेष आदि शब्दालकारो का चमत्कारिक रूप म भी प्रयोग किया है। परन्तु अयत्र सवत्र स्वाभाविक शली का प्रयोग किया गया है और अलकार भावाभिव्यक्ति के सहायक हो कर आय हैं। अनुप्रास यमक, श्लेष,

प्राकृतिक सुषमा

मध्ययुगीन हिंदी साहित्य मे प्रकृति का चित्रण शृगारिक भावनाओ के उद्दीपन हेतु अथवा आलकारिक रूप मे ही हुआ है। परन्तु भाई सतोखसिंह ने उसके स्वाभाविक, अकृत्रिम सौदय का भी स्वतन्त्र सश्लिष्ट, यथाथ एव सजीव चित्रण किया है। विभिन्न ऋतुओ पवतो वनो, उपवनो नदियो सरोवरो निझरो, वक्षा पुष्प, लताओ, प्रभात आदि की सुषमा का जितना मार्मिक एव चित्रात्मक वणन सतोखसिंह ने किया है इस युग के साहित्य म ढूढने से भी नही मिलेगा। हेमकूट पवत एव पाऊटा क सघन वनो के विस्तृत और सश्लिष्ट चित्र उनकी अद्भुत बिम्ब विधायिनी कल्पना शक्ति सूक्ष्म निरीक्षण एव चित्रात्मक अभिव्यक्ति कौशल के परिचायक है। अपने शोध प्रबन्ध म हमने उनके प्राकृतिक चित्रण सम्बन्ध वैशिष्टय पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

वस्तु सौदर्य

प्रकृति के अतिरिक्त कवि न अन्य वस्तुओ नगरो ग्रामो, घोडो पशु पक्षियो तबुओ स्त्री पुरुषो की वेश भूषा आभूषणो व्यजना, सभा मडपो आदि का भी बहुत विशद एव सजीव चित्रण किया है। विवाह आखेट, युद्ध, होली आदि का वणन तो बहुतही मार्मिक बन पडा है गुरु हरिगोबिन्द तथा गोबिंदसिंह के विवाहो का बडा ही पूण चित्र कवि ने उपस्थित किया है। सगाई से लेकर बरात के चढने एव वधूपक्ष के घर पहुचने विदाई एव वधू को लेकर वापिस आने तक के सारे सस्कारा विधियो आदि के साथ दोना पक्षा के हर्षोल्लास उत्साह आदि का अत्यन्त विशद एव सरस चित्रण किया गया है। इसी प्रकार जन्मोत्सवो की भी मधुर एव उल्लासपूण चित्र अकित किये गये हैं। कवि मे विभिन्न अवसरो, स्थितियो, पर्वो उत्सवो, स्थाना के सामूहिक चित्र उपस्थित करने की अद्भुत क्षमता है और उनका यथातथ्य बिम्ब चित्रित करने म उन्हें पूण सफलता मिली है। आखेट का चित्रण भी बडा रोमाचक, साहसपूण, उत्साहवधक सजीव, ओज पूण एव यथाथ हैं। होली वणन म शुद्ध सास्कृतिक दृष्टि स उसके हास परिहास पूण आमोद प्रमोद युक्त रग गुलाल से भरे हुए चित्र प्रस्तुत किय गये हैं। इन वणना म युग-चेतना वीर भावना एव सास्कृतिक दृष्टि भी उभर आई है। वस्तुत वस्तु-वणन म विभिन्न सामूहिक चित्र प्रस्तुत करने म जितनी सफलता सतोखसिंह को मिली है उतनी उस युग के किसी भी अन्य कवि को नही मिली है। अन्य किसी भी कवि ने इतने स्वाभाविक, यथातथ्य सजीव चित्र अकित ही नही किय। यह कवि केवल धम का प्रचार करने वाला, दाशनिक गुत्थियो को सुलझाने वाला, समाज का नतिक उन्नयन करन वाला, राष्ट्रीय वीर भावना का जागृत करन वाला विश्रृखलताओ म समन्वय स्थापित करने वाला लोक नायक कवि ही नही था वरन् प्रकृति की सुषमा से मोहित होन वाला मानवीय मनोभावा एव अनुभूतियो स प्रभावित होने वाला और विविध वस्तुओ के सजीव

तथा मोहक चित्र उपस्थित करने वाला एक यशस्वी सशक्त एवं सक्षम कलाकार भी था।

अभिव्यक्ति शिल्प

भाषा

उनके काव्य में भावपक्ष एवं कलापक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है। उसमें अनुभूति की तीव्रता है, कल्पना की उडान है, बुद्धि की गम्भीरता है और अभिव्यक्ति की स्पष्टता सक्षमता है। भाषा पर उनका अद्भुत अधिकार था। उनका शब्द भण्डार अपरिमित था। संस्कृत हिन्दी पंजाबी फारसी का उन्हें विशद ज्ञान प्राप्त था। उन्होंने अपने काव्य में परिमार्जित परिनिष्ठित ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। यद्यपि बीच बीच में संस्कृत फारसी अरबी पंजाबी, लहंदी पहाडी आदि भाषाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में आए हैं। उनकी भाषा में सरसता तरलता, मार्दव ओज, प्रवाह एवं शक्ति है। शैली में सजीवता, सामर्थ्य एवं प्रेषणीयता है। उसमें माधुर्य, प्रसाद एवं ओज गुणों का समावेश किया गया है। कथा में सरल स्वाभाविक परन्तु सक्षम शैली का प्रयोग किया गया है, और मंगलाचरण की शैली चमत्कारपूर्ण एवं अलङ्कृत है। भाषा की शक्ति बढाने के लिये तथा उसमें व्यावहारिकता लाने के लिये बहुत से मुहावरों, लोकोक्तियों सूक्तियों का भी प्रयोग किया गया है। वास्तव में वे एक सिद्धहस्त कवि हैं और भाषा एक कुशल खिलाडी की भाँति उनके संकेतों पर नाचती है, भावों को सजीव रूप में लाकर उनके सामने खडा कर देती है। भाषा की यह शक्ति अभिव्यक्ति की यह कुशलता, शैली की यह क्षमता उनके काव्य-कौशल को प्रकट करती है। उनकी भाषा शैली में गरिमा सौष्ठव परिमार्जन प्रवाह सक्षमता विशदता व्यापकता और उदात्तता है। वह लोकोपयोगी एवं धर्माश्रित काव्य के लिये उपयुक्त तो है ही, काव्य मर्मज्ञों एवं रसज्ञों के लिये भी उसमें प्रचुर प्रकाश है।

अलंकार सौष्ठव

भाई संतोखसिंह रसवादी कवि एवं आचार्य थे। वे उन्हीं अलंकारों को श्रेष्ठ मानते हैं जो रस का उत्कर्ष करते हैं। यही कारण है कि उनके समस्त काव्य में अलंकार गुरु जी के चरित्र की महत्ता स्थापित करने के लिये कार्य व्यापार में तीव्रता लाने के लिये घटना चित्रण में सजीवता लाने के लिये तथा दार्शनिक एवं नैतिक तथ्यों की स्पष्टता के लिये सहायक हो कर ही आये हैं। मंगलाचरण में उन्होंने रीतिकालीन अलंकरण प्रवृत्ति का अनुकरण करते हुए तथा अपनी अलंकरण शक्ति का परिचय देने के लिये अलंकारों का, विशेष रूप से यमक अनुप्रास श्लेष आदि शब्दालंकारों का चमत्कारिक रूप में भी प्रयोग किया है। परन्तु अन्यत्र सर्वत्र स्वाभाविक शैली का प्रयोग किया गया है और अलंकार भावाभिव्यक्ति के सहायक हो कर आये हैं। अनुप्रास यमक श्लेष,

मीन में इधर उधर लहरों के समान कहना भी यहाँ प्रकाश लिये प्रस्तुत करता है। यथा—

छाती तुव छार पग दीन। फिर लगि पायनि पाद गु मीन।
परगति मानु मार महि मोनी। जनु जल मछली इत उत होनी।
(रा६ ४६ १३)

कवि ने पौराणिक प्रसंगों से, ऐतिहासिक घटनाओं से तथा ग्राम्य जीवन से, अथवा जीवन की सामान्य वस्तुओं से भी कुछ उपमानों का चयन किया है जो उनकी सार गर्भित दृष्टि, मौलिक कल्पना एवं सूक्ष्म निरीक्षण के परिचायक है। उन्होंने एक श्रेष्ठ कलाकार की भाँति मूर्त के लिये मूर्त मूर्त के लिये अमूर्त, अमूर्त के लिये मूर्त मूर्त के लिये मूर्तामूर्त अथवा अमूर्त के लिये अमूर्त रूप में भी उपमान योजना की है। परन्तु सर्वत्र संवेदनशीलता, भाव-व्यंजना एवं औचित्य का ध्यान रखा है। चमत्कार प्रदर्शन के मोह में कहीं भी उन्होंने किसी अस्पष्ट, असवेद्य, अग्राह्य उपमान का प्रयोग नहीं किया। अगददेव जी एव अमरदास को क्रमश ज्ञान एवं विराग के समान कहना उनकी विद्वता, सजीव कल्पना शक्ति एव निपुण कला कौशल का परिचायक है। उदाहरण इस प्रकार है—

कर सो कर गहि करि पुन चले।
ग्यान विराग मनहु दो मिले (रा० १ २८ ११)

छंद विधान

भाई सन्तोखसिंह ने 'दशमग्रन्थ गुरुशोभा' गुरु विलास महिमा प्रकाश आदि ग्रन्थों का अनुकरण करते हुए दोहा चौपई को मुख्य काव्य पद्धति के रूप में ग्रहण किया है और उन्हीं के अनुकरण पर दोहा हाकल दोहा भुजंग प्रयात दोहा सवैया, दोहा रसावल आदि अन्य अनेक पद्धतियों का भी प्रयोग किया है। इस क्षेत्र में कवि ने कुछ नवीन पद्धतियों का भी प्रयोग किया। इसके अतिरिक्त बीच में हाकल पाधडी (पद्धरि) अडिल निसानी ललितपद, त्रिभंगी सोरठा, अमृत धुनि चाचरी रसावल मधुभार, रुणझुण हरिबोलमना नवनामक हसक, सावास प्रमाणिका तोमर, चम्पकमाला भुजगप्रयात तोटक, निशिपालक चचला नराज सवया अनुष्टुप कवित्त अलगनोवर, सिरखडी, वहरे मुतकारिव मुसम्मन मक्सूर महजूफ आदि कोई ३३ छन्दों का प्रयोग किया है। इस छन्द विविधता में भी वे अपने पूर्व के सिक्ख प्रबन्धों से ही प्रभावित हैं। परन्तु इनके छन्दों में दशम ग्रन्थ की भाँति अस्थिरता अथवा शिथिलता कहीं नहीं है। कहीं भी इनके छन्द दोषयुक्त अथवा प्रवाहहीन नहीं है। सन्तोखसिंह को छन्द शास्त्र का समुचित ज्ञान प्राप्त था और विविध छन्दों का उन्होंने साधिकार प्रयोग किया है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने विविध छन्दों का प्रयोग रस, भाव अथवा प्रसंग के अनुकूल किया है। युद्ध वर्णन में विविधता,

सजीवता एव ओज बनाए रखने के लिये उन्होने कोई २५ छन्दो का प्रयोग किया है। युद्ध के हलके वातावरण को प्रकट करने के लिये चौपई पद्धरि निसानी ललितपद, सवया, कवित्त आदि अपेक्षाकृत बडे और मदगति छन्दो का प्रयोग किया है जबकि युद्ध की तीव्र गति प्रचडता एव भीषणता को व्यक्त करने के लिये नराज चचला, मधुभार, रसावल चाचरी, हसक साबास रुण भुण आदि क्षिप्रगति एव लघु छन्दो का अधिक प्रयोग किया है। यही कारण है कि एक ही तरह के लम्बे लम्बे युद्ध वणनो म एकरसता एव नीरसता नही आने पाती। छन्द प्रयोग के समय उन्हाने भाषा की प्रकृति का भी ध्यान रखा है। सस्कृत पदावली के लिये सस्कृत छन्द अनुष्टुप वा फारसी शब्दावली के लिए फारसी छन्द 'बहरे मुतकारिव मुसम्मन मक्सूर महजूफ' का तथा पजाबी भाषा के लिये सिरखडी' छन्द का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार कवि ने भाव, एव प्रसग की उचित तव समय अभिव्यक्ति के लिये तदनुरूप सस्कृत अपभ्रश हिन्दी फारसी पजाबी के विविध छन्दो का प्रयोग किया। छोटे से छोटे मे और दीघ से दीघ छन्द को अपनाया। इस प्रकार का विविध छन्दो का कुशल प्रयोग उनकी काव्य प्रतिभा एव काव्य कौशल का परिचायक है। छन्दो सगीतात्मकता की अभिवृद्धि के लिये अन्त्यानुप्रास वृत्यानुप्रास, अन्तरानुप्रास आदि के प्रयोग से भी पूण लाभ उठाया गया है।

इस प्रकार हम देखते है कि भाई सतोखसिंह एक महान कलाकार हैं। उनका काव्य सास्कृतिक चेतना, राष्ट्रीय-जागरण सामाजिक उन्नयन की भावना से ओतप्रोत है। व एक युग प्रवत्तक युग सृष्टा एव लोकनायक कवि हैं। उनका 'गुरु प्रताप सूरज' जीवन्त रस से पूण एक शक्तिशाली एव प्रभावपूण काव्य है। काव्यत्व की दृष्टि से यह एक उत्तम कलाकृति है और उस युग के साहित्य म ही नही भारत के समस्त साहित्य मे यह गौरवपूण स्थान की अधिकारी है। खेद है कि इस रचना को और इसके प्रणेता महाकवि सतोखसिंह को अभी तक साहित्य म समुचित स्थान नही मिला है। उसका कारण हमारी उनके प्रति उपेक्षा है। गुरुमुखी लिपि म होने के कारण उनका काव्य विद्वानो के उचित अध्ययन और विवचन का विषय नही बन सका।

१४ सतरेण कृत 'गुरु नानकविजय' इतिहास का मिथकीकरण

गुरु नानक विजय' २४३८२ छन्दों का एक धर्मप्रधान बृहदाकार प्रबन्ध काव्य है जिसका प्रणयन उदासी सम्प्रदाय के प्रमुख कवि सतरेण ने १९ वीं शती के उत्तरार्ध में किया था।

उत्तर भारत का मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन अनेक मतों सम्प्रदायों एवं पंथों के माध्यम से विकसित हुआ। उदासी सम्प्रदाय भी इसी सांस्कृतिक पुनरुत्थान का एक अंग है। इस सम्प्रदाय का संगठन अभी भी बहुत मजबूत है। चार धूणा व बख्शीशा एवं अनेक उप बख्शीशा के रूप में भारत स्थानों पर इनके बड़े बड़े आश्रम अखाड़े हैं। गुरु नानक के ज्येष्ठ पुत्र बाबा श्रीचन्द को इस पंथ का प्रवर्तक माना जाता है। इस सम्प्रदाय के वर्तमान प्रमुख आचार्य एवं संत श्री गंगेश्वरानन्द जी की मान्यता है कि ब्रह्मा जी के पुत्र सनक जी इस सम्प्रदाय के आदि आचार्य थे। इनके प्रशिष्य श्री गवज मुनि जी के अनुसार श्रीचन्द जी गुरु-गद्दी की १०८ वीं पीढ़ी में आते हैं। सतरेण ने गुरु नानक को भी इस मत का उद्धारक माना है और 'गुरु नानक विजय' में उन्होंने गुरु नानक का उदासी वेशधारी भगवान के अवतार के रूप में निष्ठापूर्वक वर्णन किया है।

सतरेण का जीवन वृत्त

सतरेण के जन्म के सम्बन्ध में निश्चित रूप से तो कुछ मालूम नहीं लेकिन अनुमान है कि उनका जन्म संवत् १७८८ में श्रीनगर-कश्मीर में हुआ था। इनके पिता का नाम पण्डित हरिवल्लभ और माता का नाम गायत्री देवी था। ये गौरव गोत्र के थे। इन्होंने संस्कृत की आरम्भिक शिक्षा घर पर ही प्राप्त की। बाद में बाबा साहिबराम से दीक्षा लेकर उदासी सम्प्रदाय में प्रवेश किया और उसमें वर्णित इतिहास पुराण काव्यशास्त्र एवं काव्य रचना का ज्ञान प्राप्त किया। यह भी कहा जाता है कि इन्होंने लाहौर मुल्तान सिंध, बनारस एवं मद्रास आदि स्थानों की यात्राएँ कीं तथा अनेक अखाड़ों और

पीठा की स्थापना की। फाल्गुन बदी १२ संवत १६२२ को मालेरकोटला के निकट भूदा ग्राम (पंजाब) में इनका देहावसान हुआ, जहां अभी भी इनकी समाधि है। सन्तरेण बड़े ही प्रतिभाशाली विद्वान् एवं निष्ठावान साधक थे। वे एक समन्वयवादी चिंतक सच्चे सन्त समाज-सुधारक एवं धर्म प्रवर्तक थे और उनका व्यक्तित्व अत्यन्त विनयशील, निराभिमानी एवं प्रभावशाली था।

रचनाएँ

'उदासी बोध' में इन्होंने 'नानक विजय', 'मन प्रबोध', 'वचन संग्रह' तथा 'नानक बोध' इन चार और रचनाओं का उल्लेख किया है। 'नानक बोध' तो अनुपलब्ध है। 'उदासीबोध' 'प्राणसंगली' पर आधारित ७३३ छन्दों की रचना है, जिसमें उदासी-सम्प्रदाय के आदर्शों, नियमों, उपनियमों पंचायती अखाड़े के महन्तों निर्माण मण्डली आदि का वर्णन किया गया है और लोभ, मोह, तृष्णा आदि के त्याग, ब्रह्म विचार, पंच-परमेश्वर वंदना, वासना-त्याग, ज्ञान प्राप्ति, सत्य संतोष, संयम एवं नाम-स्मरण आदि के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। इसमें योग के स्थान पर 'नाम' के महत्त्व का निरूपण हुआ है और नानक, राम एवं कृष्ण आदि के प्रति भक्ति भाव प्रदर्शित किया गया है।

वचन संग्रह—वेदान्त सम्बन्धी ग्रन्थ है, जिसमें १४ अध्यायों में प्रश्नोत्तर शैली में ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि के स्वरूप एवं सम्बन्धों की व्याख्या अद्वैतवादी दर्शन के अनुरूप की गई है और सप्त अज्ञान, तृष्णा नवधा भक्ति, भक्ति के महत्त्व अविद्या सन्तों की महिमा आदि का वर्णन हुआ है। आरम्भ में 'गुरु गणेश गुरु सारदा गुरु परब्रह्म सरूप' कहकर गुरु की वंदना की गई है।

मन प्रबोध—१६६ छन्दों की एक विरक्ति प्रधान रचना है। छन्द मन को सम्बोधित करके लिखे गए हैं। इसमें भी संसार की अनित्यता और मिथ्यात्व का प्रतिपादन करके इसके विभिन्न आकर्षणों एवं मोह माया जनित अज्ञान से सावधान रहकर अनादि, अनन्त, सर्व शक्तिमान भगवान की ओर मन लगाने का उपदेश दिया गया है। सन्तरेण का कथन है कि यह मन बेहद चंचल है इसके वशीभूत होकर मनुष्य सांसारिक वासनाओं में लिप्त रहता है और हरि स्मरण नहीं कर सकता। संसार के सबसे बड़े आकर्षण हैं—धन एवं नारी। संतरेण का कथन है कि धन से मनुष्य अहंकारी हो जाता है जो दुख का कारण बनता है। नारी को उसने आग और भुजंग सदृश्य कहा है जो अपनी एक चितवन से सारे ज्ञान ध्यान को विनष्ट कर देती है। इस तरह कवि ने अन्य सन्तों की भांति कनक और कामिनी से सचेत रहने की चेतावनी दी है। मन प्रबोध एक श्रेष्ठ रचना है और इसकी शैली भी बड़ी ही सहज, सरल, सरस एवं सुन्दर है। एक उदाहरण देखिये —

जितने मन जीव अहैं जग मैं,
इक नाहिं सुखी सु दुखी मन सारे।

गुरमुखी लिपि में लिखा गया

दुख मैं जागी दुख माहि मर,
मध मैं दुख पाइ सु जीव अ पार।
नहि जाइ कही इक संतन की,
पर और दुखी सु सब नर नारे।
इम संतहि रेण कहै मन को,
मन राम बिना दुख कौन निवारे।३०।

इस रचना में कवि ने दोहा, कवित्त, सवया कुंडलियाँ छप्पय च... बरवै भुजगप्रयात, अडिल, अमला आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

'गुरु नानक विजय'

'नानक विजय' सन्तरेण की सबसे बडी एव महत्वपूर्ण रचना है। इसमे २० खण्ड, ३४७ अध्याय तथा कुल २४३८२ छन्द है। खण्डो के नाम हैं— मगल खण्ड, ब्रह्म खण्ड, नानक विलास खड, धर्म उद्योग खड बियाह खड, उदासी खड, प्रताप खड, खडूर खड मकेश्वर खड, सुमेर खड, रामेश्वर खड, गिम्रान खड नानकमता खड पलखदीप खण्ड, सगलादीप खण्ड मुलतान खड, बरन खण्ड, तिलखजीदेग खण्ड, कश्मीर खड करतारपुर खड। ये नाम स्थानो, घटनाओ एव विषय वस्तु पर आधारित हैं। इस ग्रन्थ मे इसके रचना काल का उल्लेख नही है। सवत १९१६ मे रचित उदासी बोध' मे इसका उल्लेख है लेकिन भाई सतोखसिंह के सवत १८८० मे रचित 'नानक प्रकाश' तथा १९०० वि० मे रचित गुर प्रताप सूरज मे इसका उल्लेख नही हैं। इससे विदित होता है कि इस ग्रन्थ की रचना १९१० वि० के आस पास हुई। यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नही हुआ। इसकी हस्तलिखित प्रतिया (गुरुमुखी लिपि मे) सतरेण आश्रम भूदन अतापुर पीठ अकोला तथा साधुवला आश्रम सक्खर मे उपलब्ध है।

कथा-तत्त्व

गुरु नानक विजय मे गुरु नानक के जीवन का अत्यन्त विस्तृत विशद एव चमत्कारिक वर्णन हुआ है। उनके पिता कालू के विवाह इनके जन्म, बाल्यावस्था एव किशोरावस्था के कार्यों, विवाह यात्राओ, धर्म प्रचार एव लहना को गुरु गद्दी देकर ज्योति ज्योत समाने आदि का वर्णन निष्ठापूर्वक किया गया है। इस ग्रन्थ की रचना बाल्मीकि ऋषि से भेंट होने पर उनके प्रोत्साहन एव आकाशवाणी से प्रेरणा पाकर की गई कही गई है। कवि के अनुसार यह कथा सभी फलो को देने वाली एव अत्यन्त पवित्र है।

मूल रूप मे यह एक धार्मिक काव्य-ग्रन्थ है जिसमे गुरु नानक के चरित्र को पौराणिक रूप देकर प्रस्तुत किया गया है। मध्ययुग मे प्राय सभी सम्प्रदायो ने अपने मत के प्रचार के लिए कथा-काव्यो का आश्रय लिया है, जिनमे उन्होने अपने सिद्धान्तो का निरूपण भी किया है और अपने धर्म सस्थापको की महिमा

मण्डित भी। उनके चरित्र में अतिमानवीय एवं चमत्कारपूर्ण तत्त्वों का समावेश करके उन्हें अलौकिक रूप प्रदान किया गया है। उनके जीवन की छोटी से छोटी और साधारण से साधारण घटना को भी विचित्र रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'नानक विजय' में भी इस मध्ययुगीन धर्म भावना का प्रसार सर्वत्र देखा जा सकता है। इसमें भी यथार्थता कम और कल्पना का उन्मेष अधिक है तथा इतिहास को मिथक का रूप दिया गया है। इसमें पारलौकिक दृश्यों, अतिमानवीय कृत्यों एवं चमत्कारपूर्ण घटनाओं का बाहुल्य है। चरित्र नायक की महानता और दिव्यता प्रदर्शित करने के लिए कथानक में अनेक अलौकिक एवं विस्मयजनक घटनाओं का समावेश किया गया है और ऐतिहासिक घटनाओं में भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन परिवर्धन कर लिया गया है। वस्तुतः कथानक तो एक माध्यम है, लेखक का उद्देश्य है कथा के माध्यम से अपने सिद्धान्तों का निरूपण और उदासी मत के उद्धारक (मतेरण के अनुसार) गुरु नानक की महिमा का वर्णन। इस ग्रंथ में व्याप्त पौराणिक तत्व को देखते हुए कुछ विद्वानों ने इसे 'नवपुराण' की संज्ञा भी दी है।

धार्मिक प्रवृत्ति का आभास ग्रन्थ के आरम्भ में ही मिल जाता है। प्रारम्भिक १६ अध्यायों में गणेश, राम, कृष्ण, नानक तथा उनके पुत्रों विष्णु के २४ अवतारों दस सिक्ख गुरुओं उदासी सम्प्रदाय के चार धूणों के संस्थापकों, संतों ऋषियों कवियों, देवी देवताओं एवं विप्रों आदि की वंदना सम्बन्धी मंगलाचरण हैं। तदनन्तर पौराणिक पद्धति का अनुकरण करते हुए, पूरे धार्मिक वातावरण में महाविष्णु द्वारा नानक रूप में अवतार लेने के कारणों के उपाख्यान से कथा का आरम्भ होता है। भगवान के नानक रूप में अवतरित होने के तीन प्रमुख कारणों का उल्लेख किया गया है। (१) जनक की प्रार्थना पर मृत्यु लोक के पापियों के उद्धार हेतु (२) कश्यप और अदिति के तप से प्रसन्न होकर पुत्र रूप में उनके यहाँ जन्म लेने के लिए, (३) यवनों के गौ ब्राह्मणों पर किए गए अत्याचारों से आतंकित पृथ्वी के उद्धार के लिए। सुक्खासिंह ने 'गुरु विलास' में गुरु गोविंदसिंह के अवतार के संदर्भ में अन्तिम कारण का उल्लेख किया है। इन दोनों रचनाओं का मुख्य उद्देश्य दैवी शक्तियों की आसुरी-शक्तियों पर विजय दिखाना है, लेकिन दोनों का स्वरूप भिन्न है। 'गुरु विलास' का नायक धर्मगुरु होते हुए भी युद्धवीर है और आसुरी शक्तियों के विध्वंस के लिए खड्ग भी धारण करता है, जबकि 'नानक विजय' का नायक केवल धर्म प्रचार द्वारा ही उन पर विजय प्राप्त करता है। इसलिए 'गुरु विलास' वीर रस प्रधान रचना है और 'नानक विजय' शान्त रस प्रधान। कश्यप की तपस्या का उल्लेख भाई सन्तोखसिंह ने 'नानक प्रकाश' में भी किया है। ऐसा चरित्र नायक को पौराणिक रूप देने के लिए ही किया गया है। 'नानक विजय' में भगवान सद

दयाराम तथा रागमाला आदि को भी अवतार मान गया है। कथा कालू के कुल पुरोहित हरिदयाल के रूप में अवतरित हुए हैं तभी नानक कालू के सेवक बने हुए हैं, सुलक्षणी रागमाला है, नानकी मीरा की और उनके पति जयराम गिरधर के अवतार हैं।

वर-कथाओं की तरह यहां शाप-कथाएँ भी हैं। नारद भगवान के शाप के परिणाम-स्वरूप ही मिरासी मरदाने के रूप में अवतरित हुए हैं।

गुरु नानक का जन्म भी विचित्र वातावरण में ही होता है। वे चतुर्भुज रूप में प्रकट होकर माता को दर्शन देते हैं और फिर 'शब्द' का उच्चारण करके बालक का रूप धारण कर लेते हैं। बाल्यावस्था में ही वे ब्राह्मणों को वेदों उपनिषदों का ज्ञान देने लगते हैं और जब गोरखनाथ दर्शनार्थ आते हैं तो विराटरूप में उन्हें दर्शन देते हैं। उनके माता पिता, गांव सेवक राजा प्रजा नाथ सिद्ध आदि सभी उन्हें भगवान का अवतार मानते हैं। वे सभी को अपनी अलौकिक शक्ति से विस्मित एवं प्रभावित करते दिखाए गए हैं।

नानक यहां इतिहास पुरुष नहीं, पौराणिक पुरुष हैं और उनके अतिमानव वीर्य-कृत्यों एवं करामातों से यह ग्रन्थ भरा पड़ा है। दो वर्ष की अवस्था में ही भाटी नामक ठग के उद्धार से उनके चमत्कारिक कृत्यों का आरम्भ हो जाता है। फिर तो वे अन्धों को आँखें देते हैं कोढ़ियों को रोग मुक्त करते हैं और मृतकों को जीवित करते हैं। उनके वचन मात्र से लोग मृत्यु को प्राप्त करते हैं, स्पर्शमात्र से राक्षस दिव्य रूप धारण कर लेते हैं, दौलतखां लोदी का कुत्ता भी उनके हाथ फेरने से कुरान पढ़ने लगता है। किसी को वे जवान बन्द कर देते है तो किसी (काजी) को जमीन से चिपका देते हैं। खेत को गायों से चरवा दिये जाने पर भी वह हरा भरा रहता है, मोदीखाने को सन्तों को लुटवा दिये जाने पर भी वह भरा पूरा रहता है, एवं स्थान (तलवंडी) से अदृश्य होकर अन्यत्र (कुरुक्षेत्र) पहुंच जाते हैं, सूक्ष्म शरीर धारण करके पर्वतों को लांघ जाते हैं। उनका सुलक्षणी को दिया हुआ श्रीफल बालक का रूप धारण करके (श्रीचन्द), ५ वर्ष के बालक की तरह खेलने लगता है, लक्ष्मीचन्द भी एक लौंग से बन जाता है। व अनेक रूप धारण कर लेते हैं पत्थरों को चांदी के ढेर मे बदल देते हैं रोटी निचोड़ कर उसमे से खून अथवा दूध निकाल देते है और इब्राहीम लोदी के राज्य के विनाश की भविष्यवाणी कर देते हैं।

वे अपनी अलौकिक शक्ति से स्वर्गलोक, पाताल, सचखंड, महाविष्णुलोक बैकुण्ठ आदि का भ्रमण करते हैं, गोरखनाथ, वरुण ध्रुव भक्त आदि से भेंट करते हैं विष्णु से अपनी पूजा करवाते हैं और जल मे अन्तर्निहित होकर भगवान के पास पहुंच जाते हैं।

यहां माया नगरियां हैं ज्वाला स्वरूप नारियां हैं सोने के वृक्ष, सोने की लताएँ और अमृत के फल है। भगवान स्वयं बाले के रूप में मोदीखाने में नानक की सहायता करने आते हैं।

इस तरह सम्पूर्ण कथानक लौकिकता और यथार्थता के धरातल से ऊपर उठकर अलौकिक एवं रहस्यमय रूप धारण किए हुए है। इसमें स्वाभाविकता के स्थान पर अतिमानवीयता एवं वैचित्र्य अधिक है। सभी पात्रों को नानक के अवतारत्व का बोध निरन्तर बना रहता है जो कथानक के स्वाभाविक विकास में अवरोध उत्पन्न करता है। यहाँ पात्रों के पूर्व जन्म की कथाएँ भी हैं, अवांतर कथाओं के रूप में लमकार बदर, हेमपुरी अघेर नगरी अगद देश, हरिद्वार आदि की कथाएँ भी आई हैं और नारद के मोह भंग आदि से सम्बद्ध पौराणिक आख्यान भी आए हैं। ऐतिहासिक घटनाओं पर पौराणिक रंग चढ़ाने का कवि को इस कदर मोह है कि उसे इस बात का ध्यान भी नहीं रहता कि इससे राष्ट्रीय भावना को कितनी क्षति पहुँचती है। उदाहरण के लिए यहाँ बाबर को अत्याचारी इब्राहीम को दण्डित करने के लिए नानक वाणी की प्रेरणा से ही भारत पर आक्रमण करते दिखाया गया है। इस तरह हम देखते हैं कि इस ग्रंथ में या तो नानक की करामातों का वर्णन अधिक है या उनकी धर्म-यात्राओं और उपदेशों का। भगवान से आशीर्वाद पाकर, उदासी वेश धारण करके वे धर्म यात्रा पर निकल पड़ते हैं। सुलतानपुर से उनकी धर्म विजय का आरम्भ होता है। पहला उपदेश मानवीय एकता तथा संसार की निरर्थकता एवं असारता का अपनी बहन नानकी को देते हैं। फिर अपनी चार उदासियों में पानीपत दिल्ली, ऐमनाबाद लाहौर कुरुक्षेत्र बीकानेर, अचल तीर्थ, गुजरात पुष्कर उज्जैन, चागदेश, पचवटी पंढरपुर, मानसरोवर, सुमेर पर्वत, अगद देश, लका रामेश्वरम नानकमता सूर्यकुंड, काशी कौरुदेश, मंगलदीप, बशहरदेश विश्वभरपुर, देवगंधार पाकपटन गिरनार पर्वत, मक्का, कश्मीर तथा विष्णु लोक, सचखण्ड महाविष्णुलोक आदि स्थानों का भ्रमण करते हैं। विभिन्न धर्मों के धार्मिक स्थानों और तीर्थों पर जाते हैं जहाँ उन धर्मों मतों के धर्म गुरुओं, पंडितों महंतों, पीरों-फकीरों आदि से धर्म चर्चा करते हैं सेठों साहूकारों, सुलतानों और राजाओं को उपदेश देते हैं तथा दीन-दुखियों, रोगियों एवं पापियों का उद्धार करते हैं। पीर फकीर, साधु संत, जोगी जंगम, सिद्ध महंत शेख ब्राह्मण शैव शाक्त, हाजी-काजी मुल्ला इमाम, जैनी-वैष्णव सभी उनसे चकित प्रभावित एवं पराजित होकर उनके शिष्य बनते दिखाए गए हैं। वस्तुतः, इस ग्रंथ की समस्त कथावस्तु में धार्मिक तत्त्व की ही प्रधानता है। बहुत से प्रसंगों में इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप वार्ता की सी नीरसता, उपदेशात्मकता एवं एकरसता आ गई है। आरम्भिक कथा में कुछ संतुलन है लेकिन बाद के कथानक में धर्म प्रचार एवं सिद्धान्त निरूपण की अतिशयता के कारण कथानक का सूत्र ढीला पड़ जाता है। उसमें उपदेशों की गुप्तता पारलौकिक दृश्यों या वचित्र्य करामातों का कौतुक अधिक है और जीवन की यथार्थता एवं रसात्मकता अपेक्षाकृत कम। इसमें घटनाओं का

बाहुल्य है और वर्णनों में इतिवृत्तात्मकता है । लघु पौराणिक आख्यानों का नियोजन यद्यपि इतनी कुशलता से किया गया है कि वे मूल कथा के अंग लगते हैं तथापि कथानक में धार्मिक प्रवृत्ति इतनी प्रबल है कि न तो कथा का स्वाभाविक विकास हो पाता है और न ही युग दशा का व्यापक एवं विशद चित्र उभर कर सामने आता है । युग-दशा के नाम पर उस युग में प्रचलित विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों-पंथों के स्वरूप, विकृत भावना पद्धतियों एवं बाह्याचारों का उल्लेख ही अधिक मिलता है । इससे कुछ वर्ष पूर्व रचित 'गुरुप्रताप सूरज' में युग और समाज का जैसा वृहद् और यथार्थ चित्र उपलब्ध है उसका यहाँ अभाव है । पात्रों की मनोदशा का वैसा सजीव चित्रण भी यहाँ नहीं हुआ और न ही भावों की वैसी विशद और अनुभूतिपूर्ण अभिव्यंजना हुई है । सभी पात्र मानव की दिव्यता के बोझ से इतने दबे हुए हैं कि उनकी मानवीय मनोवृत्ति एवं संवेदना पूरी तरह उभर कर सामने नहीं आ पाती ।

आध्यात्मिक तत्त्व

संतरेण पहले संत एवं धर्म प्रचारक है, फिर कवि । उनकी काव्य रचना का मूल उद्देश्य मन को कुवृत्तियों से मुक्त एवं सांसारिक मोह माया से विरक्त करके उसमें उदात्त भावनाओं का उन्मेष करना और भगवान के भजन में लगाना है । वे उदासी सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य एवं साधक थे और इस ग्रंथ में भी उन्होंने इसी सम्प्रदाय के अनुरूप ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि के स्वरूप एवं सम्बन्ध, साधना पद्धति तथा साम्प्रदायिक आदर्शों और मान्यताओं, गुरु के महत्त्व, नाम महिमा, कर्मफल, आवागमन, संत महिमा, वेदों एवं पुराणों के महत्त्व, ज्ञान एवं भक्ति, सत्य, संयम, संतोष आदि का निरूपण विस्तार से किया है ।

श्री गंगेश्वरानन्द जी ने उदासी शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है— उद्→ब्रह्म आसीन→स्थित । अर्थात् जो ब्रह्म में स्थित हो अथवा ब्रह्मरूप हो ।[1] आरम्भ में अन्य संत मतों की भांति यह मत भी निर्गुणवादी था, लेकिन धीरे धीरे इसमें सगुणोपासना का प्रवेश होता गया और अब यह पूर्ण रूप से सनातन धर्म का एक अंग सा बन गया है जिसमें वेदों, उपनिषदों के ज्ञान की निष्ठापूर्वक चर्चा की जाती है, पुराणों की कथाएँ सुनाई जाती हैं और पंचदेवोपासना (ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, गौरी) का विधान है । 'गुरु नानक विजय' में भी निर्गुण एवं सगुणोपासना के समन्वय का प्रतिपादन हुआ है और नानक को भी विष्णु के अवतार के रूप में राम एवं कृष्ण से अभिन्न माना गया है ।

---

१ उद् सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मस्य चतुर्थाश्रमी ।

(श्रीमुनिचरितामृत तरंग १ पृ० ७८ ७९)

सतरेण के अनुसार ब्रह्म निगु ण, निरजन, अलख, अभेद, अतर्यामी, अविनाशी, रूपरेख रहित वण चिह्न विहीन, अनाम भी है और सवव्यापक एव सव शक्तिमान भी(ब्र०ख० ११६४ ७०)। उन्होंने उसे अन्य सतो की भाति राम, रहीम, परम पुरुष, साहब ब्रह्म, पारब्रह्म, परमेश्वर आदि नामो से अभिहित किया है। सतरेण ने ब्रह्मा, विष्णु महेश एव विविध अवतारो को पारब्रह्म रूपी जल से उत्पन्न और उसी मे विलीन हो जाने वाली लहरा अथवा तरगो के समान कहा है।[1] जिनकी उत्पत्ति त्रिगुणात्मक माया से होती है।

सतरेण ने आत्मा और परमात्मा की अद्वैतता मे विश्वास प्रकट किया है (वि० ख० २१।३२)। आत्मा को उन्होने सच्चिदानन्द स्वरूप माना है, जो न मरता है न जन्म लेता है। वह अविनाशी और चेतन रूप है। यह शरीर अनित्य रोगयुक्त दुखात्मक जडरूप एव नाशवान है। परमात्मा के सगुण रूप के प्रति भी सतरेण ने आस्था व्यक्त की है,[2] जोकि भक्ति के वश म हाकर तथा लीलाथ अवतार धारण करता है।[3] उनके अनुसार इस मायारूप नामरूपात्मक जड जगत की उत्पत्ति ब्रह्म की 'अह ब्रह्म' की ध्वनि से हुई है। यह ससार नाशवान, क्षणभगुर, अनित्य एव स्वप्नवत् मिथ्या है। ससार के सभी सम्बन्ध, धन सम्पत्ति, परिवार आदि भी मिथ्या और नश्वर हैं। सत्य केवल ब्रह्म है, उससे भिन्न और कुछ भी नही है। सभी उसी से उत्पन्न होते हैं और उसी मे लीन हो जाते हैं।

आवागमन और कमफल में भी सतरेण को विश्वास है। उनका कथन है कि आवागमन से मुक्ति ज्ञान द्वारा सम्भव है और ज्ञान गुरु से प्राप्त होता है। गुरु अज्ञान का विनाशक, भक्ति-मुक्ति को देने वाला और ब्रह्म से मिलाने वाला है।[4] वही दुष्कर्मों से भी मुक्त करता है। सतरेण ने भी अन्य सतो की भाँति

---

१ जिम जलु ते बहु उठई लहिरा अउर तरग।
पुनि जलु मैं ह्वै लीन सभि जलु एक सदा उमग।१८।
ब्रह्मा बिसन महेस उतार सु जेतिओ।
लहिरा अउर तरग सु जानो तेतिओ।
उतिपति अरु पुनि लीन होइ सो जानिये।
हो जलु असथानी पारब्रह्म सो मानिय। (ब्र० ख० १४।१९)

२ सरगुनि मेरो रूप चतुभु ज जोइ रे।
इक करि राक्स मारे हमने लोइरे। (म० ख० १५)

३ परम निरजन निरगुन जोइ। मन वाणी त परे सु लोई।
भगति वस सरगुनि सो भयो। अहि उतार तहि ल लयो। ३९
रूप रग गुनि परम उन्तार। लीला खातर लयो उतार। म० ख० १४।४०

४ गुरु बिन भरम न होवे दूरि। ब्रह्म नाम दोना भरिपूरि। (ब्र० ख० १)

गुरु को परब्रह्म स्वरूप माना है[1] और उसकी निष्ठापूर्वक वंदना की है। उनके अनुसार गुरु ही पाप, ताप, क्लेश को मिटाकर हृदय में ज्ञान का प्रकाश करता है।[2] गुरु के बिना न कर्म साधक है, न भक्ति मिलती है, न ज्ञान। गुरु के बिना जीव चौरासी योनियों में भटकता रहता है (वि० स० २१।३) और वह प्रियतम को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता (वि० ख० १७।११)। सच तो यह है कि गुरु के समान और कोई हितकारी ही नहीं है।[3]

सतसेण ने भक्ति के साथ ज्ञान, शुभ कर्म, विरक्ति, एवं अन्य उपासना पद्धतियों के महत्व का भी निरूपण किया है लेकिन प्रमुख भक्ति को ही माना है। उनका मत यह है कि भक्ति के बिना जीव आवागमन से मुक्त नहीं होता और भव फाँसी नहीं कटती। भक्ति बिना जप, तप, दान, पुण्य सब व्यर्थ है (ब० ख १।३४)। भक्ति बिना शांति भी प्राप्त नहीं होती (ब० ख १।३)। भक्ति से ही ज्ञान, वैराग्य, योग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है[4] और ब्रह्म से मिलन होता है। उन्होंने निष्काम भक्ति पर अधिक बल दिया है (ब० ख० १।३४) और उसके लिए विषय वासनाओं का त्याग अनिवार्य माना है (उ० ख १४।२०)। भगवत् भक्ति के साथ ही कवि ने संत, ब्राह्मण आदि की भक्ति का भी महत्व दर्शाया है। 'संत को भी वे ब्रह्मरूप मानते हैं। संतों के शरीर में, चरणों में वचनों में राम का निवास होता है।[5]

उन्होंने विप्र पूजा धर्म ग्रंथों के अध्ययन, भगवत् कथा श्रवण, उपवास,

---

१ गुरु गणेश गुरु सारदा गुरु परब्रह्म स्वरूप। (वचन सग्रह १।१)

२ ना संति तत गुरु पद ते अनयो सभि वेद पुराण बखानै।
पाप सु ताप क्लेश मिटाइ सु ग्यान प्रकाश रिद मह ठान। (म० ख० २।६)

३ गुर की उपमा गुर की सु बन, गुर के सम दूसर नाहि अने।
मुहि आन गुर सम नाहि ऐसि, गुरु के सम आन बताऊं किस।
(म० ख० २।११)

४ भगती बलि ग्यान बिराग लहै,
भगति बलि जोग सु मोख प्रकासी।
भगती उर ग्यान बिराग जने,
भगती बलि आई मिल अविनासी।
भगती सु प्रिय परमस्वर की,
इम भाखति है गुर सन उदासी।
इम सतहि रेण कहै नर की,
भगती बिन नाहि कटै भव फासी।
(वचन सग्रह ६/१)

सतहि दहि सु रामहि जानो। सतहि चरणि सु रामहि मानो।
सतहि बचनि सु रामहि जान। याहि बिखै संसा नहि मान।
(म० ख० ८।८१)

व्रत, मूर्तिपूजा श्राद्ध एव शकुन विचार मे भी आस्था प्रकट की है और जीव हिंसा का विरोध किया है। वर्ण व्यवस्था मे भी उनकी कुछ निष्ठा है, लेकिन भक्ति के क्षेत्र म वे 'ऊच नीच अतरि नहिं कोइ। हरि को भजे सु हरि का होइ (प्र ख ५।१८) के सिद्धान्त के के समर्थक हैं। यहा वे राम, कृष्ण गणेश देवी देवताओ की वदना भी करते हैं। नानक यज्ञोपवीत भी धारण करते है जन्मोत्सव पर भी विप्र मौजूद हैं और विवाह मडप मे भी विप्र वेद मन्त्रो का पाठ करते हैं। जनवासे म पुराणा की कथा होती है। ऐमनाबाद म स्वय गुरुनानक पुराणो की कथा सुनाते हैं। नानक महाविष्णु के और अन्य पात्र नारद, ब्रह्मा, देवताओ आदि के अवतार है। वस्तुत, 'गुरु नानक विजय' म कवि वैष्णव मत की ओर काफी मात्रा म झुकता दिखाइ पडता है और कही कही मूर्तिपूजा और उपवासो तक का समर्थन करता पाया जाता है। यहाँ स्वय भगवान यह भी कहते पाए जाते हैं कि मैं कालू के यहा जन्म लूँगा, कालू का वश वही रघुवश है जिसम मैंने रामावतार लिया था (स० ख० १४।४ ४३) अर्थात यहा कवि नानकावतार और रामावतार की अभिन्नता की घोषणा करता है। ब्राह्मणवाद का इस रचना म अत्यधिक प्रभाव लक्षित होता है। विप्रपूजा एव विप्र रक्षा का विधान विशेष रूप से किया गया है। वैष्णवा के साथ समन्वय का यह एक सचेष्ट प्रयत्न भी कहा जा सकता है। लेखक का कथन है कि गुरु नानक ने उदासी वेश धारण करके इस पथ को अन्य पथो का शिरोमणि बनाया[1]। नानक यहा यह कहते भी पाए जाते है कि उनका पुत्र श्रीचद उदासी पथ को उजागर करेगा और वे स्वय गुरदित्ता (श्री चन्द के शिष्य) के रूप अवतरित होगे। गुरुनानक के अतिरिक्त अन्य नौ सिक्ख गुरुओ की भी इसमे वदना की गई है और गुरु ग्रथ साहब' को पचम वेद कहा गया है। इस तरह कवि ने सिक्खमत के साथ भी उदासी पथ का सीधा सम्बन्ध स्थापित किया है। इसी प्रकार सतरेण ने नाथ मत का भी पर्याप्त प्रभाव ग्रहण किया। सुलक्षणी को दिए गए जिस श्रीफल से इस सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य बाबा श्रीचन्द की उत्पत्ति होती है, उसम गोरखनाथ का अश प्रविष्ट होते दिखाया गया है। उन्हें गोरख का अशावतार बताकर कवि ने उदासी-पथ और नाथ मत का समन्वय स्थापित किया है। नानक को भी नाथ-साधना के अनुरूप नौ-द्वारो को पार करके दसवें द्वार मे प्रविष्ट होकर भगवान के शून्य रूप के दर्शन करते दिखाया गया है। वस्तुत, मध्ययुगीन सत साधना पर नाथ मत का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। सूफीप्रेमाख्यानों म भी कथानायक अपने इष्ट की प्राप्ति के लिये योगी बनकर निकलते हैं।

सतरेण ने उदासी पथ के प्रवर आचार्य होते हुए भी वैष्णवा, नाथो एव

१ परम गुरु नानक भयो पूरन हरि अवतार।
पथ उदासी तिन किउ सभि पथनि सरदार। (म० ख० ६।६)

गुरु को परब्रह्म स्वरूप माना है[1] और उसकी निष्ठापूर्वक वंदना की है। उनके अनुसार गुरु ही पाप ताप, क्लेश को मिटाकर हृदय में ज्ञान का प्रकाश करता है।[2] गुरु के बिना न कर्म सार्थक है, न भक्ति मिलती है, न ज्ञान। गुरु के बिना जीव चौरासी योनियों में भटकता रहता है (वि० ख० २१।३) और वह प्रियतम को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता (वि० ख० १७।११)। सच तो यह है कि गुरु के समान और कोई हितकारी ही नहीं है।[3]

सतसेण ने भक्ति के साथ ज्ञान, शुभ कर्म, विरक्ति एवं अन्य उपासना पद्धतियों के महत्व का भी निरूपण किया है लेकिन प्रमुख भक्ति को ही माना है। उनका मत यह है कि भक्ति के बिना जीव आवागमन से मुक्त नहीं होता और भव फांसी नहीं कटती। भक्ति बिना जप, तप, दान, पुण्य सब व्यर्थ है (ब्र० ख १।३४)। भक्ति बिना शांति भी प्राप्त नहीं होती (ब्र० ख १।३)। भक्ति से ही ज्ञान, वैराग्य, योग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है[4] और ब्रह्म से मिलन होता है। उन्होंने निष्काम भक्ति पर अधिक बल दिया है (ब्र० ख० १।३४) और उसके लिए विषय वासनाओं का त्याग अनिवार्य माना है (उ० ख १४।२०)। भगवत् भक्ति के साथ ही कवि ने संत, ब्राह्मण आदि की भक्ति का भी महत्व दर्शाया है। संत को भी वे ब्रह्मरूप मानते हैं। संतों के शरीर में, चरणों में, वचनों में राम का निवास होता है।[5]

उन्होंने विप्र पूजा धर्म ग्रन्थों के अध्ययन, भगवत् कथा-श्रवण, उपवास,

१ गुरु गणेश गुरु सारदा गुरु परब्रह्म स्वरूप। (वचन संग्रह १।१)

२ ना सति तत्त गुरु पद ते अनयो सभि वेद पुराण बखानै।
पाप सु ताप क्लेश मिटाइ सु ग्यान प्रकाश रिद मह ठान। (म० ख० २।६)

३ गुर को उपमा गुर की सु बन, गुर के सम दूसर नाहि अने।
मुहि आन गुरु सम नाहि दिसै, गुरु के सम आन बताऊं किस।
(म० ख० २।११)

४ भगती बलि ग्यान बिराग लहै,
भगति बलि जोग सु मोख प्रकासी।
भगती उर ग्यान बिराग जन,
भगती बलि आई मिल अविनासी।
भगती सु प्रिय परमस्वर को
इम भाखति है गुर संत उदासी।
इम संतहि रैण कहै नर को,
भगती बिन नाहि कटै भव फासी।
(वचन संग्रह ६/१)

[5] संतहि देहि सु रामहि जाना। संतहि चरणि सु रामहि मानो।
संतहि वचनि सु रामहि जान। याहि बिखै संसा नहि मान।
(म० ख० ५।८१)

व्रत, मूर्तिपूजा, श्राद्ध एव शकुन विचार मे भी आस्था प्रकट की है और जीव हिंसा का विरोध किया है। वर्ण व्यवस्था मे भी उनकी कुछ निष्ठा है, लेकिन भक्ति के क्षेत्र म वे 'ऊ च नीच अतरि नहिं कोइ। हरि को भजे सु हरि का होइ (प्र ख ५।१८) के सिद्धान्त के वे समर्थक हैं। यहा वे राम कृष्ण गणेश देवी देवताओ की वदना भी करते हैं। नानक यज्ञोपवीत भी धारण करते है, जन्मोत्सव पर भी विप्र मौजूद हैं और विवाह मडप मे भी विप्र वेद मत्रो का पाठ करते हैं। जनवासे म पुराणो की कथा होती है। ऐमनाबाद मे स्वय गुरुनानक पुराणो की कथा सुनाते हैं। नानक महाविष्णु के और अन्य पात्र नारद, ब्रह्मा, देवताओ आदि के अवतार हैं। वस्तुत, 'गुरु नानक विजय' मे कवि वैष्णव मत की ओर काफी मात्रा म झुकता दिखाई पडता है और कहीं-कहीं मूर्तिपूजा और उपवासो तक का समर्थन करता पाया जाता है। यहाँ स्वय भगवान यह भी कहते पाए जाते है कि 'मैं कालू के यहा जन्म लूंगा, कालू का वश वही रघुवश है, जिसमे मैंने रामावतार लिया था (स० ख० १४।४-४३) अर्थात यहा कवि नानकावतार और रामावतार की अभिन्नता की घोषणा करता है। ब्राह्मणवाद का इस रचना म अत्यधिक प्रभाव लक्षित होता है। विप्रपूजा एव विप्र रक्षा का विधान विशेष रूप से किया गया है। वैष्णवो के साथ समन्वय का यह एक सचेष्ट प्रयत्न भी कहा जा सकता है। लेखक का कथन है कि गुरु नानक ने उदासी वेश धारण करके इस पथ को अन्य पथो का शिरोमणि बनाया[1]। नानक यहा यह कहते भी पाए जाते हैं कि उनका पुत्र श्रीचद उदासी पथ को उजागर करेगा और वे स्वय गुरुदित्ता (श्री चन्द के शिष्य) के रूप अवतरित होंगे। गुरुनानक के अतिरिक्त अन्य नौ सिक्ख गुरुओ की भी इसम वदना की गई है और गुरु ग्रन्थ साहब' को पचम वेद कहा गया है। इस तरह कवि ने सिक्खमत के साथ भी उदासी पथ का सीधा सम्बन्ध स्थापित किया है। इसी प्रकार सतरेण न नाथ मत का भी पर्याप्त प्रभाव ग्रहण किया। सुलक्षणी को दिए गए जिस श्रीफल से इस सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य बाबा श्रीचन्द की उत्पत्ति होती है उसमे गोरखनाथ का अश प्रविष्ट होते दिखाया गया है। उन्हे गोरख का अशावतार बताकर कवि ने उदासी-पथ और नाथ मत का समन्वय स्थापित किया है। नानक को भी नाथ साधना के अनुरूप नौ-द्वारा का पार करके दसवें द्वार में प्रविष्ट होकर भगवान के शून्य रूप के दर्शन करते दिखाया गया है। वस्तुत, मध्ययुगीन सत साधना पर नाथ मत का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। सूफीप्रेमाख्यानो म भी कथानायक अपने इष्ट की प्राप्ति के लिये योगी बनकर निकलते हैं।

सतरेण न उदासी पथ के प्रवर आचार्य होते हुए भी वष्णवो, नाथो एव

१ परम गुरु नानक भयो पूरन हरि अवतार।
पथ उदासी तिन किउ सभि पथनि सरदार। (म० ख० ६।६)

विषयों से समन्वय का स्तुत्य प्रयत्न किया है। समन्वय की यह प्रवृत्ति गुरुमुखी लिपि में रचित समस्त हिन्दी साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है। मध्ययुगीन प्रायः सभी सिक्ख कवियों ने भी सिक्खमत के वैष्णवों के साथ समन्वय का महत्वपूर्ण कार्य किया।

मध्ययुगीन निर्गुण भक्त कवियों (संतों) की भांति संतरेण ने भी अपनी साधना में 'नाम-स्मरण' को सर्वाधिक महत्व दिया है। उनका मत है कि यज्ञ, मंत्र, दान पुण्य, यम तप आदि का भी महत्त्व है लेकिन 'नाम' सब से ऊपर है (म० स० १५।४७.५०)। नाम' निर्गुण एवं सगुण दोनों से अधिक महत्व रखता है[1], उसमें विष्णु से भी सौ गुणी शक्ति है। नाम-स्मरण से भव-बंधन टूट जाते हैं, यम अधीन हो जाता है, इस लोक में सुख और परलोक में धन मिलता है (म० स० १५।१६) और सभी पापों का मल धुल जाता है।[2] नाम नामी से भिन्न नहीं है दोनों एक रूप हैं, दोनों महान हैं दोनों अविनाशी हैं।[3] नाम' करोड़ों सत्संगों के समान है। प्रेम सहित नाम स्मरण से क्लेशों का समूह नष्ट हो जाता है और मूढ़ भी ज्ञानी बन जाता है।[4]

इस प्रकार हम देखते है कि यदि इन प्रसंगों को अलग कर दिया जाए, तो ग्रंथ का कलेवर बहुत छोटा रह जाएगा। फिर भी वस्तु वर्णन एवं भाव-व्यंजना सम्बन्धी कुछ स्थल इस ग्रंथ में ऐसे अवश्य हैं जिनमें यथेष्ट रसात्मकता है और कवि की काव्य प्रतिभा का प्रकाश है।

---

१ निरगुनि सरगुनि रूप द्व हारे आहि उदार।
नाम दुऊ ते अधिक है सो मम नाम उतार। (म० स० १५।३७)

२ नाम हमारा पाप मलु सभि धोइ रे। (म० स० १५।२२)

३ नामी नाम भिन्न न होइ। एक रूप ही जानो दोइ।
नाम ब्रह्म दुइ जान अनूप। रूप रेख ते रहित अनूप।
सत्ता मात्र ताहि सु जान। नामी नाम सु दोइ महान।
नामी नाम दोइ अविनाशी। जाहि रूप सु होवै नासी।
(ब्र० स० १।६४७०)

४ नामु सप्रेम हमारा सिमर जोइ रे।
तिन क्लेस गण रावस मारे मोह रे।
नाम प्रताप क्लेस सु सहजे भागिआ।
हो तिन को करना जतन नाहि कछु लागिआ।
नाम कोटि सतिसग सू मूढि सु धारिआ।
जिन को ग्यान न ध्यान मु कछू न जानिय।
हो नाम सु मूढि सुधार करे ग्यानिय। (म० स० १५।४१)

वस्तु वर्णन एवं प्रकृति चित्रण

गुरु नानक विजय' मे नानक के जन्मोत्सव एवं विवाह तथा नगर तीर्थ, पर्वत, उद्यान एवं नारी सौंदर्य आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके वस्तु-वर्णन मे भी धार्मिकता का प्रभाव लक्षित होता है। अधिकतर वर्णन ऐसे हैं जिनमें अलौकिकता, अतिरंजना एवं वचित्र्य अधिक है और चित्रात्मकता एवं यथार्थता कम। कुछ मे इतिवृत्तात्मकता एवं पुनरावृत्ति भी है लेकिन कुछ वर्णन ऐसे भी हैं जो सजीव, यथार्थ एवं चित्रात्मक बन पड़े हैं। माया नगरी सचखड, पाताल एवं शून्य नगरी की रचना अद्भुत, अलौकिक एवं कहीं कहीं प्रतीकात्मक हैं। यहा ऐसे स्थान भी हैं, जहाँ सोने के वृक्ष और सोने की लताएँ हैं अमृत के फल हैं। सदा वसन्त खिला रहता है और रत्ना-मणियां के ढेर लगे हुए हैं। सचखड के दसवें द्वार मे स्थित ब्रह्म के अद्भुत रूप का भी चमत्कारपूर्ण वर्णन किया गया है। सचखण्ड की स्त्रियों विशेष रूप से ज्वाला देवी का तेजयुक्त-ज्वाला सा सौंदर्य अलौकिक आभा से मंडित है।

गुरु नानक ने विविध ऋतुओं मे विभिन्न दिशाओं की अनेक यात्राएँ कीं, अनेक रम्य स्थानों का अवलोकन किया, अनेक मनोहर प्राकृतिक दृश्यों को निहारा, लेकिन कवि ने इन स्थानों के दृश्यों का वर्णन प्राय उपेक्षा भाव से ही किया है। जहाँ कहीं विस्तार है वहाँ प्राय नाम परिगणन शैली से काम लिया गया है, अन्यथा वर्णन बड़े ही संक्षिप्त हैं। नानक की बरात के उद्यान मे ठहरने पर उस उद्यान का वर्णन करते हुए कवि सीताफल रामफल खट्टे-मीठे गलगल, खिरनी, फार कटल वढल फालसे अजीर दाख इरडे पपीते जामुन खट्टे मीठे नीबू कागदी सक्कर नीबू, रसभरे, सतरे, दखनी कफल राई केले, हरे केले सादे तरकारी केले बदरी फल, आम अखरोट, बादाम उरम, लोरम, आरम, दारम विदाणा, शहतूत, सेब सरू अमलतास आदि वृक्षों, मोयरा, मालती जाई-जुई, हार सिंगार गुलाब, कवार, केवल, केतकी महुआ आदि पुष्पों, कोकिल, पोपट सिरो आदि पक्षियों का नामोल्लेख करता है और प्रकृति के बिम्ब विधान के लिए मात्र ये पंक्तियाँ बीच मे आई हैं —

> और अनेक लगे तहि भार सु देखत ही सभि के मन भाणा।
> फूलनि के बहु भार घने गनते गनते कछु अंत न पारे।
> सुन्दरि और फुलाहु घने बहु जाहि विख रवि नाहि दिखाए।
> छाउ घनी तिनकी अति सीतल खस मनो धरनी पर छाए।
>
> (वि० ख०, अ० १०)

इन वृक्षों की छाया मे बैठे हुए बारन, ऊँट तुरग रथ आदि का भी उल्लेख कर दिया गया है। वृक्षों मे सेब, दाख दाडिम जैसे दश-काल विरोधी पदार्थ भी वहां उपलब्ध हैं।

प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत वसन्त ऋतु का एक वर्णन यद्यपि वह इक्ष्वाकु की तपस्या का भंग करने के लिए उद्दीपन के रूप मे ही आया है, बसन्त ऋतु की

प्रकृति के अनुकूल मादक एव प्रभावपूर्ण है—हालाकि नाम-परिगणन की प्रवृत्ति यहा भी देखी जा सकती है —

मालती सदा सुहाग मोगरे का घना बाग चपक सदा गुलाब लागत सुहावने।
मिरग चर चुफेरे देखि भ्रावै नेरै माया का बनायो बन मानो घन सावने।
फूल फलु माहि रचे झूठे सभि लाग सचे बिना परवानगी न कोउ पाव भ्रावने।
बहु पोपट मोर चकोर बिहगम बोलन हैं बन माहि सु सारे।
कलिकठ करै वन म रव सुन्दर मोरू सु पाइल पाइ उदारे।
भ्रलि रीजति है बहु फूलनि ऊपरि पाति न बाति सु ताहि अपारे।
सु मनोभव की सभ फौज भ्रहै पर वेस करयो बन माहि सुसार।
(वि० स ७)

इसी प्रकार बदरीनाथ के वणन म वहा की पवित्रता पौराणिक महत्व ऋषि मुनियो के जप तप उनके पुनीत आश्रमो गगा के पावन प्रवाह गुफाओ की मनोहरता आदि क साथ वहाँ के प्राकृतिक सौन्दय की कुछ छटा भी प्रस्तुत की गई है यद्यपि यहा भी कवि वृक्षो आदि के नाम गिनाने के मोह से मुक्त नही है और गुफाएँ भी रत्न मणियो से जडी हुई दिखाई गई है (ब्र० ख० ५/१० २१)।

लाहौर शहादरा, नानक टोला लका द्वीप आदि स्थानो का भी विशद वणन किया गया है।

नानक के बाल्यावस्था के चित्रण म भी उनके बहुमूल्य वस्त्राभूषणो का विवरण अधिक है और उनके मनोहर रूप एव बाल सुलभ मनोवैज्ञानिक क्रीडाओ का प्राय अभाव है। वस्त्राभूषणो क वणन म भी अतिरजना से अधिक काम लिया गया है। उनक जन्मोत्सव का भी कवि ने विस्तृत वणन किया है जिसम ज्योतिषियो को बुला कर लगन दिखाने याचको को दान देने नौबत-बाज बजने स्त्रिया द्वारा मगल-गीत गाने ब्राह्मणो को भोजन करवाने स्त्री-पुरुषो का बधाइयाँ देने आने गधर्व किन्नरो के नाचने-गाने ऋषि मुनियो, कुबेर अग्नि आदि के दशनाथ आने आदि का वणन हुआ है (वि० स० ११/१ १३)। उनका जन्मोत्सव किसी राजकुमार के जन्मोत्सव से कम नही भले ही वे एक साधारण पटवारी के पुत्र थे।

नारी-सौन्दय का चित्रण भी परम्परित उपमानो क सहारे नख सिख वणन क रूप म ही किया गया है। नानक की पत्नी सुलखणी क सौन्दय का चित्रण भी रीति-पद्धति पर आधारित है और उसम चमत्कार एव ऊहात्मकता भी आ गई है।[1] नगर की स्त्रिया क सौन्दय चित्रण म विशेषरूप से उनक आभूषणों क वणन म स्वाभाविकता एव मनोहरता है। यथा—

१ मृग शावक लोचनी है सुघरे गरम अग साज रहै नित मागी।
अनिमा भव बिंग कमान सम रव ताहि सुने कलिकठ लजाही।

मिलि के सु गाउ की लुगाई ग्राई देखन को बरानि भूखन मज मगल सु गावती।
झाभर नूपर पग छन छन बाजत हैं गज सम चाल चली मनि हरसावती।
मिरग सावक नैन कलिकठ सम बन ग्रलि के भवर नाक वेसर सुहावती।
ग्रारसी म मुखि देख दीप सुत नैन पाइ घु घट ग्रगारी करि ग्राइ मुसकावती।
(वि० ख० ११)

है तो ये भी गज गामिनी, मृग नयनी, कोकिल बनी ही, लेकिन उनके आभूषण भाझर, नूपर, वेसर, ग्रारसी बलाक ग्रादि की शोभा दर्शनीय है। ग्रारसी म मुख देखकर, नेत्रो पर घू घट डालकर मुस्कराते हुए बरात देखने ग्राने का दृश्य ग्रत्यन्त स्वाभाविक एव मनोहारी है। उनके ग्राभूषण भी ग्राम्य परम्परा के ग्रनुकूल हैं।

एक राजकुमारी के सौदय की ग्रतुलित ग्राभा एव उसके प्रभाव की व्यजना कवि ने "बिजरी सम डोलति ताहि सु बाला," तथा 'सभि देखि सरूप भए बिसमे, सभि के मन माहि मनोज उमगै" ग्रादि उक्तियो द्वारा बहुत ही कुशलता से की है (ब्र० ख० १२)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'गुरु नानक विजय' के वस्तु वणन म विशदता ग्रौर विस्तार है। उसमे ग्रलौकिकता एव वचित्र्य ग्रधिक है, पर ऐसे स्थल भी हैं, जहाँ स्वाभाविकता, यथार्थता, सजीवता एव रमणीयता है। वस्तु वणन के ग्रन्तगत कवि को सब से ग्रधिक सफलता गुरु नानक के विवाह के वणन म मिली है। इस विवाह का ग्रत्यन्त विस्तृत, विशद एव सजीव चित्रण किया गया है। नानक की सगाई से लेकर साहा निकलवाने बरात के प्रस्थान के समय सुदर वस्त्राभूषण पहन कर कोकिल-कठी स्त्रियो का मगल-गीत गाना हाथी, घोडो रथों एव हजारो बरातियों से सजी विशाल बरात भोजन की हजारो बहगियों, देवताग्रो की पुष्प वर्षा रास्ते के पडाव, बरात के स्वागत उद्यान मे बरात को ठहराने उद्यान की प्राकृतिक शोभा बरात के विस्तार को देख कर ससुर का चिंतित होना भोजन की ३६ प्रकार की सामग्री जनवासे मे पुराणा की कथा देवताग्रो ग्रौर देवागनाग्रो का मनुष्य रूप धारण करके

कदली सम जघ मनोज प्रभा दुति देखत कोटि कदामनि लाज।
करिहैं जलजात समान उभ तिन माहि उदार पलासु बिराज।
ग्रलिक ग्रलि पाँत मनो लटक मुख की दुति देखत भिस्सर भाज।
गजराज समान सुचाल चले कट सिंह सम सखिया पथ छाज।
मुख की उपमा ससि की न बन ससि माहि कलक ग्रहै सु सदाई।
बहु दूखन हैं ससि माहि भरे तह देखत तामर सकुम लाई।
घट है बढ है पुनि राहु ग्रसे चकई चकवा सु बछार कराई।
मुख माहि कलक सु एक नही मुख देखत ताहि कलक मिटाई।
(वि० ख ११)

विवाहोत्सव म सम्मिलित होना, बरात की चहल पहल लोगा का हल्ला गुल्ला विवाह मडप विप्रो द्वारा वेद मत्रो का उच्चारण, चारणा द्वारा प्रशस्ति गान ब्राह्मणो एव याचको को दान दो, दहेज की मूल्यवान वस्तुएं दहेज देखने वाली स्त्रियो की वेशभूषा सीठने देने एव बरात की विदाई आदि का विस्तृत एव सजीव वणन किया गया है यद्यपि वणन म अतिरजना स यहाँ भी काम लिया गया है। नानक की बरात किसी धनवान राजपुत्र की बरात लगती है, जिसम हाथी घोडे रथ सिपाही भी हैं और बरातिया की सख्या भी हजारो म हैं। उसम सात राजे भी अपने पूरे ताम झाम के साथ सम्मिलित होते हैं। माग के लिए भोजन सामग्री की ५ हजार बहगियाँ साथ हैं। उधर भोज म भी ३६ प्रकार के पक्वान हैं और दहेज की तो बात ही क्या है—अनगिनत वस्तुएँ हाथी घोडे दास दासियाँ लाल मणिया, सहस्रा गायें और पाँच हजार मोहरें। कवि ने बडे उत्साह के साथ इन वस्तुओ के नाम गिनाए हैं। कवि यह भूल जाता है कि वह किसी राजकुमार का नही, वरन एक पटवारी के लडके के विवाह का वणन कर रहा है—नही वह तो अलौकिक शक्ति सम्पन्न परमात्मा के अवतार गुरु नानक के विवाह का वणन कर रहा है, फिर कोई भी मूल्यवान चीज कसे छूट सकती है। इस अतिरजना के बावजूद वणन म सजीवता है।

भाव व्यजना

गुरु नानक विजय धम विजयी गुरु नानक के निवृत्ति मूलक जीवन की गौरवमयी गाथा है। वे जीव को सासारिक मोह-माया एव दुख-द्वन्द्वो से मुक्त हो कर सच्चिदानन्द ब्रह्म की उपासना म मन को लगाने का उपदेश देते हैं जिससे सवत्र साम्य भाव का ही उद्रेक होना है। इस रचना म स्थान-स्थान पर जगत की अनित्यता एव असारता शरीर की क्षणभगुरता एव नश्वरता तथा सासारिक-सम्बधो की अस्थिरता एव मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया गया है। अन्य प्रसग भी प्राय अतत इसी प्रकार की भावनाओ का उन्मेष करते हैं। अत इस ग्रथ का मुख्य रस अथवा अगी रस शान्त है और अन्य भावो की व्यजना गौण रूप से हुई है। गुरु नानक की अदभुत करामातो एव अलौकिक व्यापारो म अद्भुत रस की सृष्टि जरूर होती है लेकिन वह भी शान्त रस के प्रमुख सहायक रस क रूप म ही व्यवहृत हुआ है। अन्य रसा का पयवसान भी प्राय शान्त मे ही हो जाता है।

धर्मोपदेशो से सम्बधित प्रसगो म शान्त रस की अभिव्यजना प्राय सिद्धान्त निरूपण क माध्यम से ही हुई है जसाकि हमे सतो की वाणी म अकसर मिलता है। ऐसे प्रसगो म शान्त रस के सभी अवयव मौजूद होते हैं जो विरक्ति भाव का उद्रेक करके मन म भगवत भक्ति का उन्मेष करते हैं। निम्न उदाहरण मे देखिए ऐसे नाम भाव की कितनी भव्य पुष्टि हुई है—

देहि असत्त जडि दुख रूप पहिचानिये । सतीचिदानद रूप आतमा मानिये ।
जडि असत्ति दुख रूप जान उर नानकी । हो इसका मान तिआग सु असर आनकी ।
भाखहि मात पिता हमारा तनु नार कहै तनु आहि हमारा ।
भूप कहै तनु है हमरा पुनि आग कहै जर मोहि मझारा ।
भाखति है अपना अपना सभ ह तिनि का अपना नहि सारा ।
तीन गती इस तन कर उर मे जानिये । अगनी माहि जलाइ भसम हुँ मानिये ।
परा रह धर माहि किरम तब होइ है । हो खावहि स्वान सिगाल न विस्टा खाइ है ।

इहु गती इस तन की रूयै । इसको अपना नाहिन कहयै ।
ताते इहु तनु अपना नाहि । देखि बिचार भले मन माहिं ।
नाहि मरे जनम पुनि आतम । चेतन रूप सुअ परकासी ।
सो चिद रूप अहै तुमारा । परमातम जान सदा सुखरासी । (म ख ११)

भक्ति सम्बन्धी कुछ ऐसे उदाहरण भी इस ग्रथ मे मिलते है, जिनमे अनुभूति की तीव्रता और रसात्मकता है। अन्य भावो की व्यजना सीमित रूप में ही हुई है। धार्मिकता एव नैतिकता के प्रभुत्व के कारण सभी मनोवेगो का यथोचित विकास नही हो पाया । उनमे घनत्व विशदता एव आवेग भी कम है। तथापि कुछ मनोवेगों की कवि ने मार्मिक व्यजना की है। उदाहरण के लिए 'वात्सल्य' के अन्तर्गत यद्यपि नानक के अवतारत्व का बोध मनोवेगों के नैसर्गिक स्फुरण एव स्वाभाविक विकास म बाधक बनता है तथापि उनके जन्म पर पिता के हर्ष एव आनन्द, माता की ममता एव आशका पिता के रुष्ट होने पर उनके घर स अदृश्य हो जाने से पिता की ग्लानि विदेश गमन पर माता, बहन नानकी, ससुर मूलचद, कुटुम्बियो एव अन्य स्नेही जनो के स्नेह, चिंता, व्यथा एव उद्वेग आदि की अत्यन्त सहज स्वाभाविक एव मार्मिक व्यजना की गई है। नानक के लोप होने पर पुरवासियो की करुण दशा का वर्णन इस प्रकार किया गया है —

नानक लोप भयो सुणि क पुर के जन आइ सबै नर-नारी ।
नानक के गुणि याद कर, बहु दुख भयो सभि के उर भारी । ६
इक खाइ तवार गिरे धरनी परि मुरछता तिन के तन आई ।
इक नैनन ते जलु डारती है जु गिरे हैं तिन के मुखि नीर सु पाई ।
इक ध्यान परायणि ताहि भए, इक कीरति गाइ सु ता सुखदाई । ७

अपने अपने दुख मै सगले, धरि लोटति हैं जलु नन बहाइ । (घ उ ख ७६)

सभी पुर वासी उनके गुणों का स्मरण करके अत्यन्त दुखी है। कोई स्नेहाकुल होकर पछाड खाकर धरनी पर गिर पड़ता है और मूर्च्छित हो जाता है, कोई नेत्रों से अश्रुधारा बहाता है तो कोई बेहाल हुआ गिरा पडा है और

उसके मुग से पानी वह रहा है। कोई उसके ध्यान म मग्न है तो कोई उसके यश का गान कर रहा है। सभी अपने अपने दुग म दुखी होकर नेत्रो स अश्रु बहाते हुए अपने अपने घरो को लौट रहे हैं। इसी प्रकार उनके ससुर मूलचन्द जी की दशा भी अत्यन्त दयनीय है। उसस बोला तक नही जाता नेत्रो मे निरन्तर जल बह रहा है वह नीचे सिर किए बैठा है और ऊचे ऊचे पुकार कर कहता है, हे प्रभु अब तुम्हारे बिना हमारा कौन सहारा है, उसका सारा धैय जाता रहा है। देखिए —

गदि गदि कठ नन जलु आयो। उमगिओ मोहु न जाइ समायो।
बिह्वल ह्वै करि नायो माथा। नानक त मुहि कीऊ अनाथा।
ऊच सुर करि करी पुकारा। सति गुर तो बिन कउन हमारा।
मूलचद का धीरज जेतो। गयो बिलाइ सरब ही तेतो।
(उ० ख ६।१६ २०)

यहाँ इनकी वेदना, अधीरता, व्याकुलता एव तत्सम्बन्धी सभी सात्विको का सजीव चित्रण हुआ है। उनकी वेदना करुणा का स्पश करती दीख पडती है। पुत्र के कोमल मनोहर रूप को निहारने से माता की प्रफुल्लता एव उसे किसी की नजर न लग जाए इस बात की आशका से राई और नमक आदि के वारने का कवि ने देखिए कितना स्वाभाविक चित्रण किया है —

अदभुत रूप देख करि माई वारे निम लूण पुनि राइ।२८।
काहू की इस नजरि न लागे, इति उति नानक खेल आगे।
ताहि उठाइ गोदि म लेहि, जननी करे सु बहुति सनेहि।२६।
पुरब पुरब म पुन्य करावहि, जिउ जिउ ब्राह्मण ताहि बतावहि। ३०
(वि स १)

यहाँ माता की ममता, स्नेह एव शुभ-कामना की भी सुन्दर व्यजना हुई है। जिस समय नानक 'उदासी से लौट कर घर आए तब तो माता का मन आनन्दातिरेक से उछल पडा। वह उसे बार बार अपनी गोदी मे बिठा कर चूमती है और उसका कुशल क्षेम पूछती है। उसके नेत्रो से आनन्द के अश्रु बहने लगते हैं —

जननी गुर आवती गोद लयो
सिर चूम बिठाइ पियार दयो।
जलु ननन ते चलियो बहिकै
कुसल सभि बूझिओ तो कहि कै। (प० ३० ख ११)

इस अवसर पर कवि ने उनके पुत्र श्रीचद के हप और आनन्द की भी व्यजना की है।

'गुरु नानक विजय' तथाकथित शृ गारकाल के अतिम चरण की रचना है किन्तु लगभग २५००० छन्दो के इस वृहद काव्य-ग्रथ म शायद ही कोई

छन्द गया मिले, जिसमे कामुकता अथवा रसिकता का उद्रेक होता हो। सतरेण ने निवृत्तिमूलक आध्यात्मिक जीवन पर बल दिया है और अन्य सतो की भाति नारी को अग्नि और भुजग समान कहा है, जो जीव की साधना मे सब से बडी बाधा है। इसलिए उसने उससे बचे रहने की चेतावनी दी है। *'मन प्रबोध' मे इस तथ्य का निरूपण सिद्धान्त रूप मे किया गया है* और 'गुरु नानक विजय' मे कथा के विभिन्न प्रसगो के माध्यम से इसे काव्यमय अभिव्यक्ति मिली है। सचुखड की ज्वाला स्वरूपा नारियाँ अपने अतुलित तेजस्वी रूप-सौन्दर्य एव सब भावो से नानक को मोहित करना चाहती हैं। कवि ने उनके सौन्दर्य का चित्रण अवश्य किया है लेकिन नानक पर उनका कोई प्रभाव नही पडता। तपस्विया की परीक्षा हेतु अप्सराओ के अदभुत सौन्दर्य एव मोहक भाव भगिमाओ का चित्रण भी प्रसगवश किया गया है, परन्तु कही भी शृगारिक भावना का विकास नही होता। यहा रूप चित्रण के भी वशीकरण मत्रो के प्रहार अधिक हैं, सौन्दर्य का जादू कम। कुछ हाव भावो का उल्लेख मात्र हुआ है। वस्तुत, 'गुरु नानक विजय' का शृगार वर्णन नारी के सौन्दर्य चित्रण तक ही सीमित है, और सौन्दर्य चित्रण भी प्राय रीति-पद्धति पर आधारित है। सुलक्षणी का सौन्दर्य-वर्णन भी परम्पराबद्ध है। ग्रामीण स्त्रिया कनक मजरी तथा एक अन्य राजकुमारी के सौन्दर्य चित्रण मे कुछ सहजता, सजीवता एव स्वाभाविकता अवश्य है, लेकिन कही भी कामोत्तेजना को प्रदर्शित नही किया गया। कवि का लक्ष्य इसी तथ्य का प्रतिपादन करना है कि नारी मोह माया है उसका आकर्षण छलना है यह योगी मुनियो को भी मोहित *करके साधना च्युत कर देती है, इसलिए मनुष्य को इससे बचे रहना चाहिए।* अर्थात् सतरेण का शृगार वर्णन शान्त रस के आश्रित है। शृगार रस का स्वतन्त्र रूप मे पूर्ण विकास इस ग्रन्थ मे नही हो पाया। नानक भी गृहस्थी अवश्य थे लेकिन उनका जीवन एक विरक्त साधु का सा था। पत्नी तलवडी मे है और आप बहन के घर सुलतानपुर मे। उनकी सास बेटी की इस दशा को देख कर दुखी है और उसे सुलतानपुर भिजवाने का प्रयत्न करती है। पत्नी के सुलतानपुर पहुचने पर नानक पूछते हैं 'कहो सुलक्षणी, तुम क्या चाहती हो'? और उसका निवेदन है, हे प्रभू आप सब के मन की जानते हैं मैं तुम से क्या कहूँ मैं तो रात दिन तुम्हारा ही ध्यान करती हू तू ही मेरा तन मन, धन परमेश्वर है यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो एक वर दीजिए। मै नित्य तुम्हारा नाम तुम्हारी कथा सुनती रहूँ मुझे धन सम्पत्ति की भी इच्छा नहीं मेरी यही अभिलाषा है कि मेरा उद्धार हो जाए (वि० ख० १८।२७ २८)।

यहा मध्ययुगीन पति परायणा नारी की पति भक्ति एव आत्म समर्पण तो देखा जा सकता है लेकिन दीर्घकालीन वियोग-व्यथा को सहकर पति से मिलने वाली मुग्धा नारी का प्रलाप निवेदन और आवेग इसमे नही है। यही है नानक

के गृहस्थ जीवन की झाकी। श्रीचन्द की उत्पत्ति श्रीफल से हो जाती है और लक्ष्मीचन्द की लौंग से। शृगार के लिए नानक के जीवन म कोई स्थान नहीं है।

नानक को भेजे गए सुलक्षणी के सदेश म अवश्य ही उसकी विरह-जनित व्यथा अधीरता, मिलनाकाक्षा, प्रणयातुरता, आत्म निवेदन एव समपण की भव्य व्यजना हुई है। यथा—

> पुनि चन्दु की दुहिता जु अही। तिन बारहि बार प्रमाण कही।
> तुमरा नित ध्यान करे घर म। परमातम जान मना उर मे।
> तव ध्यान बिना नहि चैन परै। निस बासर तोहि सु याद कर।
>   तिन कह्यो बहु परणाम करि पुनि आप सा सुणि लीजिय।
>   मम जाण दासी आपणी इक बार दरसनि दीजिय।
>   बहु बार तिनि मोको कह्यो जलु नैन म भरि आइयो।
>   मम पिआ को द्विज जाइ क मोहि हाल सरब सुणाइयो।
>   (वि० स० १७)

इसम अनुभूति की तीव्रता है और अभिव्यक्ति भी अत्यन्त सहज एव मार्मिक है। लेकिन इसम भी बडी मर्यादा और सयम से काम लिया गया है। सुलक्षणी प्रत्यक्ष रूप म यह सदेश कहती नही दिखाई गयी, वरन एक विप्र द्वारा यह सन्देश नानक को सुनाया गया है। परोक्ष रूप से वह जान के कारण इससे सुलक्षणी की मर्यादा की ही रक्षा हुई है। एक स्थान पर, विवाह म पूव विप्र द्वारा नानक के गुण श्रवण स उत्पन्न सुलक्षणी के पूवराग की भी व्यजना की गई है।

रौद्र भयानक, बीभत्स एव करुण रस के प्रसग इस ग्रथ म बहुत कम हैं। कहीं-कहीं इनस सम्बन्धित भावो की व्यजना प्रसगवश गौण रूप स ही हुई है। जसे फकीरों के कार्यों स रहमत शाह के क्रोधित होन म (उ० स० १४) तथा एक महत द्वारा मूर्ति के स्थान पर नानक को हार पहना दिय जान पर ब्राह्मण के क्रोधित होन (वि० स०१४) क प्रसग म रौद्र रस की पुष्टि होती है। इन स्थलो पर 'अति क्रोध भयो तिन क मनि म, इग लाल करे जनु आग मसाला" तथा 'रहमत शाे दिल एस भया मनो घाउ पै पावक दयो" आदि कुछ भावा भिव्यजक अनुभावो की छटा भी देखी जा सकती है। सिद्धो की बनाई हुई साँपो (उ० स० १२) तथा गोरखनाथ द्वारा बलपूवक नानक को योगी बनाए जान क प्रयत्न से रुष्ट होकर परमात्मा द्वारा प्रस्तुत प्रलय (स० स०४) आदि क दृश्यों म कुछ भयावह वातावरण की सृष्टि होती है। बाबर द्वारा एमनाबाद क विध्वस किए जान क प्रसग म (उ० स० १५) बीभत्स रस का भी उद्रेक हुआ है और चन्द्रभानु क वध में रुदन स उसकी माता क शोक म (प० उ० स० १८) करुण रस का चित्रण देखा जा सकती है। मतिरिक्त इन सभी रसा

की परिणति प्राय शान्त रस म ही होनी है।
नानक का लक्ष्य था—दान, दया, धम का प्रचार करना। इसीलिए इस
ग्रन्थ म नानक के दानवीर, दयावीर एव धमवीर रूप प्रमुख हैं। नानक धम-
विजय के उत्साह म अनेक स्थानो का भ्रमण करते हैं। लेकिन उनके इस धम-
प्रचार को शान्त रस के अन्तगत स्थान देना ही अधिक उचित होगा।
नानक के जन्मोत्सव पर उनके पिता का खुले दिल से दान देने का उत्साह
(अ० ख० १५।२६) तथा नानक द्वारा निश्चित होकर ब्राह्मणो को मोहरें
लुटाना (वि० स० ७२), दानवीरता के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। नानक दया के
अवतार हैं और दीना दुखियो और रोगियों का उद्धार करते हैं जिसम उनका
दयावीर रूप ही उदघाटित होता है। जहाँ तक युद्ध-वीरता का सम्बन्ध है
नानक स्वय तो युद्धवीर हैं नही, बाबर और इब्राहीम लोदी के ऐमनाबाद युद्ध
के प्रसग म ही युद्धवीरता की अभिव्यजना हुई है। यह प्रसग बहुत ही सक्षिप्त
है, लेकिन इसमे भी योद्धाओ के व्यक्तित्व, उनके डील डौल, रण-सज्जा, उत्साह
दृढ़ता, रणोल्लास एव साहस, सेना की साज-सज्जा एव प्रस्थान की तयारी
दुदभि पटे, निशान तुरी घटे, नौबत, ढोल आदि रण-वाद्यो की ध्वनि, सनिको
के कोलाहल प्रहार प्रतिप्रहार, मार-काट, गवपूण ललकार, अस्त्र-शस्त्रो की
झकार, तीर-सधान, तुफग और तलवार के प्रहार, सनिको का भूखे भेडियो की
तरह भिडना, उनकी सिंह-गजना एव आरक्तनयन तथा लोथो पर लोथो के गिरने
आदि का बहुत ही यथाथ, सजीव सतुलित और ओजस्वी चित्रण किया
गया है।

इस युद्ध-वणन म कुछ कौतुकता का तत्व भी है और ऐसे स्थल भी है
जहाँ "किते सूर कटि धरि परे कहा न जाइ सुमार' (प्र० ख० ३।१२) आदि
द्वारा युद्ध की भीपणता का उल्लेख मात्र ही हुआ है लेकिन ऐसे दृश्य भी देखे
जा सकते हैं, जहाँ एक-एक पक्ति म ही युद्ध स्थिति और योद्धाओ का चित्रात्मक
और भाव-व्यजक चित्र अकित कर दिया गया है। निम्न पक्तिया म युद्ध की
भीपणता का देखिए कितना यथाथ चित्रण किया गया है—

दुहू ओर सेना खडी झूलें पटे निसान।
चहू ओर मारू बजे देखहि दव बिबान॥
देखहि देव अकाश म मचियो जुद्ध अपार।
किते सूरि कटि धरि परे करा न जाई सुमार॥१२

भरे सु बीर नूर म कटे सु ताहि हूर म।
पठाण बीर सूरम चढे सो ललकार के।
पटे निसान झूलई सु बीर मार फूलई मचा
सु हाल हूलई कितेकि भागे हार क।

धरती डगडोल उठी सगली जब बीर बिराहम आप चढ्यो।
महि कासप औरु बराह दबे दिगजन रहे डगडोल राहे सो।
(प्र० ख० ३)

इब्राहीम की विशाल सेना के प्रस्थान से पृथ्वी डगमगा उठती है और वराह शेष एव दिग्गज बेहाल हो उठते हैं।

इसी प्रसग म युद्ध क्षेत्र का वणन करते समय उन्होंने सेनानियों के रक्त रजित अग[1], कटे हुए हाथ[2], फटे हुए पेट, गिरते हुए सिर[3] आमिष का कीचड[4] तडपती हुई लोथों के ढेर,[5] और अघोर कव धा का विषम मूलक चित्रण भी किया है एव जोगनी बेताल शेष, कश्यप, वराह दिग्गज विमानारूढ देवता, दत्य, राम, दुर्योधन, भीम, बाली आदि का प्रकृत एव अप्रकृत रूप म वणन करते हुए पुराणानुकूल वातावरण उत्पन्न करने का यत्न किया है।[6]

डा० हरिभजन सिंह ने ठीक ही कहा है कि "इस युद्ध के पक्षद्वय के सेनानी मुसलमान हैं किन्तु युद्ध का वातावरण 'नानक विजय' के अपने अनुरूप है।"— युद्ध से पहले इब्राहीम लोधी के कुशासन[7] के प्रति सकेत करके उन्होंने युद्ध की अनिवायता और युद्ध के उपरात मुगल सेना के अत्याचार की झाकी उपस्थित कर युद्ध की निरथकता व्यजित कर दी है[8]।"

इन प्रमुख भावो के अतिरिक्त कवि ने निराशा, पश्चाताप, ग्लानि, अनुताप, निश्चय, शका, खेद, कृतज्ञता गव, अहकार दीनता, उत्सुकता, चिन्ता, हर्ष आदि कुछ अन्य अनुवर्ती मनोवेगो की भी मार्मिक व्यजना की है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

---

१ लाखो काट डारे लोहू अगन चुचाव हैं (प्र० ख० ३।१५)
२ एकन के हाथ कटे, एकन के पेट फटे,
सरत सो नाहि हटे, मची रन रोलई। (प्र० ख० ३।१६)
३ सु पटापटी सीस लगे गिरने जिम पौन प्रचड सिरी फलु झारे।
(प्र० ख० ३।३०)
४ आमिख की मची घान चल न सकै जवान। (प्र० ख० ३।१७)
५ चढि लोथन ऊपरि लोथ गई जिम गोन लगावति है बणजार।
इक घाइल बीर पडे रण म धरि लोटति है मछली बिन बारे।
(प्र० ख० ३।२६)
६ गुरुमुखी लिपि म हिन्दी काव्य—पृ० ३३६ (डा० हरिभजनसिंह)
७ मच्यो घोर देस के माहि। बिप्र सन्त दुखाए ताहि।
गऊ गरीब भये दुख्यारे। म्लेछों के तिन धरम बिगारे।
८ गुरुमुखी लिपि म हिन्दी काव्य पृ० ३३८ ३३९

'पश्चात्ताप' की अग्नि में जलते हुए एक पापी के सच्चे हृदयोद्गारों की झलक देखिए—

घर छूट गए छूट गाम गये धन की लहर सब पारहि पारे ।
पुनि त्याग गये सब जीवन के सब पाप बतागरी सब डारे ।
सब त्रिगुणे गये गग । पर पाप गये नहि जाइ हमारे ।
हम पाप समुन्दर माहि डुबे तुमरे बिन को अब मोहि उभारे ।
सरबातम तू परमातम तू पर ते पर तू गुनि ते तुम न्यारे ।
जग भासक तू प्रतिभासक तू जग भासत तू सब माहि हमारे ।
बखसो बखसो बखसो हमरा । बखसो हमरो गुर सतु उभारे ।
(उ० ग० २०१८६)

सघरनाथ में अहंकार की एक झलक देखिए—
सुणि सघरनाथ कह्या सुनि ते अगि कौन रहै ठहरै मम आग ।
इस नानक की गणती किस मैं, हमरे डर है शिव आदिक भाग ।
(सु० ग० २१५६)

अपने हितचिंतक पिता की हत्या करने के लिए प्रवृत्त चन्द्रभान के मन के अनुताप एवं ग्लानि का चित्र देखिए—
हमरा पड़ना सभि कूप भयो, पछताप करे अगि जाइ सु धारी ।
हमरा धृग जीवन है जग म तन त्यागन की मनसा तिन धारी । ६ ।
महा योग इहु पिता हमारा, तिसका बधि मन माहि बिचारा ।
भारी भयो एहु अपराध, इहु मन माहि बिचारियो साध । ७ ।
करी पालना इसने मेरी अहि निस भला सु अब लग हेरी ।
सभि सासत इन मोहि पढ़ाये, अब लग एहु सु मोहि सिखाए । ८ ।
बार बार मन म पछताए, नैननि ते चलिउ जलु जाए ।
(च० उ० ख० १४)

विप्र से यह सूचना पाकर कि नानक सुलक्षणी से सम्बन्ध नही रखता सुलक्षणी की माता चन्दो की जो दशा हुई, उसका कवि ने बड़ी ही सहजता से मार्मिक चित्रण किया है । यथा—
सुनि कै द्विज ते बरताति सब, अपने मन माहि भई दुखिआरी ।
अपने मन की मनमाहि रखी, द्विज पास नही तिन बात उचारी ।
करती करती मन माहि बिचार, भई दुबली दुख माहि उचारे ।
करि क मन माहि बिचार भले, अपने पति पै तिन बात उचारी ।
पति ऊपरि कोप कर्यो मन मैं, तिस काइ कहै अब सोइ उदारी ।
बहु बाक अजोग कहै तिसनैं, तुम कूप बिखैं दुहिता मम डारी ।
सबि बारहि बार कहै पति को दुहिता हमरी अति आहि दुलारी ।
(वि० ख० १७२६)

वस्तुत ,'गुरु नानक विजय' मे ऐसे अनेक स्थान मिलेंगे, जहाँ विशेष स्थितियों म पात्रो की मनोदशा की यथाय एव मार्मिक व्यजना की गई है।

इस तरह हम दखते हैं कि यद्यपि इस ग्रथ म भावो की व्यजना बहुत विद दना से तो नही हुई, तथापि इसम ऐसे स्थल पर्याप्त सख्या म मिलत हैं, जहा विविध मानवीय मनोवेगो एव सवेदनाओं की मार्मिक व्यजना हुई है और हम समझत हैं कि इन्ही भाव व्यजक कथाशो के आधार पर इस ग्रथ को श्रेष्ठ काव्य-कृतियो की पक्ति मे स्थान दिया जा सकता है।

छद-योजना

इस ग्रथ मे लगभग १५० छन्दो का प्रयोग किया गया है। छन्द वविध्य की दृष्टि से यह रचना 'राम चन्द्रिका' (केशव) एव 'दशम ग्रथ' के निकट है। कथा काव्यो के लिए इस प्रकार का छद-ववियध्य अधिक अनुकूल नहीं पडता। कथा के स्वाभाविक प्रवाह एव प्रभाव के लिए एक निश्चित पद्धति पर आधारित छद योजना अधिक उपयोगी होती है। बार बार छद-परिवतन कथा के स्वाभाविक प्रवाह मे शिथिलता एव अवरोध उत्पन्न कर देता है। नानक विजय' मे किसी निश्चित पद्धति का अनुकरण नही किया गया है यद्यपि दोहा चौपई पद्धति का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। इसम प्रयुक्त छद ये हैं—

मात्रिक—अडिल, अनरूपा, दोहरा, दरपन दुवया, सोरठा, सलोक, सवर, सुन्दर सोहणि चौपई, चरपट चुलका, चुटकला छपै, रुआल, कुण्डलिया तोमर त्रिभगी बहता, बरन, विचित्र पदी बिबेक झूलना, मधुभार, मतिनाग, मनिहरि लाउणी, लीलवती गीता, पाधडी, पुनहित, पवगम, परणा, पदरक, पोसवती, पउडी, उगाहा, धक्का।

वर्णिक—अनग सेखर, अवडा, अमला, अनुकूला, अडूहा, अनुपाति गति, दधविआपक, दोधक दूमल दुरमला, नराज नारायण नाटक मिरगति, सवैया, कवित्त, सुदर, सरगनो सखनारी, सोतग्लिनैन, ससिबदना, श्रीख्याता, सुनरा, सारगी, समगति, चामर, चचला, चुबोला, चित्रपदा चद्रमणी, चटपट, इदव, इक बोला, रसावल कन्या, कदमै, किरीट, तिगदा, ताटक, तिलका, डडिका ठलणा, विसभरि विमला, बिजै, मतगयद मोदक, मोतीदाम, मधुमति, माती, मनावली, मलक, माणवक, मालती भुजगप्रयात, गणिपति, प्रमाणिका, पचाल, पक्तिनामा, हरिबाल धारा, उडविण, धनाक्षरी आदि।[1]

इसमे से अधिकतर छद ऐसे हैं जो हिदी के किसी भी कवि ने प्रयुक्त नही किए हैं। कुछ स्व निर्मित छदो का प्रयोग भी सतरेण न किया है जो बहुधा दो छन्दो के मिश्रण स बनाए गय हैं। उनके काव्य म सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाले छद हैं—दोहा, चौपई, कवित्त, सवैया, छप्पय। पक्तिनामा, ससिवदना, नाटक धारा, कन्या विमला, तिगदा जसे कुछ बहुत ही लघु छन्दो का भी प्रयोग

१ उदासी सम्प्रदाय और कवि सतरेण—पृ० १७८ से उद्धृत

किया गया है। इस तरह के छन्दों में कहीं-कहीं बहुत ही सुन्दर और मार्मिक सवाद आए है। उदाहरण के लिए यह छन्द देखिए—

मह्यो मान। कह्यो मान।
कियो मान। गुन गान।
पूछ्यो तोहि। कह्यो मोहि।
गहे जोर। कह्यो तोर।
सुभ मोद। कह्यो मोद।
भनो यात। कह्यो तात। (विजय १०१२२)

इस छन्द का नाम है 'नाटक' और इसमें इसके नाम के अनुरूप ही नाटकीयता है।

'गुरु नानक विजय' के छन्दों में कहीं-कहीं मात्रा एवं लय दोष आदि की शिथिलता भी आ गई है। हमारे विचार में इस ग्रन्थ की छन्द-योजना में वचित्र्य एव चमत्कार अधिक है रसानुकूलता भावोत्कर्ष एव स्वाभाविकता कम।

भाषा

कृष्ण भक्ति के सरस एव रीतिकालीन चमत्कारवादी कवियों के हाथों से मँज सँवर कर ब्रज भाषा अत्यन्त परिष्कृत, परिमार्जित प्रौढ़ मधुर सरस एव विदग्धतापूर्ण हो गई थी। पजाब में भी ब्रज भाषा की एक दीर्घ काव्य-परम्परा है, जिसमें भाषा का रूप निरतर परिष्कृत होता गया है। दशमग्रंथ में भाषा के प्रौढ रूप के दर्शन होते हैं। नानक विजय से कुछ ही समय पूर्व रचित 'गुरु प्रताप सूरज' एव 'नानक प्रकाश' (भाई सतोखसिंह) की भाषा भी अत्यन्त परिमार्जित, प्रौढ एव समर्थ है। लेकिन 'नानक विजय' में भाषा के ऐसे साफ सुथरे और प्रौढ रूप के दर्शन नही होते। यह ग्रन्थ सत काव्य परम्परा के अनुकरण पर लिखा गया है, इसलिए इसकी भाषा का रूप भी सतों की सी भाषा का है, जिसे साधु भाषा सत भाषा अथवा खिचड़ी भाषा' कहा जा सकता है। इसमें ब्रज के अतिरिक्त खडी बोली, पजाबी, फारसी एव अरबी के शब्द बहुतायत से आए हैं। वे भी प्राय तद्भव रूप मे। इसीलिए भाषा मे व्यावहारिकता अधिक है साहित्यिक सौन्दर्य कम। मुलतानी और दक्खिनी के भी बहुत से शब्द आ गए है ग्रामीण शब्द भी खूब आए हैं और इसमे स्थानीय रग भी बहुत गहरा है। शब्दों का अग भग भी स्वतन्त्रता से किया गया है। कुल मिलाकर भाषा अनगढ और अस्थिर है। कहीं-कही रसानुकूल माधुर्य और ओज भी है लेकिन अधिकतर स्थानों पर भाषा लोक-कवियों के समकक्ष है। कही कही अभिव्यक्ति की सहजता एव व्यावहारिकता मन को मोह लेती है। आपस में लोक कहे सुदरि बरात ऐसी, हमरे सहरि माहि कबू नाहि आई है' अथवा मन कहिउ बहुति समुझाई परि तुमरे मनि एक न भाई' आदि उक्तियाँ इसका उदाहरण

हैं। बहुत से मुहावरे लोकोक्तियो एव सूक्तियाँ भी इस ग्रथ मे आई हैं, जिनसे भाषा की व्यावहारिकता और सामर्थ्य की अभिवृद्धि हुई है। लेकिन कई स्थाना पर यह व्यावहारिकता अथवा सहजता वार्त्ता की सी इतिवृत्तात्मकता, नीरसता एव गद्यात्मकता का स्पर्श करने लगती है।

वस्तुत, साहित्यिक दृष्टि से इस ग्रथ की भाषा मे कोई उल्लेखनीय विलक्षणता नही है। सम्भव है भाषा वैज्ञानिको के लिए यह ग्रथ कुछ उपयोगी सिद्ध हो सके—विशेष रूप से उस युगकी पजाब की जन भाषा का निश्चय करने के लिए और काव्य म खडी बोली तथा ब्रज भाषा के सम्बन्ध का इतिहास जानने के लिए। इस युग मे सत भाषा म इतने बडे आकार का काव्यग्रथ लिखा गया, यह तथ्य भी उपेक्षणीय नही है।

अलकार

कालावधि की दृष्टि से यह रचना रीतिकाल के ही समीप पडती है उस रीतिकाल के जिसमे कलाविदो ने अपनी रचनाओ को विविध अलकारो की चमक-दमक से जगमगाया है और अपने अलकार शास्त्र के ज्ञान को खुल कर प्रदर्शित किया है। लेकिन जिस प्रकार सतो एव भक्त-कवियो की रचनाओ मे अलकारा का प्रयोग अभिव्यक्ति को अधिक साथक सक्षम, सरस, स्पष्ट एव प्रभावशाला बनाने के लिए स्वाभाविक रूप मे अनायास ही हुआ है, उसी प्रकार सतरेण ने भी ब्रह्म, जीव, जगत माया सुख दुख आदि की व्याख्या के लिए, वस्तु-वणन म सजीवता लाने के लिए अथवा भावा की धार्मिक अभिव्यजना के लिए स्वाभाविकता से ही किया है। काव्य शास्त्रीय ज्ञान प्रदर्शित करने के लिए अथवा काव्य को चमत्कार युक्त बनाने के लिए अलकारो का सायास प्रयोग सतरेण ने नही किया। उन्हाने अपने काव्य के सम्बन्ध मे स्वय कहा है—'सीधे वचनि बनाइ'। अर्थात् उसम स्वभावोक्ति या सहजता की प्रवृत्ति प्रधान है चमत्कारिक विधान की नही।

नख सिख वणन म कुछ चमत्कारिक प्रयोग मिलते हैं। अनुप्रास का प्रयोग भी कही-कही रीतिकालीन पद्धति पर हुआ है यथा—

राम रावन रिशी रमासु एकरोहनी, रूपरग राम को सेतु बसत सोहनी।
रुदर रसग रुदराछ रास राधका गनी, रन राज रेवती सुदास राग रागनी।
(म ख ४।१५)

'र' की इतनी अधिक आवृत्ति सायास ही हुई है। लेकिन ऐसे चमत्कारपूण प्रयोग इस रचना मे नगण्य ही हैं। श्लेष और यमक के चमत्कार का प्राय अभाव है।

जहाँ तक अर्थालकारा का सम्बन्ध है 'गुरु नानक विजय म विभावना, उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक, अतिशयोक्ति दृष्टान्त, उदाहरण, व्यतिरेक, सन्देह अनन्वय तद्गुण अर्थान्तरन्यास प्रतिवस्तूपमा, कारणमाला आदि ऐसे अलकार ही अधिक आए हैं जिनकी सहायता से धार्मिक तत्वा का प्रतिपादन अधिक स्पष्टता और सुविधा से किया जा सकता है। इनम सादृश्य-मूलक

किया गया है। इस तरह के छन्दों में कहीं-कहीं बहुत ही सुन्दर और मार्मिक संवाद आए हैं। उदाहरण के लिए यह छन्द देखिए—

अहो भ्रात। कहो तात।
किया घात। सुनो बात।
सुणो ताहि। कहो मोहि।
करे कौन। कहो तौन।
सुण भ्रात। कहो गात।
भयो घात। कहो तात। (वि ग १०।२२)

इस छन्द का नाम है 'नाटक' और इसमें इसके नाम के अनुरूप ही नाटकीयता है।

गुरु नानक विजय के छन्दों में कहीं-कहीं मात्रा एवं लय दोष आदि की शिथिलता भी आ गई है। हमारे विचार में इस ग्रंथ की छन्दयोजना में वैचित्र्य एवं चमत्कार अधिक है, रसानुकूलता, भावोत्कर्ष एवं स्वाभाविकता कम।

भाषा

कृष्ण भक्ति के सरस एवं रीतिकालीन चमत्कारवादी कवियों के हाथों से मँज सँवर कर ब्रज भाषा अत्यन्त परिष्कृत, परिमार्जित, प्रौढ़, मधुर, सरस एवं विदग्धतापूर्ण हो गई थी। पंजाब में भी ब्रज भाषा की एक दीर्घ काव्य-परम्परा है, जिसमें भाषा का रूप निरंतर परिष्कृत होता गया है। 'दशमग्रंथ' में भाषा के प्रौढ़ रूप के दर्शन होते हैं। 'नानक विजय' से कुछ ही समय पूर्व रचित 'गुर प्रताप सूरज' एवं 'नानक प्रकाश' (भाई संतोखसिंह) की भाषा भी अत्यन्त परिमार्जित, प्रौढ़ एवं समर्थ है। लेकिन 'नानक विजय' में भाषा के ऐसे साफ सुथरे और प्रौढ़ रूप के दर्शन नहीं होते। यह ग्रंथ संत काव्य परम्परा के अनुकरण पर लिखा गया है, इसलिए इसकी भाषा का रूप भी संतों की सी भाषा का है जिसे साधु भाषा, संत भाषा अथवा 'खिचड़ी भाषा' कहा जा सकता है। इसमें ब्रज के अतिरिक्त खड़ी बोली, पंजाबी, फारसी एवं अरबी के शब्द बहुतायत से आए हैं। वे भी प्रायः तद्भव रूप में। इसीलिए भाषा में व्यावहारिकता अधिक है, साहित्यिक सौन्दर्य कम। मुलतानी और दक्खिनी के भी बहुत से शब्द आ गए हैं, ग्रामीण शब्द भी खूब आए हैं और इसमें स्थानीय रंग भी बहुत गहरा है। शब्दों का अंग भंग भी स्वतन्त्रता से किया गया है। कुल मिलाकर भाषा अनगढ़ और अस्थिर है। कहीं कहीं रसानुकूल माधुर्य और ओज भी है लेकिन अधिकतर स्थानों पर भाषा लोक कवियों के समकक्ष है। कहीं-कहीं अभिव्यक्ति की सहजता एवं व्यावहारिकता मन को मोह लेती है। 'आपस में लोक कहै सुंदरि बरात ऐसी, हमरे सहरि माहि कबू नाहि आई है,' अथवा 'मनें कहिउ बहुति समुझाई परि तुमरे मनि एक न भाई" आदि उक्तियाँ इसका उदाहरण

हैं। बहुत से मुहावरे लोकोक्तियो एव सूक्तियाँ भी इस ग्रथ मे आई हैं, जिनसे भाषा की व्यावहारिकता और सामर्थ्य की अभिवृद्धि हुई है। लेकिन कई स्थाना पर यह व्यावहारिकता अथवा सहजता वार्त्ता की सी इतिवृत्तात्मकता, नीरसता एव गद्यात्मकता का स्पर्श करने लगती है।

वस्तुत, साहित्यिक दृष्टि से इस ग्रथ की भाषा मे कोई उल्लेखनीय विलक्षणता नही है। सम्भव है भाषा वैज्ञानिका के लिए यह ग्रथ कुछ उपयोगी सिद्ध हो सके—विशेष रूप से उस युगकी पजाब की जन भाषा का निश्चय करन के लिए और काव्य म खडी बोली तथा ब्रज भाषा के सम्बन्ध का इतिहास जानने के लिए। इस युग म सत भाषा म इतन बडे आकार का काव्यग्रथ लिखा गया, यह तथ्य भी उपेक्षणीय नही है।

अलकार

कालावधि की दृष्टि से यह रचना रीतिकाल के ही समीप पडती है उस रीतिकाल के जिसम कलाविदा ने अपनी रचनाओ को विविध अलकारो की चमक-दमक से जगमगाया है और अपने अलकार शास्त्र के ज्ञान को खुल कर प्रदर्शित किया है। लेकिन जिस प्रकार सता एव भक्त-कविया की रचनाओ मे अलकारा का प्रयोग अभिव्यक्ति को अधिक साथक, सक्षम, सरस, स्पष्ट एव प्रभावशाली बनान के लिए स्वाभाविक रूप म अनायास ही हुआ है, उसी प्रकार सतरेण न भी ब्रह्म जीव, जगत माया सुख-दुख आदि की व्याख्या के लिए, वस्तु-वणन म सजीवता लाने के लिए, अथवा भावा की धार्मिक अभिव्यजना क लिए स्वाभाविकता स ही किया है। काव्य-शास्त्रीय ज्ञान प्रदर्शित करने के लिए, अथवा काव्य का चमत्कार युक्त बनाने के लिए अलकारा का सायास प्रयोग सतरेण ने नही किया। उन्होंने अपने काव्य के सम्बन्ध मे स्वय कहा है— सीधे वचनि बनाइ। अर्थात् उसमे स्वभावोक्ति या सहजता की प्रवृत्ति प्रधान है चमत्कारिक विधान की नहीं।

नख सिख वणन म कुछ चमत्कारिक प्रयोग मिलते हैं। अनुप्रास का प्रयोग भी कही-कहा रीतिकालीन पद्धति पर हुआ है यथा—

राम रावन रिपी, रमासु एकरोहनी, रूपरग राम को सेतु बसत सोहनी।
रुदर रसग रुदराछ रास राधका गनी, रैन राज रेवती सुदास राग रागनी।
(मख ४।१५)

यहा 'र' की इतनी अधिक आवृत्ति सायास ही हुई है। लेकिन ऐसे चमत्कारपूर्ण प्रयोग इस रचना मे नगण्य ही हैं। श्लेष और यमक के चमत्कार का प्राय अभाव है।

जहा तक अर्थालकारा का सम्बन्ध है 'गुरु नानक विजय' म विभावना, उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक अतिशयोक्ति दृष्टान्त उदाहरण व्यतिरेक, सन्देह, अनन्वय तद्गुण अर्थान्तरन्यास, प्रतिवस्तूपमा कारणमाला आदि ऐसे अलकार ही अधिक आए हैं जिनकी सहायता स धार्मिक तत्वा का प्रतिपादन अधिक स्पष्टता और सुविधा से किया जा सकता है। इसम सादृश्य-मूलक

किया गया है। इस तरह के छन्दों में कहीं-कहीं बहुत ही सुन्दर और मार्मिक सवाद आए हैं। उदाहरण के लिए यह छन्द देखिए—

अहो बाल। कहो लाल।
किया नाम। गुण धाम।
पूछो ताहि। कहो मोहि।
कहे जान। कहो तोन।
सुम कोइ। कहो मोइ।
भनो यान। कहो ताप। (नि स १०।२२)

इस छन्द का नाम है 'नाटक' और इसमें इसके नाम के अनुरूप ही नाटकीयता है।

गुरु नानक विजय के छन्दों में कहीं-कहीं मात्रा एवं लय दोष आदि की शिथिलता भी आ गई है। हमारे विचार में इस ग्रंथ की छन्दयोजना में वचित्र्य एवं चमत्कार अधिक है रसानुकूलता, भावोत्कर्ष एवं स्वाभाविकता कम।

भाषा

कृष्ण भक्ति के सरस एवं रीतिकालीन चमत्कारवादी कवियों के हाथों से मँज सँवर कर ब्रज भाषा अत्यन्त परिष्कृत, परिमार्जित प्रौढ़, मधुर, सरस एवं विदग्धतापूर्ण हो गई थी। पजाब में भी ब्रज भाषा की एक दीर्घ काव्य-परम्परा है, जिसमें भाषा का रूप निरंतर परिष्कृत होता गया है। 'दशमग्रंथ' में भाषा के प्रौढ़ रूप के दर्शन होते हैं। नानक विजय से कुछ ही समय पूर्व रचित 'गुरु प्रताप सूरज' एवं नानक प्रकाश' (भाई सतोखसिंह) की भाषा भी अत्यन्त परिमार्जित प्रौढ एवं समर्थ है। लेकिन 'नानक विजय में भाषा के ऐसे साफ सुथरे और प्रौढ रूप के दर्शन नहीं होते। यह ग्रंथ संत काव्य परम्परा के अनुकरण पर लिखा गया है इसलिए इसकी भाषा का रूप भी संतों की सी भाषा का है, जिसे साधु भाषा, संत भाषा अथवा खिचड़ी भाषा' कहा जा सकता है। इसमें ब्रज के अतिरिक्त खडी बोली पजाबी, फारसी एवं अरबी के शब्द बहुतायत से आए हैं। वे भी प्राय तद्भव रूप में। इसीलिए भाषा में व्यावहारिकता अधिक है साहित्यिक सौंदर्य कम। मुलतानी और दक्खिनी के भी बहुत से शब्द आ गए हैं ग्रामीण शब्द भी खूब आए हैं और इसमें स्थानीय रंग भी बहुत गहरा है। शब्दों का अंग भंग भी स्वतंत्रता से किया गया है। कुल मिलाकर भाषा अनगढ और अस्थिर है। कहीं-कहीं रसानुकूल माधुर्य और ओज भी है लेकिन अधिकतर स्थानों पर भाषा लोक कवियों के समकक्ष है। कहीं-कहीं अभिव्यक्ति की सहजता एवं व्यावहारिकता मन को मोह लेती है। 'आपस में लोक कहै सुंदरि बरात ऐसी हमरे सहरि माहि कबू नाहि आई है' अथवा 'मन कट्टिउ बहुति समुझाई, परि तुमरे मनि एक न भाई आदि उक्तियाँ इसका उदाहरण

हैं। बहुत से मुहावरे, लोकोक्तियों एवं सूक्तियाँ भी इस ग्रंथ में आई हैं, जिनसे भाषा की व्यावहारिकता और सामर्थ्य की अभिवृद्धि हुई है। लेकिन कई स्थानों पर यह व्यावहारिकता अथवा सहजता वार्ता की सी इतिवृत्तात्मकता, नीरसता एवं गद्यात्मकता का स्पर्श करने लगती है।

वस्तुतः साहित्यिक दृष्टि से इस ग्रंथ की भाषा में कोई उल्लेखनीय विलक्षणता नहीं है। सम्भव है भाषा वैज्ञानिकों के लिए यह ग्रंथ कुछ उपयोगी सिद्ध हो सके—विशेष रूप से उस युग की पंजाब की जन भाषा का निश्चय करने के लिए और काव्य में खड़ी बोली तथा ब्रज भाषा के सम्बन्ध का इतिहास जानने के लिए। इस युग में संत भाषा में इतने बड़े आकार का काव्यग्रंथ लिखा गया, यह तथ्य भी उपेक्षणीय नहीं है।

अलंकार

कालावधि की दृष्टि से यह रचना रीतिकाल के ही समीप पड़ती है, उस रीतिकाल के जिसमें कलाविदों ने अपनी रचनाओं को विविध अलंकारों की चमक-दमक से जगमगाया है और अपने अलंकार शास्त्र के ज्ञान को खुल कर प्रदर्शित किया है। लेकिन जिस प्रकार संतों एवं भक्त-कवियों की रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग अभिव्यक्ति को अधिक साधक सक्षम, सरस, स्पष्ट एवं प्रभावशाली बनाने के लिए स्वाभाविक रूप में अनायास ही हुआ है उसी प्रकार संतरेण ने भी ब्रह्म जीव जगत माया सुख-दुख आदि की व्याख्या के लिए, वस्तु-वर्णन में सजीवता लाने के लिए अथवा भावों की धार्मिक अभिव्यंजना के लिए स्वाभाविकता से ही किया है। काव्य शास्त्रीय ज्ञान प्रदर्शित करने के लिए, अथवा काव्य को चमत्कार युक्त बनाने के लिए अलंकारों का सायास प्रयोग संतरेण ने नहीं किया। उन्होंने अपने काव्य के सम्बन्ध में स्वयं कहा है— सीधे वचनि बनाइ। अर्थात् उसमें स्वभावोक्ति या सहजता की प्रवृत्ति प्रधान है चमत्कारिक विधान की नहीं।

नख सिख वर्णन में कुछ चमत्कारिक प्रयोग मिलते हैं। अनुप्रास का प्रयोग भी कहीं-कहीं रीतिकालीन पद्धति पर हुआ है यथा—

राम रावन रिसी, रमासु एकरोहनी रूपरग राम को सेतु बसत सोहनी।
रुन्दर रसग रूपराछ रास राधका रनी रन राज रेवती सुदास राग रागनी।
(म ख ४।१५)

यहाँ र की इतनी अधिक आवृत्ति सायास ही हुई है। लेकिन ऐसे चमत्कारपूर्ण प्रयोग इस रचना में नगण्य ही हैं। श्लेष और यमक के चमत्कार का प्रायः अभाव है।

जहाँ तक अर्थालंकारों का सम्बन्ध है 'गुरु नानक विजय' में विभावना उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक अतिशयोक्ति दृष्टान्त उदाहरण, व्यतिरेक सन्देह अनन्वय तद्गुण अर्थान्तरन्यास प्रतिवस्तूपमा कारणमाला आदि ऐसे अलंकार ही अधिक आए हैं जिनकी सहायता से धार्मिक तत्वों का प्रतिपादन अधिक स्पष्टता और सुविधा से किया जा सकता है। इसमें सादृश्य-मूलक

अलंकारों की प्रधानता है और अप्रस्तुत सादृश्यों के माध्यम से कवि अपने कथ्य को और अधिक बोधगम्य, प्रभावशाली एवं मार्मिक बनाकर प्रस्तुत कर सका है। वस्तु-वर्णन में रमणीयता, घटनाओं एवं क्रियाओं की सहज संवेदनशीलता तथा भावों की प्रभावपूर्ण प्रतीति के लिए मराल, मानसर मोती, सागर गज, सर्प, अजगर, मृग, सिंह तथा भ्रमर पावक, गागर, साग, नदी, कुल्हाड़ी, गंगाजल, सुहार, भानु चंद्रमा, पुष्प ठगिनी, कम्हार, स्वप्न, मछली, बगला मन मृगजल, मोरपंख चन्द, मनुष्य की छाया, रीछ आदि प्रभृति, ग्राम्य एवं सामान्य जीवन से सम्बन्धित पदार्थों को सादृश्य के रूप में प्रयुक्त किया गया है। इनमें से अधिक उपमान परम्परा मुक्त एवं लोक प्रसिद्ध हैं और इसलिए सहज ग्राह्य एवं सहज-संवेद्य हैं। कहीं-कहीं पौराणिक-उपमान भी प्रयुक्त किए गए हैं। एक उपमान कई-कई जगह विभिन्न संदर्भों में भी आया है। अमूर्त भावों की व्यंजना के लिए मूर्त उपमानों का प्रयोग भी किया गया है। वस्तुत, इस प्रकार का सादृश्य विधान एवं अलंकार-योजना इस प्रकार की धर्म प्रधान रचनाओं की एक आवश्यकता है। यदि इस तथ्य को ध्यान में रखा जाए कि यह ग्रंथ जन साधारण में धर्म प्रचार के लिए लिखा गया है, न कि विद्वानों की सभा में चर्चा के लिए तो इसकी भाषा शैली अथवा रचना-पद्धति की सार्थकता एवं उपयोगिता के सम्बन्ध में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि कवि ने अपनी अभिव्यक्ति का स्वरूप विषय एवं उद्देश्य के अनुरूप ही रखा है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से यह बहुत ऊँचे दर्जे की रचना नहीं कही जा सकती। यह स्वयंभू एवं पुष्पदंत द्वारा रचित जन चरित काव्यों के स्तर की रचना है जिसमें धार्मिक तत्व अधिक एवं काव्य सौष्ठव अपेक्षाकृत कम है। यह संत काव्य परम्परा में अंतिम महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध काव्य है। १६वीं शती के हिन्दी साहित्य में, जब कि शृंगारिकता एवं आलंकारिकता की प्रवृत्तियाँ प्रबल थीं, और राम काव्य धारा भी रसिकता की गंदी गलियों में बह रही थी, उस युग में उदात्त भावनाओं से युक्त, सरल सहज शैली से रचित यह वृहदाकार काव्य ग्रंथ विशेष महत्व रखता है।

१५

दरबारी वीरकाव्य

हिन्दी के अधिकतर वीरकाव्यो का प्रणयन राज्याश्रय मे हुआ है, और उनम आश्रयदाताओं के ग्रह, साहस और शौय आदि का ही अतिशयोक्तिपूण चित्रण किया गया है। पजाब म भी ऐसे कुछ वीरकाव्यो की रचना हुई है यद्यपि यहाँ ऐसे वीरकाव्य ही अधिक लिखे गए हैं जो धम-स्थापना की भावना से प्रेरित हैं और राज दरबारो के प्रभाव से बाहर रहकर लिखे गये हैं। दरबारी वीरकाव्या मे दो प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध हैं। एक तो गुरु (गोविंदसिह) दरबार मे रचित वीरकाव्य और दूसरे सिक्ख सरदारा के दरबारा मे लिखे गए वीरकाव्य। गुरु शोभा' (सेनापति) 'जगनामा गुरु गोविंदसिह (अणीराय), 'गोविंदबावनी' (हीर) प्रथम श्रेणी की रचनायें हैं जिनम वीर रस के उदात्त रूप के दशन होते ह, क्योंकि इनम चित्रित युद्ध असत्य अत्याचार और अयाय के विनाश और सत्य और याय की स्थापना के लिए लडे गए धमयुद्ध हैं। गुरु गोविंदसिह क दरबारी कविया मे हसराम, मगल, अमृतराई सैणा चदन, धन्नासिह सुन्दर, टहकण, कुवरेश, आलिम आशासिह आदि ऐसे अनक अय कवि थे जिन्होने मुक्तक रूप म गुरु गोविंदसिह के दरबार की शोभा, समृद्धि, उनकी दानशीलता शूरवीरता, साहस, दृढ़ता, धय, युद्ध-कुशलता, धम-परायणता, उनके गुणो एव आध्यात्मिक विचारों का विशद वणन किया है। इनके काव्य मे वीररस का ओजस्वी चित्रण हुआ है।

'गुरु-दरबार' के पश्चात् पजाब मे हिन्दी कविया ने सिक्ख राज दरबारा का आश्रय ग्रहण किया तथा इन सिक्ख सरदारो के सरक्षण म मूल्यवान साहित्य रचा गया। इन राज दरबारो मे रचित वीर काव्यो के विषय तथा वीर भावना की दृष्टि स दो भेद किये जा सकते हैं।

(क) पजाबी वीर काव्य परम्परा के काव्य

(ख) राजपूती वीर काव्य-परम्परा के काव्य।

'पजाबी की 'वीरकाव्य' परम्परा से हमारा अभिप्राय उन वीर-काव्यो से है जिन म पजाब की तत्कालीन युग-चेतना तथा सामाजिक जागरण की अभि

व्यक्ति हुई है और जिनमें युद्धों को धर्मयुद्ध की संज्ञा दी गई है, क्योंकि इन काव्यों के नायक किसी व्यक्तिगत स्वार्थ से लड़ते नहीं दिखाए गए वरन् वे एक महान प्रयोजन से दुष्टों के विनाश के लिए युद्ध कर्म अपनाते दिखाए गए हैं। 'वार अमरसिंह की' एक ऐसी ही रचना है। राजपूती वीर काव्य परम्परा के अन्तर्गत वे रचनायें आती हैं जिनमें रीतिकालीन वीर काव्यों की राजपूती वीरता का आदर्श प्रतिपादित है और वीरता के साथ शृंगार का भी मिश्रण है। इन्हें चारण-काव्य भी कहा जा सकता है। इन वीर काव्यों के नायक अपने शौर्य, प्रण-पालन प्रदर्शन, प्रतिशोध अथवा अपने आश्रित व्यक्ति की रक्षाहेतु आदि वैयक्तिक कारणों से लड़ते दिखाए गए हैं। 'हमीरहठ' ऐसी ही रचना है।

(१) वार अमर सिंह (केशव दास)

केशवदास की इस रचना का सम्बन्ध पटियाला नरेश महाराज अमरसिंह के भटियाना युद्ध से है, जो कि १७६६ ई० में लड़ा गया था अठारहवीं शताब्दी में नाभा तथा पटियाला में जिस फूल वंशीय सरदारों के राज्य की स्थापना हुई, वे उन्हीं वीर सिक्खों के वंशज थे जिन्होंने गुरु गोबिन्दसिंह के नेतृत्व में मुगलों के साथ अनेक धर्मयुद्धों में भाग लिया था। स्वभावतः उनके वंशजों में वह धार्मिक अनुराग देशप्रेम तथा वीर भावना अभी भी विद्यमान थी। यही कारण है कि इनके राज दरबारों का वातावरण हिन्दी भाषी प्रदेशों के विलासपूर्ण राज दरबारों से भिन्न था। इन राज दरबारों में जो साहित्य लिखा गया उसका स्वर भी उन राज दरबारों के साहित्य से पृथक है। इन पर आनन्दपुरीय साहित्य' का प्रभाव अधिक था और उसमें भक्ति एवं वीरता की प्रवृत्तियाँ प्रमुख हैं।

पटियाला राज्य के दूसरे नरेश अमरसिंह यशस्वी शूरवीर एवं काव्य-मर्मज्ञ व्यक्ति थे। उनके आश्रय में अनेक कवि विद्यमान थे। वहीं केशवदास नाम के एक कवि ने 'बारहमासा कृष्ण जी का' 'बुद्धि प्रकाश दर्पण' 'अष्टयामिका प्रेम पचीसा' 'वार अमरसिंह जी की' आदि अनेक रचनाओं का प्रणयन किया। 'वार अमरसिंह' वार शैली पर रचना है। इसमें कवि ने रचना काल का उल्लेख नहीं किया। राजा अमरसिंह का शासन काल १७६५ से १७८० ई० तक है, और जिस युद्ध का वर्णन इस रचना में हुआ है वह १७६६ में लड़ा गया था। इससे यह सिद्ध होता है कि यह १७६६ से १७८० ई० के बीच की रचना है। इसका कथानक इस प्रकार है।

कर लिया। उनके अत्याचारो से तग आकर हिन्दू प्रजा ने राजा अमरसिंह की शरण ली। महारानी से प्रेरणा पाकर महाराजा ने मुसलमानो पर आक्रमण कर दिया। उनके आदेशानुसार रियासत के दीवान नानकचन्द भी सेना सहित उनसे मूनक नामक स्थान पर आ मिले। मुसलमानो ने 'बिघडा म अपना मोर्चा लगाया, वहाँ कई दिन तक युद्ध होता रहा, परन्तु मुसलमान महाराजा के सामने अधिक देर तक न ठहर सके वे भाग निकले और धूलकोट की गढी मे जाकर छिप गये। राजा की सेना ने उन्हें वहा भी घेर लिया। एक दिन महाराज ने यह प्रण किया कि यदि वे आज गढी न जीत सके तो युद्ध न करेंगे। सूय अस्त होने को था, उन्होने प्रभु से सूय के कुछ समय तक उदित रहने की प्राथना की, सूय का रथ रुक गया, सेना उत्साह के साथ गढी पर चढ दौडी। महाराजा की प्रतिज्ञा पूण हुई। मुहम्मद आमीन मारा गया और उसकी बेगम ने अधीनता स्वीकार करके उन्हें फतहबाद दे दिया। बाद मे अमरसिंह बीकानेर की ओर बढे, जहा के राजा ने उनसे मित्रता का सम्बन्ध स्थापित किया। इस प्रकार अमरसिंह अत्याचारियो का विनाश करके विजय रथ बढाते हुए वापिस लौटे।

उपयुक्त कथानक से स्पष्ट है कि कवि ने अपने चरित्र नायक को पजाब म रचित पूववर्ती वीर काव्यकारो की भाति धम युद्ध म लडते दिखाया है। वह धर्मान्ध मुसलमानो के उत्पीडन से भयभीत तथा व्याकुल हिन्दू प्रजा[1] की पुकार पर उनकी रक्षाथ ही युद्ध के लिये निकलते हैं। उनके चढाई के लिये निकलने पर प्रजा मे आनन्द की लहर दौड जाती है[2] और जब वे मुसलमानो को पराजित कर देते हैं तो उनकी विजय पर प्रजा हार्दिक प्रसन्नता का प्रदशन करती है।[3] इस रचना म कवि ने अपने आश्रयदाता के जिस लोकहितकारी युद्ध का वणन किया है उसकी तुलना जब हम हिन्दी के उन वीर-काव्यो से करत हैं, जिनके नायक केवल शौय प्रदशन, पारिवारिक वैमनस्य अथवा किसी की सुन्दर कन्या के अपहरण के लिये युद्ध म प्रवृत्त होते दिखाये गये हैं तो इस रचना की विशिष्टता स्वय सिद्ध हो जाती है। उस युग मे मुसलमानो के अत्याचारों के विरुद्ध पजाब मे जो विद्रोहात्मक आन्दोलन चल रहा था हिन्दुओ म नव जागरण एव सास्कृतिक चेतना का जो स्वर सुनाई पडता था उसकी प्रतिध्वनि

१ भट्टी महा मलेछ सदा गो दीन सताव।
जिहका अधिक त्रास पथिक पडा ना पाव।

२ जा ठाढयो तहि अति भयो गाम गाम आनन्द
तिमर हरण कारण करण चढया जिय दुति को चद।१७।

३ बिघडा मार फतह किया जस चल्या जग माहि।
घर घर भई बधाइया मनो अनन्द विवाहि।४२।

दश वार म गुनाई पाती है। कवि ने ग्रमरसिंह की सेना को राम की सेना के समान तथा मुसलमानों को रावण पक्ष एव इन्हें राक्षस माना को गुनगान किया है। मुसलमानों को मवासी क्रूर निवासी, पज्जाव, मलेच्छ मूढ़ ग्रादि विशेषणों से विभूषित करके भी मुसलमानों की अनीति अत्याचार, क्रूरता ग्रादि की ग्रोर सकेत किया गया है।

डा० हरिभजनसिंह ने 'वार'[२] के तत्वो के ग्राधार पर इस रचना की परीक्षा करते हुए घूम फिर कर यह तो स्वीकार कर लिया है कि प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप मे इसम लोक कल्याण का तत्व निहित है व यह भी मानते हैं कि 'वार' के नायक को लोकप्रिय नायक बनाने के लिये उस हिन्दूपति के विशेषण से युक्त किया गया है। उसमे जो ग्रत्युक्तिपूर्ण प्रसग ग्राये हैं उन्हें भी वे 'वार मे स्वभाव के ग्रनुकूल मानते हैं। परन्तु उन्हें इस बात पर ग्रापत्ति है कि कवि ने रानी तथा दीवान जी की प्रशसा इसमे क्यो की। 'वार' नायक की पत्नी ग्रौर कर्मचारियो की प्रशसा को वे 'वार परम्परा के सवथा प्रतिकूल मानते हैं ग्रौर इसे समकालीन दरबारी परम्परा (रीतिकालीन) का प्रभाव कहते हैं। हम इस सम्बध म इतना ही कहना चाहते हैं कि एक तो कोई भी साहित्यकार किसी काव्य रूप के बाह्य नियमो का कठोरता से पालन करने के लिये बाध्य नही होता, किसी नये प्रयोग से उसम विशेष अव्यवस्था नही ग्रा जाती दूसरे, इस वार मे तो रानी एव दीवान जी की प्रशसा सायक भी है। यदि हम इस तथ्य को ध्यान म रखें कि रानी जहा ग्रमरसिंह के लोक कल्याणकारी युद्ध के लिए प्रेरणादायक है, वहा दीवान जी भी सेना का नेतृत्व करके राना का मूनक नामक स्थान पर साथ देते हैं। इसलिये ये दोनो ही पात्र इस वीर-कम म सहयोगी हैं। उनकी प्रशसा अनुचित प्रतीत नहीं होती इसके ग्रतिरिक्त कवि ने यहा रानी को शृगारिक ग्रथवा कामोत्तेजक रूप म चित्रित नही किया, वरन् उसे कौशल्या शची जानकी, देवकी, रुक्मणि, द्रोपदी, कुन्ती ग्रादि के समान बना कर उसकी ग्रत्यन्त सयम ग्रौर गम्भीरता से प्रशसा की है इसलिये इसे रीतिकालीन दरबारी प्रभाव कहना उचित नही है।

इस रचना के युद्ध वणन के सम्बध मे डा० हरिभजनसिंह का कथन है कि यह एकपक्षीय तथा ग्रपूण है क्योकि केशव ने ग्रणीराय की भाति शत्रु पक्ष ग्रौर नायक पक्ष के बीच शूरवीरता का सतुलन स्थापित नही किया। उनके अनुसार युद्ध म न गति है न ध्वनि, कवि ने ग्रतिशयोक्ति पूण युद्ध वणन को विशेष महत्व नही दिया इसलिय भी इस युद्ध वणन को गतिहीन, नीरस ग्रौर

१ राम की सन लरे जिम लक सु राखस होत ग्रनेक विनासा।३५।

२ (१) लोक कल्याण के लिए युद्ध (२) लोक नायक की स्तुति (३) युद्ध वणन (४) नाटकीय शली वही पृ० ५२८ ३६ गुरमुखी लिपि म हिंदी काव्य

निर्जीव की संज्ञा दी गई है।[1] परन्तु हम डाक्टर साहब के साथ सहमत नही हैं। ऊपर इस युद्ध का जो कथानक दिया गया है, उसे पढकर यह कोई नही मान सकता कि यह युद्ध-कथा अपूर्ण है, क्योकि कवि ने युद्ध के कारण से लेकर सेना प्रस्थान आक्रमण शत्रु के रणभूमि से भागकर गढी में छुपने, राजा द्वारा गढी का घेरा डालने, गढी तोडने की प्रतिज्ञा तथा युद्धोपरान्त राजा की विजय तथा प्रजा के उल्लास आदि का पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है। इतना अवश्य है कि इन वर्णनों में 'गुरु विलासो' जितना विस्तार नही है। योद्धाओं की भिडन्त का भी अधिक विशद वर्णन नही है, न ही ऐसे ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है जिनसे अस्त्र शस्त्रों की कटाकटी और खडखडाहट सुनाई पडती है। युद्ध वर्णन संक्षिप्त है फिर भी वह पूर्ण है और ऐसा भी नही है कि उसमे गति अथवा वेग सर्वथा है ही नही। अमरसिंह जिस समय हाथी घोडे लेकर ध्वजा फहराते हुए तथा नगाडे बजाते हुए शत्रु पर चढाई करता है, उसका देखिये कितना ओजपूर्ण चित्रण किया गया है।

अमरसिंह चढ चल्यो भूप अति तेजवंत सुन्दर सरूप।
जहा बजयो दमामा घोर घार। सब चढी सैन शसत्र सभार।
स्वरन बरन अर पीत रग। फहिर धुजा निशान सग।
मैंगल चलत तहा अति प्रवत। सम स्याम अग उज्जल मुदत।
सुन्दर सघूर राजै सु भाल। गजगाह घोर चुन्दा रसाल।२२।

यहाँ सेना प्रस्थान का गत्यात्मक एवं घोषपूर्ण चित्रण नही तो और क्या है। यहाँ तो अनुप्रास सानुनासिक शब्दों, अत्यानुप्रास साम्य तथा 'दमामा घोर घार', गजगाह घोर आदि ध्वनिपूर्ण शब्दों के प्रयोग से भी ओजपूर्ण वातावरण निर्मित करने का प्रयत्न किया गया है।

इसी प्रकार कवि ने योद्धाओं के जूझने का भी ओजपूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया है। यथा—

चढयो महाराज बज्यो सबल डंका।
मानो रामदल चढयो तोरन सु लंका।
छूटे तोप सु कोप परे गोले।
मानो पके खेत बरखन ओले।
छूटे रहिकले औ जबूरे जजाइल।
हुए शत्रु की सैन के लोक घाइल।
छूटे बान बदूख तीखे करारे।
लरे खेत जस हेत जोधा सूर भारे।
गहे सूर निपान अर तेज कत्ती।
चली रुधिर सरिता भई भूमि रत्ती।२६

[1] वही, पृ० ५२६ ३१

जुद्ध यो जोर भयो दुहु ग्रोर गु गूरन क चित हात हुलासा ।
राम की सग लरे जिमि लक गु रावण हात ग्रनत विनासा ।३८

यहाँ योद्धाओं के तोप, बदूक, तीर-तलवार, कृपाण ग्रादि से जूझने ग्रौर लहूलुहान होने का जो चित्रण किया गया है उसे देखते हुए यह कदापि नही कहा जा सकता कि इस वणन म ग्रोज, ध्वनि, वेग ग्रथवा गति नही है, ग्रथवा वे नीरस ग्रौर बेजान है। इतना ग्रवश्य है कि युद्ध-कथा को सतुलित बनाये रखने के लिय योद्धाग्रो के प्रहार प्रतिप्रहार के वणन को इतना ग्रधिक विस्तार नही दिया गया कि युद्ध-कथा के ग्रन्य पक्ष क्षीण रह जायें। यह एक छोटा सा युद्ध था ग्रौर उसकी सक्षिप्त कथा वर्णित की गई है। जितने विस्तार से कथा के ग्रन्य प्रसग वर्णित हैं, उतना ही विस्तार भिडन्त के वणन को दिया गया है। यही कारण है कि इसम पुनरुक्ति तथा एकरसता भी नही है। 'विचित्र नाटक' में जिस प्रकार भिडन्त ही भिडन्त का वणन है, ग्रन्य पक्ष प्राय उपेक्षित रह गय हैं वसा इस रचना मे नही हुग्रा। (सम्भवत डा० हरिभजन सिंह को भिडन्त ज्यादा पसन्द है) एक दो स्थानो पर कवि ने वीरो के 'बदन रोस रिस नन' ग्रादि ग्रनुभावो के साथ उनके ग्रमष' एव 'हुलास' ग्रादि का उल्लेख किया है। यही नही, युद्ध भूमि का भी यथाथ एव सजीव दृश्य उपस्थित किया गया है। यथा—

गहे सूर कृपान ग्रर तेज कत्ती।
चली रुधिर सरिता भई भूमि रत्ती। २६
कते जीव तिग्रागी केते परे घाइल।
कते उलट के धूर मैं परे माइल ।३७।
जहा गीदड ग्ररु गिरझरी कर शब्द सुनायो।
कूकी ग्राद सु जोगनी शिव मुण्ड चढायो।
हाइ हाइ को शब्द ग्रधिक कर धूम सो माची।
बताल बीर ग्रो गीध लोहु तहा भए ग्रजाची।
जुद्ध जुद्ध ग्रचर कर ग्रति घमसान मचायो।
पारथ जियो रण जित्त क रत प्रवाह चलायो ।४१।

यहा युद्ध भूमि की रुधिर सरिता धूलि ग्रौर रुधिर म लिपटे पडे क्षत विक्षत योद्धाग्रो का ही वणन नहा है, वरन् परम्परा रूप म गीदड, गीध गिरझरी ग्रादि के रुधिर पान करने तथा जोगिनी बताल ग्रादि के चिल्लाने का वणन करके युद्धभूमि का भयावह ग्रौर वीभत्स चित्र ग्रकित किया गया है।

इन उदाहरणो को सम्मुख रखते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि ये युद्ध-वणन ग्रपूण एव नीरस है। केवल इसलिए कि कवि ने पर पक्ष के वीरो की प्रशसा नहा की इसे दोषपूण नही कहा जा सकता। यहाँ हम यह नही भूलना चाहिय कि ग्रमरसिंह के प्रतिद्वद्वी मुट्ठी भर धर्मांध मुसलमान रईस

थे कोई राजा राव नही। जबकि श्रणीराय के चरित्र-नायक को सबल मुगल शक्ति से टक्कर लेनी पड रही थी। यदि केशव लूटमार करने वाले इन मुगल मानो की वीरता की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशसा करता तो इसे ऐतिहासिक दृष्टि से दोप कहा जाता। जहा तक युद्ध के वेग और शक्ति का सम्बन्ध है डा० हरिभजनसिंह भी यह तो स्वीकार कर लेते हैं कि नायक पक्ष के प्रारम्भिक सेना प्रस्थान का वणन सक्षिप्त होने पर भी सशक्त और सजीव है।[1] तदुपरात नगाडा, ध्वजा, हाथी, अम्बारी आदि के वणन मे उतनी ही शक्ति और वेग है जितनी द्रुतगति पाधडी छन्द मे स्वभावत होती है।[2] (पाघडी छन्द क्षिप्र गति से चलने वाला छन्द है और युद्ध वणन की तीव्रता प्रदर्शित करने के लिय बहुत उपयोगी है। पजाब के हिन्दी वीर काव्या म इसका व्यापक प्रयोग हुआ है—लेखक) उन्होने "मानो रामदल चढ्यो तोरन सुलका, मानो पके खेत वरखत श्रोले, चली रुधिर सरिता भई भूमि रत्ती रूकोसिह मानो विकट वन मभारी, कैने उलट के घूर मे परे माईल आदि पक्तिया से युद्ध का वातावरण उत्पन्न करने का प्रयास अवश्य किया है।[3] यह सब स्वीकार करते हुए भी समझ नही आता डा० महोदय इस युद्ध वणन को गतिहीन, नीरस, निर्जीव होने का एकतरफा फतवा कैसे दे देते हैं। इसमे तो कोई सन्देह नही कि इस रचना म युद्ध वणन म भीषण एव प्रचड वातावरण का विशद और विस्तृत चित्रण नही हुआ है परन्तु यह कदापि नही कहा जा सकता कि वीर काव्य के नाते श्रोता को रस निमज्जित करने अथवा उस उच्छवासित करने की उसकी शक्ति सदिग्ध है। वस्तुत, साहित्यिक और ऐतिहासिक दृष्टियो से यह बडी सफल रचना है। यदि उस युग की ऐतिहासिक एव सास्कृतिक पृष्ठभूमि को दृष्टि म रखते हुए इसका मूल्याकन किया जाये तो यह एक विशेष महत्व की रचना सिद्ध होगी। कवि ने स्थान-स्थान पर पौराणिक प्रसगा का उल्लेख करके उसके सास्कृतिक पक्ष के प्रति अपनी जागरूकता का परिचय दिया है तथा युद्ध कथा के अनुरूप दोहा, सोरठा, सवैया, छप्पय पाधडी, निसानी, भुजग आदि विभिन्न छदो के प्रयोग द्वारा उसकी गति को तीव्रता प्रदान करने का प्रयत्न किया है। पौराणिक तथा प्राकृतिक साम्य विधान द्वारा युद्ध के दृश्यो को चित्रात्मक और सजीव बनाया गया है। इस रचना की वीरभावना तत्कालीन पजाब के वातावरण के अनुकूल है और यह राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत एक महत्वपूण रचना है।

(२) हम्मीर हठ (चन्द्रशेखर वाजपेयी)

पटियाला दरबार म रचा गया दूसरा वीर काव्य चन्द्रशेखर वाजपेयी का

१ गुरुमुखी लिपि म हिन्दी काव्य पृ० ५३०
२ वही पृ० ५३०
३ वही पृ० ५३१

'हम्मीरहठ' है। चन्द्रशेखर का जन्म सवत १८५६ म मुग्रज्जमाबाद म हुआ था उसके पिता मनीराम जी भी श्रेष्ठ कवि थ। कुछ लोग इनका सम्बन्ध गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवि हसराम स भी स्थापित करते हैं। कुछ दिन दरभगा नरेश के आश्रय म रहे, फिर छ वष तक जोधपुर नरेश क दरबार म रहे, वहां से रणजीतसिंह के पास लाहौर चले आय। बाद मे पटियाला दरबार में राज कवि बनकर महाराज कर्मसिंह तथा उनकी मृत्यु के पश्चात् नरेन्द्र सिंह जी के सम्मान के पात्र रहे। इन्होन विवेक विलास', रसिक विनोद', 'वृन्दावन शतक', 'ताजक ज्योतिष', 'माधवी वसत' आदि अनेक ग्रन्थो की रचना की। 'हम्मीर हठ' की रचना इन्होने सवत १६३० के आसपास राजा नरेन्द्रसिंह के आदेश से की कही जाती है।

'हम्मीर हठ' रीतिकालीन पद्धति पर लिखा हुआ वीरकाव्य है, जिसमें रणथम्भौर के यशस्वी वीर राजा हमीर और अलाउद्दीन के युद्ध का वर्णन किया गया है। *कथानक इस प्रकार है। एक दिन अलाउद्दीन अपनी बेगम* के साथ शिकार के लिये गया हुआ था। उसकी एक मराठा बेगम शिकार का पीछा करती हुई राह भूल गई। एक जगह उसने एक वीर को खडे देखा जिसका नाम महिमा मगोल था। वह उस पर रीझ गई। जिस समय वे सयोग अवस्था मे थे, उसी समय वहा एक शेर आ गया, जिसे तीर मार कर मगोल ने मार गिराया। बेगम पर इसका बडा प्रभाव पडा। जब बादशाह को उनके प्रेम सम्बन्ध का पता चला तो मगोल को पकडने के लिये उसने अपने दूत भेजे मगोल भाग कर हमीर देव की शरण मे आ गया। बादशाह के दूतो ने हमीर से उसे वापिस मागा परन्तु हमीर ने प्राण देकर भी शरणागत की रक्षा करने का प्रण किया। परिणामस्वरूप दोनो म भीषण युद्ध हुआ, जिसमे विजय हमीर की ही हुई। राजपूत अपनी विजय से इतने मस्त हुए कि शत्रुओ की ध्वजाऐं उठाकर दुर्ग की ओर फहराने लगे। स्त्रियो ने शत्रुदल आया जान कर जौहर का पालन किया। इससे हमीर को बहुत दुख हुआ और पुत्र को राज्य देकर स्वय जगल मे जा कर उसने अपना सिर काट दिया।"

हमीर' की कथा इतिहास प्रसिद्ध है और इस पर कई वीरकाव्यो की रचना हुई है। जोधराज का हमीर हठ भी प्रसिद्ध रचना है इस रचना म कुछ ऐसी घटनाओ का भी समावेश कर लिया गया है, जो इतिहास-सम्मत नही है परन्तु ये कवि की निजी उदभावनाए नही हैं। उसने जोधराज के हम्मीर रासो का आधार ग्रहण किया है और उसी के अनुकरण पर कथानक का निमाण किया गया है।

'हमीर हठ' के काव्यत्व की प्रशसा करते हुए शुक्लजी लिखते हैं कि उत्साह की उमग की व्यजना जसी चलती, स्वाभाविक और जोरदार भाषा म इन्होंने

की हैं, वरो ढग से करने म बहुत ही कम कवि समय हुए हैं । वीर रस वणन
म इस कवि ने बहुत सुदर साहित्यिक विवेक का परिचय दिया है, सूदन
आदि के समान शब्दो की तडातड और भडाभड के फेर म न पडकर उग्रोत्साह
व्यजक उक्तियो का ही अधिक सहारा कवि ने लिया है, जो वीर रस की
जान है । उन्होने वणन म अनावश्यक विस्तार को भी स्थान
नही दिया । साराश यह कि वीर रस वणन की अत्यन्त श्रेष्ठ प्रणाली का
अनुकरण चन्द्रशेखर ने किया है ।'[1] 'हमीर हठ' साहित्य का एक रत्न है ।
'तिरिया तेल, हमीर हठ चढ़ न दूजी बार' वाक्य—ऐसे ही ग्रन्थ म शोभा देते हैं ।[2]
इसमे कोई सन्देह नही कि इस ग्रन्थ मे युद्ध कथा का अत्यन्त सजीव और
ओजपूण वणन हुआ है । युद्ध की भीषणता के साथ ही वीरो की गर्वोक्तियो
उत्साहपूर्ण दृढ प्रतिज्ञा की भी सशक्त और वेगपूण भाषा मे व्यजना की गई
है । हमीर की हठ प्रतिज्ञा का यह उदाहरण देखिये कितना ओजपूण है —

घड नच्च लोह बहै परि बोले सिर बोल ।
कटि कटि तन रन म परैं तउ नही देहु मगोल ।
उव भानु पच्छिम प्रतच्छ दिन चन्द प्रकासैं ।
उलटि गग बर बहै काम रति प्रीति बिनासै ।
गज्जे घन घनघोर जोर मारुत सब चल्लै ।
सकपण फुक्कर काल हुक्कर उत्तल्ले ।
मरजाद छोडि सागर चल कहि हमीर परले करन ।
अलाऊदीन पाव न तौ मैं मगोल राख्यो सरन ।

इसी प्रकार युद्ध के भीषण वातावरण का चित्रण भी कवि ने इसी ओजस्वी
शली म किया है । उदाहरणाथ यह छन्द देखिये —

दुहू ओर सों घोर यो तोप बाज । प्रल काल के से मनो मेघ गाजै ।
हल मेरू डोल मही सेस कपै । उठी धूम धारा धुज भानु झपै ।
भई बान बदूक की मार भारी । मनो वारिधारा महा मेघ वारी ।
उडै सोर प्याले निराले चमक । घटा जोट मे दामिनी सो दमक ।
फटे टोप कुण्डी तन त्रान फूटे । कटे अग अग नर प्रान छूटे ।
उठावत एकै कर एक जगें । लुरैं एक लोट परे अग भग ।

हमीर की वीरता शौय, साहस एव आतक का एक उदाहरण देखिए —

आलम नेवाज सिरताज पातसाहन के
गाज ते दराज कोप नजर तिहारी है ।
जाके डर डिगत अडोल गन्धारी
डगमगत पहार औ डुलति महि सारी है ।

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३५८ ३५९
२ वही पृ० ३६०

रक जसो रहत ससक्ति सुरेश भया,
देश देसपति म श्रतक अति भारी है ।
भारी गढधारी मदा जग की तयारी,
धाक मानै ना तिहारी या हमीर हठधारी है ।

भागती हुई शत्रु सेना का वणन तो वहुत ही सजीव और यमाथ बन पडा है —

भागे मीरजादे पीरजादे श्रो अमीरजादे,
भागे खानजादे प्रान मरत वचाय क ।
भागे गज बाजि रथ पथ न सभारै परै,
गोलन प गोल सूर सहमि सकाय कै ।
भाग्यो सुलतान जान बचत न जानि वेगि,
बलित वितु ड प विराजि बिललाय कै ।
जैसे लगे जगल मे ग्रीषम की आगि,
चलै भागि मृग महिष बराह बिललाय क ।

यहा वण वियास और शब्द मैत्री भी इतनी चुस्त और उपयुक्त है, तथा भाषा का प्रवाह इतना तीव्र है कि सेना की भगदड का साकार दृश्य उपस्थित हो जाता है । साम्य विधान भी सायक और समीचीन है ।

कवि चन्द्रशेखर ने भी केशव की भाति अपने चरित्र नायक की शूरवीरता धैय प्रण-पालन, साहस और उत्साह की प्रशसा की है । इनका प्रतिनायक भी उनकी प्रशसा का पात्र नही बना । यह तो चूहे के उछलने से भी डर कर भाग निकलता है ।

वस्तुत, 'हमीरहठ' एक उत्कृष्ट वीर काव्य है, इसम तो कोई सन्देह नही और इसम योद्धाओ क उत्साह एव साहस का तथा उनके युद्ध काय का भी सजीव और ओजपूण चित्रण बहुत ही वेगपूण एव सशक्त भाषा म हुआ है । परन्तु पजाब की वीर काव्य परम्परा म इसका स्थान निर्धारित करते समय निम्न तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है —

(क) हमीरहठ का चरित्र नायक एक राजपूत वीर है, जिसका पजाब से कोई सीधा सम्बन्ध नही है । अर्थात् इसका नायक पजाब का शूरवीर नही है जबकि पजाब के अय एतिहासिक वीर काव्यो के नायक पजाबी वीर हैं ।

(ख) इस रचना म वीर रस के साथ शृ गार का सयोग हुआ है । युद्ध का कारण भी एक नायिका है जिसके प्रमी की रक्षाथ हमीर को युद्ध करना पडा है । यह प्रवृत्ति रीतिकालीन राजस्थानी राजदरबारो म रचित वीर काव्यो क अनुरूप है । पजाब क वीर काव्यो म अनुरूप नही है । इसम नायिका क रूप सौन्दय, भाव भगिमाओं एव सयोग आदि का चित्रण भी रीतिकालीन शृ गारिक प्रवृत्ति क अनुकूल है । पजाब क वीर काव्यो म इस शृ गारिक प्रवृत्ति का सवथा अभाव है ।

(ग) इस रचना म राजपूती वीरता के आदश शरणागत की रक्षा की है व्यजना की गई है। नायक किसी उच्च राष्ट्रीय अथवा धार्मिक उद्देश्य की प्रेरणा से युद्ध मे प्रवृत्त नही होता। जब कि पजाब के प्राय सभी वीर काव्यो के नायक हिदुत्व की रक्षाथ धमयुद्ध करते दिखाए गए हैं। वे राष्ट्र हित की महत् प्रेरणा लिये हुए राष्ट्रनायक हैं। 'हमीर हठ' मे इस महत् प्रेरणा एव उच्च उद्देश्य का प्रभाव है।

(घ) पजाब के वीर काव्यो म मुसलमान शासको के अत्याचारो के विरुद्ध जो विद्रोहात्मक स्वर सुनाई पडता है उसका भी इस रचना मे अभाव है। पजाब के वीर काव्य मे यहाँ की जनता की जो विद्रोहात्मक चेतना एव राष्ट्रीय भावना मुखरित हुई है, हमीरहठ' मे वह कही दिखाई नही देती। पजाब के वीर काव्य यहाँ के नव जागरण से सयुक्त युग चेतना के प्रतीक हैं, परन्तु पजाब की सामाजिक, राजनतिक, सास्कृतिक चेतना से इस ग्रथ को दूर का भी सम्बन्ध नही है। पटियाला राज्य का मुसलमानो के साथ जो सघष रहा, जिसकी प्रतिध्वनि केशव के काय म सुनाई पडती है उसकी क्षीण सी भी झलक इसमे नही दिखती।

(ङ) राजपूती वीर काव्यो की ही भाति इस रचना मे भी राजद्रोही सभल की कल्पना की गई है जबकि पजाब के वीर कायो मे ऐसा कोई पात्र नही है।

इन सभी तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस रचना का सीधा सम्बन्ध राजपूती वीर काव्य परम्परा से है। पजाब की वीर काव्य परम्परा से इसका कोई सम्बन्ध नही न ही पजाब की युग चेतना को इससे विशेष प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला है। हमे तो इसम भी सन्देह होता है कि यह काय पटियाला म लिखा भी गया है। क्या यह सम्भावना नही हो सकती कि कवि ने जोधपुर निवास के समय अपने राजपूत आश्रयदाता को हमीर जसे यशस्वी राजपूत शूरवीर की प्रशसा द्वारा प्रसन्न करने के लिए यह ग्रथ लिखा हो, परन्तु इससे पूव कि वह इसे उसकी सेवा मे भेंट कर पाता किसी कारणवश उसे वह आश्रय छोडना पड गया हो। पटियाला दरबार मे उसके आश्रयदाता ने भी उससे किसी वीरकाव्य की रचना करने का अनुरोध किया होगा, और उसने इस पूव रचित ग्रथ को ही उनको सेवा मे भेंट कर दिया होगा। बहरहाल पजाब के जन जीवन, यहा की युग चेतना, नव-जागरण, सास्कृतिक पुनरुत्थान अथवा पटियाला राज्य के किसी राजा से इस ग्रथ का कोई सम्बध नही है। इस रचना के रचना स्थान के सम्बन्ध मे अधिक खोज की आवश्यकता है।

(३) फतहनामा श्री गुरु खालसा जी का

श्री चन्द्रकान्त बाली ने अपने पजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य के इतिहास

रन जगो रहा सागित गुमान भरा,
देत दगानि म अमर प्रति भागी है।
भारी गढ़धारी सान जंग की तयारी,
धार मारी ना ठिहारी मा हमीर हठधारी है।

भागती हुई शत्रु सेना का वर्णन तो बहुत ही सजीव और यथार्थ बन पड़ा है —

भागे मीरजादे पीरजादे औ अमीरजादे,
भागे खानजादे प्रान मरत बचाय कै।
भागे गज बाजि रथ पथ न सम्हार परैं,
गोलन पै गोल सूर सहमि सटाय कै।
भाग्यो सुलतान जान बचत न जानि बेगि,
बलित वितुण्ड पै विराजि बिलखाय कै।
जैसे लगे जंगल में ग्रीषम की आगि,
चले भागि मृग महिष बराह बिललाय कै।

यहाँ वर्ण विन्यास और शब्द-मैत्री भी इतनी चुस्त और उपयुक्त है तथा भाषा का प्रवाह इतना तीव्र है कि सेना की भगदड़ का साकार दृश्य उपस्थित हो जाता है। साम्य विधान भी सार्थक और समीचीन है।

कवि चन्द्रशेखर ने भी केशव की भाँति अपने चरित्र नायक की शूरवीरता, धर्म प्रण-पालन, साहस और उत्साह की प्रशंसा की है। इनका प्रतिनायक भी उनकी प्रशंसा का पात्र नहीं बना। यह तो चूहे के उछलने से भी डर कर भाग निकलता है।

वस्तुत, 'हमीरहठ' एक उत्कृष्ट वीर काव्य है, इसमें तो कोई सन्देह नहीं और इसमें योद्धाओं के उत्साह एवं साहस का तथा उनके युद्ध कार्य का भी सजीव और ओजपूर्ण चित्रण बहुत ही वेगपूर्ण एवं सशक्त भाषा में हुआ है। परन्तु पंजाब की वीर काव्य परम्परा में इसका स्थान निर्धारित करते समय निम्न तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है —

(क) हमीरहठ का चरित्र नायक एक राजपूत वीर है, जिसका पंजाब से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। अर्थात् इसका नायक पंजाब का शूरवीर नहीं है जबकि पंजाब के अन्य ऐतिहासिक वीर काव्यों के नायक पंजाबी वीर हैं।

(ख) इस रचना में वीर रस के साथ शृंगार का संयोग हुआ है। युद्ध का कारण भी एक नायिका है जिसके प्रेमी की रक्षार्थ हमीर को युद्ध करना पड़ा है। यह प्रवृत्ति रीतिकालीन राजस्थानी राजदरबारों में रचित वीर काव्यों के अनुरूप है। पंजाब के वीर काव्यों के अनुरूप नहीं है। इसमें नायिका के रूप सौंदर्य, भाव भंगिमाओं एवं संयोग आदि का चित्रण भी रीतिकालीन शृंगारिक प्रवृत्ति के अनुकूल है। पंजाब के वीर काव्यों में इस शृंगारिक प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव है।

(ग) इस रचना में राजपूती वीरता के आदर्श-शरणागत की रक्षा की है योजना की गई है। नायक किसी उच्च राष्ट्रीय अथवा धार्मिक उद्देश्य की प्रेरणा से युद्ध में प्रवृत्त नहीं होता। जब कि पंजाब के प्राय सभी वीर काव्यों के नायक हिंदुत्व की रक्षार्थ धर्मयुद्ध करते दिखाए गए हैं। वे राष्ट्र हित की महत् प्रेरणा लिये हुए राष्ट्रनायक हैं। 'हमीर हठ' में इस महत् प्रेरणा एवं उच्च उद्देश्य का अभाव है।

(घ) पंजाब के वीर काव्यों में मुसलमान शासकों के अत्याचारों के विरुद्ध जो विद्रोहात्मक स्वर सुनाई पड़ता है उसका भी इस रचना में अभाव है। पंजाब के वीर काव्य में यहाँ की जनता की जो विद्रोहात्मक चेतना एवं राष्ट्रीय भावना मुखरित हुई है, हमीरहठ' में वह कहीं दिखाई नहीं देती। पंजाब के वीर काव्य यहाँ के नव जागरण से संयुक्त युग चेतना के प्रतीक हैं, परन्तु पंजाब की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक चेतना से इस ग्रंथ को दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। पटियाला राज्य का मुसलमानों के साथ जो संघर्ष रहा, जिसकी प्रतिध्वनि केशव के काव्य में सुनाई पड़ती है, उसकी क्षीण सी भी झलक इसमें नहीं दिखती।

(ङ) राजपूती वीर काव्यों की ही भाँति इस रचना में भी राजद्रोही सभल की कल्पना की गई है, जबकि पंजाब के वीर काव्यों में ऐसा कोई पात्र नहीं है।

इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस रचना का सीधा सम्बन्ध राजपूती वीर काव्य परम्परा से है। पंजाब की वीर काव्य परम्परा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं न ही पंजाब की युग चेतना को इससे विशेष प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला है। हमें तो इसमें भी सन्देह होता है कि यह काव्य पटियाला में लिखा भी गया है। क्या यह सम्भावना नहीं हो सकती कि कवि ने जोधपुर निवास के समय अपने राजपूत आश्रयदाता को हमीर जैसे यशस्वी राजपूत शूरवीर की प्रशंसा द्वारा प्रसन्न करने के लिए यह ग्रंथ लिखा हो, परन्तु इससे पूर्व कि वह इसे उसकी सेवा में भेंट कर पाता किसी कारणवश उसे वह आश्रय छोड़ना पड़ गया हो। पटियाला दरबार में उसके आश्रयदाता ने भी उससे किसी वीरकाव्य की रचना करने का अनुरोध किया होगा और उसने इस पूर्व रचित ग्रंथ को ही उनकी सेवा में भेंट कर दिया होगा। बहरहाल पंजाब के जन जीवन, यहाँ की युग चेतना, नव-जागरण, सांस्कृतिक पुनरुत्थान अथवा पटियाला राज्य के किसी राजा से इस ग्रंथ का कोई सम्बन्ध नहीं है। इस रचना के रचना स्थान के सम्बन्ध में अधिक खोज की आवश्यकता है।

(३) फतहनामा श्री गुरु खालसा जी का

श्री चन्द्रकान्त बाली ने अपने पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य के इतिहास

रव जगो रहत ससाहित गुरन भगा,
देग दसपनि म मरान मनि मारी है।
मारी गढ़धारी गन्न जग की तयारी,
धार मार्ने ना निहारी या हमीर हठधारी है।

भागती हुई शत्रु सेना का वणन तो बहुत ही सजीव और ययाथ बन पडा है —

भाग मीरजादे पीरजादे भो अमीरजादे,
भागे खानजादे प्रान मरत बचाय क।
भागे गज बाजि रथ पथ न सभार पर,
गोलन प गोल सूर सहमि सभाय कै।
भाग्यो सुलतान जान बचत न जानि वेगि,
वलित बितुड पै बिराजि बिललाय क।
जैसे लगे जगल म ग्रीषम की आगि,
चल भागि मृग महिष बराह बिललाय क।

यहाँ वण विन्यास और शब्द-मत्री भी इतनी चुस्त और उपयुक्त है, तथा भाषा का प्रवाह इतना तीव्र है कि सेना की भगदड का साकार दृश्य उपस्थित हो जाता है। साम्य विधान भी सार्थक और समीचीन है।

कवि चन्द्रशेखर ने भी केशव की भांति अपने चरित्र नायक की शूरवीरता, धय प्रण-पालन, साहस और उत्साह की प्रशसा की है। इनका प्रतिनायक भी उनकी प्रशसा का पात्र नही बना। यह तो चूहे के उछलने से भी डर कर भाग *निकलता है।*

वस्तुत, 'हमीरहठ एक उत्कृष्ट वीर काव्य है, इसमे तो कोई सन्देह नही और इसमे योद्धाओ के उत्साह एव साहस का तथा उनके युद्ध काय का भी सजीव और ओजपूण चित्रण बहुत ही वेगपूण एव सशक्त भाषा म हुआ है। परन्तु पजाब की वीर काव्य परम्परा म इसका स्थान निर्धारित करते समय निम्न तथ्यो पर ध्यान देना आवश्यक है —

(क) हमीरहठ का चरित्र नायक एक राजपूत वीर है, जिसका पजाब से कोई सीधा सम्बध नही है। अर्थात् इसका नायक पजाब का शूरवीर नही है जबकि पजाब के अन्य ऐतिहासिक वीर काव्यो के नायक पजाबी वीर है।

(ख) इस रचना मे वीर रस के साथ शृगार का सयोग हुआ है। युद्ध का कारण भी एक नायिका है जिसके प्रेमी की रक्षाथ हमीर को युद्ध करना पडा है। यह प्रवृत्ति रीतिकालीन राजस्थानी राजदरबारो मे रचित वीर काव्यो के अनुरूप है। पजाब के वीर काव्यो के अनुरूप नही है। इसमे नायिका के रूप सौन्दय, भाव भगिमाओ एव सयोग आदि का चित्रण भी रीतिकालीन शृगारिक प्रवृत्ति के अनुकूल है। पजाब के वीर काव्यो म इस शृगारिक प्रवृत्ति का सवथा अभाव है।

(ग) इस रचना म राजपूती वीरता के आदश शरणागत की रक्षा की है व्यजना की गई है। नायक किसी उच्च राष्ट्रीय अथवा धार्मिक उद्देश्य की प्रेरणा से युद्ध मे प्रवृत्त नहीं होता। जब कि पजाब के प्राय सभी वीर काव्यो के नायक हिन्दुत्व की रक्षाथ धमयुद्ध करते दिखाए गए हैं। व राष्ट्र हित की महत् प्रेरणा लिए हुए राष्ट्रनायक हैं। 'हमीर हठ' मे इस महत प्रेरणा एव उच्च उद्देश्य का अभाव है।

(घ) पजाब के वीर काव्या म मुसलमान शासको के अत्याचारो के विरुद्ध जो विद्रोहात्मक स्वर सुनाई पडता है उसका भी इम रचना मे अभाव है। पजाब के वीर काव्य मे यहाँ की जनता की जा विद्रोहात्मक चेतना एव राष्ट्रीय भावना मुखरित हुई है, 'हमीरहठ' मे वह कही दिखाई नही देती। पजाब के वीर काव्य यहाँ के नव जागरण से सयुक्त युग चेतना के प्रतीक हैं, परन्तु पजाब की सामाजिक, राजनैतिक, सास्कृतिक चेतना से इस ग्र थ का दूर का भी सम्बध नही है। पटियाला राज्य का मुसलमाना के साथ जा सघर्ष रहा, जिसकी प्रतिध्वनि केशव के काव्य मे सुनाई पडती है, उसकी क्षीण सी भी झलक इसम नही दिखती।

(ङ) राजपूती वीर काव्यों की ही भाँति इस रचना म भी राजद्रोही समल की कल्पना की गई है जबकि पजाब के वीर काव्यों में ऐसा कोई पात्र नही है।

इन सभी तथ्या को ध्यान मे रखत हुए यह कहा जा सकता है कि इस रचना का सीधा सम्बध राजपूती वीर काव्य परम्परा से है। पजाब की वीर काव्य परम्परा से इसका कोई सम्बध नही न ही पजाब की युग चेतना को इससे विशेष प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला है। हमे तो इसम भी सन्देह होता है कि यह काव्य पटियाला म लिखा भी गया है। क्या यह सम्भावना नही हो सकती कि कवि ने जोधपुर निवास के समय अपने राजपूत आश्रयदाता को हमीर जस यशस्वी राजपूत शूरवीर की प्रशसा द्वारा प्रसन्न करने के लिए यह ग्र थ लिखा हो, परन्तु इससे पूव कि वह इसे उसकी सेवा मे भेंट कर पाता किसी कारणवश उसे वह आश्रय छोडना पड गया हो। पटियाला दरबार म उसके आश्रयदाता ने भी उससे किसी वीरकाव्य की रचना करने का अनुरोध किया होगा और उसने इस पूव रचित ग्रथ को ही उनकी सेवा म भेंट कर दिया होगा। बहरहाल पजाब के जन जीवन, यहाँ की युग चेतना, नव-जागरण सास्कृतिक पुनरुत्थान अथवा पटियाला राज्य क किसी राजा से इस ग्र थ का कोई सम्बध नही है। इस रचना के रचना स्थान के सम्बध मे अधिक खोज की आवश्यकता है।

(३) फतहनामा श्री गुरु खालसा जी का

श्री चन्द्रकान्त बाली ने अपने पजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य के इतिहास

विजय विनोद

यह ऐतिहासिक प्रशस्ति विषयक वीर रस का एक खण्ड काव्य है। इस ग्रंथ की रचना महाराजा रणजीत सिंह के नाबालिग पुत्र दलीपसिंह के मुख्य मन्त्री राजा हीरासिंह डोगरा के विश्वास पात्र मित्र काश्मीरी पंडित जल्हा जी की प्रेरणा से हुई। ग्वाल ने संवत १६०२ की श्रावण शु० ८ मंगलवार को इसे लाहौर में पूर्ण किया। महाराजारणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात दिलीपसिंह के महाराजा बनने तक की घटनाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थी और उनमें डोगरा राजा ध्यानसिंह तथा उनके पुत्र राजा हीरासिंह की भूमिकाएँ विशेष महत्त्व रखती हैं। अतः उन्हें चिरस्थायी बनाने के लिए जल्हा के आदेश से ग्वाल ने 'विजय विनोद' की रचना की है।[1] इस ग्रन्थ में वर्णित विषय के सम्बन्ध में श्री देवेन्द्रसिंह विद्यार्थी ने लिखा है—विजय विनोद में राजा ध्यान सिंह का राजश्री का खिताब तथा मुख्य मंत्री की पदवी प्राप्त हो जाने के उपरान्त से लेकर बालक महाराज दिलीपसिंह को सिंहासनारूढ कर राजा हीरासिंह के मुख्य मन्त्री बनने तक की कथा सविस्तार की गई है। कथा कहते समय जहाँ तक कथानायक के चरित्र की रक्षा करते हुए सत्य बात कही जा सकती थी, उसके कहने में कवि ने तनिक दरेग नहीं किया। अपितु जहाँ सत्य उद्घाटन में नायक की मान हानि का भय था वहाँ कवि ने यथासम्भव अप्रिय घटनाओं के गोपन भर से संतोष किया है, व्यर्थ ही झूठ मूठ के पुलंदे नहीं खड़े किये।

श्री प्रभुदयाल मित्तल का कथन है कि 'विजय विनोद' सिक्ख इतिहास से सम्बन्धित एक वीर रस प्रधान काव्य ग्रंथ है यद्यपि इसमें उत्साह और ओज का उतना अधिक प्रभाव दिखाई नहीं देता, जितना कि एक शुद्ध वीर रस की रचना में होना आवश्यक है, तथापि इसके प्रशस्तिसूचक कथन एक प्रकार से वीर रसात्मक ही हैं इस ग्रन्थ की रचना के कारण ग्वाल को भूषण और लाल की परम्परा का कवि माना जा सकता है। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना अलंकृत शैली में की है।

इन दोनों वीर रस प्रधान रचनाओं के अतिरिक्त ग्वाल के रणजीतसिंह एवं शेरसिंह की प्रशंसा में लिखे गये वीर रसपूर्ण कुछ फुटकर छन्द भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ रणजीतसिंह की वीरता की प्रशंसा में लिखा गया उनका निम्न कवित्त देखिए—

> मंडन मही के महाराज रणजीत सिंह
> कृपा कर बतायो मोय बहम अकूत है।
> झिलमिल के झिल्ला, अल्ला अल्ला कहि हल्ला करें,
> त्यों ही कटकल्ला गल्ला होत एक सूत है।
> ग्वाल कवि जन्त्र है कै मन्त्र कोउ मारिबे को,
> वर है गिरीस को कै बस जमदूत है।

---

[1] ग्वाल पृ० ६८ प्रभुदयाल मित्तल

कर म कै मूठि मै के म्यान म, के तेग मे
कै वामैं काबुलीन की कटा की करतूत है।

इसी प्रकार महाराजा शेरसिंह के तोपखाने का वणन देखिए कितनी ओजस्वी भाषा म किया गया है—

फौज महाराज सेर शेरसिंह जू की सजी,
घन गहरात गड गडगड क्या करैं।
पलखल की पगति त्यों पलक न फेरिवैं परैं,
फेर फुरलोले फड फडक्यों करैं।
ग्वाल कवि कहै चलैं तोप की तडाचैं तेज,
सडर सडर सड सड सडक्या करैं।
तडड तडड ताड तडड तडड ताड,
तडड तडड तड तड तडक्यो करैं।

यहाँ कवि ने तोपो की तडातड का प्रकट करने के लिए जिस शब्दावली का प्रयोग किया है उससे वह ध्वनि और गतिपूण चित्र अकित करने म पूण सफल रहा है।

ग्वाल की उपयुक्त रचनाएँ रीतिकालीन दरबारी कवियो की ही कोटि की हैं जिनम आश्रयदाता की अत्युक्तिपूण प्रशसा की गई है और जिनम पजाब की युग चेतना का प्राय अभाव है। 'विजय विनोद' म भी ऐतिहासिक इतिवृत्त की प्रधानता है, उसम सास्कृतिक अथवा राष्ट्रीय भावना का अभाव है। हमीरहठ मे राजपूती शूरवीरता का आदश प्रकट किया गया है, किसी युग पुरुष का तेजस्वी शौय प्रदान ये नहीं कर पाये। वीर रस का वैसा सर्वांगीण ओजपूण और वगपूण चित्रण भी इन रचनाओं मे नहीं हुआ जिसके दशन 'विचित्र नाटक', 'गुरु विलास' या 'गुरु प्रताप सूरज' मे होते हैं। फिर भी ग्वाल तथा चन्द्रशेखर को पजाब म भूषण और लाल की परम्परा को आगे बढाकर उस साहित्यिक निधि से पजाबियो को परिचित करवाने का श्रेय है। जिस प्रदेश के य कवि रहने वाले थ उसी की वीर काव्य परम्परा को इन्होंने निभाया, पजाब की वीर काव्य परम्परा के प्रभाव से वे प्राय अछूते ही रह।

अय दरबारी रचनाएँ

इन रचनाओं के अतिरिक्त पटियाला, नाभा कपूरथला, जीन्द आदि राजदरबारो म जो कवि रह हैं उन्होंने भी अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता, दानशीलता आदि से सम्बन्धित फुटकर छन्द लिखे हैं। कवि निहाल ने 'ज्योतिष प्रकाश' म राजा कर्मसिंह की दानशीलता की, मूलसिंह लहरी न

हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियो ने भागवत् के आधार पर कृष्ण की बाल लीलाओ का बहुत ही मधुर चित्रण किया है। सूरदास ने तो वात्सल्य सम्बन्धी मनोवेगों की अत्यन्त सूक्ष्म और मार्मिक व्यजना की है। पजाब के हिन्दी साहित्य म सवप्रथम हरिया जी ने सूर की गीति नाती म कृष्ण की बाल लीलाओ से सम्बन्धित कुछ पद लिखे।

उदाहरण के लिए—

१—'जसोदा तुम सरि अवरि न माई ,

२—"टुक समझावहु अपने बारकूँ सुनहु जसोधे माइ
बार गुआर ले सगी साथी वेकुट बाल जाई।"

आदि पद देखे जा सकते हैं परन्तु वात्सल्य रस का विशद चित्रण सवप्रथम हम 'दशम ग्रथ' म ही मिलता है। कृष्णावतार म कृष्ण की बाल-लीलाओ का विशद वणन किया गया है। उसमे कृष्ण के जन्म पालने पर झूलने, घुटन चलने, तोतले मधुर वचन बोलने, माखन खाने तृणावत, वकासुर तथा अघासुर को मारने आदि से सम्बधित प्रसग उल्लेखनीय है। कुछ उदाहरण देखिए—

पलने पर झूलना—

बालक रूप धरे हरि जी पलना पर झूलत है तब कसे।
माता लडावत है तिह को अरो डुलावत है करि मोहित कसे।
ता छवि की उपमा अति ही कवि स्याम कही मुख ते पुनि कैसे।
भूमि दुखी मन मे अति ही जनु पालत है रिप दे तन जसे।
(कृष्णावतार १०३)

घुटने चलना तथा खेलना—

कान्ह चले घुटुवा घरि भीतर मात करै उपमा तिह चगी।
(वही ११४)

गोपन सौ मिलक हरि जी जमना तट खल मचावत है।
जिम बोलत है खग्र, बोलत है, जिम धावत है तिम धावत है।
(वही ११९)

माखन चोरी—

खेलन के मिस पै हरि जी घरि भीतर पठ क माखन खाव।
बाकी बच्यो अपने करि लैकर बानर के मुख भीतरि पाव।
(वही, १२३)

[illegible] क्रीडा—

सन बनाइ भलौ हरि जी वसुधा दध को मिल सून्न लाए।
हाथन सो गहि के सब वासन के बल को चहूँ ओर बगाए।

फूट गए वह फैल परिग्रो दध माव इहै कवि के मन ग्राए।
क्रम को मोक्ष निवारन को अगुप्रा जन ग्रागम कान्ह जनाए।
फोर दए तिन जो सभ भासन क्रोध भरी जसुधा तब धाई।
फाध चढ कपि रखन रखन ग्वारन ग्वारन सैन भगाई।

(वही, १४२ ४३)

स्पष्ट है कि इन वणनो मे स्वाभाविकता है और कही कही कवि ने कल्पना का भी सहारा लिया है, तथापि सूर के बाल्य वणन के सामने उसमे कोई विशिष्टता दिखाई नहीं देती। इस ग्रथ म कवि का ध्यान युग पुरुष कृष्ण की ओर अधिक था, यही भावना युग की आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी और यही कवि की वीरतापूण प्रकृति के अनुकूल थी। कृष्ण के कमवीर रूप का चित्रण उन्होंने अधिक तन्मयता से किया है। बाल-लीला क अन्तगत भी असुरो के वध से सम्बन्धित प्रसगो के वणन मे काव्यत्व अधिक निखरा है। कुछ उदाहरण देखिए—

तृणावर्त वध—

रुण्ड गिर्‌यो जन पेडि गिरयो इम मुण्ड परया जन डारत खट्टा

(वही, १०९)

बकासुर वध—

खेलवे के काज बन बीच गए बालक,
जिउ लैं कै कर मद्धि चीर डारैं लावैं घास को।

(वही, १६३)

कालिया नाग नाथना—

कान्ह लपेट बडा वह पन्नग फूकत हैं कर क्रुद्धहि कैसे।
जिउ धन पाय गए धन ते अति भूरत लेन उसासन तैसे।
वान्त जिउ धमीया हरि मैं सुर के मधि स्वास भरे वह ऐसे।
भूभर बीच परे जल जिउ तिह ते पुनि होत मह धुन जसे।

(वही, २१०)

वीररस के ओजपूण चित्रण म कवि को जो असाधारण सफलता मिली है, उसी का प्रकाश इन स्थलो पर देखा जा सकता है। वस्तुत, दशम ग्रथ का वात्सल्य वणन सूर के अनुकरण पर हुआ है, ऐसा कहा जा सकता है तथापि उसमे सूर जितनी सजीवता और मार्मिकता नही है। इसका कारण भी है, सूर के लिए जहाँ कृष्ण का बाल रूप उपास्य है और भक्ति के उन्मेष मे उसने कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है, वहा गुरु गोविन्दसिंह मूलत वीर भाव के कवि हैं। य वणन उन्होन प्रसगवश ही किये हैं। परन्तु 'दशमग्रथ मे इन वर्णनो का एक दृष्टि से बडा महत्व है। 'दशम ग्रथ के पश्चात सिक्ख गुरुओ के जीवन पर आधारित जो प्रबन्ध काव्य पजाब म लिखे गये और

लिखे लिए 'दशम ग्रथ' कथातत्व तथा काव्य-शैली की दृष्टि से आधार ग्रथ रहा है। उसमें गुरुओ के बाल्य जीवन से सम्बन्धित जो प्रसग आए हैं, उन्हें लिखने में 'दशम ग्रथ' के कृष्ण लीला सम्बन्धी इन प्रसगो से ही अधिक प्रेरणा मिली है। यद्यपि अपनी प्रतिभा के बल पर प्रत्येक कवि ने उसमे परिवर्तन, परिवर्धन और परिमार्जन भी किया है।

पजाब के ब्रज भाषा के प्रबन्ध काव्यों में वात्सल्य-वर्णन को भागवत तथा सूर के काव्य ने भी प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप में प्रभावित किया है इसमें कोई सन्देह नही रह जाता, जब हम इन प्रसगो की तुलना भागवत् तथा सूर के द्वारा वर्णित प्रसगो से करते है। दूसरे, पजाब के इन कवियो ने सिक्ख गुरुओ को अवतारी पुरुष के रूप में चित्रित किया है और उनके चरित्र को पौराणिक रूप देने में 'विष्णु पुराण' तथा 'भागवत पुराण' जसे ग्रथो से पर्याप्त सहायता मिली है। वसे भी पजाब मे इन धार्मिक ग्रथों का काफी प्रचार रहा है। इसलिए भागवत की कृष्णलीला का यदि इन प्रबन्ध काव्यों पर सीधा प्रभाव पडा हो तो कोई आश्चर्य नही। इन ग्रथो मे वर्णित वात्सल्य में भी यह पौराणिक भावना सवत्र आरोपित है।

पजाब के हिन्दी प्रबन्ध काव्यो में गुरु नानक हरिगोबिन्द तथा गुरु गोबिन्दसिंह के बाल जीवन के आधार पर ही वात्सल्य का वर्णन अधिक हुआ है। गुरु नानक के जीवन पर आधारित दो ग्रथ प्रमुख हैं 'गुरु नानक दिग्विजय तथा 'नानक प्रकाश । गुरु हरिगोबिन्द के जीवन पर आधारित गुरु विलास छेवी पातशाही' तथा दशम गुरु के जीवन से सम्बन्धित गुरु विलास १०वी पातशाही' उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त महिमा प्रकाश' एव 'गुरु प्रताप सूरज' आदि ग्रथो मे सभी गुरुओ का चरित्र वर्णित है।

सभी गुरुओ के जीवन पर आधारित 'महिमा प्रकाश का कुछ अश गद्य मे भी लिखा गया है। डा० हरिभजनसिंह ने अपने शोध प्रबन्ध मे १८३३ वि० मे रचित सरूपदास भल्ल की इस रचना को कथा सग्रह की कोटि मे रखते हुए लिखा है कि इतिहास अथवा काव्य की दृष्टि से इस ग्रथ का विशेष महत्व नहीं, तथा ५ पृष्ठों से भी कम मे इस बृहद काव्य ग्रथ का बहुत चलता सा विवेचन करके तथा उसके काव्य प्रयास को 'सौन्दर्यहीन' बता कर उसकी उपेक्षा की है जो सर्वथा अनुचित और अन्यायपूर्ण है। इसमे कोई सन्देह नही कि काव्यत्व की दृष्टि से यह रचना साधारण कोटि की है, परन्तु पजाब के हिन्दी साहित्य की परम्परा मे इसका ऐतिहासिक और सास्कृतिक दृष्टि से कम महत्व नही है। भाषा तथा छद प्रयोग की दृष्टि से भी यह एक उपयोगी रचना है। इसके साथ ही कहीं-कहीं काव्यत्व की भी सुन्दर आभा मिलती है। युद्ध वर्णन मे विशेष रूप से कवि की काव्य प्रतिभा के दर्शन होते है। जहाँ तक वात्सल्य की अभिव्यजना का प्रश्न है, यह सबसे पहला ग्रथ है जिसमें

गुरुओं के बाल-जीवन का काव्यमय चित्रण हुआ है। प्रथम प्रयास होते हुए भी काव्यत्व की दृष्टि से वह सर्वथा उपेक्षणीय नहीं। 'महिमा प्रकाश' में कवि ने 'दशमगुरु' के अवतार का वर्णन भक्त परित्राण तथा 'दुष्ट विदारण हेतु' माना है इसलिये उनके रूप चित्रण पर पौराणिकता का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। झूले में झूलते हुए, चन्द्र के समान मुख वाले, माता तथा अन्य सिक्खों के हृदय को प्रफुल्लित करने वाले गोबिन्दसिंह के रूप का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—

मुदत मात मन भइ बधाई। मन चिंदिआ भइ आपूरन फल पाई।
झूलने झूलत बाल मुकंदा। जिम अम्र सोहत ग्रह अटल अनंदा।
यहुदासन गुर मुख सिख करे। जनम जनम के किलविख हरे।
बाल मुकंद मुख पूरन चंद। हिरदे धरे सिख परमानंद।
सहज द्रिसटि जिह ढिग प्रम धरे। ताके दुख सोक परहरे।
महातेज अस सौम बिसाला। बालक रूप परम गुरु दिआला ॥१६॥

यहाँ कवि का ध्यान गुरु के दिव्य रूप की ओर ही अधिक है फिर भी उनके आकर्षक सौंदर्य की एक झलक के साथ माता के मुदित मन की ओर भी संकेत किया गया है।

गुरु गोविन्दसिंह का जो रूप चित्रण कवि ने किया है वह अधिक सजीव बन पाया है। देखिए—

जब सतगुर जी निज ग्रह आए। श्री गोविंद जी लेन सिधाए।
आइ सतगुर के चरनन परे। देख दिआल आनंद रस भरे ॥२॥
अत सुन्दर सोभा अमित अपार। जिम दसरथ ग्रिह रघुबंस कुमार।
मुख देखत दिआल गुर मगनाने। बिध राज जोग पूरन परमाने ॥३॥
पूरन परकास मुख चंद गिआन। तेज पुंज तप ग्रीखम भान।
कमल नैन सुन्दर सुभ द्रिसटि। पलक झलक होइ अम्रित ब्रिसटि ॥४॥
मसतक दिख जात परकास। उनमनी तिलकु सहजि सुख रास।
धनख अकार भवा सुरा राजे। काम आदिक धाइस निरखत भाजे ॥५॥
दोहा—मकराक्रित कुंडल लसत सोभा अमित अपार।
जिम ध्रुव निकटि सदा सोहत सपत रिख परम उदार ॥६॥
अलिक सिआम सुंदर मुख सोहै। धर अनंत बिंब रूप मुख जोहै।
ग्रीवा कंबु सत जोत प्रकास। निरखत सोभा ब्रह्म बिलास ॥७॥
बहु रंगी चोरा सुख रास। कलगी राजत तड़त प्रकास।
तपु तेज धरम रतन बपु धारा। गुरु बाल मुकंद संग वासा करा ॥८॥
कंध भुजा पूरन बल रास। सिख सहाइक दुसट प्रनास।
हसत कमल जिह ढिग बिसथरे। दे भगत दान पग इन करे ॥६॥

छाती सुदर गुन की रासि । पावन हिरदा ग्रत्य प्रकासा ।
सुदर उदर गुनन रतनागर । नाभ गभीर ग्रमित भ्रम सागर ।।१०।।
केहर कट, सतगुर धनी बाल मुकद उदार ।
रण झुण कार भनत धुन पूरन सबद ग्रपार ।।११।।
सुदर जाघ धरम सत खभा । कलू माहि भगत जग थभा ।
चरन कमल सोभा सुख धाम । मुक भुगतत दाइक ग्रभिराम ।।१२।।
गुरु चरन कमल भव सिधु जहाज । चड पार होवत भव सिख समाज ।
ग्रानद कद वन्न नई लोक । धिग्रान धरत हरि भगत सजोग ।।१३।।
गुर ससत्र दिव पुन परमान । धर खडग रूप सोहत विगिग्रान ।
तेज रूप धर धनख तुनीर । गुरु गिग्रान सरूप डाल सत धीर ।।१४।।
दिव बसत्र ससत्र प्रभ भूपन । धिग्रान धरत मेटत सभ दूपन ।
सुदर सोभा ग्रमित ग्रपार । सेस गणेस न पावत पार ।।१५।।
(साखी २०८ पत्र स० ३६२)

यहाँ गुरु गोविन्दसिंह की मुखाकृति, नख सिख, वेश भूषा ग्रादि का चित्रण भी बहुत ही मोहक ग्रौर सजीव है । सूय के समान तेजस्वी, चद्रमा के समान उज्ज्वल सुदर मुख, कमल नेत्र ग्रमृत दृष्टि करने वाले पलक ज्योतिपूर्ण मस्तक, धनुष के समान वक्र भौं मकराकृत कुडल कम्बु समान ग्रीवा, तडित के समान कलगी, गस्त्रो से सन्नद्ध केहरी समान कटि, थम के समान समान जघाएँ, मुक्ति दायक चरण कमल ग्रादि का ग्रनेक उपमाग्रो से सुसज्जित वर्णन उनके बाल सौंदय की एक मनोहर ग्रौर पौरुष पूर्ण भाकी प्रस्तुत करता है । उपमान योजना साथक ग्रौर सुरुचिपूर्ण है । वह उनके चरित्र का उदघाटन तो करती ही है, साथ ही कवि की वीर भावना, राष्ट्रीय चेतना ग्रौर सास्कृतिक दृष्टि को भी प्रकट करती है । यहा कवि ने पिता के ग्रानन्द का भी उल्लेख कर दिया है । ऐसे ग्रदभुत सुदर तेजपूर्ण, वीर पुत्र को देख कर पिता का हृदय प्रफुल्लित हो उठता है । वे ऐसे परम प्रिय पुत्र को उठा कर हृदय से लगा लेते हैं गोद मे बिठा कर उसका मस्तक चूमने लगते हैं । उस समय वे ऐसे शोभित हो रहे थे मानो दशरथ रघुवीर को ग्रक म बिठाए हुए शोभित हो रहे हो, मानो सूय के पास चद्रमा ग्रा बठा हो । देखिए कवि ने पिता के इस ग्रपार स्नेह ग्रौर हप का कितना सुदर चित्रण किया है ।

ग्रदभुत सुदर देख छब स्री सतिगुर सुखमान ।
देख प्रताप लगाइ हीग्र ग्रति प्रिय खान समान ।।१६।।
तप तेज ग्रमित ग्रपारे । बालक सरूप धारे ।
ग्रातप समान पिग्रारे । सतिगुर हीग्र लगाए ।।१७।।
सुभ करम धरम भूम । मस्तक टिग्राल चूम ।
हीग्र विगस हरख रोम । निज गोद लें विठाए ।।१८।।

जिम दशरथ गोद रघुबंश। मन सोहत सोभा सार।
तिम सतगुर श्री गोबिन्द। प्रभ सोभा अमित अपार ॥२१॥
जिम जागी को होत अनद। रवि ऊपरि ले राखे चंद।
जिमान भान गुर परमानद। सोहत गोद तिम गुर गोबिंद।
बाल मुकुंद सोभा अमित अनभै छबि सुख सार।
निरख मगन सतगुर भए किरपा करी अपार ॥२६॥
(पत्र संख्या ३६८ साखी २०८)

गुरु तेगबहादुर को दशरथ तथा गोबिंदसिंह को रघुवीर के समान बना कर कवि ने हिन्दुओं और सिक्खों की सांस्कृतिक अभिन्नता की ओर भी संकेत किया है। इस प्रकार बालक के रूप तथा माता पिता के आह्लाद, हर्ष आदि का इस ग्रंथ में बहुत ही सजीव चित्रण हुआ है यद्यपि बालक की क्रीडाओं के वर्णन का इसमें प्राय अभाव है।

गुरु नानक विजय

संत रेण द्वारा रचित 'गुरु नानक विजय' गुरु नानक के जीवन पर आधारित एक ऐसा बृहद् प्रबन्ध काव्य है, जिसमें ऐतिहासिकता की अपेक्षा पौराणिक धार्मिक तथा सांस्कृतिक तत्व इतना अधिक है कि कवि ने स्वय उसे 'पुराण' की कोटि में रखा है। इस ग्रंथ में गुरु नानक के पिता कश्यप के और माता तृप्ता अदिति के अवतार हैं। भगवान विष्णु पहले चतुर्भुज रूप में माता के सामने प्रकट होते हैं और फिर बालक रूप धारण करके नानक के रूप में उनके पुत्र बनते हैं। इसलिए उनकी माता भी उनका अभिनन्दन करती है।[1] यही कारण है कि नानक के अवतारत्व का बोध वात्सल्य सम्बन्धी मनोवेगों के नैसर्गिक स्फुरण एवं स्वाभाविक विकास में बाधक बनता है तथापि उनके जन्म पर पिता के हर्ष एवं आनन्द, माता की ममता एवं आशंका उनके घर से लुप्त हो जाने पर पिता की ग्लानि, विदेश गमन पर माता, बहन, ससुर, कुटुम्बियों एवं अन्य स्नेही जनों की व्यथा, चिंता, उद्वेग एवं स्नेह आदि की अत्यन्त स्वाभाविक एवं मार्मिक व्यंजना की गई है।

पुत्र जन्म पर नानक के पिता के हर्ष और आनन्द का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

सुनि करि कालू भयो अनद। जनु मिलियो तिस को गोबिंद।
अपने कर के कंगन दोई। दासी को तिन दीन सोई ॥४८॥
परम अनद ताहि उर भयो। मानो पारब्रह्म मिलि गयो।
भयो अनद ताहि अधिकाई। ताहि आनद न बरनी जाई ॥४६॥

---

१ करुणा सुख सागर रूप धरे अभिनंदन तोर दयाल हरे।
तुम दीन दयाल क्रिपाल सदा, तव बारबार नमामि सदा।
२।१२।११।१८।२।४।५३।१५।

यथा दरिदरी पारस पाई। निज मन माहि परम हरखाई।

यहाँ कवि ने नानक की बाल्यावस्था की रत्न मणियों से जड़ी वस्त्र भूषा का भी कुछ वर्णन किया है, लेकिन उनके मनोहारी रूप अथवा बाल्य क्रीड़ाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण का इसमें अभाव है।

नानक के लोप होने पर पुरवासियों की स्नेहपूर्ण करुण दशा का कवि ने भावपूर्ण वर्णन किया है। यथा—

नानक लोप भयो सुनि कै, पुर के जन आइ सबै नर नारी।
नानक के गुणि याद करै, बहु दुख भया सभि के उर भारी।
इक खाइ तवार गिरे धरनी परि मूरछता तिन के तब आई।
इक नैन ते जलु डारती हैं, जु गिरे हैं तिन के मुखि नीर सु पाई।
अपने अपने दुख म सगले, घरि लौटति हैं जलु नैन बहाई।
(प० उ० ख० ८।६)

सभी पुरवासी उनके गुणों का स्मरण करके अत्यन्त दुखी हैं। कोई स्नेहाकुल होकर पछाड़ खाए धरती पर गिरा पड़ा है कोई मूर्छित पड़ा है तो कोई नेत्रों से अश्रु धारा बहा रहा है कोई उनके ध्यान मे मग्न है और कोई उनके यश का गान कर रहा है। सभी अपने अपने दुख म दुखी होकर, नेत्रों से अश्रु बहाते हुए अपने अपने घरों को लौट रहे हैं।

उनके ससुर मूलचद जी की दयनीय दशा का भी कवि ने यथार्थ चित्रण किया है उनका कठ भर आया है बोला तक नहीं जाता नेत्रों से निरन्तर जल बह रहा है वह नीचे सिर किए बैठा है और ऊँचे ऊँचे पुकार कर कहता है—'हे प्रभु अब तुम्हारे बिना हमारा कौन सहारा है'—उसका सारा धैर्य जाता रहा है। देखिए—

गदि गदि कठ नैन जलु आयो। उमगिओ मोहु न जाइ समायो।
बिह्वल ह्वै करि नायो माथा। नानक तैं मुहि कीउ अनाथा।
ऊच सुर करि करी पुकारा। सतिगुर तो बिन कउन हमारा।
मूलचद का धीरज जेतो। गया बिलाइ सरब ही तेतो।
(उ० ख० ८।१६ २०)

यहाँ इनकी वेदना अधीरता, व्याकुलता एव तत्सम्बन्धी सभी सात्विक भावों का सजीव चित्रण हुआ है। उनकी वेदना करुणा का स्पर्श करती दीख पड़ती है।

पुत्र के कोमल मनोहर रूप को निहारने से माता की प्रफुल्लता एव उसे किसी की नजर न लग जाए इस बात की आशंका से राई और नमक आदि का वारने का कवि न देखिए कितना स्वाभाविक चित्रण किया है—

अद्भुत रूप देख करि माई वारे निम लूण पुनि राइ ॥२८॥
काहू की इस नजरि न लागे, इति उति नानक खेल आगे।
ताहि उठाइ गोदि म लेहि, जननी करे सु बहुति सनेहि ॥२६॥

पुरव पुरव म पुय वगावहि, जिउ जिउ ब्राह्मण तोंहि वतावहि ।।३०।।

(वि० स० १)

यहाँ माता की ममता स्नेह एव शुभ कामना की सुन्दर व्यजना हुई है। जिस समय नानक 'उदासी' से लौट कर घर आए तब तो माता का मन आनन्दातिरेक म उछल पडा। वह उसे बार बार अपनी गोदी मे बिठाकर चूमती है और उसका कुशल क्षेम पूछती है। उसके नेत्रो से आनन्द के अश्रु बहने लगते हैं—

जननी गुर आवती गोद लयो,

मिर चूम बिठाइ पियार दयो।

जलु नैनन ते चलियो वहि कै

कुसल सभि बूझिओ तो कहि कै।।

(ध० उ० ख० ११)

इस अवसर पर कवि ने उनके पुत्र श्रीचद के हर्ष और आनद की भी व्यजना की है।

"गुरु-बिलास —१०वीं पातशाही" (१८५८ वि०)— दशम गुरु के जीवन पर आधारित यह सवप्रथम ऐसा प्रबन्ध काव्य है, जिसमे उनके जीवन की विविध घटनाओं का विशद चित्रण किया गया है। इसम भी गुरु गोबिन्दसिंह को पौराणिक रूप म चित्रित किया गया है। उनके बाल्य जीवन की घटनाओ के वर्णन म भी बालोचित स्वाभाविक क्रीडाओं और चेष्टाओ की अपेक्षा उनके अलौकिक रूप का महत्व अधिक स्थापित किया गया है। कही व नौका लेकर किसी को पुत्र का वरदान देते दिखाई देते हैं तो कही पाँच बार प्रणाम करने पर एक पुत्र की कामनावान स्त्री को पाच पुत्रो की वर प्राप्ति हो जाती है। कवि ने गुरु के बाल्य जीवन से सम्बन्धित ऐसी अनेक घटनाओ का वर्णन किया है जहाँ वह चाहता तो अनेक मनमोहक क्रीडाओ के चित्र उपस्थित कर सकता था, परन्तु कवि का ध्यान उनके महत्व स्थापन की ओर ही अधिक रहा है। बालक गुरु सखाओ के साथ उपवन म क्रीडा करने जाते हैं—तो वहाँ सेवक उनके साथ है। जिसस वे स्वतन्त्र होकर खेल कूद भी नही सकते। यहाँ एक प्रसग उद्धत किया जा रहा है जिसम पता चलेगा कि कवि ने उनके बाल्य कौतुक को कसे धार्मिक रूप प्रदान किया है।

गुरु के घर म मीठे जल का एक कुआ था, जिसस नगर के बहुत से स्त्री पुरुष जल भरने आते थे। एक दिन एक तुरकनि जल भरने आई तो गोबिंदसिंह ने गुलेल का निशाना उसके मस्तक पर दे मारा। वह लहू लुहान होकर उसकी माता के पास जाती है। यहाँ तक तो उनकी चचल क्रीडा का वर्णन ठीक था यद्यपि यहाँ भी तुरकनि को गुलेल मारने का उल्लेख करके कवि ने तुरक-विरोधी भावना को प्रकट किया है। इसके पश्चात् तो अलौकिक तत्व की

यथा दरिदरी पारस पाई । निज मन माहि परम हरखाई ।

यहाँ कवि ने नानक की शैशवावस्था की रत्न मणियो से जडी वस्त्र भूषा का भी कुछ वर्णन किया है, लेकिन उनके मनोहारी रूप अथवा बाल्य क्रीडाओ का मनोवैज्ञानिक चित्रण का इसमे अभाव है ।

नानक के लोप होने पर पुरवासियो की स्नेहपूर्ण करुण दशा का कवि ने भावपूर्ण वर्णन किया है । यथा—

नानक लोप भयो सुनि कै, पुर के जन आइ सब नर नारी ।
नानक के गुणि याद कर, बहु दुख भयो सभि के उर भारी ।
इक खाइ तवार गिरे धरनी परि मूरछता तिन के तब आई ।
इक नैन ते जलु डारती हैं, जु गिरे हैं तिन के मुखि नीर सु पाई ।
अपने अपने दुख मैं सगले, घरि लोटति हैं जलु नैन बहाई ।
(घ० उ० स० ६।६)

सभी पुरवासी उनके गुणो का स्मरण करके अत्यन्त दुखी हैं। कोई स्नेहाकुल होकर पछाड खाए धरती पर गिरा पडा है, कोई मूर्च्छित पडा है तो कोई नेत्रो से अश्रु धारा बहा रहा है, कोई उनके ध्यान म मग्न है और कोई उनके यश का गान कर रहा है । सभी अपने अपने दुख म दुखी होकर, नेत्रो से अश्रु बहाते हुए अपन अपने घरा को लौट रहे हैं।

उनके ससुर मूलचद जी की दयनीय दशा का भी कवि ने यथाथ चित्रण किया है उनका कठ भर आया है बोला तक नही जाता नेत्रो से निरन्तर जल बह रहा है, वह नीचे सिर किए बठा है और ऊँचे-ऊँचे पुकार कर कहता है—'हे प्रभु अब तुम्हारे बिना हमारा कौन सहारा है'—उसका सारा धय जाता रहा है । देखिए—

गदि गदि कठ नैन जलु आयो । उमगिओ मोहु न जाइ समायो ।
बिह्वल ह्वै करि नायो माथा । नानक तैं मुहि कीउ अनाथा ।
ऊच सुर करि करी पुकारा । सतिगुर तो बिन कउन हमारा ।
मूलचद का धीरज जेतो । गयो बिलाइ सरब ही ततो ।
(उ० स० ६।१६ २०)

यहाँ इनकी वन्ना अधीरता व्याकुलता एव तत्सम्बन्धी सभी सात्विक भावो का सजीव चित्रण हुआ है । उनकी वन्ना करुणा का रग करती दीख पडती है ।

पुत्र क कोमल मनोहर रूप को निहारने से माता की प्रफुल्लता एव उस किसी की नजर न लग जाए इस बात की आशका स राई और नमक आदि को वारने का कवि न देखिए कितना स्वाभाविक चित्रण किया है—

अदभुत रूप देख करि माई वारे निम लूण पुनि राई ॥२८॥
काहू की इस नजरि न लाग, इति उनि मानस मन भाग ।
ताहि उठाइ गोदि म मेलि जननी कर सु वदनि मनि ॥२९॥

पुत्र पुरब मे पुन्य करावहि, जिउ जिउ ब्राह्मण ताहि बतावहि ॥३०॥
(जि० स० १)

यहाँ माता की ममता स्नेह एव शुभ कामना की सुन्दर व्यजना हुई है। जिस समय नानक 'उदासी' से लौट कर घर आए तब तो माता का मन आनन्दातिरेक स उछल पडा। वह उसे बार बार अपनी गोदी मे बिठाकर चूमती है और उसका कुशल क्षेम पूछती है। उसके नेत्रो से आनन्द के अश्रु बहने लगते हैं—

जननी गुर आवती गोद लया,
सिर चूम बिठाइ पियार दयो।
जलु नैनन ते चलियो बहि कै,
कुसल सभि बूझिओ तो कहि कै॥
(प० उ० स० ११)

इस अवसर पर कवि ने उनके पुत्र श्रीचद के हर्ष और आनद की भी व्यजना की है।

"गुर बिलास—१०वीं पातशाही" (१८५४ वि०)—दशम गुरु के जीवन पर आधारित यह सवप्रथम ऐसा प्रबन्ध काव्य है जिसम उनके जीवन की विविध घटनाओ का विशद चित्रण किया गया है। इसमे भी गुरु गोबिन्दसिंह का पौराणिक रूप म चित्रित किया गया है। उनके बाल्य जीवन की घटनाओ के वर्णन म भी बालोचित स्वाभाविक क्रीडाओ और चेष्टाओ की अपेक्षा उनके अलौकिक रूप का महत्व अधिक स्थापित किया गया है। कहीं वे नौका लेकर किसी को पुत्र का वरदान देते दिखाई देते हैं तो कहीं पाँच बार प्रणाम करने पर एक पुत्र की कामनावाली स्त्री को पाँच पुत्रो की वर प्राप्ति हो जाती है। कवि न गुरु के बाल्य जीवन से सम्बन्धित ऐसी अनेक घटनाओ का वणन किया है, जहाँ वह चाहता तो अनेक मनमोहक क्रीडाओ के चित्र उपस्थित कर सकता था, परन्तु कवि का ध्यान उनके महत्व स्थापन की ओर ही अधिक रहा है। बालक गुरु सखाओ के साथ उपवन म क्रीडा करने जाते हैं—तो वहाँ सेवक उनके साथ है। जिसम व स्वतत्र होकर कूद फाँद भी नहीं सकते। यहाँ एक प्रसग उपस्थित किया जा रहा है जिससे पता चलता कि कवि ने उनके बाल्य कौतुक को कैसे धार्मिक रूप प्रदान किया ह।

गुरु के घर म मीठे जल का एक कुआ था जिसस नगर के बहुत स स्त्री-पुरुष जल भरने आते थे। एक दिन एक तुरकनि जल भरने आई तो गोबिंदसिंह न गुलेल का निशाना उसके मस्तक पर दे मारा। वह लहू-लुहान होकर उनकी माता के पास जाती है। यहाँ तक तो उनकी चचल क्रीडा का वणन ठीक था, यद्यपि यहाँ भी तुरकनि को गुलेल मारने का उल्लेख करके कवि ने तुरक विरोधी भावना को प्रकट किया है। इसके पश्चात तो अलौकिक तत्व की

छाया मानो प्रसग का स्वाभाविकता को ही नष्ट कर देती है। माता दुखी होकर 'गुरु नानक' से प्रार्थना करती है कि कुएँ का जल खारी हो जाए—जिससे न कोई जल लेने आए और न वह ऐसे उत्पात कर सके और जल तत्क्षण खारा हो जाता है।[1]

कवि ने यहाँ गुरु जी की तुरक विरोधी भावना तथा अलौकिकत्व की ही स्थापना की है, कौतुक क्रीडा की स्वाभाविकता तथा बाल सुलभ मनोवृत्ति की मनोवैज्ञानिक अभिव्यंजना का यहाँ भी प्राय अभाव है। माता के रोष की ओर भी 'कछुक बचन बोलति माई' द्वारा सकेत ही किया गया है जोकि पर्याप्त नही है। गुरु—बालक भी माता के आने पर बस किवार अडा लेते है न कुछ कहते है न सुनते हैं। इसी प्रसग को भाई सतोखसिंह ने भी गुरु प्रताप सूरज मे वर्णित किया है परन्तु उन्होंने इसे बहुत ही स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक रूप दिया है। अस्तु इस ग्रथ म कवि ने बाल्य वर्णन के प्रसगो को उठाया तो है परन्तु धार्मिक भावना के आरोपण के कारण उसे अधिक सफलता नही मिली।

इस युग के पजाब के साहित्य मे वात्सल्य का सर्वोत्कृष्ट चित्रण भाई सतोखसिंह ने किया है। उनके दो बृहदाकार प्रबन्ध काव्यो—'गुरु नानक प्रकाश

---

१ सुदर कूप अधिक इक जानहु। स्री हरि मदर बीच पछानहु।
अम्रित बाको नीर भणिजै। को ताके पटतर जल दिज ॥१२१॥
पानी भरन सहर के लोग। आवत अधिक भीर होइ लोगा।
एक दिवसु तिह ठौर मझार। आइ एकु तुरकनी नारा ॥१२२॥
वह आइ जल को निज काजा। लई बिलोकु गरीब निवाजा।
चटपट हाथि गलेल सभारी। निरखी ऊपरि बैठि अटारी ॥१२३॥
बीचु अटारी महल की ढाढि अधिक रिस धारि।
त गलेल मारिया अधिक ताके मधि लिलार ॥१२४॥
स्रोनत पुलत भइ अधिक बहु तरनी। निरख सोकु कछु जाति न बरनी।
रोवत पीटत तब उठि आई। माता जू के निकट सु धाई ॥१२५॥
ते वह पाटत अधिक दुखारी। गुर जननी पहि आन पुकारी।
वाको निरख बिहाल सु माई। आदरु दे निज धीर धराई ॥१२६॥
कछुक कोप माता जीय धारी। निज मुख सो इह भाति उचारी।
गुरु नानक साहिब के अवतारा। वेग होई इह कूप सु खारा ॥१२७॥
यो कह माता ऊपरि धाई। आग लीस किवार अडाई।
कछुक बचन बोलती माई। बहुरे उतरि तरे कऊ आई।
तिह अबला को आदर कीना। कछुक दरबु वाकहि ले दीना।
उत वह गई धाम निज नारी। इत सत्र भया कूप जल खारो ॥३।१३॥
(पत्र संख्या ५१)

तथा 'गुरु प्रताप सूरज' में इन भावों की विस्तृत व्यंजना हुई है। गुरु नानक प्रकाश में श्री नानकदेव के शैशव एवं बाल्यावस्था की कुछ सुन्दर झाँकियाँ मिलती हैं। उनके शिशु-सौन्दर्य का एक चित्र देखिए—

लोचन अमल कमल दल जसे। नासा तिल प्रसून नहिं वसे ॥३॥
सुन्दर अलंकार धरिवाए। बिन दूषन के भूषण पाए।
बनी बाजनी किंकनी चारी। कटि महि पाई अति छवि वारी।
कर महि कर पद नूपर सोहै। जो देखे तिम का मन मोहै।
दुइ दुइ दसन अधर दुति होती। संपुट विद्रुम जिउँ जुग मोती।
अञ्जन महिं रिझण गतिकारी। चरणाम्बुज खचत बनवारी।
हेरत हसति हसावत औरी। किलकत मुख ते माधुर ठौरी।
बोल बचन तोतरे मीठे। सुनहि नारि नर लागहि ईठे।
हेरहि मात तात अनुरागहि। फिरति भूमिका प्रितका लागहि।
लगी धूर तन धूसर होए। अंब लेय अंग अंग धोए।
मलि मलि मुख मज्जन करवायो। पौंछ सरीर अंक बसायो।

यहाँ श्री नानकदेव के सुन्दर नेत्रों नासिका, किंकनी नूपुर, दसन पंक्ति, अंजन, तोतरे बैन, धूलि धूसरित तन की शोभा का सुन्दर चित्रण किया गया है। माता पिता का उल्लसित होना और पुत्र को अंक में बिठाना आदि अनुभाव भी विद्यमान हैं।

नानकदेव के पाठशाला जाने एवं गो महिषी चारण का चित्र भी अत्यन्त स्वाभाविक एवं मनोहर है। हाथों में कागज पकड़े, गुरि हाथ में पकड़े, कटि में किंकनी कानों में कुंडल तथा सिर पर पगड़ी पहने कामल चरणों से सुन्दर नेत्रों वाले नानक बार-बार सखाओं को पुकारते हुए पाठशाला की ओर जा रहे हैं—

जलजात से है पद जाति चले गहि तात करा गुरि हाथ उँचाई।
कर कंकन सो कटि किंकनि है, कल कुंडल लोल कपोलन झाई।
दल लोचन कंज विसाल भले, सिर पञ्जगनीकहि नीक बनाई।
चटसार जहाँ अति चारु बनी, बहु बारक-भूरहि धार भलाई।
गुरु (ना० प्र० पृ० ६६)

प्रात काल ही अपने हाथों से गो महिषी को खोल कर हाथ में लाठी लेकर उनकी टोली को हाँकते हुए वे उन्हें चराने के लिए जा रहे हैं। यथा—

श्री नानक अरुणोदय जागे गो महिखी चारन अनुरागे ॥१३॥
निज हाथन दामन ते खोली हाँकति चले इकत करि टोली।
लए लकुटका देत हुसूरा चारति हरित त्रिणन सुर पूरा ॥१४॥
मनहु गुपाल सु पाठल नामा, प्रगट करति है जनु सुख धामा।
मंद मंद सुभ सुरभी पाछे, सभि बासुर चारण तिण आछे।

भई सभ पुरि दिस वो मोरी, आई मघाई मवनी गोरी।
सोभहि सभि सुरभी तन पीना, छीर देहि गहु वड आपीना।
दिन प्रति माखन होति सवाय काटू हरि हरि हरसाया।
(ना० प्र० अ० १० ५१)

जब नानक गृह त्याग कर चले जाते हैं और बहुत समय के पश्चात उनके माता पिता उन्हें देखते हैं तो चिरकाल के विरह के पश्चात इस पुर्नमिलन से जो वात्सल्यपूर्ण भाव उठते हैं तथा पुत्र को मिलने के लिए उत्कंठित एवं आतुर माता पिता की जो दशा हुई उसकी भी कवि ने मार्मिक व्यंजना की है। माता की पुत्र के विरह में जो दशा हुई उसका चित्र देखिए—

सुनि माता उर बहु अकुलाई ज्यु त्रिण पाके पावक लाई।
बोल न आव विकल तनु होइ जनु सुत बिरहु म परिके साई।
इक तो ब्रिद्ध हीन बल देही पुन न पाइ सुध तात सनेही।
जिउ सु खतग मरम दे भेदा परी विवरण होइ अति खेदा।
किलिक बार महि पुनि सुधि आई लोचन ते आसुन जल जाई।

कुछ समय के लिए तो माता तृष्णा सुध बुध खो कर मूर्छित पड़ी रहती है जब उसे कुछ होश आता है तो तुरन्त पुत्र को मिलने के लिए भागती है। पुत्र से भेंट करने पर तो उसकी ममता स्नेह एवं विरह जनित वेदना का स्रोत बांध तोड़ कर वह निकलता है। अश्रुओं से वस्त्र भी भीग जाते हैं बार बार पुत्र का मुख देखती है माथा चूमती है, स्नेह से सिर पर हाथ फेरती है और उसका आलिंगन नहीं छोड़ती। देखिए—

बहिर चल्यो उठि तूरण जहिवा, होइ आतमज मेरो तहिंवा।
बहु दिन बित आयो घर माही, बासुर रह्या एक भी नाही।
इस विधि जननी मन गुनति मधुर असन ले मोल।
तूरन गवनी धाइकरि, लीने रुचिर निचोल।
(वही उत्त० १५)

\+ + +

कौरे भरि नानक को जननी रोदन करति न जाई गननी।
चल्यो विलोचन ते बहु नीर, सुत विरहानल जनु करि सीर।
अश्रु पाति सा वसन भिगोए जो देखति सो गद गद होए।
कौरी ते सुत को नहि तजई, अधिक विरहु ते मिलति न रजई।
वदन विलोकति सूघति माथा करति नेह सिर फेरति हाथा।
हुती ब्रिद्ध बल ते तनु हीना, पुनि समीप बैस सुत लीना।
(वही उ० अ० ५ २२

पुत्र के आने का समाचार सुनकर पिता कालू भी तत्क्षण उठ कर दौड़ते हैं तथा उन्हें हृदय से लगाकर इतने प्रसन्न होते हैं मानो

दिना के भूखे का भोजन तथा प्यासे मरते को जल मिल गया हो, नेत्रो ं
अश्रुधारा प्रवाहित हाने लगी, कठ गदगद हो गया—यथा —

जब कालू नै सुधि मो पाई वस्यो वहिर तात मम आई।
ततछिन जीन तुरगनि पावा, ह्व अरूढ तूरण तब आवा।
जन वहु भूखे मिल्यो अहारा, मरत्या प्यासे पायो वारा।
नीर विमोचति लोचन दर ते, गद गद बोल्यो जाइ न गरते।

(वही ऊ० ५ २३ २४)

इसी प्रकार कवि ने उनके पिता की उत्कठा आतुरता व्याकुलता विह्वलता उत्सुकता आदि का भावपूर्ण चित्रण किया है।

श्री हरिगोविन्द एव गोविन्दसिह के जन्म, शशव एव बाल्यावस्था का चित्रण इन कवियो ने अपेक्षाकृत विस्तार से किया है। 'गुरु बिलास छेवीं पातशाही'—(अज्ञात) मे भा कवि ने श्री हरिगोविन्द के जन्म एवं बाल्यावस्था कं घटनाओ को दिव्य रूप देकर प्रस्तुत किया है। फिर भी उसम पर्याप्त रसा त्मकता है। विशेष रूप स जन्मोत्सव का वर्णन विस्तृत एव सजीव है। बाव बूढ्ढे के वरदान स जब माता गगा के सम्मुख चतुभु ज रूप म भगवान अव तरित हुए तो वह गद गद हो कर स्तुति करने लगती है। तदनन्तर भगवान ं अवतार का उद्देश्य—मलेछ नाश बता कर शिशु रूप धारण कर लेते हैं औ माता म भ्रम बुद्धि उत्पन्न कर देते है, तो माता पुत्र को देख कर हर्षित हं उठती है, शिशु का शब्द सुन कर दासियाँ दौड आती हैं घर भर म कोलाहल छा जाता है। स्त्रियाँ मगल गाने लगती है गुरु अर्जु न इतना दान देते हैं कि सुमरु को भी भय लगने लगता है कि कहीं उस ही दान मे ः दे दें।[1]

उनके अवतार धारण करने पर नभ से देव पुष्प वर्षा करन लगत है, वन के तण आदि सब हरे हो जाते है। जब जन्मोत्सव मनाया जाने लगता है तो गहद्वार पर वदनवार बाधे गये स्त्रियाँ बधाइयाँ देती है वहा उस समय इतनी शोभा हुई कि शेष महश, गणेश, शारदा भी उसका वर्णन नहा कर सकत—

---

१ देख पुत्र माता हरखाई बाल शब्द सुन दासी धाई।
घर घर भयो कुलाहल भारी, आवत मगल गावत नारी।
श्री गुर अरजन सुनिआ जबही, पुत्र जनम सुख पायो तबही।
दान दीओ जिह वार न पारा, तब सुमेर निज भय मन धारा।
मो को बाट गुरु जिन दई, उनकी सरन परिओ रख लेई।
ता सम जे नर आवत भयो, मन्-आछत गुर त तिन लयो।

(गुरु विलास ११.३)

कवि की तो शक्ति ही क्या है।[1]

इन उत्सव मे दूर दूर से नर-नारी आते हैं मगल गाते हैं और बधाइयाँ दते है और दर्शन करके आनन्द विभोर हो कर लौटते हैं। बाबा बुड्ढा एव गुरुदास भी बधाई देने आते हैं, तुरही, ढोल, नगारे बजते हैं, माता सभी रीतियो को पूरा करती है, पिता दान देते नही थकते।[2] देवागनाएँ भी नारी का रूप धारण कर उस उत्सव म भाग लेने आती हैं और वहा आनन्द का सागर लहरा उठता है। बालक का रूप देख देख कर सभी बलिहारी जाते हैं। चन्द्रमा जसे पुत्र को देखकर माता तो आनन्द विभोर हो उठती है।[3] पुत्र के तोतले बैन सुन कर माता को अत्यधिक सुख

---

१ नभ मे तब देव आए सभही, जै ज मुख भाखत सु फूलन डारी।
मगल होहि धराधर म उतरयो अवितारन को अवतारी।
वण त्रिण सभ हरिआ भयो, सरब जीअ सुख पाई॥१०४॥
मन इछे हम फल दीए श्री गुर नानक राई॥११३॥
बदनवार बध दरि आई। सभ अबला मिल देति बधाई।
कागद धरा सिध मस कर। वनस्पति कलम हाथ निज धरै।
लिखै गनेश गिरा उचरावै। तउ उतसव का अत न पावै।
भुवन सभ भयो मगलाचारा। सभ देवन मन आनद धारा।
(गुरु विलास ६ १ ११४)

२ चढयो सूर जब कछु दिन आया, नर नारी मिल मगल गायो।
तुरही ढोल नगारे बाजे दव फूलो के अजन साजे।
दूर दूर की सगति आव दहि बधाई अति सुख पावै।
पर सुत रीत जेतक जग गाई, नर अनुहार सभ भात कराई।
श्री गुरु अरजन देवत दाना, रक भूप हुइ कर सिधाना।
तब लौ साहिब बुड्ढा आइओ साथ भाइ गुरदास लिआयो।
आई दरस श्री गुर के कीनो दइ बधाइ आनद तीनो।
(२ ३)

सुधा सरोवर के नर नारी, धरक रूप सुमगल कारी।
आइ वडाती देहि बधाई बाल दरस कर आनद पाई।

३ देवागन वपु नार बनाए। इन नारी मैं मिली सु आए।
आनद बस काउ सिआन न कर, अपन बिगान नहि मन धर।
सभ नारी मिल मगल गाव, बलि रूप दिख बलि बलि जावैं।
मात गग मन आनद पाद, बचन कह सभ नार सुनाइ।
—(२ ६)

(अगले पृष्ठ पर भी देखिय)

प्राप्त होता है। किंकणी एव नूपुर की ध्वनि सुन कर सभी नर-नारी मोहित हो जाते हैं। जब श्री हरिगोबिन्द खेलने लगते हैं तो माता सभी काय छोडकर उनके

हरिगोबिन्द की वेश भूषा और आभूषणो का वणन कवि ने इस प्रकार किया है—

झगली झीन महीन सूत की बरन बरन की पाइ सु धारि ॥२२॥
कचन के ककन करवाइस जुग जुग हीरे जेर जराइ।
छुद्रघटका आजनवारी कारीगर न धरा सुहाइ।
पावन पद पकज महि नूपर रणकति रुचिर जिउरध उचाइ।
छाप छलाइनि गर की भूषन शामनि सभि ही शुभ पहिराइ ॥२३॥
श्याम बिंदु सुदर बिच मोहन श्याम बेस ऐसे छबि पाइ।
अल का बालक अल गन तजि करि धरयो पक अभ्रित के आइ।
डीठ न लगहि डरति उर जननी वारनि राई लौन मगाइ।
तिनक तोरि तोरि करि गेरति रच्छक श्री नानक ले नाई ॥२४॥
× × (३६)

माता का पुत्र के प्रति प्रेम का एक उदाहरण देखिये—

बधति सरीर दूज स जम ससि तिम तिम सुदरता अधिकाइ।
रात दिवस सुत को मुख देखति नहि लोचन क्योहू त्रिपताइ।
बरबस निद्रा अधिक बधहि जबि सुपतहि छिन्न जाग को पाइ ॥२१॥
जनु पनग मन मनि सा लाग्यो अहि निस राखन महि हितकार।
निद्रा ते जबि उघरहि लोचन तनुज बदन पर द्रिशटि पसार।
पालनि 'लालनि' घालति घाल, डालति नयन श्यामता धार।
झगली झरीन महीन सूत की बरन बरन की पाइ सुधारि ॥२३॥
× × (रा० ३६)

इसी प्रकार उसके उल्लास, हर्ष और प्रेम का यह चित्र देखिए—

अधिक प्रसन्न होति सुत हेरति बलिहारी हुइ करति दुलार।
सूघति मसतक परम प्रम त ब्रिध का लखहि महा उपकार ॥१८॥
× × (रा० २६)

बुड्ढे निहाल किया हमको गिह के बिच पुत्र लहिमा सुखकारी।
आगा मोर सुहान भयो जन दूज का चद चढियो सुखधारी।
आज के दिवस पैं हो सजनी, सु अब बलि जाऊ महा सुखधारी।
बाल को रूप निहार तब सम नार गई मन आनद पाई।
नारनि जाइ सुधासर म मुख बालक की अति उपमाई।

कवि की तो शक्ति ही क्या है।[1]

इस उत्सव मे दूर-दूर से नर नारी आते हैं मगल गाते हैं और बधाइयाँ देते है और दर्शन करके आनन्द विभोर हो कर लौटते हैं। बाबा बुड्ढा एव गुरुदास भी बधाई देने आते हैं, तुरही, ढोल, नगारे बजते है, माता सभी रीतियो को पूरा करती है पिता दान देते नही थकते।[2] देवागनाएँ भी नारी का रूप धारण कर उस उत्सव मे भाग लेने आती है और वहा आनन्द का सागर लहरा उठता है। बालक का रूप देख देख कर सभी बलिहारी जाते हैं। चन्द्रमा जसे पुत्र को देखकर माता तो आनन्द विभोर हो उठती है।[3] पुत्र के तोतले बन सुन कर माता को अत्यधिक सुख

---

१ नभ मे तव देव आए सभही जै जै मुख भाखत सु फूलन डारी।
मगल होहि धराधर मे, उतरयो अवितारन को अवतारी।
वण त्रिण सभ हरिआ भयो, सरब जीअ सुख पाई ॥१०४॥
मन इछे हम फल दीए श्री गुर नानक राई ॥११३॥
बदनवार बधे दरि आई। सभ अबला मिल देति बधाई।
कागद धरा सिंध मस कर। वनस्पति कलम हाथ निज धरै।
लिखै गनश गिरा उचराव। तउ उतसव का अत न पावै।
भुवन सभ भयो मगलाचारा। सभ देवन मन आनद धारा।
(गुरु विलास ६-१ ११४)

२ चढयो सूर जब कछु दिन आयो नर नारी मिल मगल गायो।
तुरही ढोल नगारे बाजे, देव फूलो से अजन साजे।
दूर दूर की सगति आव, देहि वधाई अति सुख पाव।
पर सुत रीत जेतक जग गाई, नर मनुहार सभ भात कराई।
श्री गुरु अरजन देवत दाना, रक भूप हुइ करे सिधाना।
तब लौ साहिब बुड्ढा आइओ साथ भाइ गुरदास लिआयो।
आई दरस श्री गुर के कीनो दइ बधाइ आनद लीनो।
(२३)

सुधा सरोवर के नर नारी, धरक रूप सुमगल कारी।
आइ वडाली दहि वधाई बाल दरस कर आनन्द पाई।

३ दवागन वपु नार बनाए। इन नारी मैं मिली सु आए।
आनद वस काउ सिआन न करै, अपन बिगान नहि मन धर।
सभ नारी मिल मगल गाव, बलि रूप दिख बलि बलि जाव।
मान गग मन आनन्द पाइ बचन कहे सभ नार सुनाइ।
—(२६)

(अगले पृष्ठ पर भी देखिए)

प्राप्त होता है। किंकणी एवं नूपुर की ध्वनि सुन कर सभी नर नारी मोहित हो जाते हैं। जब श्री हरिगोबिन्द चलने लगते हैं तो माता सभी काम छोड़कर उनके

हरिगोबिन्द की वेश भूषा और आभूषणों का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

झगली झीन महीन सूत की बरन बरन की पाइ सु धारि ॥२२॥
कंचन के कंकन करवाइस जुग जुग हीरे जेर जराइ।
छुद्रघटका बाजनवारी कारीगर न धरी सुहाइ।
पावन पद पंकज महि नूपर रुणकति रुचिर जिउरथ उचाइ।
छाप छलाइनि गर को भूषन शोभति सभि ही शुभ पहिराइ ॥२३॥
श्याम बिंदु सुंदर बिच भौहन श्याम बस ऐसे छबि पाइ।
अल को बालक अल गन तजि करि धरयो पंक अश्रित के आइ।
डीठ न लगहि डरति उर जननी वारति राई लौन मगाइ।
तिनक तोरि तोरि करि गेरति रच्छक श्री नानक ले नाई ॥२४॥
× × (३६)

माता का पुत्र के प्रति प्रेम का एक उदाहरण देखिए—

बधति सरीर दूज ल जस ससि तिम तिम सुंदरता अधिकाइ।
रात दिवस सुत को मुख देखति नहि लोचन क्याहू निपताइ।
बरवस निंद्रा अधिक बधहि जबि सुपतहि छिप्र जाग को पाइ ॥२१॥
जनु पनग मन मनि सो लाग्यो अहि निस राखत महि हितकार।
निद्रा ते जबि उघरहि लोचन तनुज बदन पर द्रिशटि पसार।
पालनि लालनि घालति घाल, डालति नयन श्यामता चारु।
झगला झरीन महीन सूत को बरन बरन को पाइ सुधारि ॥२२॥
× × (रा० ३६)

इसी प्रकार उसके उल्लास, हर्ष और प्रेम का यह चित्र देखिए—

अधिक प्रसन्न होति सुत हेरनि बलिहारी हुइ करति दुलार।
सूघति मसतक परम प्रेम ते बिधि को लखहि महा उपकार ॥१८॥
× × (रा० २६)

बुड्ढे निहाल कियो हमरो जिह के अब पुत्र लहिओ सुखकारी।
अगा मोर सुहात भया जन दूज को चंद चढ़िआ सुखधारी।
आज क दिवस मैं हो सानो, सु अबै बलि जाऊ महा सुखधारी।
बाल का रूप निहार तब सभ नार भई मन आनद पाई।
नारनि जाइ सुधासर मे सुभ बालक की अति उपमाई।
(२८)

कौतुक देखने लगती है।[1] हरिगोबिन्द के बाल चरित्र मे कवि ने उनके द्वारा एक दाई एव सप के मारने का भी वर्णन किया है। ईर्ष्यालु प्रिथिया श्री हरिगोबिन्द को मारने की इच्छा से एक दाई को अपने विष लगे स्तन हरिगोबिद के मुख मे देकर उसका वध करने के लिए भेजता है। हरिगोबिन्द पहले ही माता के स्तनो से दूध नही पीते थे माता चिन्तित होकर वृद्धाओ से पूछती है कि क्या किया जाय तभी धाय वहाँ आ पहुचती है और अपने स्तन उसके मुख मे दे देती है।[2] बालक हरिगोबिन्द उसके प्राणो का अन्त कर देते है तो उसके शरीर से अपार रूप निकलता है और वह गुरु जी की स्तुति करने लगती है तथा उन्हे प्रिथीए की कुटिलता बताती है। माता चकित होकर देखती रही तभी गुरु जी ने उसमे भ्रम बुद्धि उत्पन्न कर दी और माता चिन्तित एव आनन्दित हो उठती है (२ १६ २२)। इसी प्रकार एक दिन माता का ध्यान किसी काम म लगा हुआ था कि घर मे एक सप निकल आया। हरिगोबिद ने घुटनो के बल चल कर इस सप को पकड लिया और जब तक माता का ध्यान उधर जाता है और वह हाहाकार करती हुई उसकी ओर भागती है तब तक व उस सप के प्राणो का अन्त करके भू पर फक देते हैं और वह नवीन रूप धारण करके वकुण्ठ की ओर चला जाता है। माता का मन विस्मय ग्रस्त हो जाता ह और वह भयातुर हो उठती है।

किसी काज म मात तब भई धिआन म लीन।
घुटरनि पर श्री गुर चले तब कौतक अस कीन।
एक सरप निकसिओ तव लावो डील सुहाइ।
निज कर म श्री गुर लयो दुहँ हाथ मुख पाई ॥२८॥
जब मात मुड नन निहारयो। हाहाकार कर वड सबद पुकारयो।
दौर मात बालक को गहा। म्रितक सरप तिह नैनहि लहा।

---

१ हरिगोबिन्द क तोतल बना, सुन सुन मात करै बड चना।
किंकन नूपर सबद अपारा मोहिहि देख सब नर नारा।
नन नेत निह वद उचारे। सो गुरु अरजन अजर बिहारैं।
मात मग्न सभ काज तिआग। हरिगोबिन्द जब खेलन लागे।
बाल चरित बहु भात अपारा। लीनो हरिगोबिन्द करतारा।
(२ ६६)

२ मात गन को भास्यो दाई। अपना असयन देउँ पिआई।
जुग जुग जीवै बाल तुमारा। अस कहि लियो गोदी महि डारा।
कर रही जतन न असयन लियो। कछुक काल इवही बिन गयो।
दर करन का मरय निहारा। कछुर प्रान तिह दह ममारा ॥१८॥
जान मन निह नार का श्री गुर असयन मुँह।
गरल दूध रसपान को करिव क्रिया निध कीन्ह (२ १५)

श्री गुर डार सरप भूम्र दीनो । धरिग्रा रूप निह तुरत नवीनो ।
तब माता मन विसमै पाई । बोली बचन बहुत भै खाई ।
(२ २८)

ग्रब मेरी सुत प्रभू बचायो । नातर काल भुजगन खायो ॥२॥
ग्रस कहि दीना दान विग्रता । कीन बाटने गुर ग्रतिग्रता ।
(२ ३६)

गुरु हरिगोविन्द के जन्मोत्सव बाल रूप उसकी मनोहारी क्रीडाग्रों तथा धाय और सर्प ग्रादि के प्रसंगों को भाई सन्तोखसिंह ने 'गुरु प्रताप सूरज' में और भी अधिक विस्तार दिया है और उन्हें अधिक मार्मिक, रसपूर्ण, काव्यमय एवं स्वाभाविक रूप देने का प्रयत्न किया है। इसके अतिरिक्त गुरु गोविन्दसिंह के जन्मोत्सव, एवं बाल्यावस्था के सौन्दर्य, वेशभूषा, चंचल मनमोहक क्रीडाग्रों का भी उन्होंने सुन्दर चित्रण किया है। उनके काव्य में माता पिता के स्नेह तथा पुत्र के पिता के प्रति प्रेम की भी कुछ सुन्दर झाँकियाँ मिलती हैं।

पटने में गोविन्दसिंह के जन्म पर सभी मिथिला में हर्ष छा जाता है। भाट ढाढी ग्राकर बधाइयां देने लगते हैं, देव वधुएँ कवीलना का रूप धारण कर दर्शनों के लिए ग्राती हैं और ढोलक, टलका, घुघरू तथा तालियाँ बजा कर नृत्य करने लगती हैं (गु० प्र० सू० रा० १२ १० १२)। गंधर्व मनुष्य का रूप धारण कर गान लगते हैं। माली मालाएँ लेकर ग्राते हैं द्वार पर दर्शकों की इतनी भीड़ लग जाती है कि पाँव रखने को स्थान नहीं मिलता (वही, १२ १३) माता किसी भी भिक्षु को खाली हाथ नहीं जाने देती। इस प्रकार गुरु प्रताप सूरज' के जन्मोत्सव के उल्लास एवं ग्रानन्द का चित्र 'गुरु बिलास' से प्रभावित होते हुए भी अधिक पूर्ण रसात्मक एवं सजीव है। एक उदाहरण देखिए—

भाट कलावत ढाडी ग्रावहिं। मनहिं बधाई बाछति पावहिं ॥१०॥
बख कवीलन देव वधूनी। धरि ग्रावहिं जनु जग दुति लूटी।
ढोलक, टलका घुघरू तारी। गाइ बितावत तेति भवाली।
सभि गाजे ग्ररु हाथनि ताल। गन पाइन के घुघरू नाल।
ग्रग चलावहि ताल मिनाई। गावहिं नाचहिं राचहिं चाई ॥१२॥
श्री गुर के मदरि पर पौर। भई भीर थित लहै न ठौर ॥१३॥
(गा० १२ १२)

श्री हरिगोविन्द एवं गोविन्दसिंह के शैशव एवं बाल्यावस्था के चित्रण में तो भाई सतोखसिंह ने ग्रपनी मनोरम कल्पना शक्ति एवं सरस काव्य प्रतिभा का खूब परिचय दिया है। श्री हरिगोविन्द के शैशव के लावण्य का एक चित्र देखिए—

कौतुक देखने लगती है ।[1] हरिगोविन्द के बाल चरित्र म कवि न उनके द्वारा एक दाई एव सप क मारने का भी वर्णन किया है। ईर्ष्यालु प्रिथिया श्री हरिगोविन्द को मारने की इच्छा स एक दाई को अपने विष लगे स्तन हरिगोविन्द के मुख म देकर उसका बध करने के लिए भेजता है । हरिगोविन्द पहले ही माता क स्तनो स दूध नही पीते थ माता चिन्तित होकर वद्धाओ से पूछती है कि क्या किया जाय तभी दाय वहाँ आ पहुचती है और अपने स्तन उसक मुख म दे देती है ।[2] बालक हरिगोविन्द उसके प्राणो का अन्त कर देते है तो उसके शरीर स अपार रूप निकलता है और वह गुरु जी की स्तुति करने लगती है तथा उ ह प्रिथीए का कुटिलता बताती है । माता चकित होकर देखती रहा तभी गुरु जी ने उसम भ्रम बुद्धि उत्पन्न कर दी और माता चिंतित एव आशकित हो उठती है (२ १६ २२) । इसी प्रकार एक दिन माता का ध्यान किसी काम म लगा हुआ था कि घर म एक सप निकल आया । हरिगोविन्द ने घुटनो क बल चल कर इस सप को पकड लिया और जब तक माता का ध्यान उधर जाता है और वह हाहाकार करती हुई उसकी ओर भागती है तब तक व उस सप के प्राणो का अन्त करके भू पर फक देत हैं और वह नवीन रूप धारण करके वकुण्ठ की ओर चला जाता है । माता का मन विस्मय ग्रस्त हो जाता ह और वह भयातुर हो उठती है ।

किसी काज म मात तब भई बिग्रान मे लीन ।
घुटरनि पर श्री गुर चले तबै काज अस कीन ।
एक सरप निकसिओ तब लाबो डान सुहाइ ।
निज कर म श्री गुर लयो दुहै हाथ मुख पाई ॥२८॥
जब मात मुड नन निहारयो । हाहाकार कर बड सबद पुकारयो ।
दौर मात बालक को गहा । म्रितक सरप तिह ननहि लहा ।

---

१ हरिगोवि द के तोतल बना, सुन सुन मात करै बड चना ।
किकन नूपर सबद अपारा मोहिहि देख सब नर नारा ।
नेत नेत निह वेद उचारे । सो गुरु अरजन अजर विहार ।
मात गग सभ काज तिआग । हरिगोविन्द जब खेलन लागे ।
बाल चरित बहु भात अपारा । लीनो हरिगोबिन्द करतारा ।
(२ ६६)

२ मात गग को भाख्यो दाई । अपना असयन देउँ पिआई ।
जुग जुग जीव बाल तुमारा । अस कहि [illegible] गोदी महि डारा ।
कर रही जतन न असथन लियो । कछुक काल इवही बित गयो ।
देर करन का अरथ निहारा । कछुक प्रान पिह देह मझारा ॥१८॥
जान अत तिह नार को श्री गुर असयन छुए ।
गरल दूध रतपान को करिव क्रिया निघ कीन ॥ (२ १५)

श्री गुर डार सरप भूम दीना । धरिम्रा रूप तिह तुरत नवीनो ।
तब माता मन बिराम पाई । बोली वचन बहुत भ साई ।
(२ २८)

अब मरी सुत प्रभू बचायो । नातर काल भुजगन खायो ॥२॥
अस कहि दीनो दान विप्रता । दीन बाटन गुर अतिप्रता ।
(२ ३६)

गुरु हरिगोवि द क ज म म व, बाल रूप, उसकी मनोहारी क्रीडाम्रो तथा धाय और सप आदि के प्रसगो को भाई सनोखसिंह ने 'गुरु प्रताप सूरज' मे और भी अधिक विस्तार दिया ह और उन्हे अधिक मार्मिक, रसपूर्ण काव्यमय एव स्वाभाविक रूप दन का प्रयत्न किया है। इसके अतिरिक्त गुरु गोविन्दसिंह के ज मोत्सव, एव बाल्यावस्था के सौन्दय वशभूषा, चचल मनमोहक क्रीडाम्रो का भी उन्होने सुन्दर चित्रण किया है। उनके काव्य म माता पिता के स्नेह तथा पुत्र के पिता के प्रति प्रेम की भी कुछ सुन्दर झाँकियाँ मिलती हैं।

पटने म गोविन्दसिंह क जन्म पर सभी सिक्खो म हप छा जाता है। भाट, ढाढी आकर बधाइयाँ देन लगते है दव वधुएँ कबीलनो का रूप धारण कर दशनो के लिए आती हैं और ढोलक, टलको, घुघरू तथा तालियाँ बजा कर नत्य करने लगती हैं (गु० प्र० सू० रा० १२ १० १२)। गधव मनुष्य का रूप धारण कर गान लगते हैं। मासी माताए लकर आते ह द्वार पर दशकों की इतनी भीड लग जाती है कि पाँव रखने को स्थान नही मिलता (वही १२ १३) माता किसी भी भिक्षु को खाली हाथ नही जाने देती। इस प्रकार 'गुरु प्रताप सूरज के ज मोत्सव के उल्लास एव आनन्द का चित्र 'गुरु बिलास' से प्रभावित होते हुए भी अधिक पूर्ण रसात्मक एव सजीव है। एक उदाहरण देखिए—

भाट कलावत ठाडी आवहि। मनहि वधाइ वाछति पावहि ॥१०॥
बेख कबीलन देव वधूटी। धरि आवहि जनु जग दुति लूटी।
ढोलक, टलका, घुघरू ताली। गाइ बिलावल लेति भवाली।
सभि बाजे अरु हाथनि ताल। गन पाइन के घुघरू नाल।
अग चलावहि ताल मिलाई। गावहि नाचहि राचहि चाई ॥१२॥
श्री गुर के मदरि पर पौर। भई भीर थित लहै न ठौर ॥१३॥
(रा० १२ १२)

श्री हरिगोबिन्द एव गोविन्दसिंह के शैशव एव बाल्यावस्था के चित्रण मे तो भाई सतोखसिंह न अपनी मनोरम कल्पना शक्ति एव सरस काव्य प्रतिभा का खूब परिचय दिया है। श्री हरिगोविन्द के शैशव के लावण्य का एक चित्र देखिए—

लाल म्रिदुल पद मनहु कोकनद, उरध उठावति जु दिनराइ ।
अग विलद सकल शुभ लच्छन मच्छ अकार रेख कर धाइ ॥३३॥
नख गन रक्त सुमिलि सभि अगुरी, ब्रतलाकार बदन है वाम ।
रुचिर चिकर मेचक लघु चिक्कन बडे बिलोचन बरनी वाम ।
बालक वपु बिराजत था प्रभु बरनति बानी ब्रह्मा याम ।
(रा० ३ ५ ३५)

पालने मे झूलते हुए गोबिंदसिंह के नख शिख, वेश भूषा शिशु-कौतक तथा उन्हें देख कर माता के हर्षित पुलकित एव उल्लसित होने का चित्रण भी उन्होंने मार्मिकता से किया है । एक उदाहरण देखिए—

प्रभु बिराजति माता अका । सुन्दर दरशन सदा मयका ॥१६॥
श्याम बिंदु जननी शुभ लाइव । डीठ न लगै रिदा अकुलाइव ।
मनहु सुलछन चद सुहावा । दास चकोरन गन हरखावा ॥२०॥
बिकस्यो मनहु अलप अरबिंद । बैठ्यो शोभति बतस मलिंद ।
सुधा कुड मुख मडल मनो । बिकसित कबि कवि बीची सनो ॥२१॥
हाथनि चरन उछारति डारति । कवि जिन पर उतपल दुति वारति ।
हाटक कटक जटे बिच हीरे । लागी अगुरी लगी जजीरे ।
जटी मुदरी सुन्दर सगि । अगुली भीन पीत शुभ रग ॥२३॥
लोचन पुतरी इत उत फेरति । करत क्रिारथ सगति हेरति ।
आयुत भाल केस बर छोटे सिर पर बसत्र दमकती गोटे ॥२४॥
श्री गुजरी वड भाग भरी, तट बैठि बिलोकत नन्दन को ।
बालेति है बनरावन को सुत लालति है अभिनन्दन को ।
मात दिशा पिखि कै मुसकावति राखहिं धरम जु हिंदुन को ।
अक बिठाई दुलारति है कवि सुन्दर श्री जगवदन को ॥६॥

इसी प्रकार जब वे हाथा पर बल देकर आगन मे चलते हैं किंकणी का मधुर स्वर करते हैं, अथवा गडीलने के सहारे चलने लगते हैं तो अपनी मनोहर मुसकान से तथा अपने तोतले वचनो से सभी को मोहित कर लेत हैं ।

दद उगे जुग सुन्दर सोहति ओठनि साथ महा दुति जागे ।
मानो प्रवाल के सपुट मैं इह हीरस रेख पयूख मैं पागे ॥८॥
क्लिकति हसनि बिलोकनि हैं चलि रिंगण अगण मे फिर आवे ।
गुलकारि गुलाब गलीचन प पग एचिति नूपर को रुणकावे ॥६॥
किंकनि बाजति है चलत उतलावनि रिंगण हैं कवि धीर ॥१२॥
(१२ १७)

हाथ गहीरन पै धरि कै पद मंद ही मंद उठावनि लागे।
सुन्दर श्री मुख ते बिकसावति शोभति दंत अमी जनु पागे ॥१७॥

× × ×

कोऊ कोऊ बात लगे बोलन अमोल छबि।
तोतरे परम प्रिया माधुरी रसाल करि ॥२०॥

(रा० १२ १७)

इस प्रकार के वर्णनों में कवि उत्प्रेक्षाओं की तो झड़ी सी लगा देता है। ऐसे रसपूर्ण मार्मिक वर्णनों का 'गुरु विलास' एवं 'पथ प्रकाश' में अभाव है। ऐसे स्थलों पर कवि पर सीधा महाकवि सूर का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। एक ऐसा और उदाहरण प्रस्तुत है जिस पर सूर के वात्सल्य का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है—

अंग स्नान कराइ बिधान मों सूंघति भाल ज्यों आनन्द बारी।
अंबर को पहिराइ विभूषन लोन सु रई लौ ऊपर वारी ॥१४॥
दधि-ओदन को अचवाई भले अनमोदन नन्दन मान करे।
बहु चंचलता जुति आवति जाति इते उत होवति आनि थिरे।
किलकति हसति हसावनि औरनि भावनि ही दुख दोख हरे।
शुभ शोभ धरे परयंक चरें कवि फेर फिरें निज खेल ढरे ॥१५॥

(वही, रा० १२ १७)

यहाँ कवि ने बालक की चंचलता एवं मृदुता का सुन्दर चित्र अंकित किया है।

भाई सन्तोखसिंह ने श्री गोबिन्दसिंह के लकड़ी के अनेक खिलौना सारिका कोकिल काक, कबूतर, तीतर, चकोर बुलबुल आदि पक्षियों तथा गज, अश्व, कूकर आदि पशुओं के साथ खेलने और मन बहलाने का वर्णन भी कवि ने किया है।

श्री हरिगोबिन्द की शिशु क्रीडाओं के अन्तर्गत धाय वध तथा सर्प वध की जिन दो घटनाओं का वर्णन 'गुरु विलास पातसाही ६' में किया गया है। भाई सन्तोखसिंह ने भी उनका चित्रण किया है, और यहाँ ये घटनाएँ विस्तार से आई हैं तथा उनमें अधिक स्वाभाविकता, सरसता एवं सजीवता है। भाई सन्तोखसिंह ने 'धाय प्रसंग' को इस प्रकार वर्णित किया है— 'ईर्ष्यावश हरिगोबिन्द को मारने के लिए प्रिथिया एक 'धाय' को भेजता है। वह सुन्दर वस्त्र धारण करके जन्मोत्सव में आ जाता है जहाँ शिशु हरिगोबिन्द बहुत सी स्त्रियों से घिरा हुआ खेल रहा था। माता किसी कार्यवश भीतर चली गई थी धाय के मन की क्रूरता को जान कर हरिगोबिन्द ने भूख के कारण मचलना आरम्भ कर दिया। धाय ने अवसर पाकर उसे अंक में उठा लिया

श्रौर अपने िप लगे स्त उसके मुग मे द दिये। हरिगोबिन्द ने एक हाथ से उसकी वणी पकडी दूसरे से दूसरा स्तन श्रौर दानो स्तन इतने जोर से खीचे कि उसके प्राण ही खीच लिए। उसके मुख से झाग निकलने लगी शरीर पीला पड गया सभी स्त्रिया अपना अपना स्थान छोड कर भाग गई। माता गगा इस दश्य को देख कर घबरा जाती है श्रौर अब वह न तो उन्हे अधिक बाहर जाती है न किसी स्त्री का देती है।' यहाँ कवि ने बालक, धाय तथा अन्य उपस्थित स्त्रिया के अनुभावो का तथा माता की चिता आकुलता एव आशका आदि का भी सजीव चित्रण किया है जिसका 'गुरु विलास' मे प्राय अभाव है।[1] इस प्रयत्न के असफल होने पर प्रिथिए ने उनके घर म एक

---

१ धाय की दशा का दश्य—
गाढे अग पीर करि, गाढी उर पीर करि
प्रान ते सरीर करि भिन्न ऐंच लीनिग्रो।
जसे पाल तील ते किलाल को सु फूक नाति
यचि मनि बालक सुभाइक ही कीनिग्रो।
हाइ हाइ बोलती विहाल ह्वै बिमाल
बाल छारो भरि माहि का प्रताप चित्त चीनिग्रो।
लाचन मैं नीर भरी, धीर हरि चीर तजी,
परी सभी तीर घर प्राण करि हीनिग्रो ॥२३॥
बूकनो पुकार बिसभार ह्वै पसार अग
परी मितु भई झिग निकरे परनि जनु।
मुख ते भाभूर जाति पीरी पर गई खाल
भयो उतपात हरि नारी बिसमाई मन।
अन्य स्त्रियो तथा माता की दशा का दश्य—
—कन्ी भाइ गया बैठा गभिनि मैं लिया सिमू
भाग उपाया नजो दर जहाँ पर्यो तन।
गगा भयभात भई पुत्र का अन्त धाई
हायनी उचाव प्रिया सिपन का मानो धन ॥२४॥
हाय गही बनी वर माय नहि छार
ताहि मात पुरकाव कन्ी एतना सु हाई जोर।
दासा को पुकारें रिस भरी कया न आव पानि ?
कहि सगार नाग धार उतपात घोर।
मिमी न्र धन्द, नार नीठ करि छागी नवि
बड सा ममाया न्र पर्यो है बिसन्नार।
पगी तिस ठौर प्रजनारनि न नाहि भार
न्रा उर न्र धाई मान निज छारि छारि ॥२५॥
(रा० ३ ७)

सप छडवा दिया। माता का ध्यान कहीं और लगा हुआ था। गुरु हरिगोबिन्द ने उस सप का उद्धार करने के लिए गुडलियो चल कर उसे कम कर पकड लिया और दबा कर मार दिया।[1] भाई सतोखसिंह ने इन दोनों प्रसगों पर स्पष्ट रूप से 'गुरु विलास ६वी पातसाही' के अतिरिक्त सूर के पूतना वध तथा काली दमन प्रसगों का प्रभाव भी लक्षित होता है परन्तु कवि ने अपनी प्रतिभा से उन्हें अपनी कथा के अनुकूल ढाल लिया है और उपयुक्त अवसर पर देश काल के अनुरूप रग देकर उनका प्रयोग किया है। उनके वर्णनों में बहुत स्वाभाविकता है। गुरुओं की क्रीडाओं के अन्य कई प्रसग भी कृष्ण की लीलाओं से प्रभावित हैं परन्तु कवि ने देश काल का पूरा ध्यान रखा है। भाई सतोखसिंह ने श्री हरिगोबिन्द की शिशु क्रीडाओं का भी अच्छा वर्णन किया है। एक उदाहरण देखिये—

श्री चरणाबुज ते चलिबे पग नूपर भू पर दौर बजावे।
कचन की बर किंकनि है कटि हीरे जराऊ जरे चमकावे।
पीत गरे झुगली बहु मीन महा दुति ते तन चारु दिपावे।
हाथ मैं कचन छाप छनायति सीस विभूखन शोभ बढावे ॥२५॥
बालक और मिले तिस ठौर मैं दौरति हैं अगुवा पिछवाई।
खेलति हैं बहु मेलति रौर गुरु हरिगोबिन्द जी हरखाई।
होइ इकठति वठति हैं कवि अग अमठति देति पलाई।
सुन्दर मदर अदर ह्वै कभि बाहर, राकति हैं भज जाई ॥२६॥
ग्राम वडाली के बालक जे बड भाग भरे इम खेलति है।
श्री हरिगोबिन्द सग मिल बहु स्वाद का भाजन मेलति हैं।
दयोस सब नाहि पास तज मिलि आपस मैं बल रेलति हैं।
आप टिकाइ कर कुदाती गहि हाथनि साथ धकेलति हैं ॥२७॥
दोहा—इस प्रकार क्रीडति प्रभू खेलति खेल बिसाल।
मिलहि जाल बालक ललित निस महि निज निज साल ॥२८॥
(रा० ३ ६)

गुरु गोविन्दसिंह की बाल क्रीडाओं का तो उन्होंने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। पटने में शाहों के बालकों के साथ वह बीथियों में हमत कूदते ऊधम मचाते हुए उपवन में खलने जाते हैं जहाँ वे अनेक क्रीडाएँ करते हैं।[2] कुछ वृक्षों पर चढ़कर वठ जाते हैं और कुछ कर तथा चरणों से जल प्रवाह रोक देते हैं[3] और कभी अनेक सखाओं के साथ नौका विहार[4] तथा जल क्रीडा करने

१ वही रा० ३ ६ ९-१२।
२ वही रा० १ ० ३ १२ १८ १ ६।
३ वही रा० १२ १२ १८ १२ १३।
४ वही रा० १२ १६।

लगते हैं[1]। बालको मे साथ गेंद खेलने का दृश्य कितना स्वाभाविक वर्णन किया गया है —

दिन महि तहि गन बालिक मेल। बहिर ग्राम ढिग खेलति खेल।
खिदुक डडा गहि जुग हाथ। फर्रहि दूर मार करि नाथ ॥३॥
बालिक धाइ गहैं तहिं गेरहिं। पुन डडा हति खिदुक प्रेरहिं।
कबहूँ ब्रिछन पर चढि चढि कूदहिं। हारहिं बाल ताहिं ढिग मूदहिं ॥४॥
कबहूँ भाग चलहिं किह आगे। अधिक भ्रमावहि हाथ न लागे।
कबहूँ दुइ दिशि बालिक सभि होइ। खेलहिं पर बैर करि दोइ ॥५॥
जीत हार की खेल मचावहिं। धावहिं एक ओज को लावहिं।
इक ऐंचहिं इक छुट करि जावैं। इक लर करि निज मन्न सिधावै ॥६॥
इक को इक खिझाइ करि रोकहिं। इम खेलति जे लाव बिनोकहिं।
(१२ ५६ ३७)

यहाँ गुरु गोविन्दसिंह की तीन बाल क्रीडाओ का उल्लेख करना हम आवश्यक समझते हैं। उनमे एक तो किसी बुढिया को चिढाने से सम्बन्धित है, दूसरी पटने के *शासक को तथा तीसरी एक तुरकनि को निशाना मारने से* सम्बन्धित हैं।

उनके पडौस मे एक बुढिया रहती थी। उस वृद्धा को वे नित्यप्रति चिढाया करते थे। उसकी पुणिया, तिल्ले रखने की पिटारी, तूल सूत आदि उठा कर ले जाते। यदि वह उनकी माता के पास शिकायत करने की धमकी भी देती तो भी कोई चिन्ता न करते। एक दिन तग आकर वह माता गूजरी से शिकायत करने चली जाती है। उनमे वह कहती है कि अपने पुत्र की करतूत देख लो, कितना ऊधम मचाता फिरता है जरा भी कातने नहीं देता, मूढे सूत आदि बिखरा कर भाग जाता है ।" पुत्र की चचलता को सुन कर माँ गूजरी मन ही मन प्रसन्न होती है और वृद्धा को अपने मूल्यवान वस्त्र देकर पुत्र पर क्रोध न करने का विनय करती है। बुढिया कहती है—

"अरी! मैं क्रोध करती ही कब हूँ मैं तो चाहती हूँ कि वह प्रतिदिन मेरे घर खेलने आता रहे। जब मैं उसका पीछा करती हूँ तो वह भाग कर *बाहर आता है, जब मैं बाहर आती हूँ तो भीतर आ घुसता है।* उसकी इस चचलता को देख कर तो मेरे नेत्र प्रफुल्लित हो जाते हैं। मैं तो चाहती हूँ तुम्हारा पुत्र सौ वर्षों तक जीवित रहे। मुझे तो वह ऐसा प्रिय लगता है जैसे सर्प को अपनी मणि प्रिय होती है।[2] तुम्हारा पुत्र आज घर की छत पर ऊधम मचाता फिर रहा था इसीलिए मैं आज आई हूँ ताकि वह सचेत हो जाए—नहीं तो वह प्रतिदिन ही मेरे घर आता है।[3]

१ वही रा० १२ २०।
२ ३ वही रा० १२ २० २१ २५।

जिम दशरथ गोद रघुबरा। मन सोहत सोभा सार।
तिम मातुर श्री गोविन्द। प्रभ सोभा अमित अपार ॥२१॥
जिम जागी को होत अनद। रवि ऊपरि ते राखे चद।
गिमान भान गुर परमानद। सोहत गान सिस गुर गोविद।
बाल मुकद सोभा अमित अलभै छवि सुख सार।
निरख मगन् सतगुर भए क्रिपा करी अपार ॥२६॥
(पत्र सख्या २६८ साखी २०८)

गुर तेगबहादुर को दशरथ तथा गोविंदसिंह को रघुवीर के समान बना कर कवि ने हिंदुओ और सिक्खो की सास्कृतिक अभिन्नता की ओर भी सकेत किया है। इस प्रकार बालक के रूप तथा माता पिता के आह्लाद हर्ष आदि का इस ग्रथ म बहुत ही सजीव चित्रण हुआ है, यद्यपि बालक की क्रीडाओ के वर्णन का इसमे प्राय अभाव है।

गुरु नानक विजय

सत रण द्वारा रचित 'गुरु नानक विजय गुरु नानक के जीवन पर आधारित एक ऐसा बृहद प्रबन्ध काव्य है जिसमे ऐतिहासिकता की अपेक्षा पौराणिक धार्मिक तथा सास्कृतिक तत्व इतना अधिक है कि कवि ने स्वय उसे पुराण' की कोटि मे रखा है। इस ग्रथ में गुरु नानक के पिता कश्यप के और माता तृप्ता अदिति के अवतार हैं। भगवान विष्णु पहले चतुर्भुज रूप म माता के सामने प्रकट होते हैं और फिर बालक रूप धारण करके नानक के रूप मे उनके पुत्र बनते हैं। इसलिए उनकी माता भी उनका अभिनन्दन करती है।[1] यही कारण है कि नानक क अवतारत्व का बोध वात्सल्य सम्बन्धी मनोवेगों के नैसर्गिक स्फुरण एव स्वाभाविक विकास मे बाधक बनता है तथापि उनके जन्म पर पिता के हर्ष एव आनन्द, माता की ममता एव आशका, उनके घर से लुप्त हो जाने पर पिता की ग्लानि, विदेश गमन पर माता, बहन, ससुर, कुटुम्बियो एव अन्य स्नेही जनो की व्यथा, चिंता, उद्वेग एव स्नेह आदि की अत्यन्त स्वाभाविक एव मार्मिक व्यजना की गई है।

पुत्र जन्म पर नानक के पिता के हर्ष और आनन्द का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

सुनि करि कालू भयो अनद। जनु मिलियो तिस को गोविंद।
अपने कर के कगन दोई। दासी को तिन दीने सोई ॥४८॥
परम अनद ताहि उर भयो। मानो पारब्रह्म मिलि गयो।
भयो अनद ताहि अधिकाई। ताहि आनद न बरनी जाई ॥४९॥

---

१ करुणा सुख सागर रूप धरे अभिनदन तोर दयाल हरे।
तुम दीन दयाल क्रिपाल सदा, तव बारबार नमामि सदा।
२।१२।११।१८।२।४।५३।१५

यथा दरिदरी पारस पाई । निज मन माहि परम हरखाई ।

यहाँ कवि ने नानक की शैशवावस्था की रत्न मणियों से जड़ी वस्त्र भूषा का भी कुछ वर्णन किया है, लेकिन उनके मनोहारी रूप अथवा बाल्य क्रीडाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण का इसमें अभाव है ।

नानक के लोप होने पर पुरवासियों की स्नेहपूर्ण करुण दशा का कवि ने भावपूर्ण वर्णन किया है । यथा—

नानक लोप भयो सुनि कै, पुर के जन आइ सबै नर नारी ।
नानक के गुणि याद करैं, बहु दुख भयो सभि के उर भारी ।
इक खाइ तवार गिरे धरनी, परि मूरछता तिन के तब आई ।
इक नैन ते जलु डारती हैं, जु गिरे हैं तिन के मुखि नीर सु पाई ।
अपने अपने दुख मै सगले, घरि लोटति हैं जलु नैन बहाई ।
(पू० उ० ख० ६।६)

सभी पुरवासी उनके गुणों का स्मरण करके अत्यन्त दुखी हैं। कोई स्नेहाकुल होकर पछाड़ खाए धरती पर गिरा पडा है, कोई मूर्च्छित पडा है तो कोई नेत्रों से अश्रु धारा बहा रहा है, कोई उनके ध्यान मे मग्न है और कोई उनके यश का गान कर रहा है । सभी अपने अपने दुख मे दुखी होकर, नेत्रों से अश्रु बहाते हुए अपने अपने घरों को लौट रहे हैं।

उनके ससुर मूलचंद जी की दयनीय दशा का भी कवि ने यथार्थ चित्रण किया है, उनका कठ भर आया है बोला तक नहीं जाता नेत्रों से निरन्तर जल बह रहा है, वह नीचे सिर किए बैठा है और ऊँचे-ऊँचे पुकार कर कहता है—'हे प्रभु अब तुम्हारे बिना हमारा कौन सहारा है'—उसका सारा धैर्य जाता रहा है । देखिए—

गदि गदि कठ नैन जलु आयो । उमगिओ मोहु न जाइ समायो ।
बिह्वल ह्वै करि नायो माथा । नानक त मुहि कीउ अनाथा ।
ऊच सुर करि करी पुकारा । सतिगुर तो बिन कउन हमारा ।
मूलचद का धीरज जेतो । गयो बिलाइ सरब ही तेतो ।
(उ० ख० ६।१६ २०)

यहाँ इनकी वेदना अधीरता, व्याकुलता एवं तत्सम्बन्धी सभी सात्विक भावों का सजीव चित्रण हुआ है । उनकी वेदना करुणा का स्पर्श करती दीख पड़ती है ।

पुत्र के कोमल, मनोहर रूप को निहारने से माता की प्रफुल्लता एवं उसे किसी की नजर न लग जाए इस बात की आशका से राई और नमक आदि को वारने का कवि ने देखिए कितना स्वाभाविक चित्रण किया है—

अदभुत रूप देख करि माई वार निम लूण पुनि राइ ॥२८॥
काहू की इस नजरि न लाग, इति उति नानक खेल आग ।
ताहि उठाइ गोदि म लेहि, जननी कर सु बहुति सनेहि ॥२६॥

पुरब पुरब मे पुय करावहि, जिउ जिउ ब्राह्मण ताहि बतावहि ।।३०।।
(त्रि० ता० १)

यहा माता की ममता, स्नेह एव शुभ कामना की सुन्दर व्यजना हुई है। जिस समय नानक उदासी से लौट कर घर आए तब तो माता का मन आनन्दातिरेक से उछल पडा। वह उसे बार बार अपनी गोदी मे बिठाकर चूमती है और उसका कुशल क्षेम पूछती है। उसके नेत्रो से आनन्द के अश्रु बहने लगते हैं—

जननी गुर आवती गोद लयो,
सिर चूम बिठाइ पियार दयो।
जलु नैनन ते चलियो वहि क
कुसल सभि बूझिओ तो वहि कै ।।
(ध० उ० ख० १?)

इस अवसर पर कवि ने उनके पुत्र श्रीचद के हर्ष और आनद की भी व्यजना की है।

"गुरु विलास—१०वीं पातशाही" (१८५४ वि०)—'दशम गुरु' के जीवन पर आधारित यह सर्वप्रथम ऐसा प्रबन्ध काव्य है, जिसम उनके जीवन की विविध घटनाओं का विशद चित्रण किया गया है। इसमे भी गुरु गोबिन्दसिह को पौराणिक रूप मे चित्रित किया गया है। उनके बाल्य जीवन की घटनाओं के वर्णन मे भी बालोचित स्वाभाविक क्रीडाओं और चेष्टाओं की अपेक्षा उनके अलौकिक रूप का महत्व अधिक स्थापित किया गया है। कही वे नौका लेकर किसी को पुत्र का वरदान देते दिखाई देते हैं तो कही पाँच बार प्रणाम करने पर एक पुत्र की कामनावान स्त्री को पाँच पुत्रों की वर प्राप्ति हो जाती है। कवि ने गुरु के बाल्य जीवन से सम्बन्धित ऐसी अनेक घटनाओं का वर्णन किया है, जहाँ वह चाहता तो अनेक मनमोहक क्रीडाओं के चित्र उपस्थित कर सकता था, परन्तु कवि का ध्यान उनके महत्व स्थापन की ओर ही अधिक रहा है। बालक गुरु सखाओ के साथ उपवन मे क्रीडा करने जाते हैं—तो वहाँ सेवक उनके साथ है। जिससे वे स्वतत्र होकर खेल कूद भी नही सकते। यहाँ एक प्रसग उद्धृत किया जा रहा है जिससे पता चलगा कि कवि ने उनके बाल्य कौतुक को कैसे धार्मिक रूप प्रदान किया है।

गुरु के घर मे मीठे जल का एक कुआँ था जिससे नगर के बहुत से स्त्री-पुरुष जल भरने आते थे। एक दिन एक तुरकनि जल भरने आई तो गोविंदसिंह ने गुलेल का निशाना उसके मस्तक पर दे मारा। वह लहू-लुहान होकर उनकी माता के पास जाती है। यहाँ तक तो उनकी चचल क्रीडा का वर्णन ठीक था यद्यपि यहाँ भी तुरकनि को गुलेल मारने का उल्लेख करके कवि ने तुरक-विरोधी भावना को प्रकट किया है। इसके पश्चात तो अलौकिक तत्व की

छाया मानो प्रसग की स्वाभाविकता को ही नष्ट कर देती है। माता दुखी होकर 'गुरु नानक' से प्रार्थना करती है कि कुएँ का जल खारी हो जाए— जिससे न कोई जल लेने आए और न वह ऐसे उत्पात कर सके और जल तत्क्षण खारा हो जाता है।[1]

कवि ने यहाँ गुरु जी की तुरक विरोधी भावना तथा अलौकिकत्व की ही स्थापना की है, कौतुक क्रीडा की स्वाभाविकता तथा बाल सुलभ मनोवृत्ति की मनोवैज्ञानिक अभिव्यजना का यहाँ भी प्राय अभाव है। माता के रोष की ओर भी 'कछुक वचन बोलति माई' द्वारा सकेत ही किया गया है, जोकि पर्याप्त नही है। गुरु—बालक भी माता के आने पर बस किवार अडा लेते हैं न कुछ कहते है न सुनते हैं। इसी प्रसग को भाई सतोखसिंह ने भी 'गुरु प्रताप सूरज' मे वर्णित किया है परन्तु उन्होने इसे बहुत ही स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक रूप दिया है। अस्तु इस ग्रथ मे कवि ने बाल्य वर्णन के प्रसगो को उठाया तो है परन्तु धार्मिक भावना के आरोपण के कारण उसे अधिक सफलता नही मिली।

इस युग के पजाब के साहित्य मे वात्सल्य का सर्वोत्कृष्ट चित्रण भाई सतोखसिंह ने किया है। उनके दो बृहदाकार प्रबन्ध-काव्यो—'गुरु नानक प्रकाश'

१ सुन्दर कूप अधिक इक जानहु। स्री हरि मदर बीच पछानहु।
अम्रित बाको नीर भणिज। को ताके पटतर जल दिज ॥१२१॥
पानी भरन सहर के लोग। आवत अधिक भीर होइ लोगा।
एक दिवसु तिह ठौर मझार। आइ एकु तुरकनी नारा ॥१२२॥
वह आई जल को निज काजा। लई बिलोकु गरीब निवाजा।
चटपट हाथि गलेल सभारी। निरखी ऊपरि बैठि अटारी ॥१२३॥
बीचु अटारी महल की ढाढि अधिक रिस धारि।
तैं गलेल मारियो अधिक ताके मधि लिलार ॥१२४॥
स्रोनत पुलत भइ अधिक बहु तरनी। निरख सोकु कछु जाति न बरनी।
रोवत पीटत तब उठि आई। माता जू के निकट सु धाई ॥१२५॥
ते वह पीटत अधिक दुखारी। गुर जननी पहि आन पुकारी।
बाको निरख बिहाल सु माई। आदरु दे निज धीर धराई ॥१२६॥
कछुक कोप माता जीय धारी। निज मुख सौ इह भाति उचारी।
गुरु नानक साहिब के अवतारा। वेग होई इह कूप सु खारा ॥१२७॥
यो कह माता ऊपरि धाई। आगे लीस किवार अडाई।
कछुक वचन बोलती माई। बहुरे उतरि तरे कऊ आई।
तिह अबला की आदर कीना। कछुक दरबु बाकहि ले दीना।
उत वहि गइ धाम निज नारी। इत सत्र भयो कूप जल खारी ॥३।१३॥
(पत्र सख्या ५१)

तथा 'गुरु प्रताप सूरज' मे इन भावों की विस्तृत व्यंजना हुई है। गुरु नानक प्रकाश म श्री नानकदेव के शैशव एव बाल्यावस्था की कुछ सुन्दर झाँकियाँ मिलती हैं। उनके शिशु-सौन्दर्य का एक चित्र देखिए—

लोचन अमल कमल दल जैसे। नासा तिल प्रसून नहिं वसे ॥३॥
सुदर भलकार घरिवाए। बिन दूषन कै भूषण पाए।
बनी बाजनी किंकनी चारी। कटि महि पाई अति छवि वारी।
कर महि कर पद नूपर सोहै। जो देखे तिस को मन मोहै।
दुइ दुइ दसन अधर दुति हाती। सपुट विद्रम जिउँ जुग मोती।
अंजन महि रिभ्रण गनिकारी। चरणाबुज खचत वलकारी।
हरत हसति हसावत ओरी। किलकत मुख तें माधुर ठोरी।
बोलें वचन तोतरे मीठे। सुनहि नारि नर लागहि ईठे।
हरहि मात तात अनुरागहि। किंगति भूमिका भितका लागहि।
लगी धूर तन धूसर होए। अब लेय अवा अग धोए।
मनि करि मुख मज्जन करवाया। पोछ सरीर अक बसायो।

यहाँ श्री नानकदेव के सुन्दर नेत्रो, नासिका, किंकनी नूपुर, दसन पक्ति, अजन, तोतरे बैन, धूलि धूसरित तन की शोभा का सुन्दर चित्रण किया गया है। माता पिता का उल्लसित होना और पुत्र को अक म बिठाना आदि अनुभाव भी विद्यमान हैं।

नानकदेव के पाठशाला जाने एव गो महिषी चारण का चित्र भी अत्यन्त स्वाभाविक एव मनोहर है। हाथो मे कगन पहने गुरि हाथ में पकडे कटि मे किंकनी, कानो में कुडल तथा सिर पर पगडी पहने कमल चरणो से सुन्दर नेत्रो वाले नानक बार-बार सखाओ को पुकारते हुए पाठशाला की ओर जा रहे हैं—

जलजात से है पद जाति चले, गहि तात करा गुरि हाथ उँचाई।
कर कंकन सो कटि किंकनि है, कल कुडल लोल कपोलन झाई।
दल लोचन कंज विसाल भले सिर पै उसनीकहि नीक बनाई।
चटसार जहाँ अति चारु बनी बहु बारक बारहि बार बुलाई।

(ना० प्र० पृ० ६६)

प्रात काल ही अपने हाथो स गो महिषी का खोल कर हाथ म साठी लेकर उनकी टोली को हाँकते हुए वे उन्हे चराने के लिए जा रहे हैं। यथा—

श्री नानक अरुणोदय जागे, गो महिखी चारन अनुरागा ॥१३॥
निज हाथन दामन ते खोली हाँकति चले इकत करि टोली।
लए लगटका देत हुरा, चारति हरित त्रिणन सुख पूरा ॥१४॥
मनहु गुपाल मु पाछल नामा, प्रगट करति है जनु सुख धामा।
मद मद सुभ सुरभी पाछे, समि बासुर चारण त्रिण आछे।

भई सभ पुरि दिग शो मारी, माई मयाई गयली गोरी।
सोभहि सभि गुरभी ता पीना, छीर दधि बहु यह मापोता।
दिन प्रति मासन हानि सवाय, पानू हेरि हेरि हरखाया।
(गा० प्र० म० १०५१)

जब नानक गृह-त्याग कर चले जाते हैं और बहुत समय के पश्चात उनके माता पिता उन्हे देखते हैं तो चिरकाल के विरह के पश्चात इस पुनर्मिलन से जो वात्सल्यपूर्ण भाव उठते हैं, तथा पुत्र का मिलन के लिए उत्कंठित एव आतुर माता पिता की जो दशा हुई उसकी भी कवि ने मार्मिक व्यंजना की है। माता की पुत्र के विरह म जो दशा हुई उसका चित्र देखिए—

सुनि माता उर बहु अकुलाई, जनु त्रिण पावे पावक लाई।
बोल न आव विकल तनु होइ, जनु सुत बिरह म परिके सोई।
इक तो ब्रिद्ध हीन बल देही पुत न पाइ दुख तात तनही।
जिउ गु सतग मरम दे भन्न परी विवरण होइ अति खेद।
कितिक बार महि पुनि सुधि आई लोचन ते आसुन जल जाई।

कुछ समय के लिए तो माता तृप्ता सुध-बुध खो कर मूर्च्छित पड़ी रहती है, जब उसे कुछ होश आता है तो तुरन्त पुत्र को मिलने के लिए भागती है। पुत्र से भेंट करने पर तो उसकी ममता स्नेह एव विरह जनित वेदना का स्रोत बाध तोड कर वह निकलता है। अश्रुओ से वस्त्र भी गलाते है बार-बार पुत्र का मुख देखती है माथा चूमती है, स्नेह से सिर पर हाथ फेरती है और उसका आलिंगन नही छोडती। देखिए—

बहिर चल्यी उठि तूरण जहिवा, होइ आतमज मेरो तहिवा।
बहु दिन बिते आयो घर माही, बासुर रह्यो एक भी नाही।
इस विधि जननी मन गुनति, मधुर असन लै श्रोल।
तूरन गवनी धाइकरि, लीने रुचिर निचोल।
(वही उत्त० १५)

\+ \+ \+

कौरी भरि नानक को जननी, रोदन करति न जाई गननी।
चल्यो विलोचन ते बहु नीर, सुत विरहानल जनु करि सीर।
अश्रु पाति सो वसत्र भिगोए जो देखति सो गद गद होए।
कौरी ते सुत को नहि तजई अधिक विरहु ते मिलति न रजई।
वदन बिलोकति सूघति माथा, करति नह सिर फेरति हाथा।
हुती ब्रिद्ध वल ते तनु हीना पुनि समीप बस सुख लीना।
(वही उ० अ० ५ २२)

पुत्र के आने का समाचार सुनकर पिता कालू भी तत्क्षण उन्हे मिलने को दौड़ते हैं तथा उन्हे हृदय से लगाकर इतने प्रसन्न होते हैं मानो बहुत

दिना के भूखे को भोजन तथा प्यासे मरते को जल मिल गया हो, नेत्रो से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, कंठ गद्गद् हो गया—यथा —

जब कालू न सुधि यो पाई, बस्यो बहिर तात मम आइ।
ततछिन जीन तुरंगनि पावा, ह्वै अरूढ तूरण तब आवा।
जन बहु भूखे मिल्यो अहारा मरत्यो प्यास पायो वारा।
नीर विमोचति लोचन दर ते, गद गद बोल्यो जाइ न गरते।

(वही ऊ० ५ २३ २४)

इसी प्रकार कवि ने उनके पिता की उत्कंठा, आतुरता, व्याकुलता, विह्वलता, उत्सुकता आदि का भावपूर्ण चित्रण किया है।

श्री हरिगोविन्द एव गोविन्दसिंह के जन्म, शैशव एव बाल्यावस्था का चित्रण इन कवियो न अपेक्षाकृत विस्तार स किया है। 'गुरु बिलास छेवीं पातशाही'—(अज्ञात) म भी कवि ने श्री हरिगोविन्द के जन्म एव बाल्यावस्था की घटनाओं को दिव्य रूप देकर प्रस्तुत किया है। फिर भी उसम पर्याप्त रसात्मकता है। विशेष रूप से जन्मोत्सव का वर्णन विस्तृत एव सजीव है। बाबा बुड्ढे के वरदान से जब माता गगा के सम्मुख चतुर्भुज रूप मे भगवान अवतरित हुए तो वह गद गद् हो कर स्तुति करने लगती है। तदनन्तर भगवान क अवतार का उद्देश्य—मलेछ नाश बता कर शिशु रूप धारण कर लेते हैं और माता म भ्रम बुद्धि उत्पन्न कर देते हैं, तो माता पुत्र को देख कर हर्षित हो उठती है, शिशु का शब्द सुन कर दासियाँ दौड आती हैं घर भर म कोलाहल छा जाता है। स्त्रियाँ मगल गाने लगती हैं गुरु अर्जुन इतना दान देते हैं कि सुमेरु को भी भय लगने लगता हैं कि कही उसे ही दान म न दे दें।[1]

उनके अवतार धारण करने पर नभ से देव पुष्प वर्षा करने लगते हैं, वन के तृण आदि सब हरे हो जाते हैं। जब जन्मोत्सव मनाया जाने लगता है तो गृहद्वार पर बदनवार बाँधे गये, स्त्रियाँ बधाइयाँ देती है वहाँ उस समय इतनी शोभा हुई कि शेष महेश, गणेश, शारदा भी उसका वर्णन नही कर सकते—

---

१ देख पुत्र माता हरखाई बाल शब्द सुन दासी धाई।
घर घर भयो कुलाहल भारी, आवत मगल गावत नारी।
श्री गुर अरजन सुनिमो जबही पुत्र जनम सुख पायो तबही।
दान दीओ जिह वार न पारा, तब सुमर निज भय मन धारा।
मो को बाट गुरु जिन देई उनकी सरन परिओ रख लेई।
ता सम जे नर आवत भयो, मन वाछत गुर त तिन लयो।

(गुरु बिलास ?)

कौतुक देखने लगती है।[1] हरिगोबिन्द के बाल चरित्र म कवि ने उनके द्वारा एक दाई एव सप के मारने का भी वर्णन किया है। ईर्ष्यालु त्रिविधा श्री हरिगोविन्द को मारने की इच्छा से एक दाई का स्तन विष से लगा हरिगोविन्द के मुख म देकर उनका वध करने के लिए भेजता है। हरिगोविन्द पहले ही माता के स्तनो से दूध नही पाते थ, माता चिन्तित होकर दासियो से पूछती है कि क्या किया जाय, तभी धाय वहाँ आ पहुँचती है और अपने स्तन उनके मुख म द देती है।[2] बालक हरिगोविन्द उसके प्राणो का अन्त कर देते हैं तो उसके शरीर से अपार रूप निकलता है और वह गुरु जी की स्तुति करने लगती है तथा उन्हे त्रिलोक की मुक्तिदाता बताती है। माता चकित होकर देखती रही तभी गुरु जी ने उसम भ्रम बुद्धि उत्पन्न कर दी और माता चिन्तित एव आशकित हो उठती है (२ १६ २२)। इसी प्रकार एक दिन माता का ध्यान किसी काम म लगा हुआ था कि घर म एक सप निकल आया। हरिगोविन्द ने घुटनो के बल चल कर इस सप को पकड लिया और जब तक माता का ध्यान उधर जाता है और वह हाहाकार करती हुई उसकी ओर भागती है तब तक व उस सप के प्राणो का अन्त करके भू पर फक देते हैं और वह नवीन रूप धारण करके वकुण्ठ की ओर चला जाता है। माता का मन विस्मय ग्रस्त हो जाता है और वह भयातुर हो उठती है।

किसी काज म मात तब भई धिम्रान म लीन।
घुटरनि पर श्री गुर चले तब कौतक अस कीन।
एक सरप निकसिओ तव लाबो डील सुहाइ।
निज कर म श्री गुर लयो दुहै हाथ मुख पाई ॥२८॥
जब मात मुड नन निहारयो। हाहाकार कर बड सबद पुकारयो।
दौर मात बालक को गहा। म्रितक सरप तिह ननहि लहा।

१ हरिगोबिन्द के तोतल बैना, सुन सुन मात कर बड चैना।
किंकन नूपर सबद अपारा मोहिहि देख सबै नर नारा।
नेत नेत जिह वेद उचारे। सो गुरु अरजन अजर बिहार।
मात गग सभ काज तिआगे। हरिगोविन्द जब खेलन लागे।
बाल चरित बहु भात अपारा। लीनो हरिगोबिन्द करतारा।
(२ ६६)

२ मात गग को भाख्यो दाई। अपना असथन देउँ पिआई।
जुग जुग जीव बाल तुमारा। अस कहि निज गोदी महि डारा।
कर रही जतन न असथन लियो। कछुक काल इवही बित गयो।
देर करन का अरथ निहारा। कछुक प्रान तिह देह मझारा ॥१४॥
जान अत तिह नार को श्री गुर असथन लीए।
गरल दूध रतपान को करिव क्रिया निध कीन। (२ १५)

श्री गुर डार सरप भूम दीनो। धरिग्रो रूप तिह तुरत नवीनो।
तब माता मन बिसम पाई। बाली बचन बहुत भै खाई।

(२ २८)

ग्रब मेरो सुत प्रभू बचाग्रो। नातर काल भुजगन खायो ॥२॥
ग्रस कहि दीनो दान बिग्रता। कीन बाटन गुर ग्रतिग्रता।

(२ ३६)

गुरु हरिगोविंद के जन्मोत्सव, बाल रूप, उसकी मनोहारी क्रीडाग्रों तथा धाय ग्रौर सर्प ग्रादि के प्रसंगों को भाई सतोखसिंह ने 'गुरु प्रताप सूरज' में ग्रौर भी ग्रधिक विस्तार दिया है ग्रौर उन्हें ग्रधिक मार्मिक, रसपूर्ण, काव्यमय एवं स्वाभाविक रूप देने का प्रयत्न किया है। इसके ग्रतिरिक्त गुरु गोविन्दसिंह के जन्मोत्सव, एवं बाल्यावस्था के सौंदर्य, वेशभूषा, चंचल मनमोहक क्रीडाग्रों का भी उन्होंने सुन्दर चित्रण किया है। उनके काव्य में माता पिता के स्नेह तथा पुत्र के पिता के प्रति प्रेम की भी कुछ सुन्दर झाँकियाँ मिलती हैं।

पटने में गोविन्दसिंह के जन्म पर सभी सिक्खों में हर्ष छा जाता है। भाट, ढाढी ग्राकर बधाइयाँ देने लगते हैं, देव वधुएँ कवीलना का रूप धारण कर दर्शनों के लिए ग्राती हैं ग्रौर ढोलक, टलका, घुंघरू तथा तालियाँ बजा कर नृत्य करने लगती हैं (गु० प्र० सू० रा० १२ १० १२)। गंधर्व मनुष्य का रूप धारण कर गाने लगते हैं। माली मालाएँ लेकर ग्राते हैं द्वार पर दर्शकों की इतनी भीड़ लग जाती है कि पाँव रखने को स्थान नहीं मिलता (वही, १२ १३) माता किसी भी भिक्षु को खाली हाथ नहीं जाने देती। इस प्रकार गुरु प्रताप सूरज के जन्मोत्सव के उल्लास एवं ग्रानन्द का चित्र 'गुरु विलास' से प्रभावित होते हुए भी ग्रधिक पूर्ण रसात्मक एवं सजीव है। एक उदाहरण देखिए—

भाट कलावत ढाडी ग्रावहिं। मनहिं बधाई बाछति पावहिं ॥१०॥
बेस कवीलन देव बधूनी। धरि ग्रावहिं जनु जग दुति लूटी।
ढोलक, टलका, घुंघरू ताली। गाइ बिलावत लेति भवाली।
सभि गजे ग्ररु हाथनि ताल। गन पाइन के घुंघरू नाल।
ग्रग चलावहि ताल मिलाई। गावहिं नाचहिं राचहिं चाई ॥१२॥
श्री गुर के मंदरि भर पौर। भई भीर वित लहै न ठौर ॥१३॥

(रा० १२ १२)

श्री हरिगोबिन्द एवं गोविन्दसिंह के शैशव एवं बाल्यावस्था के चित्रण में तो भाई सतोखसिंह ने ग्रपनी मनोरम कल्पना शक्ति एवं सरस काव्य प्रतिभा का खूब परिचय दिया है। श्री हरिगोबिन्द के शैशव के लावण्य का एक चित्र देखिए—

लाल म्रिदुल पद मनहु कोकनद, उरध उठावति जनु दिनराइ ।
अग बिलद सकल शुभ लच्छन मच्छ अकार रेख कर पाइ ॥३३॥
नख गन रक्त सुमिलि सभि अगुरी, अतलाकार बदन है वाम ।
रुचिर चिकर मेचक लघु चिक्कन बडे बिलोचन बरनी वाम ।
बालक वपु बिराजत श्री प्रभु बरनति बानी अह्मा काम ।

(रा० ३ ५ ३५)

पालने मे झूलते हुए, गोबिंदसिंह के नख शिख, वेश भूषा, शिशु-कौतक तथा उन्हें देख कर माता के हर्षित पुलकित एव उल्लसित होने का चित्रण भी उन्होंने मार्मिकता से किया है। एक उदाहरण देखिए—

प्रभु बिराजति माता अका। सुदर दरशन मदन मयका ॥१६॥
श्याम बिंदु जननी शुभ लाइव। डीठ न लगै रिदा अकुलाइव।
मनहु सुलछन चद सुहावा। दास चकोरन गन हरखावा ॥२०॥
बिकस्यो मनहु अलप अरबिंद। बैठ्यो शोभति बतस मलिंद।
सुधा कुड मुख मडल मनो। बिकसित कबि कवि वीची मनो ॥२१॥
हाथनि चरन उछारति डारनि। कवि जिन पर उतपल दुति वारति।
हाटक कटक जटे बिच हीरे। लागी अगुरी लगी जजीरे।
जटी मुदरी सुदर सगि। झगुली नीन पीत शुभ रग ॥२३॥
लोचन पुतरी इत उत फेरति। करत म्रितारथ सगति हेरति।
आयुत भाल केस बर छोटे, सिर पर बसत्र दमकते गोटे ॥२४॥
श्री गुजरी वड भाग भरी, तट बैठि बिलोक्त नदन को।
बोलेनि है बतरावन को सुत लालति है अभिनदन को।
मात निशा पिखि कै मुसकावति रासहि धरम जु हिंदुन को।
अक बिठाई दुलारति है कवि सुदर श्री जगवदन को ॥६॥

इसी प्रकार जब व हाथा पर बल देकर आगन म चलते हैं, किंकणी का मधुर स्वर करते हैं अथवा गडीलन के सहारे चलने लगते है तो अपनी मनोहर मुसकान स तथा अपने तोतले बचनों से सभी को मोहित कर लेते हैं।

दन्त उगे जुग सुन्दर सोहनि ओठनि माय महा दुति जागे।
मानो प्रवाल के सपुट मैं इह हीरम रेग पयून मैं पागे ॥८॥
किंकनि हसनि बिलोकति हैं धनि रिसग अभग म निरि आवै।
गुनधारि गुलाब गनीवन प पद एविनि नूरर को रानराय ॥६॥
किंरनि बाजति है चरन उतनावति रिसग हैं कवि घोर ॥१२॥

(१२१७)

हाथ गडीरन पैं धरि कैं पद मद ही मद उठावनि लागे ।
सुन्दर श्री मुख ते बिकसावति शोभति दंत श्रमी जनु पागे ॥१७॥

× × ×

कोऊ कोऊ बाक लगे बोलन प्रमोद छवि ।
तोतरे परम प्रिया माधुरी रसाल करि ॥२०॥

(रा० १२ १७)

इस प्रकार के वर्णनों में कवि उत्प्रेक्षाओं की तो झडी सी लगा देता है। ऐसे रसपूर्ण मार्मिक वर्णनों का 'गुरु विलास' एवं 'पंथ प्रकाश' में अभाव है। ऐसे स्थलों पर कवि पर सीधा महाकवि सूर का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। एक ऐसा और उदाहरण प्रस्तुत है जिस पर सूर के वात्सल्य का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है—

अग शनान कराइ विधान सो सूघति भाल ज्यों आनन्द वारी।
अबर को पहिराइ विभूषन लौन सु रई लो ऊपर वारी ॥१४॥
दधि-ओदन को अचवाई भले अनमोदन नन्दन मात अरे।
बहु चचलता जुति धावनि जाति इते उत होवति आनि थिरे।
किलकति हसति हसावति औरनि भावति ही दुख दोस हरे।
शुभ शोभ धरे परयक धरें कवि फेर फिरें निज खेल ढरे ॥१५॥

(वही, रा० १० १७)

यहाँ कवि ने बालक की चचलता एव मृदुता का सुन्दर चित्र अकित किया है।

भाई सतोखसिंह ने श्री गोबिन्दसिंह के लकडी के अनेक खिलौना, सारिका, कोकिल, कोक, कबूतर, तीतर, चकोर, बुलबुल आदि पक्षियों तथा गज, अश्व, कूकर आदि पशुओं के साथ खेलने और मन बहलाने का वर्णन भी कवि ने किया है।

श्री हरिगोबिन्द की शिशु क्रीडाओं के अन्तर्गत धाय वध तथा सर्प वध की जिन दो घटनाओं का वर्णन 'गुरु विलास पातसाही ६' में किया गया है। भाई सतोखसिंह ने भी उनका चित्रण किया है, और यहाँ ये घटनाएँ विस्तार से आई हैं तथा उनमें अधिक स्वाभाविकता, सरसता एवं सजीवता है। भाई सतोखसिंह ने 'धाय प्रसग' को इस प्रकार वर्णित किया है—"ईर्ष्यावश हरिगोबिन्द को मारने के लिए प्रिथिमा एक 'धाय' को भेजता है। वह सुन्दर वस्त्र धारण करके जन्मोत्सव में आ जाता है जहाँ शिशु हरिगोबिन्द बहुत सी स्त्रियों से घिरा हुआ खेल रहा था। माता किसी कार्यवश भीतर चली गई थी धाय के मन की क्रूरता का ज्ञान कर हरिगोबिन्द ने भूख के कारण मचलना आरम्भ कर दिया। धाय ने अवसर पाकर उसे अक में उठा लिया

और अपने विष लगे स्तन उसके मुख मे दे दिये। हरिगोबिन्द ने एक हाथ से उसकी वेणी पकडी दूसरे से दूसरा स्तन, और दोनो स्तन इतने जोर से खीचे कि उसके प्राण ही खीच लिए। उसके मुख से झाग निकलने लगी, शरीर पीला पड गया सभी स्त्रिया अपना अपना स्थान छोड कर भाग गइ। माता गगा इस दृश्य को देख कर घबरा जाती है और अब वह न तो उन्हे अधिक बाहर लाती है न किसी स्त्री को देती है। यहा कवि ने बालक, धाय तथा अन्य उपस्थित स्त्रियो के अनुभावो का तथा माता की चिता आकुलता एव आशका आदि का भी सजीव चित्रण किया है, जिसका 'गुरु विलास' मे प्राय अभाव है।[1] इस प्रयत्न के असफल होने पर प्रिथिए ने उनके घर मे एक

---

१ धाय की दशा का दृश्य—

गाढे अग पीर करि, गाढी उर पीर करि
प्रान ते सरीर करि भिन्न ऐंच लीनिओ।
जसे पोल तील ते क्लिाल को सु फूक नालि
खैंचि लेति बालक सुभाइक ही कीनिओ।
'हाइ हाइ' बोलती विहाल ह्वै विसाल,
बाल छोरो अवि मोहि को प्रताप चित्त चीनिओ।
लोचन मैं नोर भरी धीर हरि चीर तजी
परी सभी तीर घर प्राण करि हीनिओ ॥२३॥
कूकती पुकार बिसभार ह्वै पसार अग,
परी म्रितु भई द्रिग निकरे परति जनु।
मुख ते झगूर जाति, पीरी पर गई गात
भयो उतपात हेरि नारी बिसमाई मन।
अन्य स्त्रियो तथा माता की दशा का दृश्य—
—कहाँ होइ गयो बठी सभिनि मैं लियो सिसू
त्रास उपजयो तजी दर जहाँ पर्यो तन।
गगा भयभीत भई पुत्र को गहन धाई
हाथनी उचाय प्रिया त्रिपन को मानो घन ॥२४॥
हाथ गही बेनी कर साथ नहि छार
ताहि मान घुरकाव कहाँ एतना सु हाई जोर।
दासी का पुकारें रिस भरी क्या न आव पागि ?
कपनि सरीर त्रास धार उतपात घार।
मिली स्न आन, नीठ नीठ करि छारी तबि
कठ सो लगाया न‍ पर्यो है बिमद भार।
परी जिस ठौर मरनाय्नि न ताहि धार
करो उर हर धाई मान निज छारि छारि ॥२५॥
(गु० ३७)

सप छुडवा दिया। माता का प्यार वहीं और लगा हुआ था। गुरु हरिगोविन्द ने उस सप का उद्धार करने के लिए गुर्डलिया चल कर उसे कस कर पकड लिया और दबा कर मार दिया।[1] भाई सतोखसिंह के इन दोनो प्रसगो पर स्पष्ट रूप से 'गुरु बिलास ६वीं पातशाही' के अतिरिक्त सूर के पूतना वध तथा काली दमन प्रसगो का प्रभाव भी लक्षित होता है परन्तु कवि ने अपनी प्रतिभा से उन्हें अपनी कथा के अनुकूल ढाल लिया है और उपयुक्त अवसर पर देश काल के अनुरूप रग देकर उनका प्रयोग किया है। उनके वर्णनो म बहुत स्वाभाविकता है। गुरुओ की क्रीडाओ के अन्य कई प्रसग भी कृष्ण की लीलाओ से प्रभावित हैं परन्तु कवि ने देश-काल का पूरा ध्यान रखा है। भाई सतोखसिंह ने श्री हरिगोविन्द की शिशु क्रीडाओ का भी अच्छा वणन किया है। एक उदाहरण देखिये—

श्री चरणांबुज ते चलिबे पग नूपर भू पर दौर बजावैं।
कचन की बर किंकनि है कटि हीरे जराऊ जरे चमकावै।
पीत गरे झुगली बहु झीन महा दुति ते तन चारु दिपावैं।
हाथ मैं कक्न छाप छलायनि सीस बिभूखन शोभ बढावै ॥२५॥
बालक और मिले तिस ठौर मैं दौरति हैं अगुवा पिछवाई।
खेलति हैं बहु मेलति रौर गुरु हरिगोविन्द जी हरखाई।
हाइ इकठति बैठति हैं कवि अग अमैठति देति पलाई।
सुन्दर मदर अदर ह्वै कवि बाहर, राकति हैं मज जाई ॥२६॥
ग्राम वडाली के बालक जे बड भाग भरे इम खेलति हैं।
श्री हरिगोविन्द सग मिले बहु स्वाद को भोजन मेलति हैं।
दयोस सबै नहि पास तजै मिलि आपस मैं बल रलति हैं।
आप दिखाइ करे कुशती गहि हाथनि साथ धकेलति हैं ॥२७॥
दोहा—इस प्रकार क्रीडति प्रभू खेलति खेल बिसाल।
मिलहि जाल बालक ललित निस महि निज निज साल ॥२८॥
(रा० ३ ६)

गुरु गोविन्दसिंह की बाल क्रीडाओ का तो उन्होने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। पटने में शाहो के बालको के साथ वह वीथियो म हँसते खेलते उधम मचाते हुए उपवन मे खेलने जाते हैं जहाँ व अनेक क्रीडाएँ करते है।[2] कुछ वृक्षो पर चढकर बठ जाते हैं और कुछ कर तथा चरणो से जल प्रवाह रोक देते हैं[3] और कभी अनेक सखाओ के साथ नौका विहार[4] तथा जल क्रीडा करने

१ वही रा० ३ ६ १ १२।
२ वही रा० १२ १० ३३ १२ १८ १ ६।
३ वही रा० १२ १२ १८ १२ १३।
४ वही रा० १२ १६।

लगते हैं[1]। बालकों मे साथ गेंद खेलने का इसमें कितना स्वाभाविक वर्णन किया गया है —

दिन महि तहि गन बालिक मेल। बहिर ग्राम ढिग खेलति गेल।
किंदुक डंडा गहि जुग हाथ। फर्कहि दूर मार करि नाथ॥३॥
बालिक धाइ गहैं तहि गरहि। पुन डंडा हति किंदुक प्रेरहि।
कबहूँ ब्रिछन पर चढि चढि कूदहि। हारहि बाल तांहि ढिग मूर्छहि॥४॥
कबहूँ भाग चलहि किह आगे। अधिक भ्रमावहि हाथ न लागे।
कबहूँ दुइ दिशि बालिक सभि होइ। मिनहि परे कर करि दोइ॥५॥
जीत हार की खेल मचावहि। धावहि एक ओज को लावहि।
इक ऐंचहि इक छुट करि जाव। इक लर करि निज सदन सिधाव॥६॥
इक को इक खिडाइ करि रोकहि। इम खेलति जे लोक विलोकहि।
(१२ ५६ ३७)

यहाँ गुरु गोविन्दसिंह की तीन बाल क्रीडाओं का उल्लेख करना हम आवश्यक समझते है। उनमे एक तो किसी बुढिया को चिढाने से सम्बधित है दूसरी पटने के शासक को तथा तीसरी एक तुरकनि को निशाना मारने से सम्बधित हैं।

उनके पडौस मे एक बुढिया रहती थी। उस वद्धा को वे नित्यप्रति खिढाया करते थे। उसकी पुणियाँ तिल्ले रखने की पिटारी तूल सूत आदि उठा कर ले जाते। यदि वह उनकी माता के पास शिकायत करने की धमकी भी देती तो भी कोई चिता न करते। एक दिन तंग आकर वह माता गूजरी से शिकायत करने चली जाती है। उनसे वह कहती है कि अपने पुत्र की करतूत देख लो, कितना ऊधम मचाता फिरता है जरा भी कातने नही देता मूढे सूत आदि बिखरा कर भाग जाता है । पुत्र की चचलता को सुन कर माँ गूजरी मन ही मन प्रसन्न होती है और वद्धा को अपने मूल्यवान वस्त्र देकर पुत्र पर क्रोध न करने का विनय करती है। बुढिया कहती है—

'अरी ! मैं क्रोध करती ही कब हूँ, मैं तो चाहती हूँ कि वह प्रतिदिन मेरे घर खेलने आता रहे। जब मैं उसका पीछा करती हू तो वह भाग कर बाहर आता है, जब मैं बाहर आती हूँ तो भीतर आ घुसता है। उसकी इस चचलता को देख कर तो मेरे नेत्र प्रफुल्लित हो जाते हैं। मैं तो चाहती हूँ तुम्हारा पुत्र सौ वर्षों तक जीवित रहे। मुझे तो वह ऐसा प्रिय लगता है जैसे सर्प को अपनी मणि प्रिय होती है।[2] तुम्हारा पुत्र आज घर की छत पर ऊधम मचाता फिर रहा था इसीलिए मैं आज आई हूँ ताकि वह सचेत हो जाए—नही तो वह प्रतिदिन ही मेरे घर आता है।[3]

१ वही रा० १२ २०।
२ ३ वही रा० १२ २० २१ २४।

-गुरु गोविन्दसिंह के पटना म प्रस्थान के समय इस वृद्धा की आकुलता, अधीरता आदि की भी व्यजना की गई है। यथा—

निज परोस महि विरधा जोई। जिमहि सिखावहि सो दुख पाई।
बहुत दिन को करति बखान। हे गोविन्द मम प्रेम महान ॥३४॥
नहि मन थिरहि बहुत अकुलाऊँ। बारि बारि करि बिसहि बुलाऊँ।
इत्यादिक बहु प्रेम करती। बलिहारी हुइ कपाट लहती ॥३५॥
(१२४२)

दूसरा प्रसग इस प्रकार है कि गोविन्दसिंह बालको के साथ गुलेल चलाने का अभ्यास किया करते थे। एक दिन पटन का शासक वहा से जा रहा था, गोविन्दसिंह न 'ताक' कर उसे निशाना दे मारा। उसने उन्ह पकडने का प्रयत्न किया तो वे इसे दाँत दिखाते हुए और मुख विकृत करके चिढाते हुए भाग जाते हैं।[1]

तीसरा प्रसग इस प्रकार है कि एक बार एक तुरकनि पनघट से पानी भर कर अपने सिर पर घडा रखे हुए जा रही थी। उन्होने इसके घडे पर गुलेल से निशाना लगाया, घडा तो बच गया परन्तु उसके मस्तक म घाव हो गया। उसन जा कर माता गूजरी से शिकायत की और शासक स शिकायत करने की धमकी दी। माता को बडा क्रोध आया और वह छडी लकर गोविन्दसिंह को मारने चली। गोविन्दसिंह माता के रोष को देख कर अटारी म जा छिपे और भीतर से ही कहने लग कि मैंने कोई जान-बूझ कर उसे थोडा ही निशाना मारा है। मैं तो निशाना लगा रहा था, वह सामने क्यो आई, भला इसमे कोई मेरा दोष है।[2] माँ विवश होकर नीचे उतर आई तुरकनि को पाँच रुपये दकर क्षमा मागी और घाव के ठीक हाने का खच दने का वचन दिया।

कहना न होगा कि ये वणन अत्यन्त मार्मिक हैं। कवि ने बालक की चचल एव उद्दण्ड क्रीडाओ का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। यहाँ धार्मिकता का भी उतना आग्रह नही है, जितना 'गुरु बिलास' म।

इन ग्रन्थो म हमे एक न्यूनता अवश्य दिखाई पडती है। बहुधा उपवन में क्रीडा करते हुए अथवा जल विहार करते समय गोविन्दसिंह क मामा कृपाल उनके साथ रहे हैं। अच्छा होता यदि कवि, उन्हें स्वतन्त्रता से क्रीडा करने देता। दूसर व माली स पूछ कर ही पुष्प तोडते हैं।[3] जब वह शासक को गुलेल का निशाना बना सकते हैं तो पुष्प स्वय तोडन म क्या दोष था। इससे उनकी बालोचित चचलता ही प्रकट होती। फिर उनक सखा भी उन्हें गुरु जी कहकर

---

१ वही रा० १२ २१।
२ रा० १२ ३६ १ ३६।
३ वही रा० १२ २० २ ३।

सम्बोधित करते हैं जिससे उनमे समानता का भाव नहीं आ पाता' और मित्रा की पारस्परिक लड़ाई तथा खीझ आदि का चित्रण नहीं हो सका। फिर भी इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि उनकी क्रीडाओ मे यथा म यथेष्ठ मार्मिकता है।

शैशव तथा बाल्यावस्था की इन क्रीडाओ मे प्रतिरिक्त कवि ने इनके माता पिता तथा सखाओं के स्नेह, आशका, चिंता, उत्कठा, मिलनाभिलाषा, हर्ष सुख, उल्लास तथा आकुलता एव अधीरता आदि मनावेगो की भी सुन्दर व्यजना की है।

हरिगोविन्द द्वारा दाई के वध के पश्चात उनकी माता अनिष्ट की 'आशका' से पुत्र को बाहर नहीं निकलने देती। जो लोग दर्शनों के लिए आते हैं, उन्हें भी किसी बहाने टालने का प्रयत्न करती है। बाहर यदि निकालती भी है तो डिठौना लगाकर कि कहीं उस नजर न लग जाए।[१]

बालक का खेलते देखकर वह मुदित हो जाती है और जसे धेनु अपने बछडे को छोडना नहीं चाहती उसी प्रकार वह पुत्र को अपने से दूर नहीं जाने देती। उसे बार बार बुला कर प्रमुदित होकर उसका मुख चूम लती है।[२] उसको ज्वर आ जाने पर माता गगा इतनी चिंतित होती है कि खाना पीना त्याग कर उसी के समीप बठी रहती है। बार-बार उसकी सुधि पूछती है किसी काम को करने को भी उसका मन नहीं करता, आँखें फाड फाड कर उसकी ओर देखती है उसकी कुशलता के लिए गुरु नानक से प्रार्थना करती है और अनेक मनौतियाँ मनाती हैं।

इसी प्रकार पुत्र के दिल्ली जाते समय वह 'व्याकुल हो जाता है और जब वह दिल्ली से वापिस आता है तो उसके हृदय म उल्लास की लहरियाँ उद्वलित होने लगती है पुत्र को देख कर उसे उतना ही सुख होता है जितना सद्य प्रसूता धेनु को अपने बछडे को देख कर होता है।[५] इसी प्रकार कवि ने गुरु गोविन्दसिंह के उपवन मे देर लगा देने पर माता की उत्कठा, आतुरता एव चिन्ता तथा उनके आगमन पर उसके 'हर्ष' और 'उल्लास आदि का

१ वही रा० १२ २० १५-१६।
२ वही रा० ३ ८ १९ २२।
३ रा० ३ १२ १९ २१।
४ रा० ३ ३० ७ ८।
५ आइ प्रवेशे जबि घर बीची। गगा सम गगा उठ बीचो।
जथा तुरत की धेनु प्रसूता। पिख्यो सपूत महा मन पूता।
सूघति मस्तक घन बहु वारति। देखि न त्रिपत वदन निहारति।
(रा० ५ ८ ३७ ३९)

चित्रण इस प्रकार किया है—

धाम गए अभिराम गुरु सुत देखनि को उतकंठित माई।
धेनु महा लघु ज्यों बछ को बिछुरे न थिरे अति ह्वै अकुलाई।
द्वार बिलोचन सम्मुख ते मुख नंदन देखति ही हरखाई।
धीर ते बठयो गयो न तहा, उठी शीघ्र उछंग में लेनि कों आई ॥१७॥
गोद लिए उर मोद भरयो चहुँ कोद बिनोदति बाल महाँ।
सूघति भाल विसाल मनोहर जोगी जिसे चित ध्यान लहा ॥२८॥

(१२ १८)

पुत्र की पिता के प्रति स्नेह की एक सुन्दर झाँकी अर्जुनदेव के लवपुरी जाने के प्रसंग में मिलती है। यहाँ पिता के दर्शनों के लिए उनकी 'चिन्ता', 'उत्कंठा', 'आतुरता, अधीरता' एवं व्याकुलता की सुन्दर अभिव्यंजना की गई है। उनके शरीर के रोमांच', 'अश्रु, 'वैवर्ण्य' 'क्षीणता' आदि सात्विकों का भी वर्णन किया गया है।[1] जब पिता को इनकी इस दशा का ज्ञान होता है तो 'स्नेहवश' उनके लोचन भर आए, कंठ रुक गया, उनसे बोला तब न गया।[2] लवपुरी से लौटने पर जब अर्जुन देव ने भानु समान तेजस्वी अपने पिता के दर्शन किए तो उनका मुखारविंद विकसित हो गया चकोर की भांति वह उनके मुख की ओर देखते रहे और आतुर होकर उनके चरणों में गिर पड़े नेत्रों से अश्रु बहने लगे, मानो वह अपने दृग जल से उनके चरणों को पखार रहे हों।[3] पिता ने विह्वल हो कर उनका मस्तक चूम लिया।

कहना न होगा कि यहाँ पुत्र का पिता के प्रति उत्कट स्नेह के चित्रण में अनुभूति की तीव्रता एवं स्वाभाविकता है।

पटने से प्रस्थान के समय गोविन्दसिंह के बाल सखाओं की 'व्याकुलता' का भी वर्णन किया गया है। उनमें कुछ तो रुदन करने लगे और कुछ उनके साथ चलने का आग्रह करने लगे।[4] उनकी वही दशा हुई जो गोविन्द के मथुरा जाते समय ग्वालों की हुई थी।

---

१ वही रा० २ १६ ३६ ४१।

२ वही रा० २ २० १०।

३ वही रा० २ २० ३०।

४ नाहुन के सुत केतिक कहै। हम तौ इनके संग ही रहैं।
जबि इस देश आई है फेर। निज सनबधनि के पुन हेरै ॥३१॥
तिन के मात पिता समुझावें। हे सुत ! अबि इह फेर न आवै।
केतिक निज पुत्रनि गहि राखहिं। जे गुर संग गमन अभिलाखहिं।
टिकहिं नही रोदन को करिही। बारि बारि समुझाइ सुधारहि।

(रा० ३ ४२ ३१ ३३)

सम्बोधित करते हैं जिससे उनमे समानता का भाव नही आ पाता¹ और मित्रो की पारस्परिक लडाई तथा खीझ आदि का चित्रण नही हो सका। फिर भी इतना स्वीकार करना पडेगा कि उनकी क्रीडाओ के वर्णनो म यथेष्ठ मार्मिकता है।

शैशव तथा बाल्यावस्था की इन क्रीडाओ के अतिरिक्त कवि ने इनके माता पिता तथा सखाओ के स्नेह आशका, चिन्ता, उत्कठा, मिलनाभिलाषा, हर्ष, सुख उल्लास तथा आकुलता एव अधीरता आदि मनोवेगो की भी सुदर व्यजना की है।

हरिगोविन्द द्वारा दाई के वध के पश्चात उनकी माता अनिष्ट की आशका' से पुत्र को बाहर नही निकलने देती। जो लोग दर्शनो के लिए आते हैं, उन्हें भी किसी बहाने टालने का प्रयत्न करती है। बाहर यदि निकालती भी है तो ढिठौना लगाकर कि कही उसे नज़र न लग जाए।²

बालक को खेलते देखकर वह मुदित हो जाती है और जैसे धेनु अपने बछडे को छोडना नही चाहती उसी प्रकार वह पुत्र को अपने से दूर नही जाने देती। उसे बार बार बुला कर प्रमुदित होकर उसका मुख चूम लेती है।³ उसको ज्वर आ जाने पर माता गगा इतनी चिन्तित' होती है कि खाना पीना त्याग कर उसी के समीप बठी रहती है। बार बार उसकी सुधि पूछती है, किसी काम को करने को भी उसका मन नही करता, आँखें फाड फाड कर उसकी ओर देखती है उसकी कुशलता के लिए गुरु नानक से प्रार्थना करती है और अनेक मनौतियाँ मनाती हैं।

इसी प्रकार पुत्र के दिल्ली जाते समय वह 'व्याकुल' हो जाती है और जब वह दिल्ली से वापिस आता है तो उसके हृदय म उल्लास की लहरिया उद्वेलित होने लगती है पुत्र को देख कर उसे उतना ही सुख होता है जितना सद्य प्रसूता धेनु को अपने बछडे को देख कर होता है।⁵ इसी प्रकार कवि ने गुरु गोविन्दसिंह के उपवन म देर लगा देने पर माता की उत्कठा, आतुरता एव चिन्ता तथा उनके आगमन पर उसके 'हर्ष' और 'उल्लास' आदि का

१ वही रा० १२ २० १५ १६।
२ वही रा० ३ ८ १६ २२।
३ रा० ३ १२ १६ २१।
४ रा० ३ ३० ७ ८।
५ आइ प्रवरे जवि घर बीची। गगा सम गगा उठ बीची।
　जथा तुरत की धेनु प्रसूता। पिख्यो सपूत महा मन पूता।
　सूधनि मस्तक धन बहु वारनि। देखि न त्रिपतै वदन निहारति।
　　　　　　　　　　　　　　(रा० ५ ८ ३७ ३६)

चित्रण इस प्रकार किया है—

धाम गए अभिराम गुरु सुत देखनि को उतकंठित माई ।
धनु मेहा लघु ज्यों बछ को बिछुरे न थिरे अति ह्वै अकुलाई ।
द्वार बिलोचन सम्मुख ते मुख नंदन देखति ही हरखाई ।
धीर तें बैठ्यो गयो न तहां उठी शीघ्र उछंग मे लैनि को आई ॥१७॥
गोद लिए उर मोद भरयो चहुँ कोद बिलोकनि बाल महाँ ।
सुधति भाल विसाल मनोहर जोगी जिसे चित ध्यान लहा ॥१८॥

(१२।१८)

पुत्र की पिता के प्रति स्नेह की एक सुन्दर झाँकी अर्जुनदेव के लवपुरी जाने के प्रसंग में मिलती है। यहाँ पिता के दर्शनों के लिए उनकी चिन्ता, 'उत्कंठा, आतुरता, 'अधीरता एवं व्याकुलता की सुन्दर अभिव्यंजना की गई है। उनके शरीर के 'रोमांच', 'अश्रु' 'वैवर्ण्य' क्षीणता आदि सात्विकों का भी वर्णन किया गया है।[1] जब पिता को इनकी इस दशा का ज्ञान होता है तो 'स्नेहवश उनके लोचन भर आए कंठ रुक गया, उनसे बोला तक न गया।[2] लवपुरी से लौटने पर, जब अर्जुन देव ने भानु समान तेजस्वी अपने पिता के दर्शन किए तो उनका मुखारविंद विकसित हो गया, चकोर की भांति वह उनके मुख की ओर देखते रहे और आतुर होकर उनके चरणों में गिर पड़े, नेत्रों से अश्रु बहने लगे मानो वह अपने दृग जल से उनके चरण को पखार रहे हों।[3] पिता ने विह्वल हो कर उनका मस्तक चूम लिया।

कहना न होगा कि यहाँ पुत्र का पिता के प्रति उत्कट स्नेह के चित्रण में अनुभूति की तीव्रता एवं स्वाभाविकता है।

पटने से प्रस्थान के समय गोविन्दसिंह के बाल सखाओं की 'व्याकुलता' का भी वर्णन किया गया है। उनमें कुछ तो रुदन करने लगे और कुछ उनके साथ चलने का आग्रह करने लगे।[4] उनकी वही दशा हुई जो गोविन्द के मथुरा जाते समय ग्वालों की हुई थी।

---

१ वही रा० २।१६।३६-४१।
२ वही रा० २।२०।१०।
३ वही रा० २।२०।३०।
४ साहुन के सुत केतिक कहै। हम तौ इनके संग ही रहैं।
जबि इस देश आई हैं फेरे। निज सतगुरनि के पुन हेरे ॥३१॥
तिन के मात पिता समुझावें। हे सुत! अबि इह फेर न आवें।
केतिक तिन पुत्रनि गहि राखहिं। जे गुर संग गमन अभिलाखहिं।
टिकहिं नहीं रोदन को करिहीं। वारि वारि समुझाइ सुधारहिं।
(रा० ३।४२।३१-३३)

१७

गुरुमुखी लिपि मे उपलब्ध प्रबन्ध-काव्यो में होली-वर्णन

होली हिन्दुओ का एक ऐसा महत्वपूर्ण धार्मिक पर्व है, जो उनकी सास्कृतिक-एकता, सामाजिक समानता एव जातीय सगठन का प्रतीक है। वसन्त आगमन पर हरी भरी फसलो, पुष्प-लताओं को देख कर उनके हृदय म जिस हर्ष, माधुर्य एव मादकता का सचार होता है, उसकी अभिव्यक्ति मधुऋतु के इस मादक पर्व म होती है। इसके हास-उल्लास, आमोद प्रमोद, मस्ती और जवानी मे रसीली क्रीडाओ और रगीनियो की बाढ म पुश्तैनी वैर एव द्वेष भी गल कर बह जाता है और गुलाल अबीर से राग रजित हृदयो का हृदयों से चिर मिलन हो जाता है।

इस प्रकार के पर्व प्रत्येक युग के साहित्य म युग परिस्थितियो के अनुरूप जन मानस की भावाभिव्यक्ति के माध्यम बनते रहे हैं। मध्ययुग के मुगलकालीन विलासितापूर्ण वातावरण मे आक्रान्त जन-जीवन ने होली को भी प्रभावित किया। यही कारण है कि रीतिकालीन हिन्दी कवियो के होली वर्णन रसिकता एव कामुकता से सराबोर हैं। 'पद्माकर' की नटखट नायिका को होली की भीड म से अपने नट नागर प्रिय को पकड कर और भीतर ले जाकर मन भायी क्रीडा करने का अच्छा अवसर मिल जाता है, तो विरह विदग्ध घनआनन्द के लिए फाग ही बजमारा विरह बन कर प्राण निकालन पर तुला है और नायिका बेचारी के विरह विजडित शरीर म होली के सारे उपकरण उभर आते हैं।

पजाब म सिक्ख गुरुओ ने तुरक शासन के अन्याय, अधम, अत्याचार एव अनीति के विरुद्ध जिस सैनिक एव सास्कृतिक आन्दोलन का सूत्रपात किया था उसकी अभिव्यक्ति भी हिन्दी के ही माध्यम से हुई। इस युग म यहाँ बहुत बडी सख्या म ऐसे काव्य ग्रथ लिखे गये, जिनम हिन्दुओं की सास्कृतिक चेतना स्वातन्त्र्य भावना, सामाजिक दृढता, वीरता एव उत्साह की व्यजना हुई है। पजाब के इस हिन्दी-साहित्य मे होली भी इन्हीं भावनाओं से

१७

गुरुमुखी लिपि मे उपलब्ध प्रबन्ध-काव्यो में होली-वर्णन

होली हिन्दुओ का एक ऐसा महत्वपूर्ण धार्मिक पर्व है जो उनकी सास्कृतिक एकता, सामाजिक समानता एव जातीय सगठन का प्रतीक है। बसन्त आगमन पर हरी भरी फसलो, पुष्प-लताओं को देख कर उनके हृदय मे जिस हर्ष, माधुर्य एव मादकता का सचार होता है, उसकी अभिव्यक्ति मधुऋतु के इस मादक पर्व म होती है। इसमे हास-उल्लास, आमोद प्रमोद, मस्ती और जवानी मे रसीली क्रीडाओ और रगीनियो की बाढ मे पुरानी वैर एव द्वेष भी गल कर बह जाता है और गुलाल अबीर से राग रजित हृदयो का हृदयो से चिर मिलन हो जाता है।

इस प्रकार के पर्व प्रत्येक युग के साहित्य म युग परिस्थितियो के अनुरूप जन मानस की भावाभिव्यक्ति के माध्यम बनते रहे हैं। मध्ययुग के मुगलकालीन विलासितापूर्ण वातावरण से आक्रान्त जन-जीवन ने होली को भी प्रभावित किया। यही कारण है कि रीतिकालीन हिन्दी कवियो मे होली वर्णन रसिकता एव कामुकता से सराबोर हैं। 'पद्माकर' की नटखट नायिका को होली की भीड म से अपने नट नागर प्रिय को पकड कर और भीतर ले जाकर मन भायी क्रीडा करने का अच्छा अवसर मिल जाता है, तो विरह विदग्ध घनआनन्द के लिए फाग ही बजमारा विरह बन कर प्राण निकालने पर तुला है और नायिका बेचारी के विरह विजडित शरीर म होली के सारे उपकरण उभर आते हैं।

पजाब मे सिक्ख गुरुओं ने तुरक शासन के अन्याय, अधर्म, अत्याचार एव अनीति के विरुद्ध जिस सैनिक एव सास्कृतिक आन्दोलन का सूत्रपात किया था उसकी अभिव्यक्ति भी हिन्दी के ही माध्यम मे हुई। इस युग म यहाँ बहुत बडी सख्या म ऐसे काव्य ग्रथ लिखे गये, जिनम हिन्दुओं की सास्कृतिक चेतना, स्वातन्त्र्य भावना, सामाजिक दृढता, वीरता एव उत्साह की व्यजना हुई है। पजाब के इस हिन्दी-साहित्य म होली भी इन्हीं भावनाओं से

अनुप्राणित होकर प्रकट हुई है। सिक्ख धर्म योद्धाओं के लिए युद्ध फाग के उल्लास-उत्सव के समान है। बाण उनके लिए कुंकुम समान हैं, ढाल डफ के समान है और बन्दूकें पिचकारी तुल्य हैं। वे गुलाल के भाव, गुप्ती की पिचकारियाँ तथा कृपाणें लेकर शूरवीरों के साथ फाग खेलते हैं और उनमें जो श्रोणित निकलता है वह केसर के समान शोभित होता है। होली के वीर रसपूर्ण एवं ओजस्वी वर्णन पंजाब के अनेक काव्य-ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं, जिनमें चेती के रूप में युद्ध गीत अथवा 'गुर नाम' गाये जाते हैं ढोल डफ, मजीरे के स्थान पर धौंसा की धुकार सुनाई पड़ती है, खेलने वाले गुटकों की बजाय आयुध धारण किए हुए हैं, भोंडे स्वांगों के स्थान पर रिपु को मर्दित करने' अथवा 'जग जीतने' के करतब करते हैं। दशमग्रन्थ, 'गुरशोभा' 'महिमा प्रकाश', नानक प्रकाश, गुर प्रताप सूरज' आदि से ऐसे कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

पंजाब के हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक प्राणवान एवं सशक्त रचना 'दशम ग्रन्थ' है। इसका लगभग एक तिहाई भाग (कोई ६००० छन्द) वीर रसात्मक हैं। कवि ने पौराणिक अवतार कथाओं को भी वीर काव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। इस ग्रंथ के वीर भावना से ओत प्रोत होली के दो उदाहरण देखिए —

इह विध फाग क्रिपानन खेले ।
सोभत ढाल माल डफ माल मूठ गुलालन सेल ।
जान तुफंग भरत पिचकारी सूरन अंग लगावत ।
निकसत स्रोण अधिक छबि उपजत केसर जान सुहावत ।
स्रोनत भरी जटा अति सोभत छबहि न जात कह्यो ।
मानहु परम प्रेम सो डार्‌यो ईंगर लागि रह्यो ।
जहं तहं गिरत भए नाना विधि सागन सत्र परोए ।
जानुक खेल धमार पसार कै अधिक स्रमित ह्वै सोए ।
(पारस अवतार ११८)

यहाँ शूरवीर ढाल, भाले, कृपाण लेकर युद्ध नहीं कर रहे हैं वरन् वे तो डफ, गुलाल आदि लेकर फाग खेल रहे हैं। आहत होकर जो योद्धा युद्ध भूमि में गिरे पड़े हैं, वे मानो अत्यधिक धमार की मादकता से थक कर सोये हुए हैं। इसी प्रकार निम्नछन्द में भी युद्ध का फाग के रूप में वर्णन किया गया है —

बान चले तेई कुंकम मानहु मूठ गुलाल की साग प्रहारी ।
ढाल मनो डफ माल बनी हथ नाल बंदूक छुटे पिचकारी ।
स्रउन भरे पट बीरन के उपमा जन घोर कै केसर डारी ।
खेलत फाग कि बीर लरै नवला सी लिए करवार कटारी ।
कृष्णावतार १३८५

पजाब म वीर-काव्या की एक ऐसी समद्ध परम्परा है जो युग की साम्स्कृतिक चेतना से स्पदित एव राष्ट्रीय भावना मे अनुप्राणित है। इनम मबसे प्रथम रचना सेनापति की 'गुरु शोभा' है, जो कि दशमगुरु के जीवन पर आधारित एक ओजपूण वीरकाव्य है। इसमे स युद्ध क्रीडा से आरोपित होली वणन का एक उदाहरण देखिए—

खेलत सूर महा रन मैं बन मै मानो सिभाम जो फाग मचाइओ।
दउरत सूर लीए कर मैं पिचकारन जो सु बदूक चलाइओ।
स्रोनत धारि चली तिनके तनते मानहु लाल गुलाल लगाइओ।
बागे बने तिनके तन लाल मनो रगरेज रग रग लिआइओ।
२०।३६६

सिक्ख प्रबन्धो म 'महिमा प्रकाश' पहली ऐसी रचना है जिसमे सभी सिक्ख गुरुओ का जीवन वृत्त अवतारी रूप मे चित्रित किया गया है। उसम भी युग की वीर भावना उजागर है। होली के रूप मे युद्ध का एक उदाहरण उसमे से यहा दिया जा रहा है—

तीर तुफग सूर तन खचे। मानो फाग खेल तहा मचे।
चले रुधर धार मानो पिचकारी। भई लाल रग धरती रन सारी।
(१५२।३३)

वीर भावना इस युग के कवियों में इतनी प्रबल है कि गुरु नानक देव जी की चरित्र-कथा मे भी किसी-न किसी रूप मे वे अपनी इस भावना की अभिव्यजना कर ही देते है। भाई सतोखसिह द्वारा रचित ६७०० छदो का काव्य 'नानक प्रकाश' एक एसा ही ग्रथ है। इसम एक प्रसग म युद्ध को फाग का रूप दते हुए कवि ने देखिए कितना भव्य चित्रण किया है—

दिवस चढे मड्यो रण भारी। छुटति तुफग मनहु पिचकारी।६०।
साग प्रहारहि मूठ गुलाला। ढाल बनी मनहु डफ माला।
भक भक घाउ शबद तिन केरा। निकसी मीझ अबीर गेरा।
श्रोणत बसत्र रग भए लाला। मानहु रग पतगी डाला।
कर महि चमक रही करवार। छटी मनहु फूलन की धार।
मारि मारि मुख गावहि गीता। खेलति फाग मनहु करि प्रीता।
भए निसग वीर इक वेरा। वज्यो सार सो सार घनेरा।
(उ० अ० २७ ६० ६३)

गुरु प्रताप सूरज' (सतोखसिह) इस युग की एक महान कलाकृति है, जिसम ५१८२६ छद हैं। हिदी मे इतने बड आकार की रचना अभी तक उपलब्ध नही हुई। गुरुमुखी लिपि मे होने के कारण यह भी अभी तक अधकार के गत म पडी रही। इसम सभी सिक्ख गुरुओ एव बदा बहादुर का चरित्र अत्यन्त विस्तार से वर्णित है और इसम भी सास्कृतिक पुनरुत्थान एव वीर-भावना की प्रधानता है।

इस रचना में होली वर्णन में जहाँ एक ओर सांस्कृतिक वातावरण प्रस्तुत किया गया है वहाँ उसमें कवि की वीर भावना भी मुखरित हुई है। होली खेलने निकलने पर सिक्खों के यौद्धाओं की पुकार सुनाई पड़ती है व आयुध धारण किये हुए हैं, रिपु को मर्दित करके मानो विजय उत्सव मना रहे हैं —

बाजति हैं सिंह पौर में ठौरनि, नौबत और मनन्द उजारें।
भंडे उचरे सरे बहु भूननि, पौंस पुकारति नाग उठाव।

(रि० ३ २७ ६)

विसद बरन में बसन सो भरत न भए,
मानो जग जीन म विलासनि करति है।

(रि० ३ २७ ११)

गुरु गोविन्दसिंह ने मुगल शासन के विरुद्ध सैनिक विद्रोह का ही सचालन नहीं किया, वरन पूववर्ती सिक्ख गुरुओं ने इस्लामी संस्कृति का मुकाबला करने के लिए पजाब म जिस सांस्कृतिक आन्दोलन का सूत्रपात किया था, उसे भी अग्रसर किया। हिन्दुओं के सांस्कृतिक विश्वासों एव सामाजिक सगठन को दृढ करने के लिए उन्होंने होली विजय दशमी आदि पर्वों को भी बडी धूमधाम से मनाया। उनके इन उत्सवों का परवर्ती सिक्ख कवियो ने बहुत विशद और भव्य चित्रण किया है। ऐसे वणनों म शुद्ध सांस्कृतिक दृष्टिकोण प्रधान रहा है। इन कवियो न होली के हास उल्लासमय रगीन और मस्ती से भरे वातावरण का सजीव वणन किया है।

महिमा प्रकाश' सब से पहला ग्रथ है जिसमे गुरु गोविन्दसिंह के होली खेलने का वणन विस्तार पूवक किया गया है। उसके कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं —

उडति अबीर केसर पिचकारी। प्रिथम सगत सतगुर पर डारी।
खेलत चले सतगुर मद तीर। सतद्रुव भए लाल गभीर।
लाखन हाथ ते उडत गुलाल। लाख पिचकारी चलत बिसाल।
उडत गुलाल भइआ लाल अवास। भए बादल लाल घटा प्रगास।
सीतल मद सुगध बिआर। सगत सपरस होत सुख सार।
सगत मो सोहत गुर भाई। जिउ उडगन को चद सुहाई।
इन्द्र सभा सगत गुर बनी। गिआन इन्द्र सोहत गुर धनी।
होली बिलास सतिगुर कीआ सभ सगति लाल गुलाल।
मानो केसू बन फूला देखति सतगुर दिआल ॥१२॥

यहाँ मादक मधुऋतु की मद मद एव सुगधित पवन के स्पश से पुलकित सिक्ख सगतो एव गुरु जी के उल्लास पूवक होली खेलने का कवि ने स्वतन्त्र एव पूण चित्र अकित किया है। एक मुखरा अपना मुँह सिर और तन काला करके

यहाँ आ उपस्थित होता है और अपनी विकृत आकृति और वक्र वाचालता से सबका मनोरंजन करता है। कवि ने उसके आगमन द्वारा प्रसग मे हास्य विनोद का अच्छा वातावरण प्रस्तुत कर दिया है।

लोकनायक महाकवि सतोखसिंह ने 'गुरु प्रताप सूरज' म श्री हरिगोविंद एव गुरु गोविंदसिंह के होली खेलने का बहुत ही रोचक, मार्मिक, विशद एव काव्यमय चित्रण किया है। उनके वणना मे इतनी पूणता एव चित्रात्मकता है कि होली का समग्र मादक चित्र नेत्रो के सम्मुख आ उपस्थित होता है। गुरु गोविन्दसिंह के आनदपुर म होली खेलने के प्रसग म स कुछ ही उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इनसे उस मस्ती से भरे उल्लासमय उत्सव का एक रूप सामने आएगा —

भूर मिले चहु कोद ते मोदति आवति हैं मिलि टोल हजारा।
भीर भई भरपूर भयो पुरि भाउ भरे भल भाग लिलारा ॥४
ताल, रबाब, पखावज के बहु बादति बाजति हैं धुनि भारी।
गावति रागनि रागनी को जन आइ खरे निज मूरत धारी।
होति उछाह जहा कहिं डोलति बोलति है जकार सुनावै।
मेल सकेल भयो रग मेलति भीर धकेलति पेलति जावै।
फेंटन को भरिक सभि आप अबीर गुलाल को डारति हैं।
हाथनि म पिचकारी भरे बहु ऊपर गर हलावति हैं।
पीत भए बहु अबर लाल बिसाल सु बेग त चालति हैं।
एक निहालती हैं, इक भालति, एक सभाल उतालति हैं। ७
श्री गुबिदसिंह करि होरी को खिलन्न साज,
हाथ पिचकारी सभिहू न भरि लीनिओ।
उडयो एक बार ही गुलाल लाल घटा मानो
रगनि की बूद बरखाति इम चीनिओ।
रगदार अबर कै रगदार अबर क
मूठ भरि मार रग डारति नवीनिओ। ८
बिन्दु गुलाल अबीर उड गहि केसर की गिरवै पिचकारी।
सगति श्री गुर प अलता कर को भरि डारति पूरबवारी।
आपस मे पुन गरति हैं पट लाल भए सभि के इक सारी।
धन्न गुरू सिख कीनि निहाल क्रिपाल बिसाल सुनाइ उचारी। ९
एक सग रगु भए, सभि के सुरग अग,
अबर धरे जु निचुरति अति चीनिओ।
अवनी अनाग लाल भई सभि आगु रही
मानो अनुराग निज रूप धरि लीनिओ। १४
(रि० ३ २७)

कितना सजीव और रगीन चित्र है होली का । हम नही समझते कि हिन्दी मे किसी भी कवि ने होली का ऐसा स्वाभाविक, सजीव एव स्वतन्त्र चित्रण किया है ।

भाई सतोखसिह ने श्री हरिगोविन्द के होली खेलने का भी ऐसा ही सजीव चित्रण किया है । *श्री हरिगोबिन्द जिस समय होली खेलने निकलते हैं उनकी* वेश भूषा एव व्यक्तित्व का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है —

पोशिश बिसद महिद वपु पाई । निकसेचाचर हेतु गुसाई ।
मद मद मुसकावति आए । कमल विलोचन ते बिकसाए ।२२
मवा गिलशत सभिनि ते ऊचे । बोलहि दिपत दसन दुति सूचे ।
भुज दडनि जनु सुड प्रचडे । जिन ते खड खड रिपु दडे ।
अरन बरण अरु पीत दिसाले । केतिक पिचकारी जुति चाले ।
अलता ब्रिद गुलाल अबीर । ले करि पहुचति भे सिख तीर ।
(रा० ८ ५२ २६)

उनके सिक्खो के साथ होली खेलने का वणन कवि ने इस प्रकार किया है —

गावै शबद मोद चह कोद । बरसति रग गुलाल पयोद ।
फरश बिसाल करायहु चारू । सुभट मिल सभि आयुध धारू ।
उडति गुलाल घटा जनु होई । रग बूद बरखति है सोई ।
जनु सध्या मिलिबि बहु आई । हरि गोविन्द मुख चद सुहाई ।
छुटति अबरीन मूठ बडेरी । दुहि दिशि ह्व करि हेलो गेरी ।
होली खेल छुटति पिचकारी । भरि भरि मूठ सामुहे डारी ।
ब्रिद मसद सगता सग । खेलति फाग डारि बहु रग ।
देखति सभि मन मुन्नति विसाला । पयों बदन पर जम्या गुलाला ।
सभि के बरन लाल हुइ गए । चित्रति बसत्र बचित्रनि भए ।
इम सतिगुर बहु करे विलासा । सिक्ख मसद मिले गन दासा ।
(रा० ५२ १८—३१)

इस रगीन एव उल्लासपूण वातावरण से होली का सम्पूर्ण चित्र सम्मुख आ जाता है । यहाँ होली खेलते समय गुरुदेव मसन्द, अन्य सिक्ख तथा दास, सभी सम्मिलित हैं, किसी प्रकार भेद भाव नही, कोई असमानता नही । योद्धा आयुध धारण किए हुए ही होली के रग मे रगे हुए हैं ।

इस प्रकार होली खेलने समय गुलाल की एक घटा सी उमड पडी, सुगन्ध चारो ओर फैल गई वसत के मद मद पवन से सिक्खो का मन प्रफुल्लित हो उठा, घेरा घेर कर एक दूसरे पर रग डालते हुए उनका शरीर केसर और गुलाल से ऐसा सराबोर हो गया है कि वे पहचान भी नहीं जा सकते । चारो ओर होली का ऐसा आनन्दपूर्ण कोलाहल मचा हुआ है मानो युद्ध जीत कर योद्धा विश्राम कर रहे हों

बादर गुलाल कं करति जानि चले गुर,
सगनि मैं धूम पर्ई फाग बडे खेलत
घेरि घेरि बदन मैं गेरि गेरि फेर फेर,
हेरि हेरि हरखति नेरे हुइ मेल त।
उठै महिकार गंध पाई पौन मद मन्द,
सीतल बहिन मिल्ल अगन मैं झेलते।
निवसे आनन्दपुर मानति अनन्द ब्रिंद,
तीर सतुद्रव के गए हैं रेल पेलते ॥१०॥
कीन सिख संगति दुपास खरे आपस मैं,
डारि डारि मुठ पिचकारी सो भिरति हैं।
बदन नमन अरु बसरी प गया जम,
रग की फुहार फेर ऊपर ढरति है।
होति न चिनारी इक सारी सभि होइ गए,
रौर को मचीव दौर ठौर न टरति है।
बिसद बरन के बसन सो भरन नए,
मानो जग जीत कै विलासनि करति है ।११।
श्री कलगीधर संगति म सुर ब्रिंद ज्यो इन्द्र बिराजति हैं।
जादव मैं जिम श्री घनश्याम महान ही कौतक साजति है ॥

(रि० ३ २७ १२)

गुलाल, अम्बीर एव रगरजित इन चित्रो मे होली का समूह चित्र और भी अधिक सजीव हो गया है। होली के इस उल्लास म मानो उनका चिर आकांक्षित विजयोल्लास मुखरित हो उठा है। १८, १९वी शती की विलासपूर्ण, जर्जरित सामाजिक परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य म इस प्रकार के वणन विशेष महत्व रखत हैं। य वणन मध्ययुगीन सिक्ख-कवियो की भारतीय सस्कृति क प्रति दृढ निष्ठा, हिन्दू सिक्ख सस्कृति की अभिन्नता, सामाजिक सगठन, राष्ट्रीय जागरण एव युग चेतना को प्रकट करते हैं। आतकवादी मुगल शासको के युग मे पजाब की जनता न जिस अडिग आस्था आत्मविश्वास, वीरता धय निडरता एव दृढ़ता का परिचय दिया उसकी मस्ती से भरे होली के इन रगीन चित्रो म देखी जा सकती है।

●

गुरुमुखी लिपि मे खडी बोली गद्य-पद्य रचना

हिन्दी के इतिहासकार भारतेन्दु-काल को ही खडी बोली पद्य का आविर्भाव काल मानते हैं। खडी बोली गद्य का आरम्भ यद्यपि उससे पहले से इशा अल्लाखा, सदल मिश्र लल्लू लाल, सदासुखलाल आदि से माना जाता है परन्तु उसे अव्यवस्थित एव शिथिल घोषित करके उसे विकसित, परिमार्जित एव प्रौढ बनाने का श्रेय भारतेन्दु एव महावीरप्रसाद द्विवेदी को ही दिया जाता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सवत १७९८ म पटियाला निवासी पडित रामप्रसाद निरजनी द्वारा रचित 'योग वासिष्ठ' की भाषा को बहुत साफ सुथरी, परिमार्जित एव परिष्कृत खडी बोली कहा है। परन्तु किसी पूर्व परम्परा के अभाव मे इस ग्रन्थ म ऐसी प्रौढ भाषा का प्रयोग कैसे हुआ इस पर हिन्दी के विद्वानो ने अभी तक गम्भीरता से विचार नही किया। इस प्रसग म खुसरो की भाषा का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि खुसरो ने विक्रम की चौदहवी शताब्दी म ही ब्रज भाषा के साथ साथ खालिस खडी बोली म कुछ पद्य और पहेलियाँ बनाइ। शुक्ल जी ने इस बात को शुद्ध भ्रम या अज्ञान कहा है कि मुसलमानो के द्वारा ही खडी बोली अस्तित्व म आई और उसका मूल रूप उर्दू है जिससे आधुनिक हिन्दी गद्य की भाषा अरबी फारसी शब्दों को निकालकर गढ ली गई है (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३१३)। उन्होने 'वहिणा महारा कनु' म खडी बोली के रूप को खोजते हुए इस ओर सकेत किया है कि अपभ्रश काल म भी खडी बोली के रूपो का प्रचलन था। उन्होने एक प्रकार से यह भी स्थापना की है कि खडी बोली से ही उर्दू का प्रादुर्भाव हुआ और फारसी लिपि म रखे जाने के कारण, मुगल शासको का सरक्षण उसे प्राप्त हो गया, और वह खूब चल निकली, खडी बोली एक कोने म पडी रह गई। इस प्रसग म उन्होने गग कवि की 'चन्द छन्द बरनन' का खडी बोली गद्य की पुस्तक का भी उल्लेख किया है और यह

स्वीकार किया है कि अकबर और जहाँगीर के समय में ही खड़ी बोली भिन्न भिन्न प्रदेशों में शिष्ट-समाज के व्यवहार की भाषा हो चली थी।

शुक्ल जी बात की जड़ तक तो पहुँच गये परन्तु 'योग वासिष्ठ' से पूर्व की परम्परा को वे खोज नहीं पाये। इसका मूल कारण यही था कि उनकी गति उर्दू, हिन्दी और हिन्दवी तक ही रही। एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की उपेक्षा के कारण यह प्रभाव अभी तक बना हुआ है। विद्वानों का मत है कि खड़ी बोली का आविर्भाव हिन्दू और मुसलमानों के संसर्ग से दिल्ली के आस पास छावनियों में काम चलाऊ बाजारी भाषा के रूप में हुआ। परन्तु हम यहाँ यह भूल जाते हैं कि मुसलमानों का आगमन सबसे पहले पंजाब में हुआ और बहुत पहले से हुआ। वे बराबर यहीं से होकर आगे बढ़ते रहे। यहाँ की जन भाषा और जनमानस से उनका पहले संपर्क हुआ और निरन्तर बना रहा इसलिये इस भाषा का आविर्भाव पहले पंजाब हरियाणा में हुआ, बाद में अन्यत्र। मुसलमानों के अधिक युद्ध कुरुक्षेत्र और पानीपत के मैदानों में हुए, यहीं उनकी मुख्य छावनियाँ बनीं, और यहीं इस भाषा का उदय और विकास हुआ। इस वस्तुस्थिति को भूलकर हम खड़ी बोली का विकास ब्रज, बिहार राजस्थान अथवा दक्षिण के साहित्य में खोजने लगते हैं। इस परम्परा को पंजाब के साहित्य में क्यों नहीं खोजा जाता। इसका एक मुख्य कारण यह रहा है कि १६ १७ शती से यहाँ का अधिकांश हिन्दी साहित्य गुरुमुखी लिपि में लिखा जाता रहा और हिन्दी के इतिहासकार इस लिपि से अनभिज्ञ थे, अथवा वे यह मानते रहे कि गुरुमुखी लिपि में जो साहित्य है, वह पंजाबी का है। अब भी हिन्दी और पंजाबी के बहुत से विद्वान लेखक इस भ्रान्तिपूर्ण धारणा का शिकार हैं। वस्तुत, पंजाब में खड़ी बोली गद्य व पद्य की एक—चार-पाँच सौ वर्ष पुरानी समृद्ध परम्परा विद्यमान रही है। रहीम का खड़ी बोली पद्य के लेखकों में उल्लेख तो किया जाता है मगर वे इस क्षेत्र में अकेले खड़े रहने के कारण खो से गये हैं। रहीम पंजाब के रहने वाले थे और यहाँ खड़ी बोली की परम्परा के संवाहकों में से थे। इनसे पूर्व सोढी मेहरबान (पोथी सचखंड १५६१ १६४० वि०) हरिजी (सहसरनाम १६६६ वि०), दिआल नेमी (१६७५ १७२१) आदि खड़ी बोली गद्य के अनेक लेखक हुए हैं। जन प्रहलाद भी (पंजासत उपनिषद् भाषा १७१६) इस युग का प्रतिष्ठित गद्यकार है।

कुरुक्षेत्र के पंडों की संवत १६०० तक की प्राचीन बहियों की खोज करने से मुझे पता चला कि उस समय भी यहाँ खड़ी बोली का प्रयोग बहुतायत से होता था। उनके विवरणों में अमुक का बेटा, अमुक की पत्नी, अमुक के पोते, आये थे आदि प्रयोग मिलते हैं। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस समय तक पंजाब की प्रमुख साहित्यिक भाषा ब्रज ही बनी रही। उस युग में अपने साहित्यिक सौष्ठव एवं सांस्कृतिक सम्पन्नता के कारण ब्रजभाषा ने सारे

उत्तर भारत मे अपना ऐसा आधिपत्य स्थापित किया कि खडी बोली का साहित्य अधिक पनप नही सका। वैष्णव सस्कारो के कारण हिन्दू जनता के लिए कृष्ण एव राम की लीलाभूमि की जन भाषाएँ अधिक प्रिय बनी और मुसलमानी प्रभाव से पल्लवित खडी बोली को उन्होने अधिक प्रोत्साहन नही दिया यही भाषाएँ उनकी सास्कृतिक और राजनैतिक चेतना और जागरण की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी हुई थी। इसलिये उनकी सास्कृतिक चेतना, सामाजिक उदबोधन एव राजनतिक स्वातन्त्र्य भावना भी इसका कारण हो सकती है कि वे खडी बोली को अधिक प्रश्रय नही देना चाहते थे। वसे कुछ सीमा तक इस भाषा का प्रयोग ब्रज के साथ साथ बराबर होता रहा। सूरति मिश्र ने नसरुल्लाखाँ के अनुराध पर रसिक प्रिया' की 'रस ग्राहक चद्रिका' नाम से जो टीका की उसका उल्लेख तो शुक्ल जी ने भी किया है मगर इसमे जो खडी बोली के प्रयोग मिलते है उनकी ओर विद्वानो का ध्यान नही गया है। निम्न उदाहरण देखिये —

छाडि दिये करने कवित्त इनसान के मैं,
यदि चित्त आई हो रिझाउ करतार को।
आलमपनाह महमदसहा महा बली,
मेरे मन चह देखो परवरदिगार को।

यहाँ 'दिये', करने, के, मैं, आई', 'को', मेरे, देखो आदि खडी बोली के प्रयोग नहो तो और किस भाषा के हैं। इन्हें हिन्दवी भी नही कहा जा सकता। ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह रचना सवत १७९० वि० की है जिसे मैंने गुरमुखी लिपि मे भी राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता मे देखा है।

गुरु गोविन्दसिह ने भी अपना अधिकाश साहित्य ब्रज मे लिखा है और उनके दरबारी कवियो ने भी ब्रज को ही साहित्य सजन का माध्यम बनाया। फिर भी हम उनके समय मे खडी बोली गद्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं। गुरु गोविन्दसिह के दरबारी कवि टहकन ने 'मध्यमध भाषा' मे प्रचलित राजा भर्तृहरि की कथा गद्य मे लिखी है। लगभग सवत १७२० (१६६३ ई०) मे उसकी कलम से निकले गद्य का एक नमूना देखिए—

तेरा कारज गुरु प्रसादि भला होई माहे। परि बठिआ सिध होवगी चिन्ता न करू। मतमा—जो इस कारज का प्रीतम है अरु जोऊ कारज कीआ चाहता है। तो गुरुन्देव की उगतवि कर अर इसट मन्त्र पड। दाज्ज होसी सत (भन्म)। तर कारज की सिध हावगा धरम मना हादा। सम मनारथ सिध पूरे होवहिंग सिव सात कु नाम हावगा। गा गान्ना, तग कारजु की सोभा माहि समाईअगा, कारज रात भावगा। नदीमा लाभु होईगा। सुख अनन्द।

यह ब्रज मिश्रित खड़ी बोली गद्य का एक पुराना उदाहरण है।

१७१६ में भाई मनीसिंह द्वारा गुरु गोविन्दसिंह जी की पत्नी सुन्दरी जी को लिखे गये एक पत्र की भाषा का रूप देखिए—

> 'पूज माता जी दे चरना पर मनीसिंह की डंडौत बंदना। बहोर
> समाचार बाचना कि इधर आउन पर साडा सरीर वायु का
> अधिक विकारी होई गइआ है। देसु विचि खालसे दा
> बलु छूटि गइआ है। सिघ परवता व वना विचि जाई वसे हैन।
> मलेछों की दस में दोही है। बसती में बालक जुवा इसतरी
> सलामतु नाही। मुछ मुछ करि मारदे हैन। गुरु दरोही बी उना
> दे सगु मिलि गए हैन। सभी चकु छोड गए हैन। मुतसदी भाग
> गए हैन। साडे पर ग्रवी तो अकाल की रखा है।
> वलकी खबर नाही ''।

यहाँ खड़ी बोली के साथ पंजाबी का पुट मिला हुआ है।

खड़ी बोली गद्य में रचित आगे के अनेक ग्रंथ पंजाब में मिलते हैं। इस परम्परा के विकास के कारण ही रामप्रसाद निरंजनी की भाषा इतनी प्रौढ़ और परिमार्जित है। यह सुनिश्चित प्रमाण है। पंजाब में तो गुरुमुखी लिपि के माध्यम से खड़ी बोली के पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलते रहे।

गुरुमुखी लिपि में मुझे कुछ ऐसी रचनायें भी मिली हैं, जिनमें खड़ी बोली पद का प्रयोग हुआ है। संवत् १७६० वि० में रोपड़ निवासी पंडित केशवदास के सुपुत्र कवराम ने 'कवतरंग' नाम की एक पुस्तक लिखी, जिसमें खड़ी बोली के कुछ प्रयोग देखे जा सकते हैं। एक उदाहरण देखिये—

> बद साहब बिलाइती आयो हिंदसताना।
> देखे पंडित हिंद के ता सो कीग्रा मिलाना॥

यहाँ भी 'आयो', 'देखे', 'के', 'सो', 'कीआ' आदि पद खड़ी बोली के ही द्योतक हैं। इसी तरह अन्यत्र भी 'सिव सुत पद परताप ते भाषा करो बनाई' में 'करो' पद भी खड़ी बोली का सूचक है।

इस प्रकार की इस समय की और रचनायें मिलने की सम्भावना कम नहीं है।

यह एक विचित्र संयोग की बात है कि खड़ी बोली पद्य में जैसी रचनाएँ भारतेन्दु और उनके सहयोगी कवियों द्वारा लिखी जा रही थीं, पंजाब में भी गुरुमुखी लिपि के माध्यम से खड़ी बोली की ठीक वैसी ही पद्य रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। 'हजूरी बाग' एक ऐसी ही रचना है जिसे गुरदी गुलाबसिंह मालिक मतबा मुफीदे आम की फरमाइश पर ज्ञानी हजरहरि (हजारासिंह) ने लिखा और यह मुफीदे आम प्रेस लाहौर से १८९१ में प्रकाशित हुई। लेखक का कथन है कि उस समय पंजाब में गुरुमुखी का विशेष सम्मान नहीं था,

गुणीजन फारसी और अंग्रेजी पढ़ते थे परन्तु उनके मित्र मुंशी गुलाबसिंह ने उन्हें बताया कि सरकार ने इस वर्ष कालिज में गुरमुखी लाजमी कर दी है। इस बात से प्रेरित होकर कवि ने इस शिक्षाप्रद पुस्तक की रचना की। मित्र के साथ कवि का जो संवाद हुआ, उसकी झलक देखिए—

कहा मैं कि अब कदर कछ है न गुरमुखी केर।
अंग्रेजी अर फारसी पढत गुनी जन ढेर।
कहा अहो नर सुना तूँ गवरमट हो दयाल।
करी गुरमुखी लाजम कालज मे इस साल।

खड़ी बोली पद्य का यह कितना साफ और सहज रूप है।

लेखक के अनुसार यह ग्रन्थ 'बोसतान' पर आधारित है, यद्यपि उसने अपनी ओर से भी कुछ बातें कही हैं, यथा—

बोसतान के सार को कीआ तरजमा सार।
कही स्वमत अनुसार कछ रचा और परकार॥

इसमे १० काण्ड हैं, जिनमें क्रमश नीति, परोपकार, प्रेम, विनम्रता, सतोष शिक्षा आदि से सम्बन्धित पद्य हैं। एक नीति पद देखिये—

करो जतन कोटक यदी फूले फले न बेत।
हबसी कबी हमाम म नाए होए न सेत। ५। ६

प्रारम्भ में जो मंगलाचरण है उसका एक उदाहरण देखिये—

स्वामी सागर खिमा को पाह पगार उदार।
हाथी से पहले सुनत कीरी केर पुकार॥

ग्रन्थ के प्रारम्भ में नहरें खुदवाने छापेखाने खोलने रेल, तार, पत्रकारिता आदि के प्रचलन तथा कन्या-पाठशालायें खोलने आदि के उपलक्ष्य में अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा की गई है और विक्टोरिया महारानी को 'भारतेश्वरी कह कर सम्मानित किया गया है। यथा—

महारानी विक्टोरिया भारतेस्वरी सार।
लडन स्वामनि माथ शन्ट रगत प्रभु दरबार। १।

रेल-तार

अगन भूपन स दिया प्रजह अनन्द अपार।
दयो तार बहार पुन मौज रेल की मार। ४।

धर्म-स्वातन्त्र्य एवं पत्रकारिता

अपन अपन धरम म बरत उनति लाक।
आजादी अखबार की दई गमन बिन मार। ८।

छापेखाने

जिन ग्रन्थन क निमन पर हुन खरच कई गान।
सारा पान क माउ अब मिला ग्रन्थ ततकाल।

नहरें और घाति व्यवस्था

लहर बहर नहरन घनी जगल मगल रूप।
घाट घाट पीअत जन भज सिंह वलरूप। १२।

भाव, भाषा एव शैली की दृष्टि से इन पद्यो की भारतेन्दु-कालीन रचनाओ से अद्भुत समानता है।

इनके कुछ शब्द, क्रियापद सम्बन्धकारक, सर्वनाम आदि खड़ी बोली के ही सूचक हैं। भाषा काफी साफ है और तत्सम शब्दो का प्रयोग भी काफी हुआ है। 'पान के भाड' आदि मुहावरे भी दिखाई पड़ते हैं। इस रचना म सवत्र ऐसी ही खडी बोली का प्रयोग हुआ है यद्यपि बीच बीच म पजाबी ब्रज, फारसी, अरबी आदि के भी कुछ शब्द आ गये हैं। कवि ने इस रचना म अपने स पूर्व क मायासिंह द्वारा रचित 'जुबली प्रकाश' नामक ग्रथ का भी उल्लेख किया है, जिसम इसी प्रकार के पद्य सग्रहीत हैं। नि सदेह ये रचनायें खडी बोली गद्य की भांति खडी बोली पद्य की भी एक दीर्घ एव स्वतन्त्र परम्परा की ओर सकेत करती हैं।

१६

'गरब-गजनी'[1]—(जपुजी का भाष्य)—एक रीति ग्रन्थ—हिन्दी का प्रथम समीक्षा ग्रन्थ

संवत १८७२ में आनन्दघन नाम के एक साधु ने 'जपुजी' की एक टीका की थी। इसमें कई अर्थ भ्रामक तथा अशुद्ध थे। कई व्याख्याएँ ऐसी थी जो सिक्खमत के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं थीं। इन असंगतियों को देखकर सिक्ख मतावलम्बी कैथल नरेश भाई उदयसिंह ने अपने आश्रित कवि संतोखसिंह से जपुजी की एक ऐसी अलंकार युक्त टीका करने का अनुरोध किया, जिसमें इन भ्रांतियों तथा शंकाओं का समाधान किया जा सके।[2] भाई संतोखसिंह ने अपनी टीका में आनन्दघन की टीका का कई स्थानों पर उल्लेख किया है और उसके प्रयास को नीर बिलाने के समान बता कर उसके मत का खंडन भी किया है।[3]

---

१ यह रचना भाई संतोखसिंह यादगार कमेटी की ओर से गुरमुखी लिपि में प्रकाशित हो गई है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ भाई कान्ह सिंह नाभा के पुस्तकालय में सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी पटियाला तथा श्री खजान सिंह दरियागंज दिल्ली, प्रधान यादगार कमेटी के पास है।

२ अलंकार युत टीका रचीए।
निरनै अरथ करहु मति सचीए ॥१५
होन अशंका या महि जेती।
बुधि बल करहु हरहु अब तेती।
सुनि करि बचन निपति को नीका।
कवि ने रुचिर रच्यो जपु टीका ॥१६ (गरब गजनी)

३ इक टीका जो जपुजी की अनन्दघन ने कर्यो है। जे गुर निशचे ते हीन है नर अलप बुधी, तिन की परचा। × × × ऐसे अरथ करन ते तूशनि ही भली है। × जो कोइ पक्खबादी इस बात को मानते सो उसकी निआई जगत को दुख रूपी अंधेरे में परे भरमते हैं। ऐसी खोटी बात है अनन्दघन की जान करि निवास कर्यो है। एक एक तुक के अरथ खंडन करन की हमारी इच्छा थी पर ग्रन्थ वडे होन त डर करि छोड दीनी है। (पउडी १, 'गरब गजनी')

यह टीका चैत्र वदी द्वितीया दिन सोमवार संवत् १८८६ को समाप्त हुई।[1]

इसके नामकरण के सम्बन्ध में लेखक का कथन है कि एक तो इससे उनके पूर्ववर्ती टीकाकार (आनन्दघन) का गर्व नष्ट हो जाएगा। दूसरे, सिक्ख मत में मुक्ति प्राप्ति के लिए अहंकार का त्याग परमावश्यक माना गया है। लेखक का विश्वास है कि इस टीका के अध्ययन से तथा इसमें प्रतिपादित भावनाओं का पालन करने से अहंकार का नाश होगा और इस प्रकार जीव मुक्ति मार्ग की ओर अग्रसर हो सकेगा।[2]

इस ग्रन्थ का आरम्भ भी उनकी अन्य रचनाओं की भांति '१ ओंकार सति गुर प्रसादि' से ही हुआ है। टीका करने से पूर्व अकाल पुरुष तथा दसों गुरुओं के मंगलाचरण हैं। जिनमें गुरु नानक देव के सम्बन्ध में कहा गया है कि चारों वेद जिसे निराकार तथा खेद रहित कहते हैं, वही 'अकाल पुरुष' आकार धारण कर आनन्द स्वरूप गुरु नानक के रूप में प्रकट हुआ है।[3] अन्य गुरुओं की भी उन्होंने सुखदाता, मुक्तिदाता दुख द्वन्द्वों को नष्ट करने वाले कह कर वंदना की है। इसके पश्चात् गुरु गोविन्दसिंह की तलवार की महिमा तथा उनके स्वरूप का वर्णन है। गुरुओं की वंदना के अनन्तर अपने दयाधाम गुरु गुलाबसिंह के चरणों में प्रणाम किया है[4] और अपने आश्रयदाता भाई उदयसिंह के वंश उनकी, वीरता दानशीलता, गुरु भक्ति, गुण ग्राहकता आदि का वर्णन किया है।[5]

यह 'जपुजी' का एक विद्वत्तापूर्ण भाष्य है जिसमें उसके प्रत्येक श्लोक की दार्शनिक व्याख्या की गई है। जपुजी के दार्शनिक मत को स्पष्ट करने के लिए माया ब्रह्म तथा जीव के सम्बन्ध एवं सृष्टि की उत्पत्ति के प्रसंग में उन्होंने षट् दर्शन के मतों का भी उल्लेख किया है। उन्होंने गुरु वाणी को वेद के ही समान पवित्र तथा मुक्ति दायिनी माना है। जपुजी का जो अर्थ उन्होंने किया

---

१ 'टीका श्री गरब गजनी पूरन भयो रसाल।
नमसकार सतिगुरन को जे हैं परम क्रिपालु॥
समत रस वसु वसु रसा चेत वदी शुभ दूज।
ससि बासुर उतसाह किय श्री नानक पद पूजि। (पउड़ी ३८वीं वही)

२ गरब गजनी को अरथ इसके पढन विचारनवारे को अगारी जे कोई अरथन को गरब करै जिस को गजन हार जानु है क्या तिस की गरब को दूर कर देत है। दूसरो अरथ और इस की पढि कै आपने गरब को गजन करै, गरीबी को गहि करि मुकति के मारग पर यातै इस टीका को नाम गरब गजनी' धरयो। (३८वीं पउड़ी गरब गजनी)

३ वेद बेद निराकार जाको कहैं खेद बिनु।
सोऊ ह्वै अकार गुरु नानक अनन्द मैं।१।(गरब-गजनी)

४ वही, ७।

५ वही, ८ १६।

उसकी पुष्टि 'आदि ग्रथ', 'दशम ग्रथ', 'सुखमनी' तथा भाई गुरदास की वाणी से भी की गई है। इस टीका से उन्होने यह सिद्ध किया है कि सिक्ख मत के सिद्धात प्राचीन वदिक धम के ही अनुकूल हैं—वस्तुत, उनका आधार ही यही सिद्धात हैं।[1] उनकी यह समन्वय भावना आज के हिन्दू सिक्ख वैमनस्य के निराकरण मे अत्यधिक उपयोगी हो सकती है। सक्षेप मे सिक्ख मत के दाश-निक मत का उल्लेख इन्होने इस प्रकार किया है, "सतिगुरू को उपदेश है जिस रीति की सो तो सिह को रीति सा गरजत है देसन परदेसन म 'भाणा मानणो (आज्ञापालन), हउमैं (अहकार) को तजणी, सतिनाम को सिमरन सरूप की प्रापति, इहमति सतगुरन की" (पउडी ५, वही)। उनका कथन है कि वष्णव शव आदि अनेक मत पारस्परिक खडन मण्डन म लगे हैं परन्तु "अपने गुर निरवर हैं", जिसमे जीवन का कल्याण हो, वही कह गये हैं।

इस टीका मे दशन के इस गम्भीर विषय का सरल तथा बोध गम्य शली मे प्रतिपादन हुआ है। विषय को स्पष्ट करने के लिए रामायण, महाभारत तथा पुराणो के प्रसगा का भी उपयोग किया है। स्वय कोई प्रश्न उठा कर शकाओ का निराकरण किया गया है। दूसरो के मतो की परीक्षा करके उनका खडन तथा स्वमत प्रतिपादन किया है। वस्तुत, यह सस्कृत की प्राचीन भाष्य शैली मे लिखी गई टीका है। हिन्दी म इस प्रकार की टीका दुलभ है।

भाई सतोखसिंह का कथन है कि गुरु वाणी' मे सभी काव्य रीति भी है। परन्तु किसी का ध्यान उस ओर नही गया है। इसलिए इस टीका मे उन्होने जपुजी की साहित्यिकता का भी विश्लेषण किया है। प्रत्येक पक्ति मे जो अलकार, शब्द सौष्टव है उसका भी विवेचन किया है और साथ

१ वद को कहिनो ले करि शासत्र बने हैं मूल वेद ही है साम बेद को साध करि वेदात को मत व्यास जी न बनाई है। रिगबेद (ऋग्वद) को निरन करि करि गौतम रिखी न याय का मत रच्यो है। जजुरवद को मथ करि ज मुनि रिषि न भी मोमासा को मत रच्यो है अथरवेद को बीचार बीचार सास और पातजल और विशेषक इनका मत भयो है। या ते वेद सा शासत्र प्रियक नही गिने। ××× अपर जो मत हैं आज तक सभ इनके ही अनरभूत हो जाउ हैं, कछु तना भेद रहि जात हैं। पसपति औ बनिगाटा द्वती औ हैरयगरभी इन त आदि और काई जे हैं गुरू जी आपने अच्छरी मैं सभ कहि गए हैं इन तुकनि विखै त सो भी निरम आवत हैं।"
उनकी इस धारणा पर भाई गुरदास क इन शब्दो का भी प्रभाव है—
"चहु वणा के धरम मथि करि शासत्र मथि रिषि सुणावें।"

× × ×

'सिम्रम बद बउ साधि करि मथि बगातु जिमासि सुणाइआ।
—(८वी, ११वीं पउडी, वार १, भाई गुरदास)

ही उनके लक्षण भी दे दिये हैं। इस रचना के आधार पर जब हम उनके आचार्यत्व पर विचार करते हैं तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भाई सन्तोख सिंह रस ध्वनिवादी आचार्यों की श्रेणी में आते हैं। अलंकार को उन्होंने रस ध्वनि से भिन्न, बाह्य आभूषणों की भाँति शोभा वृद्धि करने वाले तथा रस का उपकार करने वाला कहा है---

शब्द अरथ करि करि है आई
रस उपकार सु भूषण हाई।
शब्द अर्थ जो चित्रत करिही।
चमतकार छवि अधिक धरिही।
भूषण जैस पहिरै प्रानी।
तसे अलंकार मिलि बानी॥ (गरब गजनी)

वृत्ति में इसे और स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, 'रस तैं व्यंग तैं भिन्न अरु शब्द अरथ के चमतकार को प्रगट कर सो अलंकार। या शब्द अरथ को भूषत करै (गरब गजनी)। अलंकार सम्बन्धी इस धारणा पर मम्मट के लक्षण[1] का सीधा प्रभाव है। देव, मतिराम आदि हिन्दी के रीतिकालीन अन्य रसवादी आचार्यों में से किसी का भी लक्षण इतना स्पष्ट एवं पूर्ण नहीं है। दास का लक्षण कुछ व्यवस्थित है परन्तु वहां भी अलंकार द्वारा रस के उपकारत्व का निर्देश नहीं हुआ है।

भाई सन्तोखसिंह ने 'रसवत्' एवं 'प्रेयस्' आदि अलंकारों के जो लक्षण दिए हैं वे भी उन्हें रसवादी आचार्य सिद्ध करते हैं। अलंकारवादी आचार्य भामह एवं दण्डी ने भी रस की महत्ता को स्वीकार तो किया है, परन्तु वे रस, भाव, भावाभास आदि को क्रमशः 'रसवत्, प्रेयस एवं 'ऊर्जस्वी' आदि अलंकारों के नाम से अभिहित करते हैं।[2] दण्डी के अनुसार अत्यन्त प्रिय कथन को 'प्रेय' कहते हैं, रस से उत्पन्न आनन्दकारक कथन रसवत् कहलाता है एवं जहां अहंकार स्पष्ट कहा जाए वहां तेजस्वी (ऊर्जस्वी) अलंकार होता है।[3] दण्डी के 'प्रेय' को रस ध्वनिवादियों के भाव तक खींच कर नहीं लाया जा सकता।

१ ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्तेस्युरचलस्थितयो गुणाः॥८।६६
उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवद् अलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः॥८।६७
(काव्य प्रकाश)

२ काव्यालंकार सूत्र ५।३ काव्यादर्श १।१८ १।५१।

३ प्रेयः प्रियतराख्यानं रसवद् रसपेशलम्।
तेजस्वि रूढाहंकारं युक्तोत्कर्षं च तत्त्रयम्॥
काव्यादर्श २।२७५।

इस सम्बन्ध मे उदभट की परिभाषा अधिक स्पष्ट है। व 'अनुभाव' आदि के द्वारा रति आदि स्थायी भावो म बधन को 'प्रेयस्वत' का विषय मानते हैं।[1] अर्थात जिसमे स्थायी भाव को रसावस्था तक नही पहुचाया गया वह 'प्रेयस्वद्' अलकार है।

रस ध्वनिवादी आचाय अलकारवादियो की इस धारणा से कदापि सहमत नही है कि अगीभूत रसादि को अलकारो के अन्तगत समाहित किया जाय। उनके मतानुसार रसादि अलन्काय हैं और उपमादि अलकार, जिनका काय अलकाय का चमत्कारोत्पाद (उपकार) करना है। यदि रसादि को ही अलकार मान लिया जाय, तो फिर वह किसके चारुत्व हेतु होग, भला स्वय भी अपना कोई चारुत्व कर सकता ह।[2] अत अलकाय तो अलकार से सदा ही भिन्न रहेगा।[3]

रस ध्वनिवादी रस, भाव भावाभास रसाभास, भावशाति को रसवत् प्रेयस, ऊजस्वित् और समाहित आदि अलकारा से तभी अभिहित करते हैं, जब वे अगी (प्रधान) रुप से वर्णित न होकर गौण रुप से वर्णित किए गए हो।[4] केशव न भी इन आलकारिको की ही भाँति रसादि का रसवदादि अलकारो म अन्तर्निवेश किया है। परतु पद्माकर के 'रसवत्' का लक्षण बहुत कुछ रसवादिया के अनुरुप है।[5] भाइ सतोखसिह के रसवत् एव 'प्रेयस्वत्' के लक्षण भी रसवादियो के ही अनुरुप हैं। उन्होने रसवत् वहाँ माना है जहा एक रस का दूसरा रस अग होता है—यथा —

> जहि रस को औरहि रस अग।
> तहि रसवत् कहि सुमति उतग॥
>
> (गरव गजनी)

इसी प्रकार भाव जहा रस (अगी) का अग हो उसे उन्होन प्रेयस्वत् की सना दी है—

> रस को जहा भाव हुइ अग।
> प्रेयसुत तिह कहि सुमति उतग॥
>
> (गरव गजनी)

उन्होने रसवत अलकार का अलकाय रसादि से पृथक माना है। वृत्ति म

---

१ काव्य० मा० ४ २—उन्मट।
२ ध्वन्यालोक २।५ वृत्ति।
३ काव्य प्रकाश ८।२६
४ प्रधानऽयत्र वाक्यार्थे यत्राङ्गन्तु रसादय।
काव्य तस्मिन्नलकारो रसादिरिति म मति॥
(हिन्दी ध्वन्यालोक, प्रथम सस्करण २।५)
५ का रस जहाँ अग और को है रसवत निहि ठाम। पद्माभरण २८८

उनका मत और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है, देखिए—"इहाँ सरब जीवाँ को एकदाता कोटानि कोटि जीव को एकदाता, यह अचरज याँते अदभुत रस भयो। सो अंगी इहाँ। और शांति रस एत सबत निरवेद भयो। एक मैं सथिति सो शांति अदिभुत को अंग भयो। अंगी प्रधान अप्रधान अंग होत है। ऐसे रसवा अलंकार हैं।" स्पष्ट है कि उनके ये लक्षण सर्वथा ध्वनिकार के मत के अनुकूल हैं।

'गरब गजनी' में विशेष उल्लेख, स्वभावोक्ति (जाति), भाविक परिसंख्या उत्तर, पुनरुक्तिवदाभास, काव्यलिंग दीपक, परिकर, पर्यायोक्ति, संभावना, लाटानुप्रास, विभावना, वीप्सा, अर्थान्तरन्यास, हेतु चित्र, अनुगुण कारणमाला यमक, रूपक, प्रेयस्वत् रसवत् रूपकातिशयोक्ति विनोक्ति, संसृष्टि, पर्याय, मीलित, वृत्यानुप्रास, काव्यार्थापत्ति ललित, छेकानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, अधिक समुच्चय, सम, विधि दृष्टांत, ऐतिह्य, विकस्वर, सार श्लेष, प्रहर्षण एकावली, विरोध, अत्युक्ति, प्रसिद्ध विषय आदि ५० अलंकारों के लक्षण दिए गए हैं। और अप्रस्तुत प्रशंसा, वाच्योपमा, लुप्तोपमा मालोपमा आदि का उल्लेख मात्र हुआ है। जिससे स्पष्ट है कि भाई संतोखसिंह ने किसी विशेष क्रम से अलंकारों के लक्षण नहीं दिए, वरन् 'जपुजी' की टीका करने समय जो भी अलंकार बीच में आते गए उन्होंने केवल उन्हीं के लक्षण दिए हैं। इसलिए यह रचना हिंदी के उन रीतिग्रन्थों से भिन्न है जिनमें किसी नियम अथवा क्रम से अलंकारों का विवेचन किया गया है।

चरखारी के महाराजा विक्रमसाहि के आश्रित कवि प्रतापसाहि ने सं० १८८५ वि० में इसी प्रकार के एक रीतिग्रंथ—'यथार्थ कौमुदी' की रचना की थी, जिसमें नायिकाओं के प्रकार बताते हुए ४२ अलंकारों के लक्षण दिए गए हैं। शास्त्रीय दृष्टि से यह एक शिथिल रचना है। "वस्तुतः इसमें लेखक का उद्देश्य अलंकारों का स्वरूप निरूपण करना नहीं था।' उससे कुछ अलंकारों की सुबोध तथा संक्षिप्त शैली में झाँकी मात्र दिखाई देती है जोकि अलंकार शास्त्र के जिज्ञासु प्रारम्भिक छात्र के लिए उपयोगी हो सकती है। गरब गजनी इसी प्रकार की रचना है इसमें भी लेखक का उद्देश्य अलंकारों का मौलिक एवं विशद विवेचन करके आचार्यत्व दिखाना नहीं है वरन् अपने आश्रयदाता भाई उदयसिंह को जपुजी के अलंकारों को समझाना और रीतिकालीन परम्परा का निर्वाह करना मात्र है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि अलंकार शास्त्र का उन्हें विशद ज्ञान था। रीतिकालीन अनेक आचार्यों की भाँति उनके लक्षण अस्पष्ट, शिथिल अपूर्ण, असंगत अथवा सदोष नहीं हैं। जहाँ तक सम्भव हुआ है, उन्होंने सरल, संक्षिप्त एवं स्पष्ट लक्षण दिये हैं। नवीन लक्षण देकर उन्होंने केशव अथवा दास की भाँति मौलिक उद्भावना करने का प्रयत्न नहीं किया। उनके प्रायः सभी लक्षण किसी न किसी संस्कृत के मान्य लक्षण

ग्रथ पर आधारित है। उन्होने किसी एक ग्रन्थ को अपना आधार नहीं बनाया।

वे न तो किसी सम्प्रदाय के जन्मदाता थे, न उन्होने अलकारो के वर्गीकरण मे किसी नवीन पद्धति का आविष्कार किया और न ही वे उनके भेदोपभेदो के चक्कर मे उलझे। उन्होने पुराने अलकारो के क्षेत्र में सकोच अथवा विस्तार भी नही किया और न ही उनकी सख्या म कोई सवृद्धि की है। जिस प्रकार रीतिकालीन प्राय सभी आचार्यों की गति सस्कृत के आचार्यों द्वारा निर्धारित लक्षणो तक थी, सतोखसिंह भी आचार्यत्व की उसी श्रेणी मे आते हैं। उनकी विशिष्टता यही है कि उन्होने अलकारो की प्रसगवश व्याख्या भी की है और उनके स्वरूप को समझाया है। उनका दृष्टिकोण सतुलित है और लक्षण नाप-तोल कर रखे गए है।

'व्यग्याथ कौमदी'' से 'गरब गजनी' का यह भी अन्तर है कि जहाँ रीतिकालीन प्रवृत्ति के अनुसार उसम नायिकाओ के उदाहरणो द्वारा अलकारो का विवचन किया गया है वहाँ इसमे पजाब की धार्मिक प्रवृत्ति के कारण 'जपुजी' की दार्शनिक व्याख्या के साथ अलकारो का निरूपण हुआ है। प्रताप साहि एव सतोखसिंह की अलकार विषयक धारणाओ म भी अद्भुत साम्य है। इन दोनो ने ही अलकारो को रस तथा ध्वनि से भिन्न शब्दार्थ को भूषित करने वाला माना है। इन दोनो आचार्यों मे इतना साम्य केवल सयोग का ही विषय है।

गरब-गजनी म 'व्यग्यार्थ कौमुदी' की भाति कुछ अलकार दो तीन अथवा चार बार भी आए हैं। ऐसे स्थानों पर उन्होंने अलकारो का निर्देश तो कर दिया है परन्तु प्राय लक्षण दूसरी बार नही दिए, और यदि कही लक्षण दूसरी बार आए भी हैं,तो उनम कोई तात्त्विक अन्तर नही है। यथा 'परिकर' अलकार लक्षण दो बार दिया गया है, जो इस प्रकार हैं—

जहाँ विशेषन साभिप्राय
परकर भूषन सोइ गिनाय।

+ + +

साभिप्राय बिशेषन होइ
परकर अलकार कहि सोइ।

समुच्चय, रत्नावलि, पर्यायोक्ति स्वभावोक्ति भाविक, अनुक्तनिमित्ता, विशेषोक्ति, काव्यलिंग, प्रावृत्तिदीपक, कारकदीपक, हेतु, अनगुन पर्याय, विशेष आदि कुछ अन्य अलकारो के लक्षण भी एक से अधिक बार आए हैं।

प्रसगवश किसी अलकार का जो भेद कहीं आया है, लक्षण भी उसी भेद का दिया गया है। उसके अन्य भेदों के लक्षण वहाँ नहीं दिए गए। आवृत्तिदीपक, कारकदीपक पहली विभावना चतुर्थ विभावना पहली तुल्ययोगिता दूसरी तुल्ययोगिता,पर्यायोक्ति पहली,पर्यायोक्ति दूसरी आदि के भेदो के लक्षण पृथक्-पृथक्

स्थान पर ही प्राप्त हैं। कहीं-कहीं उन्होंने छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, रूपक-उपमा आदि अलंकारों का अंतर भी स्पष्ट किया है। हिन्दी के बहुत कम आचार्यों ने ऐसा किया है।

सतोखसिंह की अलंकार सम्बन्धी धारणाओं पर यद्यपि आचार्य मम्मट का अधिक प्रभाव है तथापि लक्षणों के लिए उन्होंने दूसरे अलंकार ग्रंथों को भी आधार बनाया है। अलंकारों के संक्षिप्त तथा सुबोध लक्षण देने की परम्परा जयदेव के 'चन्द्रालोक' से चली है, इसलिए हिन्दी के आचार्यों ने अलंकारों के लक्षणों के लिए प्रायः 'चन्द्रालोक' अथवा उससे परवर्ती ग्रंथ 'कुवलयानंद' का ही आदर्श ग्रहण किया है। भाई सतोखसिंह पर भी इन ग्रंथों का ही अधिक प्रभाव है।

'गरब-गजनी' के अर्थान्तरन्यास, उल्लेख, एकावली, ऐतिह्य, काव्यलिंग, तुल्ययोगिता, दृष्टान्त, पर्यायोक्ति, परिसंख्या, परिकर, भाविक, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, विनोक्ति, विकस्वर, विभावना, विशेषोक्ति, विषम, विशेष, सम, सार, हेतु, श्लेष आदि अलंकारों के लक्षण 'कुवलयानन्द' के आधार पर दिए गए हैं। ललित, संभावना, विधि, कारकदीपक आदि कुछ ऐसे अलंकार हैं जो कि भाई सतोखसिंह ने इसी ग्रंथ से लिए हैं। अनगुन, उत्तर, कारणमाला, काव्यार्थापत्ति, प्रहर्षण, मीलित आदि कुछ अलंकारों के लक्षण 'चन्द्रालोक' से तथा अधिक, समुच्चय, संसृष्टि, पुनरुक्तिवदाभास आदि के लक्षण 'साहित्यदर्पण' से एवं पर्याय, दीपक, यमक आदि के लक्षण 'काव्य प्रकाश' से अधिक प्रभावित हैं। जिससे स्पष्ट है कि उनकी पहुंच 'चन्द्रालोक' एवं 'कुवलयानन्द' के साथ-साथ 'साहित्य दर्पण' एवं 'काव्यप्रकाश' तक भी थी।

स्वरूप की दृष्टि से 'गरब गजनी' का १८११ वि० में रचित रसरूप के 'तुलसी भूषण' से बहुत अधिक साम्य है। उस ग्रंथ में भी तुलसी भक्त रसरूप ने तुलसीदास के काव्य के आधार पर (मुख्यतः मानस के) १११ अलंकारों का विवेचन किया है। इसमें उदाहरण तुलसी के हैं, लक्षण मम्मट, जयदेव आदि के लक्षणों पर आधारित हैं। 'गरब गजनी' के लक्षण भी इन्हीं आचार्यों से प्रभावित हैं और उसमें उदाहरण 'जपुजी' के हैं। तुलसी भूषण में अलंकार अकारादि क्रम से हैं जबकि 'गरब गजनी' में ऐसा कोई क्रम नहीं है।

डा० ओमप्रकाश ने १६६७ वि० में रचित लछिराम के 'रामचन्द्र-भूषण' की यह विशेषता मानी है कि इसमें हिन्दी में सर्वप्रथम कुछ अलंकारों के साथ एक तिलक गद्य में आया है।' वे समझते हैं कि यह तिलक जोड़कर उसने एक नया कदम उठाया है जिससे उसके आचार्यत्व का मूल्य बढ़ गया है। परन्तु इस रचना से भी पूर्व भाई सतोखसिंह इस पद्धति की नींव डाल चुके थे। उन्होंने कुछ अलंकारों का गद्य में लक्षण भी दिया है जैसा कि इससे पूर्व हिन्दी के शायद ही किसी कवि ने दिया

होगा।

इस विवेचन से हम इस निरय पर पहुचते हैं कि भाई सतोखसिंह का अलकार शास्त्र का निरूपण था फिर भी रसवादी आचाय होने के कारण अलकार विवेचन के ऊहापोह म उन्होने अधिक रुचि नहीं दिखाई।

अलकार विवेचन के अतिरिक्त इस ग्रन्थ म जपुजी के अन्य काव्य-तत्त्वों पर भी प्रकाश डाला गया है और उनम निहित शब्द शक्ति, गुण-दोष आदि का भी विवेचन किया गया है तथा यथास्थान उनके लक्षण भी दिए गए हैं। शब्द शक्तियों का स्थान अलकारो से भिन्न स्थान दिया है। जहत् साध्यावसाना तथा अजहत् लक्षणा एव अक्रम प्रकथन दोष, पुनरुक्ति दोष अनुचितार्थ दोष, अपुष्टार्थ दोष, अवाच्य दोष अनवस्था दोष, अधिकपद दोष सस्कृति दोष तथा अभवनमत दोष आदि के भी लक्षण दिये हैं। इनम से पुनरुक्ति दोष, अनुचितदोष, अभवनमत दोष, अपुष्टार्थ दोष, अवाचक दोष के लक्षण साहित्य दपण' के लक्षण के समान है। 'अक्रम प्रकथन' भी 'साहित्य दपण' के 'रसदोष' का एक भेद है जिसका नाम वहा 'अक्रम प्रकथन' है। 'सस्कृति (सस्कृत) दोष' भी काव्यप्रकाश का च्युत सस्कृति दोष ही है। परन्तु अनवस्था दोष सस्कृत के इन प्रसिद्ध ग्रथो म नही है। चन्द्रालोक' म भी यह नही आया। सतोखसिंह ने इसका लक्षण तो नहीं दिया परन्तु व्याख्या इस प्रकार की है---

"जो कहो तिन के तुल और धरती है तो तिस धरती के नीचे कौन ? जो कहो और बैल, तो पुनिहि तिस के तले कौन ? इस प्रकार अनवस्था दोष आवत है।" यह दोष उनकी मौलिक सूझ जान पडती है।

यह एक टीका मात्र है इसलिए इसम भाव-पक्ष नगण्य है। यह रचना कवि के दाशनिक, आचायत्व तथा वयाकरण रूप को ही अधिक प्रकट करती है। फिर भी आरम्भिक मगलो तथा उनके आश्रयदाता के परिचयात्मक छन्दो मे उनकी काव्य प्रतिभा प्रस्फुटित हुई है। मगलो म उनके हृदय का भक्ति भाव मुखरित हुआ है। परन्तु उनकी शैली 'नामकोश की अपेक्षा सरल है। गुरु गोविंदसिंह की तलवार महिमा के वणन म अच्छी आलकारिता और ओज है। उनका रूप चित्रण भी सजीव बन पडा है। उदयसिंह का परिचयात्मक वणन भी सरल शली म है। वैसे अनुप्रास वीप्सा रूपक उत्प्रेक्षा तथा उपमा की छटा इन छन्दो म भी देखी जा सकती है। इनम दोहा कवित्त चौपई आदि का ही प्रयोग हुआ है। भाषा मजी हुई साहित्यिक ब्रज है और उसमे प्रवाह है। उनकी गद्य की भाषा भी साहित्यिक और परिमार्जित है। उसमे हस्ता-मलक, अधे और हाथी का दृष्टात आदि लाक्षणिक प्रयोग भी हुए हैं। कही कही भाषा अलकृत भी है अरबी फारसी का भी उन्हे पर्याप्त ज्ञान था। अरबी शब्द 'कूत' तथा फारसी शब्द 'करम' का अथ उन्होने क्रमश आहार तथा कृपा ही किया है। तीवर' 'अनजानपनी' आदि कुछ अप्रौढ प्रयोग भी

हुए हैं परन्तु बहुत कम। सामुचित रूप से उनकी भाषा समय तथा शैली प्रौढ़ है।

उनकी इस रचना को वार्तिक की श्रेणी म रखा जा सकता है। वार्तिक का अर्थ जैसा कि—'उक्तानुक्तदुरुक्तार्थव्यक्तिकारी तु वार्तिकम्' से प्रकट है, मूल म कथित अकथित या अस्पष्ट अर्थ को स्पष्ट करने वाला नियम है। संस्कृत म पाणिनी की अष्टाध्यायी पर कात्यायन द्वारा तथा वात्स्यायन के 'न्याय भाष्य' पर उद्योतकार न वार्तिक लिखे। यह टीका भी उसी प्रकार की रचना है, जिसम जपुजी के अर्थ को स्पष्ट किया गया है। हिन्दी म सभवत ऐसी अन्य वार्तिक नहीं लिखी गई, जिसम दर्शन, साहित्य-समीक्षा तथा काव्य शास्त्र का इतना सुन्दर सयोग हो।

इस टीका से भाई सतोखसिंह की व्याख्यात्मक शक्ति विश्लेषण की प्रतिभा एव उनके व्यापक ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। प्रत्येक पक्ति का दार्शनिक एव काव्यात्मक—दोनों दृष्टिकोणों से उन्होंने उसका जैसा विस्तृत विश्लेषण किया है, वह उनकी अपूर्व प्रतिभा एव विद्वत्ता का द्योतक है आधुनिक युग म जिस प्रकार आलोचना म मनोवैज्ञानिक मनोविश्लेषण, दर्शन, समाज शास्त्र काव्य शास्त्र आदि का समन्वित करके साहित्य को समझने एव समझाने के प्रयत्न हो रहे हैं वैसा ही एक सफल प्रयास भाई सतोखसिंह ने अपने युग के वातावरण म एव स्तर के अनुकूल इस रचना म किया है। प्राय देखा गया है कि संस्कृत के तत्व परक ग्रथों म व्याख्या के इस प्रकार के प्रयास मिलते हैं किन्तु वहां काव्यात्मक दृष्टिकोण का प्राय अभाव रहता है। जबकि सतोखसिंह ने उनकी उपेक्षा नहीं की है। मैं समझता हू कि यह हिन्दी की प्रथम आलोचनात्मक पुस्तक है, जिसम किसी काव्य रचना की शास्त्रीय आधार पर समीक्षा की गई है।

●

परिशिष्ट १

"बाल्मीकि-रामायण-भाषा"

रामकथा भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की अमूल्य निधि है। मध्ययुगीन भारतीय जीवन को इससे नवीन स्फूर्ति, प्रेरणा, आशा एवं उत्साह प्राप्त हुआ, और इस पर आधारित अनेक काव्य-ग्रंथों की रचना हुई। पंजाब में भी रामकथा सम्बन्धी अनेक काव्य ग्रंथ गुरमुखी लिपि में लिखे गए। इसी युग में महाकवि भाई संतोखसिंह (१८८४-१९०० वि०) ने 'बाल्मीकि रामायण' का गुरमुखी लिपि में ब्रजभाषा पद्य में अनुवाद किया, जिसकी हस्तलिखित प्रतियाँ सेंट्रल पब्लिक पुस्तकालय पटियाला तथा मोती बाग पुस्तकालय पटियाला आदि स्थानों में उपलब्ध हैं।

इस ग्रंथ को भाई संतोखसिंह ने कैथल नरेश भाई उदयसिंह के आश्रय में चैत्र संवत १८९१ में समाप्त किया।

इस ग्रंथ में सात कांड तथा ६५१ सर्ग हैं—बालकांड (८२) अयोध्या काण्ड (११७) अरण्य कांड (७५) किष्किंधा कांड (६७) सुन्दर कांड (६८) युद्ध कांड (१३१), उत्तर कांड (१११)।

एक प्रति में लंकाकांड के १२६ सर्ग हैं। दूसरी प्रतियों के १३० एवं १३१वें सर्ग में कवि ने अपने आश्रयदाता भाई उदयसिंह की वंशावली दी है और उनकी भक्ति भावना, गुण-ग्राहकता, दानशीलता, उदारता आदि का वर्णन किया है। इन छन्दों में से अधिकतर उनके ग्रंथ 'गुरु प्रताप सूरज' में भी आए हैं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि ये सर्ग इस ग्रंथ में बाद में जोड़ दिए गए थे। भाई उदयसिंह ने इस ग्रंथ से प्रसन्न होकर भाई संतोखसिंह को 'मोर [illegible]' नाम का गाँव भेंट किया था जिसका उल्लेख कवि ने स्वयं किया है।

इस ग्रंथ का प्रारम्भ '१ ओंकार सतिगुर प्रसादि' तथा सरस्वती की वन्दना से हुआ है। इसके पश्चात् कवि ने परब्रह्म अथवा इष्टदेव-गुरु नानकदेव तथा अन्य सिक्ख-गुरुओं की वन्दना की है। गुरु नानक को उन्होंने अकाल-पुरुष (परब्रह्म) का सगुण रूप तथा अन्य गुरुओं को भी उसी ज्योति का रूप माना है।

गुरुओं की वन्दना के पश्चात् श्री राम का 'नमस्कारात्मक' मंगलाचरण है और उसके पश्चात् कवि की महत्ता एवं 'रामनाम' की महत्ता का उल्लेख है। रामकथा को कवि ने बाल्मीकि रूपी गिरि से निकलने वाली गंगा के समान

कहा है जो कि तीनो लोको को पवित्र करने वाली तथा मोह आदि प्रपचो एव पापो को नष्ट करने वाली है (बा० का० ११७ ८)।

भाई सन्तोखसिंह ने कथा का स्वरूप 'वाल्मीकि रामायण' के ही अनुरूप रखा है, उसमे अपनी ओर से न कुछ घटाया है न बढाया है।

यह रचना केवल भावानुवाद मात्र नही है। 'वाल्मीकि रामायण' के एक अथवा कई श्लोको के भाव लेकर उन्हे अपने शब्दो मे छन्दोबद्ध किया गया है और उनमे कवि की काव्य प्रतिभा का निदर्शन है, एक निजीपन है। कुछ उदाहरण देखिए—

कौसल्या जिनि रघुबर जाए। सभि म सोभा लही सुहाए।।१२।
अदिती ज्यो जाए जगपावन। कीरति समिहिनि महि भई पावन।
अमित तेज बल सुन्दर रूपा। बिना असूया गुणनि अनूपा।।१३।
धरनी म दसरथ सम होए। करुना छाई लोचन कोए।
मानि प्रिय जिनि कोमल बानी। सुनि जि कठोर न कहि गुन खानी।।१४
काज बिगारी जिस न मुख आवा। द मुसकाइ प्रसन्न सुभावा।
सील रु ग्यान जि बैस बडेरे। तिन को आदर करहि घनेरे।।१५।
काल अपर कारज कहु त्यागी। इनि सगम महि रहि अनुरागी।
बुधिवान कहि मधुरी बानी। अब बिना प बड बल मानी।।१६।
जो आवति पूरब तिह देखी। प्रिय बचन आदर करनि बिसेखी।
भूलि न झूठि कहै सुभ पडित। पूजयति सदा बिपनिगुन मडित।।१७।
सब प्रजा परिपालनि प्रीति। प्रजा कर इनि प्रीति प्रतीति।
रोस बिहीन अनिंदक चाला। बिप्रनि पूजक दीन दयाला।।१८।
इन्द्र दमन नीति पुनीता। कुल मारग म चित्त की प्रीता।
छत्री धरम मानि है नीता। बडो सुरग फल चाहति चीता।।१९।

वाल्मीकि रामायण करुण रस प्रधान है। राम के वन-गमन पर दशरथ का हृदयस्पर्शी विलाप तथा राम के कटे हुए मायावी सिर को सामने देख कर अशोक वाटिका म सीता का मर्म भेदी विलाप रामकथा के मर्मस्पर्शी एव कारुणिक प्रसग हैं। तुलसी के दशरथ तो पुत्र वियोग म 'राम राम कह कर' प्राण त्याग देते हैं (मानस अयोध्याकाड १५५) और वह इस घटना का कारण नारी के विश्वासघात (वही २९) अथवा होनहार (वही ३६) आदि को बताते हैं। वहाँ उनकी मृत्यु का कारण वात्सल्य जन्य दुख ही अधिक है। वाल्मीकि न इस प्रसग को और अधिक मनोवैज्ञानिक बना दिया है। राजा केवल पुत्र वियोग से ही दुखी नही हैं, वरन् वह इस ग्लानि स भी जल रहे हैं कि उन्होंने स्त्री के वश म होकर कामवश प्रिय पुत्र को वन भेज दिया है। जब स्वर्ग म देवताओ को इसका पता चलेगा तो वे क्या कहेंगे। भाई सतोखसिंह के अनुवाद म करुणा की यह धारा उसी वेग स प्रवाहित है जैसी वाल्मीकि

व [illegible] उस [illegible] लक्ष्मण की मानसिक स्थिति का भी बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

भाई सतोखसिंह [illegible] लक्ष्मण का इस प्रकार किया है—

चौपाई—[illegible] ॥ ५ ॥

राम [illegible] ॥ ५ ॥

दोहा— [illegible] गुरनाह।

[illegible] ॥ ६ ॥

[illegible]

[illegible] ॥ ७ ॥

चौपाई—[illegible] ॥ ८ ॥

[illegible] राम [illegible] ॥ ८ ॥

कोप [illegible] पुरा। महा तेज महि [illegible] पुरा।

मन सेवा तत्परि [illegible] । कमल पत्र [illegible] ॥ ९॥

कर श्रम राम दउ धनुधामा। तपावनि करिह प्राणते पामा।

इन्दीवर स्याम सरोजा। दीरघ बाहु ब्रिन्दु जनु दोना ॥ १० ॥

रामचन्द मुन्दरि तन ऐसे। दइन बन गमने बहु पैसे।

दुख अनुचित उचतै अति गुन को। बन मैं पिरी राम के दुख को ॥११॥

त्रिह दुख देखनि तें पुरा छूटि आइ जे प्राना।

बडी बाति मो कउ भली हा हा बसत महाना। १२ ॥

(वा० रा० भाषा अयो० सर्ग १३)

सीता के पवन वियोग का चित्रण भाई सतोखसिंह ने इस प्रकार किया है—

सरव चिन्ति को पारथि करिकै। रोदिति भइ बिलाप उचरिकै। २ ॥

कुच समान दुखी कुरलावति। कैकेई की नंदि निंद भलावति।

भरत मात सह कामा होई। कुल सुत करयो विनासनि तोहि। ४ ॥

कलह सुभावा सभि कुल नासा। मुझ समेति बन राम निकासा।

हुतो मैं सठ सरल सुभाऊ। तेरो त्रियै करयो न काऊ। ५ ॥

अस कहि तपसनि कर्पति सारी। गिरि धरा परि खाई पछारी।

बल्ली कदनि कीनि जिमि काटू। परहि तुरति अवनी तल माटू ।६।

द्व घटिका जवि परे बिताई। पुन सरीरि चेतनता आई।

पिरि अलक बीनी सिरि सोई। करति बिलाप सो कचहु राई। ७।

हे बड बाहु बीर ब्र धारी। हे अवि हैगी भिन बिचारी।

पाछलि दसा तोहि अस भई। मुझ बिधवा करि अमगति दई। ८।

इसत्री ते प्रथम पति मरना। जग त्रिय औगनि बड करना।

साथ त्रिनी तूँ मोहि अगारी। भयो छपनि तजि एकल नारी। ९।

बाल राति म अतिस दारुन। तिरलायल बहु दुख को कारन।

मुझ सो मिलि करि के इसि काला। तूँ भी पहुचि गयो जमसाला।४५

कमल विलोचन बाहु विसाला। मुझ को त्याग्यो होइ दुखाला।
धरती संगि सप्रसनि करि क। सोवति परयो प्रान को हरि के। १६।
अरु ते कह्यो हुतो संगि तेरी। विचरहि गो निति इछा मेरी।
उर महि सुमरनि सो अब धरीए। मुझ दुख्यति को सीछिति करीए।२२
सुनि हु गती मिताम्बर किसी कारन त मोहि।
छाडि गया इसि लोक महि भा प्रलोक अब तोहि। २३।
(वा० भाषा—यु० कांड सग ३२)

लक्षमण के क्रोध की व्यजना भाई सतोखसिंह ने इस प्रकार की है—
अबहि वसतु मगल के सग। निज अभिषेक कराउ निसग। ३३
एकाकी मै आयुध धरिक। सभि राजनि को देउ निवारिक।
हैं समरथ मम दानहु बाहू। धनु सतीर इह हमरे पाहू।
सोभा हेत न राख पाना। द दो नाहिन काठनि साना।
धुलष बान अरु मम जुग बाहू। चारिहु दुसट दमनि हित पाहू। ३५
(वा० रा० भाषा अयोध्या कांड सग २३)

ऊपर के इन प्रसगों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि अनुवाद मे कहीं भी शिथिलता नहीं है। भावों म वसी ही सजीवता एव मार्मिकता है जसी वाल्मीकि रामायण म। वाल्मीकि रामायण का ऐसा सरस एव सुन्दर अनुवाद अन्यत्र दुलभ है। इसम पात्रों का चरित्र चित्रण कथा का स्वरूप, भावों की व्यजना एव वस्तु वणन सब ही वाल्मीकि रामायण के अनुरूप हैं। बहुधा उपमान योजना भी वसी ही है।

अनुवाद होने क कारण इस रचना म भाई सतोखसिंह के लिए अपनी कल्पना का चमत्कार दिखाने का अवकाश कम था, फिर भी उनकी काव्य प्रतिभा कल्पना शक्ति एव अनुभूति की तीव्रता के दशन इस ग्रन्थ म कहीं भी किये जा सकते हैं। ऊपर उनकी रचना से जो उदाहरण दिए गये हैं व इसका प्रमाण हैं।

यद्यपि इस रचना मे, स्थान-स्थान पर उपमा रूपक उत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति आदि की छटा देखी जा सकती है तथापि शली 'वाल्मीकि रामायण की ही भांति स्वाभाविक है उसमें कृत्रिमता नहीं यह सम्पूण ग्रथ दोहा चौपई म लिखा गया है। बीच-बीच म कवित्त, सवया सोरठा, छप्पय आदि छन्दों का भी रस तथा प्रसगानुकूल प्रयोग हुआ है। भाषा पर उनका पूरा अधिकार है। जिसमे प्रसगानुकूल मधुरता ओज तथा सरसता है और मनोवेगों को चित्रित करने की क्षमता है। ब्रज भाषा होते हुए भी उसम अवधी की झलक है और 'क्या', 'के' आदि खडी बोली के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

इस अनुवाद म एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि कवि के इष्टदेव 'नानक देव' तथा अन्य सिक्ख-गुरु ही हैं जिन्हें कवि ने ब्रह्मरूप निराकार साकार एव जगत उद्धार के लिये अवतरित कहा है। रामकथा को अपनाकर कवि ने अपनी उदारता एव समन्वय भावना का परिचय दिया है।

परिशिष्ट-२

श्री मद्भागवत पुराण-भाषा (जैमलसिह)

रास वणन

दोहरा विरह बिकल सम गोपिका म्रतस हीम्र भइ पीन ।
प्रगट होइ है क्रिसन तब देख नार गन दीन ।१।

चौपई मुनि कहहै निप सुनहु प्रबीना । इह विध गोपी हरि रस लीना ।
विविध प्रकार गाइ गुन नाना । पुन प्रलाप कीम्र चतर स्याना ।
पुन सु स्वर रोई इक साथा । एक सदा जह पिम्रा यदुनाथा ।
तिह छिन प्रगटे स्री जदुनन्दा । मन्द हास युत मुख सुख कदा ।
पीत वसन सुदर वनमाला । मनमथ के मन मथन त्रिपाला ।
तिनहि बिलोक सकल ब्रज नारी । उठी शीघ्र हरखत सुकुमारी ।
जिम गत प्रान पाइ पदु हाथा । होइ सचेत सभ इक साथा ।
तिम सभ तीम्र गन म्रत सुख पाई । प्रीत मनि रख प्रेम हीए छाई ।
कोई सखी धाइ त्रिमन कर कजा । पकर्यो दुहु कर सो सुख पुजा ।
कोऊ सखी भुज परम म्रनूपा । धर्यो म्रम निज सुख म्रनरूपा ।

छद निज सुख म्रनरूपा कोउ सखी भूपा हरि मुख चरवति पान लई ।
इक म्रपर सभागी हीम्र म्रनरागी तपत उरोजन म्रघ दई ।
इक म्रपर म्रनूपा गरजत रूपा प्रेम रोग हीए मा भई ।
बारी कर भौहै प्रेम रिसाहै त्रिवग भई तन प्रेम मई । ४ ।
निज रद छद दनन काट मुनन्दर नन कटाछन सरा हई ।
इक विध म्रबलानी हर मुख गोपि सुगन समूह म्रनन्द भई ।
इक म्रपर स्यानी हीए मुख मानी इन्दर हरमुख पान करै ।
मुखपान स्यानी कर मनमानी तदपर नह मन त्रिपत धर । ५ ।

दोहरा जिम हर चरण सरोज रस पान करत कोऊ सना ।
पीवत होद न तारन निद कन्न लाभ नह म्रना । ६ ।

सोरठा इह विध गोपी जन पाद दरस प्रिम्रा नाथ का ।
तोप नहा प्रमिहि मान हर लाहु द्रिग लालची । ७ ।

चौपई कोऊ इक अबला परम प्रबीनी। निज द्रिग द्वार हीए हर कीनी।
नन मूंद अन धर्यो समाधी। योगी इव बाधा सम बाधी।
मगनि भई उर आनन्द माही। पुलक तनो रहि तन सुध नाही।
सकल गोपका हर मुख देखी। मत उत सब हीए हरख बसेखी।
बिरह ताप सम नस गो पापू। सत सग जिम भव दुख नापू।
अथवा ससारी जन कोऊ। बिदुख सग कर सुख लह सोऊ।
रहत ताप गोपी बहु पासा। मध्य क्रिसन छब धाम सु पासा।
अति सोभत भए क्रिसन कनाई। मनहु सक्त युत ईस्वर आई।
अथवा कोउक उपासक प्रानी। पाइ ग्यान बल बीरज सानी।
तिन सम बोलें क्रिसन क्रिपाला। जमना पुलन गए नर पाला।
बिकसत कुमद कुद मदारू। त्रिबिध समीर तहा सुख सारू।
अलि गन गान करत रस माते। सरद चन्द कर सुभग सुहाते।
यमना तरल हसत कर बाहू। रदन कीउ सो पुलन बिसाहू। ८।
दोहरा ताहि पुलन महि गोपगन ले आए घनस्याम।
सहत तिनहि सोभत भए अतसय छब सुखधाम। ६।
सोरठा क्रिसन दरस सुख पुज उमग्यो हीउ आनन्दघन।
नस्यो हिद रुज पुज परपूरन मन कामना। १०।
चौपई आपत काम यदप जन नाव। भजत भई गोपी सुखदाव।
सो मुन बरन तहँ निप माही। बसत जास हीए क्रिसन सदाही।
कुज कुकम अकत अत भीनो। सुभग उपरना/सौरभ भीनो।
सोउ तार आसन रच दीनो। इह बिध प्रिम सनमान जु कीनो।
तापर बैठे श्री भगवता। अत सोभत भए तब श्रीकता।
योगी होअ कलपत सुभ आसना। गोपी बसन बठे तही सासना।
ब्रज जुवती मडल चहु पासा। ललत लाल लोचन लख प्यासा।
त्रिभवन सोभा युत तन धारी। अस वपु सुभग सोह गिरधारी।
गोपन सहत इस द्रिग काके। अति बिलास युत प्रभ मुख ताके।
इह बिध कर सनमान न थोरा। बैठी निकट आइ चहु ओरा।
धर निज अक क्रिसन पद कजा। कर पल्लव परस सुख पुजा।
परसत मनसिज उमग अपारा। निरख क्रिसन मुख बारह बारा।
कर असतुत रचक युत रोसा। बोली तीअ तब कर सहि रोसा।
छन्द इक भजहि जे कोऊ भजें ताको अपर भज बिन नह भजें।
इक भजतहू तिह ना भज बिन भज कैसे कहु भजें।
इक धार महि कहु कौन चतर सुजान कहहु बिचारकें।
तब हसे नन्द किसोर तीअ को चातुरी हीअ धारक। १२।
भनित ब्याहन चापी हमें यह जान हरि बोले नवें।

हे सखी भजते बहु भज ते कहो सुभती है कबै ।
ते परसपर हित उभ चाहित सुहृदयता नहु तिह महै ।
नह सुख तहा स्वथ लखहु नह धरम लेसहु ते लहै । १३ ।

दोहरा केवल स्वारथ हेत मलि अपर न कछु उपकारा ।
गोमहखी जिम पालवो केवल दैं उपचारा । १४ ।

सोरठा भजै परसपर कोइ ताकी गल एसी सखहु ।
बिना भजे भज साइ सोइ पुन उभ प्रकार कै । १५ ।

चौपई करनायुत इक सतन भजही । एक सरस चित भजै जु सहही ।
करनायुत गुन बहु पित भजही । भ्रिद मन सो सभ बहु भ्रिद चलही ।
धरम सुह्रिद ताइ कम राजानू । कम सिष पुत्र पित्र बखानू ।
ए मध्यम सग रागी स्यानी । प्रसन तीसरी कहू बखानी ।
जे भजते बहु भजे न प्यारी । ते जग म नर है बिध चारी ।
एक महै जे धातमराम । भ्रापतराम दुक मन भ्रमराम ।
अपर एक भ्रतिग्रय निस्तान । गुर द्रोही चौथे पुन जान ।
उपकारी तन पोगाहारा । जनक भूप गुर सम निरधारा ।
या बिध हर जब बचन उचारा । गाना गुन गुन भयो भ्रपारा ।
गूढ़ भाव गुन तीय मुरारी । साग भाव हरि हीय महि जारी ।
[illegible] गुन [illegible] सुम कामा भ्राता । १६ ।
[illegible]

मैं नह लखाइ दीन तुम कहु मन असूमा जन करो ।
तुम अत सुसील प्रबीन नागर वचन मम यह उर धरो ।
ग्रहनि गड कठन कठउर तिह तुम तोर सभ मो कहु भजी ।
जग लोक लाज अपार वरध लघ तिह तुम नह लजी ।
मम प्रेम अमित अनिव ठौरन एक चित नह हो तरी ।
तव देख परम सुसीलता मन मार अरसन होत री । २० ।
तब साध नित उपकार जो बहु काल मैं चाहा कीउ ।
तदयम न पर उपकार सुन्दरि होन तुम जिम मम कीउ ।
तव सील गुन ते सखी मो बहु अरनता हूँ जानीग्रह ।
नह कर सका बदलो तिहारो रिनी सतत मानीग्रहू ।

दोहरा तदयपि हर अखलेज प्रभ भगतन बस भगवान ।
या विध गोपन सो कह्यो श्री मुख त्रिया निधान । २२ ।

(दशम स्कन्ध, अध्याय ३२)

(अध्याय ३३)

चौपई तिह थल ललत नन्द सुत तबहि । रास अरभ कीना त्रिप जबहि ।
विपल धाम छब धाम प्रबीनी । ताहि सग क्रीडा मन दीनी ।
अत प्रसन जुवत गुनाकर । बाहु बध सभ भई परसपर ।
अनुगत स्याम बाम भुज दोऊ । मिले परसपर अत सुख सोऊ ।
रच्यो तहां मडल सुखकारी । नचत गापका जिह सुभ भारी ।
तहा किशन उतसव अतकीना । योगाधीस सरस मन दीना ।
युग ललना बिच एक मुरारी । योग अमित वपु धुज विहारी ।२।

दोहरा ललत स्याम वपु वाम छब कोट कोट इक अग ।
तदपि न उपमा सोहि यहि अधक अधक छब अग ।

सोरठा सम ललना तिह ठाम इम जानत भई आप मन ।
हम ढिग है घनस्याम याते मन आनन्द अत ।

चौपई उतसव सत सुरगन तीअ साथ । चढ विमान गावह प्रभ गाथ ।
सुर विमान अगनत नभ छाई । बरखत सुमन निसान बजाई ।
जे गन्धरब गान गुन आगर । गावह हरि जस अमल सुधाकर ।
नूपर चले किकनी नादू । प्रिय प्यारी मिल सुन सवादू ।
अतिस धुन सभ दिसा सुहाई । रच्यो रास मडल सुखदाई ।
तिह मध नद सुमन अन सोभन । निरख बिबिध ,तीअ सभ मोहन ।
जिम मरकत मन कजन पासा । लसै अधक छब हाहि प्रकासा ।
कजन तन जुवती जन ब्रिदा । मरकत मन दुत तन गोविंदा ।
दुइ दुइ बीच एक यदुनन्दा । सोभत सोभत आनन्द कदा ।
जिम तिह सग ललत गोपालू । जिम तिह सग छकी छब बालू । ५ ।

छन्द पद धरन गत मन्द गिरत भेद मिलत बरबट नागरी।
सिर मद हारा बिसाल भ्रिकुटी लमित बट सगमागरी।
गुभ लगट मुर पट ससत कुडल ललत उर बरहार है।
मत सुभग गोल कपोल भमका मधर गियल सुगार है।६।
मुग मज पर स्रम बिंद राजते गिरी रसना मोहनी।
इह भात गिरत्यत गोपका हरि संग बर मत मोहनी।
तहि बिबध रूप ग्रनूप बमब जलद राम यप सोहनी।
तह गोपका सभ तडत इय भई स्वेद बन पूही मनो।

दोहरा गा तहा गरजत मनहु राग रसन घनस्याम।
ताहि बीच मतमें लसी रामत्रिया ब्रिज वाम।७।

चौपई नृत्यत तह सभ सुमुखी स्यानी। निरते भेद गुन ग्रगनत ठानी।
गावहू तहा मुरती ग्रग नैनी। ताल भेद सुर गत सुख दनी।
ग्रत ग्रिग्रा ललत चलत गज गैनी। बिकसत वदन कज जन सैनी।
पचम रिखभ निखाद बखानी। ग्ररधै वत गाधार बखानी।
मध्यम खर जस षतस्वर जाती। ग्रिग्रा गान कीम ग्रगनत भाती।
परस क्रिसन वपु ग्रति ग्रभरामा। वाम भई सभ पूरन कामा।
गावत नन्द लला तिह सगा। मूरछ पर्यो जह देख ग्रनगा।
मन्द मन्द धुन बैन सुहानी। जा सुन ग्रग जग मोहत प्रानी।
जाहि गीत बर सभ जग पूरा। जुगल किशोर गीत ग्रति पूरा।
सभै सखी बर बस किसोरा। सभ मदन कोटक चित चोरा।
तिन म इक ग्रत परम प्रवीनी। गान कीउ प्रिग्र सग रस भीनी।
मिलत होइ स्वर तालन तासू। ऊचै कर ध्रुव ताल बिलासू।
प्रीतम प्रीत सहत द माना। तास कीउ ग्रतसै सनमाना।
साध साध कह क्रिसन मुरारी। सुख उपजउ लख उर प्यारी।
सोऊ सखी पाइ रास स्रम खेदा। निकट क्रिसन मुख लख युत स्वेदा।
बलै मालवा सियल सु जासू। निज ग्रसन पीग्र भुज धर ग्रासू।
विरहू जनत सभ ताप बिहाई। ग्रत ग्रानन्द उमग ग्रधकाई।८।

छन्द ग्रत उमग उर ग्रानन्द कोऊ सखी ग्रस भुज लख स्याम की।
सुठ सुभग सौरभ कज मलज सू धति ग्रावस काम की।
पुन पकर भुज निन पान कजन विहस चुबन तिह कीउ।
सो भई निरभर प्रेम गद गद पुलक तन हुलसत हीउ।१०।
कोऊ ग्रपर परम प्रवीन नागर निरत्यत निरत सुहावनी।
ग्रति लोल कुडल गड झलकनि ग्रलक पीग्र मन भावनी।
गत भेद सो पीग्र गड पर निज गडि धर नाचन भई।
इह ब्याज हर मुख पान चखत तुरत निज मुख म दई।११।

ये पचाग नन्ददास की रास पचाध्यायी के समकक्ष रखकर देखने योग्य हैं।